आप्तवाणी

श्रेणी-१२ (पूर्वार्ध)

दादा भगवान प्ररूपित

आप्तवाणी

श्रेणी - 12

पूर्वार्ध

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन
हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100

© Dada Bhagwan Foundation,
5, Mamta Park Society, B\h. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad - 380014, Gujarat, India.
Email : info@dadabhagwan.org
Tel : + 91 79 3500 2100

All Rights Reserved. No part of this publication may be shared, copied, translated or reproduced in any form (including electronic storage or audio recording) without written permission from the holder of the copyright. This publication is licensed for your personal use only.

प्रथम संस्करण : 500, प्रतियाँ, जून, 2021

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी
जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 200 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
B-99, इलेक्ट्रॉनिक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2142

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नम: शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

'दादा भगवान' कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि "यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो 'ए.एम.पटेल' हैं। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।"

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

समर्पण

स्थूल में से सूक्ष्म की तरफ, ले जाए बारहवीं के आप्तवचन;
नहीं है सिर्फ पढ़ने के लिए, है ज़रूरी गहरा परम अर्थघटन!

आज्ञाओं का महत्त्व, स्वच्छंद निर्मूलन;
ऊपरी हैं दादा, ले लें मोक्ष तक का संरक्षण!

ज्ञाता-द्रष्टा सहज ही संप्राप्य, शुद्ध उपयोग निरावरण;
बारहवें गुणस्थानधारियों! पाओ अनंत भेदी यह समझ!

प्रगति के सोपान चढ़ाए, शिखर पर लक्ष्य दृढ़ीकरण;
एक ही शब्द पचे तो कदम मोक्ष की तरफ!

अहो-अहो, दादा! आपका वचन बल, एक-एक शब्द भेदे आवरण;
तुच्छ लगती प्रचंड शक्ति, अज़माई थी जो 'पोखरण'!

ज्ञानी की जागृति की झलक, झुकाए शीश ज्ञानी चरण;
अहो अहो की अश्रुधारा, पढ़ें तो न सूखने दे नयन!

बारहवाँ गुणस्थानक व्यवहार से पाने को, करो नित्य आराधन;
बारहवीं आप्तवाणी के लिए, महात्माओं से विनती!

जागृति यज्ञ की अकल्पनीय सामग्रियों का कलेक्शन;
समर्पण, समर्पण, अक्रम महात्माओं को समर्पण!

संपादकीय

अक्रम विज्ञानी परम पूज्य दादाश्री के महात्माओं को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है। अब केवलज्ञान प्राप्ति तक की क्षपक श्रेणियाँ पार करनी हैं। संसार की बाकी की ज़िम्मेदारियाँ पूरी करते-करते यानी कि निश्चय में रहकर शेष व्यवहार पूरा करते-करते, पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करना है। दादाश्री ने जगह-जगह पर महात्माओं के व्यवहार की उलझनों, आज्ञा में रहने की मुश्किलों का खुलासा और सूक्ष्म जागृति में किस प्रकार से रहें, उसके खुलासे किए हैं। अलग-अलग जगह पर, अलग-अलग निमित्तों के अधीन निकली वाणी को टेपरिकॉर्डर में रिकॉर्ड किया है। उसके बाद ऑडियो केसेट में से दादा की वाणी को लिखकर बिखरे हुए मोतियों की माला पिरोई है। जो महात्माओं के लिए मोक्ष पंथ पर प्रगति के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। पढ़ते ही अंदर से कितनी ही चीज़ों का प्राकट्य हो जाता है। परम पूज्य दादाश्री खुद ही हमें प्रत्यक्ष कह रहे हों ऐसा लगता है। सुज्ञ पाठकों को दादाश्री के प्रिय पात्र 'चंदू' की जगह पर खुद का नाम रखकर पढ़ना है। चंदू अर्थात् नामधारी, हम खुद ही। एक-एक वाक्य में, ज़ोर देकर कहा गया है कि ''मैं चंदू हूँ' की मान्यता में से 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ', 'अकर्ता ही हूँ', 'केवल ज्ञाता-द्रष्टा ही हूँ', आत्मा के अलावा बाकी का कुछ भी 'मेरा नहीं है', बाकी का सब जो पहले चार्ज किया हुआ है, उसका डिस्चार्ज है। भरा हुआ माल ही निकल रहा है, किसी भी संयोगों में नए कॉज़ेज़ उत्पन्न हो ही नहीं सकते, आप मात्र इफेक्ट को 'देखते हो''। पढ़ते-पढ़ते अंदर इस बात का एकदम दृढ़ीकरण हो जाता है।

ज्ञान मिलने के बाद महात्माओं को निरंतर पाँच आज्ञा में रहने के अलावा अन्य कुछ भी करने को नहीं रहता। क्योंकि तीर्थंकरों ने क्या कहा है? आज्ञा ही धर्म है और आज्ञा ही तप। फिर अन्य कोई तप करने को बाकी नहीं रहते। ये पाँच आज्ञाएँ ज्ञान प्राप्त महात्माओं के लिए ही हैं, अन्य के लिए फायदेमंद नहीं हैं। जो एक्ज़ेक्ट पाँच आज्ञाओं में रहें, वे भगवान महावीर जैसी दशा प्राप्त कर सकते हैं! एकावतारी पद को प्राप्त कर सकते हैं! हाँ, पाँच आज्ञाओं का पालन

प्रज्ञा से करना है, बुद्धि से नहीं। बुद्धि से पालन की हुई आज्ञाएँ, कर्मों में से छुड़वा नहीं सकेंगी!

महात्माओं को प्रस्तुत आप्तवाणी के पूवार्ध और उत्तरार्ध की गहराई से 'स्टडी' करनी है। जब तक अंदर से निरावृत न हो जाए तब तक मनन-चिंतन और सत्संग में प्रत्यक्ष प्रश्न पूछने हैं, छोड़ना नहीं है। डीप स्टडी करनी है। वाणी पढ़ते हुए, अहो, अहो, अहो हो जाता है और वास्तव में 'ज्ञानी पुरुष' कैसे होते हैं, उसकी यर्थाथ रूप से समझ उत्पन्न हो जाती है। खुद को ज्ञानी कहलवाने वाले, शुष्क ज्ञानियों की वाणी से दादा की वाणी की तुलना करते ही पता चल जाता है कि असली हीरा और काँच में कितना फर्क है?!!! इतना एक्ज़ेक्ट स्पष्टीकरण, इतनी सूक्ष्मता की सटीक समझ, कहीं भी प्रकट हुई हो, ऐसा देखने को नहीं मिलती। धन्य है, इन बेजोड़ 'ज्ञानी पुरुष' को! 'न भूतो, न भविष्यति' सार्थक होता है, उनके अनुभवों को पढ़कर!

जगह-जगह पर खुद किस प्रकार से जागृति में, शुद्ध उपयोग में, जुदापना में और वीतरागता में रहते हैं, इन अनुभवों का वर्णन किया है। जो हमें लक्ष्य दृढ़ होने में और हम से कहाँ भूल हो जाती है, उसे समझने में प्रकाश स्तंभ समान बन जाते हैं! तब हृदय 'अहो अहो के भाव' से भरकर पुकार उठता है कि 'दादा धन्य है आपको! इस काल के हर प्रकार से हतभागी लोगों को आपने अद्भुत आप्तवाणी अर्पण करके मोक्ष की प्राप्ति अति-अति-अति सुलभ कर दी है!' इस काल में अध्यात्म के शिखर पर पहुँचे हुए (ज्ञानी पुरुष) की संपूर्ण अनुभव वाणी पढ़ते हुए, बाकी सभी कन्फ्यूज़ करने वाली वाणियों को, पढ़ने के भार में से मुक्त कर देते हैं और 'दादावाणी' हाथ में आते ही हाथ-पैर और हृदय थन-थन नाचने लगते हैं!

महात्माओं को एक खास लाल सिग्नल दिखाने से रोक नहीं पा रहे हैं। परम पूज्य दादाश्री की वाणी व्यवहारलक्षी और निश्चयलक्षी है, दोनों ही प्रकार की है। अब वाणी की सीमा ऐसी है कि एट ए टाइम दो व्यू पॉइन्ट को क्लियर नहीं कर सकती! जिस प्रकार बिलियर्ड में एक स्ट्रोक से कई बॉल छेद में डाली जा सकती हैं, यहाँ वाणी में

उस तरह से नहीं हो सकता। एट ए टाइम एक ही बात निकलती है। इसलिए जब निश्चय वाली वाणी निकलती है तब 'केवल आत्मा में ही स्थिर रहने के लिए कहा जाता है कि चंदूभाई से चाहे कैसा भी आचरण हो जाए, तब भी आप शुद्ध ही हो, शुद्धात्मा ही हो। और उसके अलावा एक-एक परमाणु डिस्चार्ज ही है, 'मेरा नहीं है'। महात्माओं को नया चार्ज होता ही नहीं है', इत्यादि, इत्यादि कहते हैं। वास्तव में वह करेक्ट ही है लेकिन जब व्यवहार की बात आती है, तब यह भी बताया है कि चंदूभाई को 'कौन सी जागृति में रहना है'। आदर्श व्यवहार कैसा होना चाहिए? घर या बाहर कहीं भी किसी के लिए दुःखदायी न हों, वैसा! किसी को दुःख हो जाए तो चंदूभाई को प्रतिक्रमण करना होगा। वहाँ पर सही हकीकत यह है कि चंदूभाई डिस्चार्ज ही है लेकिन चंदूभाई के सामने वाले व्यक्ति के लिए रोंग अभिप्राय को तोड़ने के लिए, उसके प्रति स्पंदनों को प्यॉर करने के लिए, चंदूभाई से प्रतिक्रमण करवाना है। 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ, मुझे प्रतिक्रमण नहीं करना है लेकिन चंदूभाई को तो करना ही होगा'। वर्ना दुरुपयोग हो जाएगा और व्यवहार बिगड़ जाएगा। जिसका व्यवहार बिगड़ा, उसका निश्चय बिगड़ना ही है।

अब अगर महात्मा दादा की निश्चय वाणी को एकांतिक ले लें या फिर व्यवहार वाली वाणी को एकांतिक ले लें तो बहुत घोटाला हो जाएगा और पता ही नहीं चलेगा और गाड़ी न जाने कहाँ चली जाएगी।

संक्षेप में अक्रम विज्ञान का सार क्या है? ''मैं शुद्धात्मा ही हूँ', केवल ज्ञाता-द्रष्टा ही हूँ और खुद के जीवन में जो कुछ भी हो रहा है, वह पिछला भरा हुआ माल निकल रहा है, उसे 'देखते' रहना है।' अब वहाँ पर क्या भूल हो जाती है? (1) भरा हुआ माल है, ऐसा पता नहीं चले तो पूरा नुकसान। (2) पता चल जाए, यानी कि 'जान ले' कि यह भरा हुआ माल है लेकिन उसे अलग नहीं देखे तो पार्शियल नुकसान। इसमें वह भूल को चलने देता है। उसका विरोध नहीं करता है इसलिए कब उन्हें देखना और जानना चूक जाएगा, वह पता नहीं चलेगा। (3) 'मैं शुद्धात्मा हूँ' के अलावा जो कुछ भी निकल रहा है, वह भरा हुआ माल है। उसे अलग जानना और देखना है, बस इतना

ही नहीं, लेकिन साथ-साथ प्रज्ञा की तरफ से हर समय अपना स्ट्रोंग विरोध रहना ही चाहिए कि, 'यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए' तो हम जीत जाएँगे और भरा हुआ माल घर खाली करके चला जाएगा।

कई बार इस तरह से अलग देखते और जानते हैं कि 'भरा हुआ माल है' लेकिन कुछ ही देर में यह दुष्ट बुद्धि वापस कब गुलाट खिला दे, उसका पता नहीं चलेगा। अत: इस बात का ध्यान रहेगा कि यह 'भरा हुआ माल है' लेकिन बुद्धि अपना चलन चलाकर ध्यान को ध्यान में ही रहने देने के बजाय, खुद ही सर्वेसर्वा बन जाएगी। परिणाम स्वरूप सूक्ष्म से लेकर स्थूल तक के *भोगवटे* (सुख या दुःख का असर, भुगतना) में ला देगी! फिर भी इससे नया तो चार्ज होगा ही नहीं, लेकिन पुराना डिस्चार्ज खत्म नहीं होता और उतने समय तक हम आत्मसुख खो देते हैं। इन सब में से एक्ज़ेक्टनेस में रहने के लिए यदि इस सादी, सरल और सब से आसान चाबी का उपयोग करते रहेंगे तो अक्रम की लिफ्ट में तेज़ी से एकावतारी पद प्राप्त करके मोक्ष में पहुँच जाएँगे, गारन्टी से! वह चाबी कौन सी है? भरे हुए माल का विरोध किया तो तन्मयाकार होने की संभावना खत्म हो जाएगी। उसके बाद चंदू जो कुछ भी करता है, अच्छा करे या खराब करे, किसी सुंदर स्त्री को देखकर अंदर तार हिल उठें, जैसे कि लोहचुंबक के सामने हो जाता है, उस तरह से, तब भी वह डिस्चार्ज ही है, परमाणुओं का *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) ही है, 'वह मेरा स्वरूप नहीं है' और हमें विरोध ही करते रहना है। सतत इतनी जागृति में रहने से अवश्य ही सारा माल खाली हो ही जाता है। जिसे हमेशा के लिए अक्रम की इतनी समझ फिट हो जाएगी, वह इस काल में भी ज्ञानियों की तरह, निरंतर निराकुलता में, जीवन मुक्त दशा में जी सकता है और एक ही जन्म में मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यह हकीकत है।

परम पूज्य दादाश्री ने एक जगह पर कहा है कि चंदूभाई खराब काम करें या अच्छा, दोनों को 'देखते' रहो। क्योंकि देखने वाले के लिए वह दोष नहीं है, खराब या अच्छा नहीं है। देखने वाला ज्ञान प्रकाश रूपी है। जिस प्रकार से फूल लाइट को सुगंधित नहीं कर सकता और

कीचड़ उसे बिगाड़ नहीं सकता, बदबूदार नहीं बना सकता, उसी प्रकार आत्मा अच्छे या खराब कामों में भी निर्लेप ही है। अतः, 'मैं ऐसा निर्लेप हूँ', लेकिन चंदूभाई से अगर कुछ खराब काम हो जाए तो जुदा रखकर उससे प्रतिक्रमण करवाना है और *ठपका* (उलाहना, झिड़कना, डपटना) देना है। अगर चंदूभाई निर्लेप रहें तो वह गुनाह है। आत्मा अर्थात् जो खुद निर्लेप है। इस तरह निश्चयात्मक वाणी और व्यवहारात्मक वाणी का सुंदर बैलेन्स किया है। यों कोई भी बात एकांतिक नहीं है। मोक्ष में जाना हो तो व्यवहार और निश्चय, रिलेटिव और रियल, दोनों ही तरफ एक सरीखा रहना चाहिए, तभी संभव हो सकेगा। इसका यदि दुरुपयोग होगा तो लाभ नहीं मिलेगा और नुकसान हो जाएगा। और व्यवहार में सभी कर्मों को डिस्चार्ज कहा है लेकिन ये तीन, *अणहक्क* (बिना हक़ का, अवैध) का विषय, मांसाहार और शराब, निषेध हैं। जब तक ये रहेंगे तब तक वहाँ पर मोक्ष या धर्म की बात ही नहीं हो सकती। अतः जब समग्र प्रकार से समझेंगे तभी प्रगति हो सकेगी, एकांतिक नहीं।

कई बार पहले व्यवहार और फिर निश्चय है, ऐसा समझकर महात्मा अपनी सुविधानुसार फाइल के प्रति खुद का जो मोह है उसे ढकते हैं। ऐसा करके महात्मा सत्संग में आने का टालते हैं। दादा ने फाइल अर्थात् जैसे पुलिस वाला डंडे से मारकर मांस खिलाए, तो उसे फाइल कहा है जबकि इसमें तो अच्छा लगता है और करते हैं और कहते हैं कि 'फाइलों का *निकाल* (निपटारा) कर रहे हैं', तो उसे ज्ञान का दुरुपयोग कहा जाएगा।

परम पूज्य दादाश्री की अपूर्व वाणी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और निमित्त के अधीन सहज रूप से निकली है। सुज्ञ पाठक को इसमें कहीं भी त्रुटि या विरोधाभास लग सकता है लेकिन वास्तव में ज्ञानी का एक भी वाक्य विरोधाभास वाला नहीं होता। मोक्षमार्ग एक व्यक्तिगत सिंचन का मार्ग है। पूज्य दादाश्री हर एक व्यक्ति की प्रकृति को खपाने के लिए उसकी प्रकृति का जैसा है वैसा, उसकी स्क्रीनिंग करके उसे समझाते थे। वह उनकी ग़ज़ब की शक्ति थी! प्रस्तुत ग्रंथ में अलग-अलग प्रकृतियों को खत्म करने के अलग-अलग तरीके बताए गए हैं,

वहाँ पर शायद विरोधाभास का आभास हो! जैसे कि सौ मरीज़ों को एक ही प्रकार का एक सौ चार डिग्री का बुखार होता है लेकिन अनुभवी डॉक्टर हर एक को अलग-अलग दवाई देता है, किसी को मलेरिया की तो किसी को टाइफॉइड की तो किसी को वायरस की तो किसी को किडनी इनफेक्शन की! सामान्य व्यक्ति को इसमें विरोधाभास लग सकता है या नहीं?

कभी किसी व्यक्ति ने यदि कोई भारी गुनाह किया हो, वह स्ट्रोंग माइन्ड वाला हो तब पूज्य दादाश्री ने उसे खुद अपने आपको *ठपका* देने (डाँटना) को कहा है। और किसी और से ऐसा कहा कि '*ठपका* देने की ज़रूरत नहीं है, प्रतिक्रमण कर लेना।' तो वह उस व्यक्ति के लिए है जो बहुत ही सेन्सिटिव और डिप्रेसिव नेचर वाला हो, वर्ना यदि अगर बहुत *ठपका* देगा तो मेन्टल डिप्रेशन में चला जाएगा! और ज्ञान की उच्च कक्षा की बात में ऐसा कहा है कि 'जो ज्ञाता-द्रष्टा रहे, उसे प्रतिक्रमण करने की भी ज़रूरत नहीं है'। अब ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रह पाए और इस वाक्य को एकांतिक, स्वच्छंद रूप से पकड़कर 'मुझे प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है', ऐसा करके चले तो कहाँ जाकर गिरेगा!

हज़ारों महात्माओं के साथ बीस सालों में अलग-अलग जगह पर निकली हुई वाणी को रिकॉर्ड करके इस प्रकार से संकलित करने के प्रयास हुए हैं कि वह एक ही प्रवाह में लगे। सुज्ञ पाठक को कहीं कोई भी क्षति लगे तो वह संकलन की कमी के कारण है, न कि यह, कि ज्ञानी की वाणी क्षतिपूर्ण है। ज्ञानी का एक-एक वाक्य ऐसा है कि तीनों ही काल में कोई उनका छेदन नहीं कर सकता।

परम पूज्य दादाश्री की वाणी सहज रूप से चरोतरी तलपदी भाषा में निकली है। उसे जैसा है वैसा रखा गया है, ताकि श्रीमुख से निकली हुई वाणी की वास्तविकता विकृति के बिना संजोई जा सके और उसकी मिठास, उसके हृदय भेदी असर की तो बात ही अलग है न! इसका आनंद तो जो ले, वही जाने!

डॉ. नीरू बहन अमीन

उपोद्घात

- डॉ. नीरू बहन अमीन

[1.1] आत्म जागृति

जागृति अर्थात् चंदूभाई (पाठक को चंदूभाई की जगह पर खुद का नाम समझना है) क्या करते हैं, उसे देखना और जानना। यदि यह जागृति न हो तो उसके लिए, 'सो रहा है', ऐसा कहा गया है। पूरा ही जगत् इस तरह सो ही रहा है। हिताहित का, इस भव का और पर भव का भान ही नहीं हो तो उसे कहेंगे, 'सो रहा है'।

अक्रम विज्ञान से आत्मा जानने के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ' निरंतर ऐसी जागृति रहती है। फिर वह जागृति कभी जाती ही नहीं है।

जागृत इंसान खुद के ही दोष देखता है। औरों के दोष ही नहीं देखता, वह ज्ञानी की कृपा प्राप्त कर लेता है।

ज्ञान मिलने के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ' की जागृति निरंतर आ जाती है। फिर भी वह अंतिम स्टेशन यानी कि बॉम्बे सेंट्रल नहीं है लेकिन मुंबई का बाहर वाला स्टेशन है, जैसे बोरीवली आता है, उस तरह से पहला स्टेशन है। आत्मज्ञान के बाद से बाहरी स्टेशन की शुरुआत होती है।

आज्ञा में रहने से जागृति बढ़ती है और जैसे-जैसे जागृति बढ़ती है वैसे-वैसे आज्ञा का पालन अधिक हो सकता है। महात्माओं को आज्ञा पालन की बहुत इच्छा है लेकिन कर्म परेशान करते हैं इसलिए पुरुषार्थ कच्चा रह जाता है।

जागृति इफेक्ट नहीं है, वह तो पुरुषार्थ है! वह किसी पर डिपेन्डेन्ट नहीं है, स्वतंत्र है। जागृति ही आत्मा है और अजागृति *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) है। पूर्ण जागृति होने पर स्व-सत्ता का अनुभव होता है, उससे पहले नहीं।

परम पूज्य दादाश्री खुद की जागृति का अनुभव बताते हैं कि

'कृष्ण भगवान का या महावीर भगवान का नाम लेते ही उनका जो चित्र देखा हो, वह चित्र दिखाई देता है और उनका मूल स्वरूप भी दिखाई देता है और शब्द भी बोले जाते हैं'।

परम पूज्य दादाश्री से किसी ने पूछा कि व्यवहार में यह जागृति किस तरह से आपकी हेल्प करती है? दादाश्री ने बताया कि 'हम कभी भी उपयोग नहीं चूकते हैं। हमारा दीया हमेशा जलता ही रहता है। केवलज्ञान होने से पहले, तीर्थंकरों को जैसे निजदोष दिखाई देते हैं, वैसे ही दोष हमें दिखाई देते हैं'।

परम पूज्य दादाश्री कभी भी औरों के दोष नहीं देखते थे। किसी से बहुत बड़ा ब्लंडर (भूल) हो जाए तो टोकते थे। उसके बावजूद भी यदि वह उसमें से नहीं निकलता था तो फिर खुद कुछ भी नहीं कहते थे। उनका प्रिन्सिपल था कि कहने से शब्दों में रह जाता है, कहा हुआ थ्योरी में चला जाता है। खुद को भूल समझ में आए और अनुभव में आए तो वह प्रैक्टिकल है, वह सही है। अतः किसी को सुधारने नहीं जाते थे। बहुत ही नज़दीकी, समर्पित व्यक्ति को कभी टोक देते थे। बाकी दादा की चरणविधियाँ, सत्संग, सेवा और सानिध्य से ही जागृति बढ़ती जाती थी। ज्ञानी के सानिध्य में जागृति ज़बरदस्त रूप से बढ़ती है! दादाश्री की बाहरी स्टेज तीन सौ छप्पन और अंदर पूर्ण तीन सौ साठ डिग्री वाली है, जिन्हें पूर्ण भगवान, दादा भगवान कहते हैं।

पाँच आज्ञा के पुरुषार्थ से जागृति बढ़ते-बढ़ते फुल हो जाती है और केवलज्ञान होता है!

जागृति से उपयोग रहता है और उपयोग से फिर जागृति रहती है। जागृति को टॉप पर ले जाने को कहते हैं शुद्ध उपयोग। अब वही पुरुषार्थ धर्म है।

जब जागृति की सूक्ष्मता आ जाए, उसके बाद उससे भी आगे सभी आवरणों का छेदन कर दिया जाए, तब आत्मा स्वसंवेदन में आता है। पहले स्वसंवेदन आता है और फिर बढ़ते-बढ़ते स्पष्ट वेदन हो

जाता है! ज्ञान मिलने के बाद जागृति की शुरुआत हो जाती है। और संपूर्ण जागृति अर्थात् केवल जागृति ही, वही केवलज्ञान है, वही खुद परमात्मा है! दादाश्री कहते हैं कि हम खुद परमात्मा से बातचीत करते हैं।

दादाश्री कहते हैं कि जिस रास्ते से मैं आगे बढ़ा हूँ, आप भी वहीं पर आ रहे हो।

जागृति बढ़ेगी किस तरह? ज्ञान मिलने के बाद जागृत होते हैं। उसके बाद दादाश्री की पाँच आज्ञाओं का पालन करने से जागृति बढ़ती जाती है। और पाँच आज्ञा का और अधिक पालन करने के लिए क्या करना चाहिए? सत्संग में आकर प्रत्यक्ष ज्ञानी के आशीर्वाद लेने चाहिए, उनके दर्शन करने चाहिए, विधियाँ करनी चाहिए। उससे और भी आज्ञा पालन हो सकता है। संक्षेप में, सोते हुए व्यक्ति के साथ बैठने से नींद आ जाती है और साथ में कोई जागृत व्यक्ति हो तब यदि झोंका आ रहा हो तो वह भी चला जाता है!

ज्ञानी पर या ज्ञानी के महात्माओं पर जो राग रहता है, उसे प्रशस्त राग कहा गया है। उससे संसार का मोह कम होता है और जागृति बढ़ती है!

ज्ञानी से दूर रहना, वह जागृति को रोकने का कारण बन जाता है। इसलिए निश्चय पक्का करते रहना चाहिए कि ज्ञानी के सानिध्य में ही रहना है। जिस तरफ का निश्चय होता है, 'व्यवस्थित' उसी तरफ ले जाता है, ऐसा नियम है।

असामान्य व्यक्ति ही प्रकृति से लाचार नहीं होता, बाकी सभी लोग होते हैं!

रोज़मर्रा के जीवन में जागृति किस प्रकार से आती है? जब व्यवहार क्लियर हो जाए, कोई उँगली न उठाए, ऐसा हो जाए, तब। व्यवहार में व्यवहारिक हो जाए तो जागृति अच्छी आती है। जो ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहता है, उसका व्यवहार शुद्ध ही रहता है। जो ज्ञाता-द्रष्टा रहा उसका निश्चय, निश्चय में रहा और व्यवहार, व्यवहार में रहा। फिर

व्यवहार में शरीर का और बाकी सारा ध्यान भी ठीक से रहता है। ध्यान तो चित्त रखता है, आत्मा नहीं। अत: मुख्यत: निश्चय की ज़रूरत है!

यानी कि जैसे-जैसे फाइलें कम होती जाती हैं, वैसे-वैसे जागृति बढ़ती है।

जागृति किसकी बढ़ती है? आत्मा की? नहीं। आत्मा की नहीं लेकिन जिसे भ्रांति है, उसकी जागृति बढ़ी!

जब भारी कर्म के उदय आते हैं तब जागृति मंद हो जाती है, जिस प्रकार चार इंच के पाइप में से पानी आ रहा हो तो उँगली हट जाती है और आधे इंच के पाइप पर से नहीं हटती!

संसार में मोह है, उससे जागृति बंद हो जाती है। परोपकारी लोगों को अज्ञान दशा में जागृति नहीं रह सकती क्योंकि उन्हें ठंडक रहती है और जिसके जीवन में कड़वाहट है, उसे ज्ञान मिलने के बाद उच्च प्रकार की जागृति रहती है। उसे कुछ और ही प्रकार की ठंडक हो जाती है! प्रतिकूलता आत्मा का विटामिन है और अनुकूलता शरीर का विटामिन है!

जागृति और पुण्य के बीच क्या संबंध है? पुण्य से सत्संग के, ज्ञानी के सानिध्य के, सेवा के संयोग मिलते हैं। लेकिन यदि निश्चय करे कि मुझे अब जागृति में ही रहना है, पुरुषार्थ करना ही है तो वह बात पुण्य से परे है। वह पुरुषार्थ है। पुण्य से नहीं परंतु पुरुषार्थ से, निश्चय से जागृति बढ़ती है! लेकिन इनडाइरेक्टली पुण्य हेल्प करता है, जागृति को पुष्टि देने वाले, सत्संग के संयोग इकट्ठा करने में! इस प्रकार से जागृति और पुण्य का इनडाइरेक्ट संबंध है।

जब इस शरीर को गर्मी लगती है और बेचैनी होती है तो वह गर्मी किसे लग रही है? शरीर को या मन को? मन को। शरीर को कुछ भी नहीं होता। बुद्धि बताती है इसलिए मन शुरू हो जाता है! अगर बुद्धि मना करे तो कोई हर्ज नहीं है। अत: प्रतिकूलता और अनुकूलता खुद के निश्चित करने पर आधारित हैं।

रात को सोते समय दादा का निदिध्यासन करते-करते, 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ...' ऐसे बोलते-बोलते सो जाएँ तो वह किस प्रकार की जागृति कही जाएगी? उसे, पूरी रात आत्मा का ध्यान रहा, ऐसा कहेंगे। उससे आगे की जागृति अर्थात् दीया बुझे ही नहीं, हमेशा मन के ज्ञाता-द्रष्टा रह सकें, विचार आने से पहले ही समझ में आ जाए कि यह तो ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ।

ज्ञान मिलने के बाद कोई अजागृत रहे तो उसका कितना जोखिम है? झोंका आ जाए उतना। अगर 'देखे' बगैर चला गया तो उसे फिर से देखकर साफ करना पड़ेगा, इतनी जोखिमदारी रहती है। आत्मा के अलग रहने से नया कर्म बंधन तो होता ही नहीं है लेकिन पुराने खत्म नहीं होते इसलिए उतनी पूँजी बाकी बचती है! उन्हें फिर से साफ करना बाकी रहा!

[1.2] जुदापन की जागृति

खुद अपने आपसे, चंदूभाई से जुदा है, इसका अनुभव कब होगा? जब निरंतर ऐसा ध्यान रहे कि चंदूभाई पहले नंबर के पड़ोसी हैं। उसके बाद चिंता मुक्त दशा रहेगी। आधि-व्याधि और *उपाधि* (बाहर से आने वाला दुःख) में समाधि रहेगी!

चंदूभाई क्या करते हैं, वह जानना है। आत्मा, आत्मा का फर्ज निभाता है और चंदूभाई, चंदूभाई का! चंदूभाई कितने अच्छे हैं और कितने खराब हैं, आत्मा उसे जान ले, उसके बाद खुद निष्पक्षपाती रूप से सभी कुछ जान सकेगा! दादाश्री कहते थे कि, ''कोई हमें कहे कि 'आप बेअक्ल हो!' तो ज्ञान में रहकर खुद क्या कहते थे? 'आपको तो इसका आज पता चला लेकिन मैं तो बचपन से ही पटेल को पहचानता हूँ न! इनमें अक्ल कम ही है शुरू से!'' जुदापन की यह कैसी अद्भुत जागृति कही जाएगी!

आप आत्मा और चंदूभाई *पुद्गल,* दोनों जुदा ही हैं। डिफेक्ट चंदूभाई में है, आत्मा में नहीं। डिफेक्ट को जो जानता है, वह आत्मा है! शरीर को बुखार आए या लकवा हो जाए या भभक कर जलने

लगे, लेकिन वह नुकसान *पुद्गल* को है, मुझे नहीं! हमें कभी भी नुकसान होता ही नहीं है। दोनों अलग ही हैं! अपने कितने ही महात्माओं को ऐसे अनुभव हैं कि लकवा होने के बाद जब बिस्तर में पड़े हुए हों, उस दशा में जब लोग मिलने आते तब महात्मा मिलने आने वालों से कहते कि 'आप जिसे देख रहे हो, उसे मैं भी देख रहा हूँ'।

लाख लोग डिप्रेस करवाने आएँ, लेकिन आपको डिप्रेशन नहीं आना चाहिए। डिप्रेशन आए तो चंदूभाई को आएगा। चंदूभाई ज़रा डिप्रेस हो जाएँ तो उन्हें दर्पण के सामने ले जाकर ज़रा कंधा थपथपा देना और कहना, 'चंदू, मैं हूँ न तेरे साथ। तू क्यों फिक्र कर रहा है। तू अपना काम करे जा!' इतना कहोगे तो सारे भूत भाग जाएँगे।

कोई चंदूभाई को जेल में ले जाने आए तब आपको कहना है, 'ले जाओ चंदू को, हथकड़ी लाए हो? घर पर तो मुझे खुद उठकर दरवाज़े बंद करने पड़ते थे, यहाँ तो पुलिस वाला बंद कर देता है! कैसा वैभव है!' आत्मा को दुःख हो ही नहीं सकता। और जो *पुद्गल,* चेतन पक्षी हुआ, उसे भी दुःख नहीं रहता। जब तक *पुद्गल,* चेतन विरोधी है तभी तक सारी अड़चनें हैं।

सेठ दो दिन के लिए, किसी शहर में शादी में गए हुए हों और मुनीम को सब काम सौंपकर जाएँ, तब अगर व्यापार में नुकसान हो जाए तो उससे मुनीम को क्या लेना-देना? फायदा हो तब भी मुनीम को क्या लेना-देना? उसी प्रकार शुद्धात्मा को किसी भी चीज़ में चंदूभाई से लेना-देना नहीं रहता।

अक्रम मार्ग में महात्माओं को ऐसा अनुभव रहता है कि 'मैं अलग ही हूँ'। जबकि क्रमिक मार्ग में ज्ञानियों को ऐसा होता है कि 'मैं अलग हूँ' ऐसा आभास रहता है'!

आत्मदृष्टि मिलने के बाद चाहे कैसा भी आचरण हो फिर भी बंधन नहीं होता। वर्तन किसका है? दृष्टि किसकी है? दोनों भिन्न ही हैं! फिर क्या चिपकेगा? और जो आज्ञा पालन करता है, उसे कोई बंधन नहीं है। अंदर जागृति सावधान करती रहती है!

'हम सही हैं' ऐसा कहकर कितनी ही बार हम अपने आप का रक्षण कर लेते हैं। शुद्धात्मा हो जाने के बाद में चंदू का पक्ष लेना चाहिए क्या?

शुद्धात्मा हो जाने के बाद इन्द्रियों को वश में करना चाहिए क्या? उसके बाद इन्द्रियों को वश में करने वाला रहा ही कहाँ? अब जो भी बचे हैं, वे नो-कषाय हैं, उन्हें सिर्फ जानते रहना है। तन्मयाकार होने पर ही *भोगवटा* (सुख या दुःख का असर, भुगतना) आएगा न!

व्यवहार में बातें करनी और आत्मा में रहना, इस प्रकार से एट ए टाइम ये दोनों सिर्फ ज्ञानी को ही रह सकते हैं। ज्ञानी को ऐसा भान स्वाभाविक रूप से रहता है कि, 'मैं नहीं बोल रहा हूँ'। अब किसी भी संयोग में आत्मा चंदूभाई बन ही नहीं सकता!

आत्मज्ञान होने के बाद में *पुद्गल, पुद्गल* की मौज में और आत्मा, आत्मा की मौज में। तभी अंतरसम श्रेणी रहती है! सूखे हुए, दुबले-पतले हो चुके, *पुद्गल* को मोक्ष में 'नो एन्ट्री'। मोक्ष में तो गुलाबी गाल वालों को ही एन्ट्री मिलती है! यह सिद्धांत आत्मज्ञान से पहले लागू नहीं होता।

ज्ञाता-द्रष्टा की उच्चतम दशा कौन सी है? मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार वगैरह क्या कर रहे हैं, उन सभी को सर्व प्रकार से जानना और देखना। अगर महात्माओं को इतना नहीं रह पाए तो फिर, जब चंदूभाई चल-फिर रहे हों तो वे अलग दिखे, चंदूभाई का पूरा शरीर दिखे। जिस प्रकार हम बाकी सब को अलग देखते हैं, उसी प्रकार अगर चंदूभाई को भी पूरे दिन अलग ही, चलते-फिरते देख सकोगे, तब भी वीतराग होने लगोगे। बाहर का भाग अर्थात् देह की क्रियाओं के भाग को अलग देखें। इस तरह रहना चाहिए जैसे कि जीवित न हों! हर एक क्रिया में चंदूभाई अलग दिखाई देने चाहिए। पहले समझ से अलग दिखाई देंगे, फिर धीरे-धीरे आकृति से अलग दिखाई देंगे।

परम पूज्य दादाश्री खुद की जागृति की बात करते हुए बताते हैं, ''कई लोग मुझसे कहते हैं, 'दादाजी आप यंग दिखाई दे रहे हैं',

तब मैं भी दर्पण में देखता हूँ और मुझे भी यंग दिखाई देते हैं। सभी जो कहते हैं उसका असर होता है, अंदर। मैं कभी भी ऐसा नहीं कहता कि 'मैं बूढ़ा हूँ' और मानता भी नहीं हूँ क्योंकि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।'' जैसा कहोगे वैसे ही बन जाओगे।

जब चंदूभाई की तबियत खराब हो जाए तब आपको भीतर ऐसा समझना चाहिए कि तबियत चंदूभाई की खराब है, मेरी तो खराब हुई ही नहीं है। अगर ऐसा कहोगे कि, 'तबियत अच्छी है', तो अच्छी रहेगी। नियम ऐसा है कि जैसा चिंतन करते हैं वैसा ही बन जाते हैं! 'मैं' अलग और चंदूभाई अलग! खुद कभी भी एक रूप होना ही नहीं है। आपको चंदूभाई के लिए बात करने में भी जुदापन का ही व्यवहार रखना है। 'चंदू को भूख लगी है, चंदू को खाना है, चंदू ने खाना बनाया, चंदू को समझ में आया, चंदू को समझ में नहीं आया।' ऐसी भाषा रखनी है।

खुद परमात्मा और चंदू पड़ोसी है, फाइल नंबर एक। दादा भेदज्ञान से इनके बीच भेद रेखा डाल देते हैं। फिर दो भाग अलग-अलग ही रहते हैं। यह मेरा खेत और वह पड़ोसी का खेत, इस प्रकार एक बार बटवारा हो जाए तो फिर क्या उसे भूला सकते हैं? मन-वचन-काया के भावों को यदि 'मेरा' कहा तो तूफान मच जाएगा और अगर 'नहीं है मेरा' कहा तो सारा तूफान बंद हो जाएगा!

धोबी नींद से उठाकर कहे कि 'आपने यह जो शॉल ओढ़ी है वह वापस दे दीजिए' लेकिन कोई वापस नहीं करता। लेकिन जब वह दूसरी शॉल दिखाता है कि 'देखो, यह आपकी है' तो तुरंत ही दे देता है और खुद की ले लेता है न! खुद का निजघर देखने के बाद में पराये घर में कौन बैठा रहेगा? जब तक निजघर नहीं देखा है तभी तक ये सारी झंझट है।

एक व्यक्ति ने दादाश्री से पूछा, 'आप अपने पड़ोसी को किस प्रकार देखते हैं?' तब पूज्य दादाश्री ने जवाब दिया, 'अच्छी तरह देखते हैं। ए. एम. पटेल बहुत अच्छे इंसान हैं। उन्हें मैं बचपन से जानता

हूँ, किसी भी बात में उनकी कभी भी कोई भी दखल नहीं रहती। खाने में, पीने में, उठने में, सोने में, कोई परेशानी नहीं है। किसी को भी, अरे हीरा बा को भी कभी परेशान नहीं करते हैं'। महात्माओं की ऐसी स्थिति कब आएगी? जब 'स्व' और 'पर' दोनों अलग दिखाई देंगे। 'यह मैं हूँ' और 'यह मैं नहीं हूँ', इतना ही मज़बूत कर लेना है और पाँच आज्ञा में रहना है।

कोई जब चंदूभाई को डाँटे, उस समय यदि उसका प्रतिक्रमण कर लोगे तो वह फाइल साफ हो जाएगी। और अगर प्रतिक्रमण नहीं करोगे तो बाकी रहेगा।

किसी भी घटना में चंदूभाई को देखने के बजाय खुद चंदूभाई बन जाए तो उसे गाफिल होना कहा जाएगा। वहाँ पर फिर चंदूभाई से जुदा हो जाना है। उसके बाद चंदूभाई को चेतावनी देनी है, जागृत करना है।

चंदूभाई से कोई गलत काम हो जाए तो चंदूभाई को उसका खेद तो रहना ही चाहिए। शुद्धात्मा उसे जानता रहेगा। शुद्धात्मा, चंदूभाई को हिम्मत देंगे। कंधा थपथपाकर कहना है, 'हम हैं न, आपके साथ! चलो दर्शन करो, शक्तियाँ माँगो।'

जुदापन की जागृति उत्पन्न करवाने वाली नीरू बहन की दादा भगवान के साथ हुई एक घटना है। एक बार दादाश्री ने नीरू बहन से कहा, कि 'आप एक शिष्य रख लो न!' नीरू बहन ने साफ मना कर दिया। उन्होंने कहा, 'अक्रम मार्ग में गुरु-शिष्य पद है ही कहाँ? दादाश्री खुद ही पूरे जगत् के, जीवमात्र के शिष्य बनकर बैठे हैं न!' दादाश्री ने फिर से कहा, 'अरे, एक शिष्य रखने में आपको क्या हर्ज है?' तब नीरू बहन ने कहा, 'मुझे आपकी सेवा में, चरणों में ही रहने दीजिए न। इस शिष्य को मैं कहाँ ढोऊँ?' तब दादाश्री ने फिर से कहा, 'मेरी बात तो समझो। ऐसा करो न, इन नीरू बहन को ही अपना शिष्य बना दो न!' ओहोहो! पहली बार 'सहजात्म स्वरूप परम गुरु' का परमार्थ समझ में आया। तब से हमारा नीरू के साथ गुरु

शिष्य जैसा जुदा व्यवहार शुरू हो गया! शुद्धात्मा खुद परम गुरु और नीरू उनकी शिष्य!

[1.3] जुदापन रखने के लिए, बातचीत का प्रयोग

चंदूभाई के साथ जुदापन बरते, उसके लिए चंदूभाई के साथ बातचीत का प्रयोग बहुत ही सटीक सिद्ध हुआ है। परम पूज्य दादाश्री खुद भी अंबालाल भाई से बातें करते थे, नीरू बहन ने वह देखा और सुना है। शीशे में देखकर खुद ही कंधा थपथपाकर हँसकर बातें करते थे, 'तबियत अच्छी है न? कमज़ोर मत पड़ना? हम अनंत शक्ति वाले हैं। सारी शक्तियाँ मिलेंगी।' कभी *ठपका* भी देते थे, अंबालाल भाई को! कभी मज़ाक भी करते थे! बातचीत के प्रयोग द्वारा खुद अपने आपसे पूरे दिन जुदा तो रहते ही थे लेकिन खूब फ्रेश भी रहते थे। इतना काम करने के बावजूद, अस्सी साल की उम्र में भी मज़ाक करते हुए, कहते थे 'अरे, आपको तो कोई असर ही नहीं होता है न? आप तो बड़े भगवान लगते हो न?' तब अंबालाल भाई कहते थे 'नहीं, भगवान तो आप हैं, मैं नहीं!' इस प्रकार खुद के साथ बातें करते-करते, मज़े में रहते थे! दादाश्री कहते थे, 'ज्ञान होने के बाद ही अलग रहकर बातचीत होने की शुरुआत हुई'। ट्रेन में दादाश्री थर्ड क्लास में ही सफर करते थे। जब पैर दु:खते थे तो वे बाथरूम में शीशे के सामने जाकर थपथपा देते थे और खुद ही खुद को दिलासा देते थे। तब पूरे ब्रह्मांड के राजा जैसा लगता था!

बुद्धि से बातें करते हुए दादाश्री खास तौर पर कहते थे, 'अब तू तेरे मायके चली जा, कल दोपहर बाद आना। यहाँ पर तेरा काम ही नहीं है'। अब बुद्धि उल्टा बताए तो उसे कहते थे, 'बिना फीस के वकालत क्यों करने लगी है? तुझे किसने वकालत करने को कहा है?'

जब भी कोई नया काम शुरू करते थे तब स्टीमर के कान में फूंक मारकर कहते थे कि 'तुझे जब डूबना हो तब डूबना। हमारी इच्छा नहीं है!'

ट्रेन में बैग से और मंदिर में जूतों से बिना भूले कह देते थे कि 'आपको जाना हो तो जाना और रहना हो तो रहना। लेकिन हम तो अपने ध्यान में ही रहेंगे!'

हम अपने आपको बचपन से ही जानते हैं या नहीं? खुद के साथ के बातचीत का प्रयोग करने से प्रकृति से आत्मा अलग हो जाता है। प्रकृति को टैकल करने के लिए उससे बातें करनी चाहिए।

सौ प्रतिशत जुदापन की जागृति आ गई, ऐसा कब कहा जाएगा? जब यह देखते रहें कि चंदूभाई के मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार में से हर एक क्या कर रहा है। चंदूभाई के शरीर को दर्पण के सामने रखकर अलग देखना है और बातें करनी है। इससे सौ प्रतिशत जुदापन बरतेगा!

चाहे कितना भी बीमार हो लेकिन यदि शेर सामने आ जाए तो दौड़ेगा या नहीं? अंदर शक्ति तो है ही न!

जब कोई गालियाँ दे तब चंदूभाई से कहना, 'आपका कोई दोष होगा तभी कह रहे हैं न?' और कह किसे रहे हैं? जिसे कह रहे हैं, वह तो आप खुद हो ही नहीं। 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ', यदि शुद्धात्मा पद नहीं चूकोगे तो उसे तप हुआ कहलाएगा, वर्ना तप चूके!

कोई पराया व्यक्ति चंदू को डाँट दे, उसके बजाय क्यों न हम खुद ही चंदू को डाँट दें?

कोई मारे या गालियाँ दे फिर भी यदि समता रह सकें तो समझना कि मान कषाय बंद हो गया। अब लोभ कषाय की जांच करनी हैं। किसी को पचास हज़ार रुपये उधार दिए और फिर वह उल्टा बोले तो? वहाँ पर ऐसा रहना चाहिए कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और जो गालियाँ दे रहा है, वह भी शुद्धात्मा है। बल्कि चंदूभाई से कहना है, ''ऐसा क्यों कर रहे हो? ज़रा सीधे रहो न! यह जो हुआ है 'उसमें भुगते उसी की भूल'!'' बड़ी रकम लेनी हो और वह वापस न दे, तब भी अपना चेहरा नहीं बिगड़े तो सही है। उधारी बहुत ज़्यादा हो तब भी

मन में निश्चय रखना कि चुकाने ही हैं, तो दे पाओगे। जिसके हैं, उसे मिले बिना रहेंगे नहीं! मोक्ष में जाना है तो मान और लोभ बिल्कुल भी नहीं होने चाहिए।

जहाँ चंदू प्रतिक्रमण करने पर भी नहीं माने तो उसे एकांत में बैठाकर डाँटना।

चंदूभाई को ज़रा सफोकेशन जैसा हो जाए तो उससे कहना, 'हम हैं न! अब हम एक से दो हो गए हैं। पहले आपका कोई आधार नहीं था। अब हम हैं न।' अब हर प्रकार से पड़ोसी का ध्यान रखना है।

चंदूभाई दर्शन करे, व्रत-जप करे, तो उसे करने दो और नहीं करे तो कोई हर्ज नहीं है। 'चंदूभाई, जो भी आए, उसका समभाव से *निकाल* करो।' चंदूभाई से हमेशा के लिए बातचीत का व्यवहार कर देना है। चाहे कैसे भी आचार होंगे, लेकिन अक्रम विज्ञान से उसका मोक्ष है। आचार का और मोक्ष का कोई लेना-देना नहीं है! ज्ञान से सब खत्म हो जाएगा!

जहाँ अहंकार ज़बरदस्त तरीके से भग्न हो जाए तो वहाँ पर क्या करना चाहिए? बोलते रहो कि 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ और अंदर तप करना! उसके बाद बाहर के सभी बादल बिखर जाएँगे।

तमाम आग्रहों से मुक्त रहना है। पुरुष और प्रकृति के भेदज्ञान से अलग होने के बाद ही असल पुरुषार्थ शुरू हुआ! और तय करना कि अब पुरुषार्थ में ही रहना है।

[1.4] तन्मयाकार कौन? जानता है कौन?

ज्ञान लेने के बाद महात्माओं की कई बार दादाश्री से ऐसी शिकायत रहती है कि तन्मयाकार हो जाते हैं। उसकी स्पष्टता करते हुए दादाश्री कहते हैं कि 'तन्मयाकार तू नहीं होता, चंदूभाई होते हैं। जो तन्मयाकार होता है, उसे पता कैसे चलेगा कि मैं तन्मयाकार हो गया? अत: जानने वाला उससे अलग ही है! तन्मयाकार कौन सा भाग होता है? *पुद्गल* में कुछ बल होते हैं, उनमें से बुद्धि मुख्य है तो कभी

अंहकार तन्मयाकार हो जाता है। लेकिन शुद्धात्मा कभी भी तन्मयाकार नहीं होता।

तन्मयाकार क्यों हो जाते हैं? जागृति कम हो जाती है? नहीं। ऐसा नहीं हैं लेकिन जब कर्म का फोर्स बहुत ज़्यादा होता है तो उससे ऐसा आभास होता है कि जागृति चली गई!

अब, ज्ञान मिलने के बाद यदि तन्मयाकार हो जाते हो तब भी नया कर्म चार्ज नहीं होता! यदि कपड़े ठीक से नहीं धुले हैं तो फिर से धो देना! आसान और सीधा रास्ता है न!

किसी भी क्रिया में एकाकार होने के बाद वापस शुद्धात्मा के *लक्ष* में कौन लाता है? लाने की ज़रूरत ही कहाँ है? उस समय आत्मा तो प्रकाश के रूप में था ही। यह तो, वृत्तियाँ तन्मयाकार हो जाती हैं और स्वयं वृत्तियाँ ही क्षण में निजघर की तरफ वापस मुड़ जाती हैं! तो फिर उससे ऐसा लगता है कि *लक्ष* (जागृति) आ गया! अत: यह भी भ्रमणा ही है कि तन्मयाकार हो जाते हैं! जहाँ पर राग-द्वेष किए हैं, वहीं पर वीतराग होना है।

कई बार ऐसा लगता है कि अलग-अलग डिग्री में तन्मयाकार हो जाते हैं। अरे, थर्मामीटर को क्या कभी बुखार आता है? डॉक्टर को आ सकता है लेकिन क्या थर्मामीटर को बुखार आ सकता है? आत्मा खुद थर्मामीटर जैसा है! वह सभी कुछ दिखाता है लेकिन निर्लेप ही रहता है।

चाहे कितना भी नापो लेकिन क्या स्केल छोटी-बड़ी हो जाती है? जगह कम या ज़्यादा नापी जाए लेकिन स्केल तो वीतराग ही है न! यह तो सिर्फ भ्रांति ही हो जाती है कि स्केल लंबी हो गई और छोटी हो गई! दो तत्त्व क्या कभी भी एकाकार हो सकते हैं? आत्मा द्रष्टा है और चंदूभाई दृश्य। तो दृश्य और द्रष्टा कभी भी एकाकार हो ही नहीं सकते!

तन्मयाकार हो जाते हैं तो ऐसा समझना कि ये भास्यमान परिणाम हैं। फिर वे भास्यमान परिणाम मेरे नहीं हैं। यदि इतना रहे तो जागृति रहेगी।

जो उदय कर्म में तन्मयाकार हो जाता है, वह अहंकार है। उस अहंकार को ही उदय कर्म में मिठास और कड़वाहट लगती है और उसमें एकाकार हो जाता है! यदि उदय कर्म को देखा तो उससे अलग रहे और नहीं देखा तो कहा जाएगा कि मौन रहे और उससे चिपकेगा ही।

पहले जो 'मैं', प्रतिष्ठित आत्मा के रूप में था, अब वह जागृति रूपी बन जाता है। ज्ञान मिलने के बाद संपूर्ण रूप से शुद्धात्मा नहीं बन जाते। प्रतिष्ठित आत्मा में अभी तक जो 'मैं' की बिलीफ रही हुई है, वह तन्मयाकार हो जाती है। प्रतिष्ठित आत्मा से खुद तो अलग हो गया, लेकिन कहीं-कहीं बिलीफ रह गई है, वह तन्मयाकार करवाती है। और जो जागृति हो गई है, वह तन्मयाकार नहीं होने देती। ज्ञान मिलने के बाद प्रतिष्ठित आत्मा जो ज्ञान से पहले ज्ञाता के रूप में था, वह अब ज्ञेय के रूप में, डिस्चार्ज के रूप में ही रह जाता है। अब जागृति ज्ञाता बन जाती है और मूल आत्मा तो अभी कहीं बहुत ही दूर रहा हुआ है! संपूर्ण जागृत होने के बाद मूल आत्मा में एकाकार हो जाएँगे! उसके बाद कोई दखल ही नहीं रहती! तब तक अंतरात्म दशा रहती है। बहिर्मुखी दशा छूट गई और अंतरात्म दशा प्राप्त हुई और अंतरात्म दशा खत्म होने पर परमात्म पद की पूर्ण प्राप्ति हो जाएगी!

तन्मयाकार नहीं हुआ इसके लक्षण क्या है? किसी से बातचीत करते समय चेहरे पर ज़रा सा भी असर नहीं होता। चंदूभाई को अलग देखते-देखते बात करता है, जैसे किसी तीसरे ही व्यक्ति की बात कर रहा हों, तो आत्मा जुदा रहा, ऐसा कहा जाएगा।

व्यवहार के कार्यों में आत्मा को हाज़िर रखने की ज़रूरत नहीं है। व्यवहार के कार्य को तो साइन्टिफिक सरकमस्टेशियल एविडेन्स पूरे कर देता है! उसमें शरीर, मन, अत:करण, पुण्य-पाप सभी आ जाते हैं। संसार के कार्यों में आत्मा एकाकार नहीं होता। अहंकार और बुद्धि से ही कार्य हो जाते हैं! वास्तव में, बुद्धि और साथ में अहंकार एकाकार हो जाता है और ऐसा आभास होता है कि आत्मा एकाकार हो गया। वहाँ पर किस प्रकार से रहना चाहिए? वहाँ पर आत्मा को तो मात्र जानपने में ही रहना है कि, 'बुद्धि एकाकार हो गई और यह

अच्छा हुआ या बुरा हुआ'। अत: आत्मा मात्र जानकार ही रहता है और जो एकाकार हो जाते हैं, वे बुद्धि और अहंकार हैं।

अक्रम मार्ग में मूल आत्मा की जागृति और यह प्रतिष्ठित आत्मा और अंत:करण के जुदापन की स्पष्टता संपूर्ण रूप से पता चलती है इसलिए संसार में रहकर संपूर्ण मुक्ति का अनुभव होता है। जबकि क्रमिक में तो सभी परिग्रहों को छोड़ते-छोड़ते दृष्टि खुलती जाती है।

[1.5] सीट का सिलेक्शन, स्व और पर की

व्यवहार में चंदूभाई गड़बड़ कर देते हैं तो वह किस वजह से? शुद्धात्मा की सीट के बजाय चंदूभाई की सीट पर बैठ जाता है। चंदू की सीट पर शॉक लगता है तब भी जल्दी से उठता नहीं है! चंदूभाई को वह भुगतना पड़ता है। आपको देखते रहना है। चंदूभाई किच-किच करे तब भी देखना और उनकी सभी क्रियाओं को देखते रहना है।

सभी सीटों पर बैठते जाते हैं, अनुभव लेते जाते हैं और उसे छोड़ते जाते हैं। अंत में जब पूर्ण रूप से ऐसा अनुभव हो जाता है कि शुद्धात्मा की ही सीट सर्वश्रेष्ठ है तो उसके बाद फिर सीट नहीं बदलता! यों ही नहीं चलेगा। सभी कुछ अनुभव सिद्ध होना ही चाहिए।

'मुझसे सहन नहीं होता है' ऐसा होते ही पराई सीट पर बैठ जाते हैं!

पराई सीट में मिठास लगे तो सीट पर ही बैठे रहते हैं। स्त्रियाँ तो खास तौर पर!

दादाश्री निज अनुभव बताते हैं, 'ज्ञान होने से पहले मुझे एक क्षण के लिए भी इस संसार में सुख महसूस नहीं हुआ। सबकुछ कड़वा ही लगता था! *पोतापणुं* एक सेकन्ड के लिए भी सहन नहीं होता था। ज्ञान होते ही वह पूरी तरह से खत्म हो गया! यह जो सीट बदल गई, वह भी अपने आप ही! पहले मुझे कुछ भी पता नहीं था!' परम पूज्य दादाश्री की भूमिका कितनी ज़बरदस्त रही होगी!

एक व्यक्ति ने कहा 'दादा, आपकी बात सुनी। बहुत अच्छा

लगा।' तब दादाश्री ने कहा 'अब इसका ध्यान रखना। सुनने वाला अलग है, ध्यान रखने वाला और नहीं रखने वाला अलग है और आप अलग!' यह सब कहने वाला वही है! चंदूभाई से कहना, 'हम देखेंगे और आप दादा के कहे अनुसार ध्यान रखना।'

और जो सतत ऐसा ध्यान रखे, उस महात्मा पर दादाजी कितने खुश हो जाते होंगे!

[1.6] खुद अपने आपको ठपका

प्रकृति की *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए) के सामने महात्मा अबलापन अनुभव करते हैं। खूब-खूब पुरुषार्थ, प्रतिक्रमण, दृढ़ निश्चय-निर्णय, वगैरह-वगैरह करने के बावजूद प्रकृति, फाइल नंबर एक गुलाट खिला ही देती हैं और उसी का चलन चल जाता है! अंदर पता चलता है फिर भी कभी, न जाने किस क्षण पिछले दरवाज़े से *अटकण* घुस जाती है और अपना चलन चला देती है और भटकन को निमंत्रण देती है! वहाँ पर ज्ञान के तमाम हथियार कुंद हो जाते हैं। उसके लिए पूज्य दादाश्री ने महात्माओं के लिए अनोखा प्रयोग दिया है, जो ज़बरदस्त असरकारक सिद्ध होता है। एकांत में छत पर अकेले बैठकर खुद की फाइल नंबर एक, यानी कि खुद अपने आपको ही खूब ज़ोर-ज़ोर से डाँटना। फाइल नंबर एक एक्ज़ेक्ट अलग ही दिखाई देगी, रोएगी तब भी दिखाई देगी, आपके *ठपका* देने से सारा ही अलग दिखाई देगा। खूब डाँटना कि 'नालायक, बदमाश, इसके लिए मैंने तुझे दूध पिलाया! क्या साँप बनाने के लिए?' इस तरह चंदू को डाँटा जाए तो सभी विरोधी पक्ष वाले जुदा हो जाएँगे और हम आत्मपक्ष में मज़बूत होंगे!

इसमें कौन किसे *ठपका* देता है? प्रज्ञा समिति, अज्ञा समिति को *ठपका* देती है और जो इन सब को जानता है, वह शुद्धात्मा है! इस प्रकार का ठपका दिया जाए, तब फाइल नंबर एक को शुरुआत में बहुत डिप्रेशन आएगा। फिर धीरे-धीरे वह चला जाएगा और अंदर ज़बरदस्त आनंद का अनुभव होगा! प्रत्यक्ष ज्ञानी की आज्ञा लेकर ही इस *ठपका* सामायिक का प्रयोग किया जा सकता है। यों ही नहीं करना

चाहिए। वर्ना उल्टा असर भी हो सकता है। बहुत डिप्रेस हो जाए तो दर्पण के सामने कंधा थपथपाकर आश्वासन देना कि 'हम हैं आपके साथ'! अरे, बाहर डिप्रेशन और अंदर खुश होना कि, 'अब ठिकाने पर आए'। इस प्रकार दादाश्री की यह संपूर्ण साइन्टिफिक अप्रोच है, इस काल के अनुरूप।

खेंच (अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना, आग्रह) एक रोग है। उससे छूटने के लिए चंदूलाल से अलग हो जाना। चंदूलाल *खेंच* करता है और आप उसके ज्ञाता। तो वास्तव में *खेंच* अपने आप ही खत्म हो जाएगी!

दादाश्री अपने खुद के विवाह के समय के मोह का वर्णन करते हुए बताते हैं कि मुझे विवाह का मंडप भी दिखाई देता है। सिर पर से खिसकी हुई पगड़ी और खिसका हुआ मोह भी दिखाई दिया। 'फिर विधुर होने का विचार आया था आपको', इस तरह खुद अपने आपके साथ बातें भी होती हैं!

आपको अपने आपको ऑर्गेनाइज़ करना है, वही आपका काम है। कभी *ठपका* देना है, डिप्रेशन आए तब वापस नई तरह से थपथपाना है, इस प्रकार अंदर देखते रहना और सेटिंग करते रहना है!

[1.7] डिप्रेशन के सामने जुदापन की जागृति

जब अपमान मिले या भयंकर नुकसान हो जाए, तब डिप्रेशन आ जाता है। तब खुद को संभालना पड़ेगा। चंदूभाई को ज़रा एलिवेट कर देना पड़ेगा, 'आप तो पुण्यशाली हो, वर्ना ज्ञानी कहाँ से मिलते आपको? मोक्ष का सिक्का लेकर बैठे हो, अब कैसी चिंता?' तो पूरा बैलेन्स रहेगा, जुदापन की जागृति सहित!

डिप्रेशन में समता रहे तो आत्मा मिलता है और डिप्रेशन का उपाय करने पर संसार में धंस जाते हैं। डिप्रेशन यानी कि एक प्रकार का तप। उसमें आत्मा का पता चलता है। जब चारों तरफ से उपसर्ग और परिषह हों तब आत्मा प्रकट होता है! अत: डिप्रेशन तो स्वागत

योग्य है। उसके उपाय नहीं करने चाहिए। एटम बम गिरे, तब भी आत्मा में से हटना नहीं हैं। डिप्रेशन न आ सके ऐसा है यह अक्रम विज्ञान! सिंह की संतान को सियार क्या कर सकता है? जो होगा, वह जड़ को होगा, शुद्धात्मा को थोड़े ही कुछ हो सकता है? हम तो शुद्धात्मा ही हैं।

डिप्रेशन का मूल कारण क्या है? कमज़ोरी, चोर नीयत। निखालस और साफ नीयत वाले को डिप्रेशन कहाँ से आएगा?

जो सदा वर्तमान में रहे, उसे डिप्रेशन नहीं आता।

जिस प्रकार डिप्रेशन के समय आत्मा ज्ञाता रहता है उसी प्रकार एलिवेशन के समय भी ज्ञाता की तरह ही रहना है। जब तक एलिवेट होते रहेंगे तब तक डिप्रेशन आए बगैर नहीं रहेगा!

चंदूभाई को कोई डाँटे तो हमें खुश होना चाहिए और चंदूभाई से बातें करनी चाहिए, 'बहुत रौब मार रहे थे, तो आया यह फल! करो अब प्रतिक्रमण!'

जहाँ डिप्रेशन न आए, वह जगह 'अपनी'! जगत् का जहाँ पर कल्याण होता है वह जगह 'अपनी'! इस प्रकार से जो बरते वह तेज़ी से प्रगति करेगा।

[2.1] ज्ञाता-द्रष्टा

ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंद, वही आत्मा का मुख्य स्वभाव है। जहाँ ज्ञाता-द्रष्टा पद नहीं है, वहाँ पर भ्रांति है। निरंतर ज्ञाता-द्रष्टा पद में कौन रह सकता है? ज्ञानी।

ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहने के लिए महात्माओं को पूर्वकर्म बाधक हैं। उनसे ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध रखकर छूट जाना है! अब जो कुछ भी आता है, वह सारा ही ज्ञेय स्वरूपी है। अंदर इतना ही जांचते रहना है कि राग-द्वेष कम हो रहे हैं या नहीं। आत्मा ज्ञाता स्वभाव वाला है, वीतराग है और ज्ञेय वस्तु भी वीतराग ही है। लेकिन बीच में अहंकार राग-द्वेष करवाता है। ज्ञान मिलने के बाद अहंकार चला जाता

है। उसके बाद ज्ञेय के प्रति वीतराग रहना है। राग भी नहीं और तिरस्कार भी नहीं। ऐसा कोई दोष हो जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना है।

ज्ञान मिलने के बाद जो ज्ञाता-द्रष्टापन नहीं चूकता, उसे 'फॉरेन' (अनात्मभाग) की कोई जोखिमदारी नहीं रहती। फिर भी महात्माओं को अंदर तक गहरे यह अफसोस रहता है कि ज्ञाता-द्रष्टा पद अविरत नहीं रह पाता। आता है और जाता है, आता है और जाता है, ऐसा होता रहता है। उसका खुलासा करते हुए, दादाश्री कहते हैं कि 'वह तो चला ही जाएगा। यदि अविरत रहे तब तो वे भगवान ही हो गए! अभी संसार के जो कर्म बाकी हैं, वे खत्म करने हैं न? जैसे-जैसे कर्म कम होते जाएँगे, वैसे-वैसे अधिक से अधिक *लक्ष* में रहा जा सकेगा! और ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहने से कर्म भी छूट जाएँगे।

बुद्धि और ज्ञान के क्रियापन का किस प्रकार से पता चल सकता है? यदि उदयकर्म में दखलंदाज़ी करे तो उस क्षण बुद्धि है और यदि उदयकर्म में दखलंदाज़ी नहीं करे तो उस समय ज्ञान है। दखल मात्र बुद्धि की है। बुद्धि ने ही सारी गड़बड़ की है।

महात्माओं पर अज्ञान का असर होता है और ज्ञान में नहीं रहने दे, तब क्या करे? दादाश्री बताते हैं कि यदि चंदूभाई से, अज्ञान के असर से 'आप' अलग रहोगे तो मुक्त हो जाओगे। फिर किसी भी चीज़ का असर ही नहीं होगा। यह असर वाला कब सुधरेगा और कब दिन बदलेंगे? दोनों के धर्म भिन्न ही हैं। हाथ डालते ही जल जाओगे! प्रतिक्रमण हो जाएगा तो भी मुक्त हो जाओगे।

बुद्धि बहीखाते रखती है और भगवान बहीखाते रखते ही नहीं। लेना-देना उदयकर्म करवाता है। महात्माओं को सम्यक् ज्ञान तो है लेकिन केवलज्ञान नहीं है। इसीलिए अभी भी दखलंदाज़ी हो जाती है! इसलिए महात्माओं को अंदर दखल करने का विचार आए और यदि वे उसका प्रतिक्रमण कर लें, तो दखल नहीं होगा। दखल होने से पहले ही रोक दिया। जहाँ एक्ज़ेक्ट ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रहा जा सके वहाँ पर प्रतिक्रमण कर लेना अच्छा है!

किसी के साथ बातें करते समय एट ए टाइम यदि ज्ञाता–द्रष्टा नहीं रह पाते तो जागृति उतनी कम है। उसका बाद में पता चले तब भी बहुत हो गया! यदि एट ए टाइम ज्ञाता–द्रष्टा नहीं रह पाए तो वह कर्म फिर से आएगा, उस समय वापस उसके ज्ञाता–द्रष्टा रहकर निपटारा लाना होगा। फिर चाहे वे बातें हों, खाने की बात हो या चाहे कुछ भी हो। महात्मा यदि पुरुषार्थ करें तो इस जन्म में फाइलों का *निकाल* हो जाएगा। जो बाकी बचेंगे, वे अगले जन्म में आएँगे। दोनों ही चीज़ों की छूट है।

यदि मन में विचार आएँ और उनके ज्ञाता–द्रष्टा नहीं रह पाओ तो वहाँ से ध्यान दूसरी तरफ डाइवर्ट कर लेना चाहिए, कोई विधि या मंत्र बोलकर कर लेना चाहिए। लेकिन इससे ज्ञाता–द्रष्टा रहने जैसा फायदा नहीं होगा, कम फायदा होगा। ज्ञाता–द्रष्टा तो टॉपमोस्ट रियल पुरुषार्थ है। संक्षेप में, यदि फाइल को देखकर जाने देंगे तो वह फिर से नहीं आएगी। जिन्हें देखना बाकी रह जाएगा, वे वापस आएँगी।

इन फाइलों को देखना बाकी क्यों रह जाता है? बीच में यदि डबल डेकर बस आ जाए तब क्या रास्ते पर से सामने वाली साइड का दिखाई देगा? और जब बसें चली जाएँगी तब? बीच में बसें आ गई और नहीं दिखाई दिया तो क्या देखने वाला या देखने की चीज़ें खत्म हो गईं? नहीं। आत्मा तो दर्पण जैसा है। उसके सामने जो कुछ भी आता है, वह उसके ज्ञान में झलकता है। फिर रास्ते के सामने की तरफ सजी–धजी दुकानें आएँ तो उन्हें भी देखता है और बीच में डबल डेकर बसें आ जाएँ तो उन्हें भी देखता है!

इन बसों को बंद कैसे किया जा सकता है? नहीं किया जा सकता। पहले का हिसाब है वह! उन्हें देखकर साफ कर दो। जब इन सब का *निकाल* हो जाएगा, उसके बाद दादाश्री जैसी दशा आएगी!

एक महात्मा ने पूज्य दादाश्री से पूछा कि उदय के समय मुझे देखने–जानने में खूब संघर्ष होता है। दादाश्री खुलासा करते हैं कि 'जिसे संघर्ष चल रहा है, जो तन्मयाकार हो जाता है, वह कौन है?

चंदूभाई नाम का *पुद्गल* है। आप तो शुद्धात्मा ही हो। इस फिल्म को देखते रहो। फिल्म में क्या पूरे समय विवाह के ही सीन आएँ तो अच्छा लगेगा? उसमें तो मार-धाड़ के, करुणता के और हरण करने के, तरह-तरह के सीन देखने से ही आनंद आता है। शुद्धात्मा को अब चंदूभाई की फिल्म देखनी है। फिर आनंद ज़रा सा भी नहीं जाएगा। फिल्म क्या ऐसा कहती है कि, 'मुझे साथ में सिर पर ले जाओ?' वह तो कहती है कि 'देखकर जाओ'। कहीं ऐसा थोड़े ही कहती है कि गोंद लगाकर चिपका कर ले जाओ? फिर अगर नापसंद फिल्म आए तो क्या देखने वाला उसे बीच में कट कर सकता है? उसे तो पूरी देखनी ही होगी। देखने वाले को क्या हर्ज है? फिल्म और फिल्म देखने वाले को कभी थकान नहीं होती!

समभाव से *निकाल* हुआ या नहीं हुआ, वह *पुद्गल* धर्म है और यदि यह जाना तो वह आत्मधर्म है। दोनों अलग ही हैं। पराई पीड़ा में कहाँ पड़ें?

अंदर अच्छे भाव हों या खराब भाव हों, उन्हें भी देखते रहना। खराब भाव निकले तो ज़रा चंदूभाई से कहना, 'ओहोहो! आपको तो मैं लायक समझता था, लेकिन निकले नालायक।' इस तरह आपको चंदू के भावों को, वर्तन को और वाणी को, 'देखते' रहना है। उसी समय देखो तो उत्तम है, वर्ना कुछ देर बाद देखकर जुदा कर लेना।

जब चंदूभाई बोल रहे हों तब उसे देखते रहो तो वह अंतिम ज्ञान है। तमाम ज्ञानी यही करते थे। कृष्ण, राम व महावीर यही करते थे।

[2.2] 'चंदू क्या करता है', वह 'देखते' रहो

मोक्षमार्ग क्या है? संसार साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स रूपी है, यानी कि संयोग सब करते रहते हैं और आत्मा सब जानता रहता है। 'आपको' जानते रहना है। संयोगों के धक्के से जब आत्मा की स्वभाव दशा में से विभाव दशा आती है, वहाँ पर खुद नैमित्तिक कर्ता बन जाता है, वास्तव में कर्ता नहीं है।

चंदूभाई अलग दिखाई दें, संपूर्ण अलग दिखाई दें, वह अंतिम

ज्ञान है। भगवान महावीर खुद के एक *पुद्गल* को ही देखते थे। हमें भी वही करना है। ये तो पुरानी आदतें हैं। जागृति से वे धीरे-धीरे छूट जाएँगी।

परम पूज्य दादाश्री कहते हैं कि, 'यदि कसाई को भी आत्मज्ञान मिल जाए और वह ज्ञान में रहे और सब देखता ही रहे, दखल न करे और आज्ञा में रहे तो वह मोक्ष में जाएगा!' कसाई की क्रिया बाधक नहीं है, 'मैं कर रहा हूँ', वह बाधक है। एक जन्म के लिए सिर्फ 'देखते' ही रहो सबकुछ, तब मोक्ष में जा सके ऐसा है।

कुचारित्र को जानें तो उसे चारित्र कहते हैं। अच्छे चारित्र की मस्ती, कुचारित्र से भी ज़्यादा जोखिम वाली है। आनंद तो स्वरूप में से ही लेना चाहिए। उसके सिवा बाकी सब मस्ती है।

फाइल नंबर एक की जब से उठे तब से सोने तक की सभी क्रियाओं को देखते रहना है!

जब तक ऐसा मानता है कि शुभाशुभ का कर्ता 'मैं हूँ' तभी तक दोष लगेगा। जो कर्ता नहीं है, उसके लिए भोक्ता पद भी नहीं है, उसके बाद *संवर* (कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना) रहता है।

ममता खाली करने के लिए क्या करना चाहिए? उसे 'देखते' रहना है। चंदूलाल के क्रिमिनल या सिविल गुनाह, जो भी हों, उन्हें अब 'देखते' रहना है। विलाप और बाजे-गाजे दोनों को ही 'देखते' रहना है। दोनों ज्ञेय हैं, एक सरीखे हैं!

देखने-जानने से कर्म की पूर्ण *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होती है। अगर किसी व्यक्ति के साथ झंझट हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए।

यदि दखलंदाज़ी हो जाए तो उसे भी देखना और जानना है।

जब दो लोग झगड़ा कर रहे हों, तब क्या करना चाहिए? क्या होता है, उसे देखो। चंदूभाई बीच में पड़ते हैं या नहीं पड़ते, दोनों ही देखना है।

भूल को देखने से वह चली जाती है, वर्ना वह नहीं जाती। यह विज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष दिखाता है। प्रतिक्रमण भी करवाता है।

मन की, बुद्धि की, अत:करण की फिल्म को देखते ही रहो। यदि ज्ञेय नहीं होगा तो ज्ञाता क्या देखेगा? फिल्म देखो लेकिन राग-द्वेष मत करो।

[2.3] पुद्‌गल को शुद्ध करो

अपने मकान में रंग-रोगन किया है लेकिन मकान के कोने साफ करने हैं या नहीं? दादाश्री ने शुद्धात्मा पद दिया। अब *पुद्‌गल* के सभी कचरे साफ कर दो! फर्नीचर के नीचे से, हर एक कोने से कचरा साफ करना पड़ेगा न? फफूँद वाले बर्तनों में खाना कैसे खा सकते हैं? सबकुछ साफ करते-करते, अंत में भगवान बनना है! यहाँ पर भक्त या दास नहीं बनना है।

जो आत्मा में नहीं रहने दे, वह सारा ही कचरा है। जो उपयोग चुकवा दे, वह सारा कचरा है।

चंदूभाई से कचरा साफ करवाना है। उससे कहना कि इस अंत:करण को साफ करो। प्रतिक्रमण करो, चरणविधि करो। उसे फालतू मत बैठने देना।

उपयोग में रहने से कचरा आसानी से खत्म हो जाएगा। कचरे के लिए कहा कि 'मेरा स्वरूप नहीं है' तो साफ हो जाएगा।

[3] शुद्ध उपयोग

उपयोग अर्थात् जागृति को एक ही चीज़ पर फोकस करके रखना! उदाहरण के तौर पर चोर का उपयोग पूरे दिन चोरी में ही रहता है। कोई माता जी के मेले में गए हो तो दिन भर उसका उपयोग किसमें रहता है? भक्ति में, शुभ उपयोग में रहता है!

व्यवहार में जिसे आत्मा का उपयोग कहा जाता है। उसके चार प्रकार हैं : (1) अशुद्ध उपयोग (2) अशुभ उपयोग (3)शुभ उपयोग

(4) शुद्ध उपयोग। पहले तीन उपयोग अहंकार सहित हैं और चौथा, शुद्ध उपयोग, अहंकार रहित है। ऐसा भान हो जाए कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', सम्यक् दर्शन हो जाए, उसके बाद में ही उसे शुद्ध उपयोग कहा जाता है। उसमें कषाय-विषय से संबंधित विचार ही नहीं होते हैं। व्रत, जप-तप, भक्ति, शास्त्र पठन, वह सब शुभ उपयोग कहा जाता है।

एक तरफ क्रिया और दूसरी तरफ 'देखना', दोनों साथ में ही होना चाहिए। आत्मा हाज़िर हो तो क्रिया होकर और खत्म हो जाएगी। हर एक व्यवहार देखकर (जुदापन की जागृति सहित) जाने देना चाहिए, तब फिर वह शुद्ध होकर खत्म हो जाएगा! उपयोग रहित व्यवहार बार-बार आएगा और तब उपयोग रखकर उसे क्लियर करना पड़ेगा।

उपयोग अर्थात् यह कि रमणता किसमें बरतती है! फाइलों का *निकाल* करते समय उपयोग बाहर रखना पड़ता है न? उसके लिए आज्ञा का पालन किया, इसलिए वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। जब सामने वाले के शुद्धात्मा दिखाई देते हैं, उस समय शुद्ध उपयोग रहता है।

शुद्ध उपयोग किसके माध्यम से रहता है? प्रज्ञा के माध्यम से। अज्ञा पैकिंग दिखाती है और प्रज्ञा माल दिखाती है। गालियाँ देने वाले को भी शुद्धात्मा की तरह देखा जाए तो वह वास्तविक शुद्ध उपयोग है। शुद्धात्मा का शुद्ध उपयोग होता है और चंदूभाई का अशुद्ध या शुभाशुभ उपयोग होता है।

उपयोग और जागृति में क्या फर्क है? लाइट जलती रहे और हम सो जाएँ तो ऐसा कहा जाएगा कि उसका उपयोग नहीं हुआ। बेकार जाएगा। और यदि लाइट में पढ़ें तो उसे उपयोग करना कहा जाएगा। बह रही जागृति को काम में लेंगे तो वह उपयोग है। इलेक्ट्रिसिटी तो है ही लेकिन बटन दबाएँगे तभी उजाला होगा, पंखा चलेगा। उसे उपयोग करना कहा जाएगा।

शुद्ध उपयोग अर्थात् खुद अपने आपको शुद्ध समझे। उसकी प्रतीति, *लक्ष* और अनुभव रहे और दूसरों में भी उसी रूप में देखें, उसे कहते हैं शुद्ध उपयोग।

चाहे कितना भी खराब काम हो जाए, फिर भी ऐसा रहना चाहिए कि 'मैं शुद्ध ही हूँ' तो वह शुद्ध उपयोग है। खराब काम चंदूभाई करते हैं, शुद्धात्मा नहीं।

किसी की शिकायत करने पर शुद्ध उपयोग चला जाता है! उसे गुनहगार देखा, शुद्धात्मा नहीं देखा। उसे कर्ता देखा। कर्ता देखा तो अशुद्ध उपयोग हो गया।

'मैं करता हूँ, वह करता है, वे करते हैं।' (जहाँ पर) यह भाव बिल्कुल भी नहीं है, वहाँ पर शुद्ध उपयोग रहेगा ही। यदि कोई ज़रा भी लाल झंडी दिखाए, वहाँ पर यदि ऐसा लगे कि 'यह ऐसा क्यों कर रहा है?' तो कमज़ोर पड़ गए। वह व्यक्ति लाल झंडी दिखाता ही नहीं है, व्यवस्थित दिखा रहा है! शुद्ध उपयोगी को कोई कर्ता दिखाई ही नहीं देता। अत: उसे पूरा जगत् निर्दोष ही दिखाई देता है। यह तो, जब खुद में दोष उत्पन्न होता है तब तुरंत ही दूसरों में दोष दिखाई देता है।

संक्षेप में, खुद अपने आपको शुद्ध देखना, वही शुद्ध उपयोग है। औरों को शुद्ध देखना, निर्दोष देखना, वह भी शुद्ध उपयोग है। कई बार महात्माओं में एट ए टाइम दोनों ही चल रहा होता है कि बाह्य दृष्टि से दोष दिखाई देते हैं और अंतर दृष्टि से निर्दोष दिखाई देते हैं। अच्छे-अच्छे साधु-आचार्यों को भी ऐसा नहीं रहता। जो निर्दोष दिखाता है, वही ज्ञान है।

शुद्ध उपयोग की सेटिंग किस तरह से करनी चाहिए? चंदूभाई क्या कर रहे हैं, उसे दिन भर देखते रहना और जानते रहना चाहिए। अर्थात् खुद की प्रकृति को देखना, उसी को शुद्ध उपयोग कहते हैं। खाते समय, सोते समय, काम करते समय, बातें करते समय, चंदूलाल को देखना है, इस प्रकार शुद्ध उपयोग की सेटिंग कर लेनी चाहिए। चंदूलाल फिल्म और खुद देखने वाला!

मन-वचन-काया शुभाशुभ में हों और आत्मा शुद्ध उपयोग में! विचारों को देखना शुद्ध उपयोग है और यदि नहीं देख पाएँ तो शुद्ध

उपयोग चूक गए, लेकिन उससे नया कर्म बंधन नहीं होता। अपनी सामायिक में मात्र अंत:करण को ही देखते रहना होता है। इसलिए उसमें शुद्ध उपयोग रहता है। यदि कोई दोषित दिखाई दे और उसका प्रतिक्रमण कर लिया होगा तो चलेगा।

अपमान और मान के सामने भी शुद्ध उपयोग रखने की ज़रूरत है। मान किसे दे रहा है? पड़ोसी को, *पुद्गल* को। तो वहाँ पर शुद्ध उपयोग रहेगा।

पाँच आज्ञा में रहना भी एक प्रकार का शुद्ध उपयोग है। सभी में शुद्धात्मा दिखाई दें, यह फाइल है ऐसा रहे। पाँच आज्ञा शुद्ध उपयोग में रहने की बाड़ है। उपयोग रखे बिना ज्ञान बढ़ेगा ही नहीं।

बच्चा दूध गिरा रहा हो तो उसे 'देखते' रहना है, उसे समझना ज़रूर है लेकिन कषाय नहीं करने हैं, इमोशनल नहीं होना है।

दादा के पास बैठकर शक्तियाँ माँगने को शुद्ध उपयोग के नज़दीक का उपयोग कहा जाता है। वह शुद्ध उपयोग का साधन कहा जाता है।

होम और फॉरेन डिपार्टमेन्ट को जुदा रखे, वह भी शुद्ध उपयोग कहा जाएगा लेकिन वह शुरुआती शुद्ध उपयोग है, स्थूल शुद्ध उपयोग है। सूक्ष्म में शुद्ध उपयोग का महात्माओं को पता नहीं चल सकता। समझाने पर भी पता नहीं चलेगा। स्थूल तक पहुँच पाएँ तब भी बहुत है।

अभ्यास द्वारा स्थूल में से सूक्ष्म की तरफ जा सकते हैं। अंदर जागृति रहती है कि, 'यह गलत हुआ, यह गलत हुआ', लेकिन उसके बाद जागृति यों ही बह जाती है। जागृति का उपयोग करना है। फिसलन वाली जगह पर कैसी जागृति रहती है? कुएँ पर गए हुए व्यक्ति को क्या वाइफ या बच्चे याद आते हैं? उस समय, वह उपयोग कहा जाएगा।

उपयोग चूकने की जगह कौन-कौन सी हैं? जहाँ बाहर से मिठास आती है, वहाँ पर उपयोग चूक जाते हैं। खूब उमस हो और एकदम से हवा चले तो वहाँ पर उपयोग चूक जाते हैं। बातों में मज़ा आ जाए तो उपयोग चूक जाते हैं। खाने में टेस्ट आए तो उपयोग चूक

जाते हैं। रुचि आते ही उपयोग चूक जाते हैं। रुचि सदा आत्मा में रहनी चाहिए।

ज्ञान का गाढ़ अनुभव होने के बाद आसानी से उपयोग रह पाता है। उसके बाद पुरुषार्थ करने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

दादा में चित्त रहे तो वह भी शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। दादा की सेवा में चित्त रहे तो वह भी शुद्ध उपयोग हुआ। लेकिन यह सारा स्थूल शुद्ध उपयोग कहा जाता है।

पैसे गिनते समय कितना अच्छा उपयोग रहता है? पत्नी या बच्चे सामने आ जाएँ, फिर भी कोई उन्हें दाद नहीं देता! इसका कैसे पता चलेगा कि एक्ज़ेक्ट उपयोग रहा? चित्त इधर-उधर न हो वही देखना है।

'परम पूज्य दादाश्री को कैसा शुद्ध उपयोग रहता है', ऐसा पूछने पर उसका वर्णन करते हुए, उन्होंने बताया कि 'जब हम कुछ पढ़ रहे होते हैं तब यदि उसमें 'चंचल' की और 'शांता' की बात आए तो हमारी दृष्टि उनके शुद्धात्मा पर ही रहती है, जागृति रहती है। शुद्ध उपयोग नहीं चूकते। अरे, किसी तीसरे व्यक्ति की बात हो रही हो, तब भी ऐसा उपयोग नहीं चूकते कि वह शुद्धात्मा ही है'।

जब व्यवहार के कार्य नहीं रहते तब उपयोग आसानी से रह पाता है, जुदापन रहता है। लेकिन मन-वाणी के कार्य करते समय यह मुश्किल है। वाणी बोलते समय 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसे *लक्ष* में रखकर वाणी निकले तब उपयोग रहेगा। व्यवहार को *लक्ष* में रखकर, यदि वाणी निकले तो उपयोग नहीं रह सकता।

जब उपयोग न रहे तब उसे जागृति कहा जाता है। (ऐसे में कोई) दूसरा काम नहीं हो सकता। उपयोग अर्थात् दूसरा काम। जब आत्मा के गुण बोलते हैं तब उपयोग रहता है, जैसे कि 'मैं अनंत ज्ञान वाला हूँ, मैं अनंत दर्शन वाला हूँ...' और बाकी कुछ और बोले तो शुद्ध उपयोग नहीं रहता। बहुत हुआ तो जागृति रहती है। जागृति रहती

है तो उससे पज़ल या कषाय वगैरह कुछ भी नहीं होते। 'वाणी पराई है और पराधीन है, रिकॉर्ड बज रही है।' ऐसा सब हाज़िर रहता है। दादाश्री कहते हैं कि 'जब हम बोलते हैं, तब उपयोगपूर्वक बोलते हैं। ये रिकॉर्ड जो बोलती है, उस पर हमारा उपयोग रहता है। रिकॉर्ड में कितना स्याद्वाद का ध्यान रखा गया, क्या भूल हुई, वह सब बारीकी से दिखाई देता है। मैं बोला ऐसा होते ही उपयोग चूक जाते हैं! कोई सेवा करे तब भी हम अपने आत्मा में रहते हैं। एक मिनट के लिए भी उपयोग से बाहर नहीं जाते।

संपूर्ण रूप से अहंकार चला जाए तभी ऐसा कहा जाएगा कि आत्मा को संपूर्ण रूप से जाना।

अक्रम ज्ञान मिलने पर सर्व प्रथम आत्मदर्शन की प्राप्ति होती है। उसके बाद ज्ञानी के सानिध्य में बैठते रहने से शुद्ध उपयोग होता जाता है। जितना शुद्ध उपयोग उत्पन्न होता जाता है उतना ही ज्ञान परिणमित होता जाता है। जब निरंतर शुद्ध उपयोग बरते तो उसी को कहते हैं केवलज्ञान।

महात्माओं का भरा हुआ माल शुद्ध उपयोग चूकवाता है। पैसों की लालच शुद्ध उपयोग चूकवाती है।

हर समय शुद्ध उपयोग में रहने की सेटिंग करनी चाहिए। बाहर निकले तो रास्ते में, बस में या ट्रेन में जो कोई भी जीव मिले, तुरंत उसके शुद्धात्मा देख लेने हैं।

परम पूज्य दादाश्री कहते हैं कि 'हमारी सभी ग्रंथियाँ खत्म हो चुकी हैं इसलिए कोई हमें पकड़ नहीं सकता। इसलिए निरंतर मुक्त ही रहते हैं।' मन फ्री हो तो दादा तुरंत ही विधियाँ करने लगते थे। ज़रा सा पॉज़ मिलते ही विधि सेट कर देते थे! एक सेकन्ड के लिए भी पॉज़ मिले तब भी तुरंत विधि करने लगते थे, उन्हें झोंका आता ही नहीं, 'एवर अलर्ट!'

खाली समय में यदि महात्मा विधियाँ करें, चरणविधि करें, नव

कलम वगैरह करें तो वह जागृति में रहने के उपाय हैं। उसे शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाता। विधियाँ आत्मपक्षीय नहीं हैं और *पुद्गल*पक्षीय भी नहीं हैं, न्यूट्रल हैं। संसार को न्यूट्रल कर देती हैं! सिद्धस्तुति आत्मपक्षीय है। अज्ञानी भी ये नव कलम, नमस्कार विधि, वगैरह विधियाँ करें तो उसका भी अहंकार शुद्ध होता जाएगा और कषाय कम होते जाएँगे।

कोई भी माँ अपने छोटे बच्चे को क्या एक मिनट के लिए भी भूल सकती है? उसी तरह आत्मा को एक क्षण के लिए भी भूलना नहीं चाहिए। अतः हमें देखते रहना है कि प्रकृति क्या कर रही है! और किसी चीज़ में तन्मयाकार होने को 'आत्मा को अकेला छोड़ना' कहा जाएगा। आइस्क्रीम खाने में हर्ज नहीं है लेकिन अगर दो-तीन डिश से ज़्यादा माँगे तो वह गलत है। पिछले अज्ञान की प्रैक्टिस बाधा डालती है। उसकी वजह से आत्मा को अकेला छोड़ देते हैं। यदि उसे कभी भी अकेला नहीं छोड़ा तो फिर अनेक गुना शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं!

नीरू बहन जब दादाश्री को नहलाती थीं जब दादाश्री खुद संपूर्ण शुद्ध उपयोग में रहते थे और नीरू बहन को भी आसानी से यों ही अच्छी तरह से उपयोग रहता था। जीवित ज्ञानी पुरुष की सेवा करते हो तो वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा और यदि मूर्ति को नहलाते हो, सेवा करते हो तो वह शुभ उपयोग कहा जाएगा। दादा की वाणी लिखी जाए तो वह शुद्ध उपयोग लाने वाली चीज़ है, वह शुद्ध उपयोग की शुरुआत है।

दादाश्री कहते हैं कि बस का इंतज़ार नहीं करना है। उस समय उपयोग सेट कर देना है। सभी में शुद्धात्मा देखने हैं, उससे समय खराब नहीं होगा। इंतज़ार करने में एक मिनट भी खराब नहीं करना चाहिए।

नींद अर्थात् आत्मा को बोरे में डालकर बाँध देना। ज्ञान के बाद सो कैसे सकते हैं?

उपयोग का फल क्या है? समाधि!

खाना खाते समय महात्माओं को *लक्ष* रहता है, उपयोग नहीं रहता। उपयोग बहुत बड़ी चीज़ है। वह दादाश्री को रहता है। खाना खाते समय उपयोग रखना अर्थात् क्या? कौन खा रहा है? किस तरह खा रहा है? किसमें ज़्यादा स्वाद ले रहा है? खाना खाते समय यदि बात करते हैं तब उसमें तन्मयाकार हो जाते हैं। फिर उपयोग तो क्या, लेकिन जागृति भी नहीं रहती। इसलिए दादा खाना खाते समय कभी भी बातें नहीं करते थे।

महात्माओं को जागृति रहती है। दादा ने जो कहा है, वे किसी-किसी को ही धारण होता है। जागृति का मूल जगह पर आना मुश्किल है। इसलिए *लक्ष* रहता है, उपयोग नहीं। अनुभव हुए बिना उपयोग कैसे रह सकता है? 'यह मैं हूँ' उसका प्रमाण उसके अनंत प्रदेशों सहित ज़रा सा भी बदल नहीं जाना चाहिए!

परम पूज्य दादाश्री कहते हैं कि दादा की वाणी की भक्ति की इसलिए यह प्रकाश हुआ। मशीनों के साथ काम करने से जागृति नहीं रहती, बल्कि आवरण आ जाते हैं। क्योंकि उस समय भक्ति किसकी होती है? मशीनों की! जिसकी भक्ति करते हैं, उसी रूप बन जाते हैं। इसलिए दादा कहते थे कि मैं बचपन में भी साइकिल का पंचर खुद रिपेयर नहीं करता था।

दादाश्री कहते थे कि, 'हमारे साथ सेवा में कौन रह सकता है? जो निरंतर उपयोग वाला हो, वही रह सकता है। जिसे उपयोग नहीं रहता, वह कैसे रह सकेगा?' वर्ना, दादा की उपस्थिति में ठंडक रहने से उपयोग चला जाता है।

उपयोग पर उपयोग अर्थात् एब्सल्यूट पद!

उपयोग अर्थात् जागृति का उपयोग किस तरफ किया वह। आत्मदृष्टि होने के बाद में फिर शुद्ध उपयोग रह सकता है, वर्ना अहंकार का ही उपयोग रहता है।

[4] अनुभव - लक्ष - प्रतीति

आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद में जो अधिक से अधिक ज्ञानी के परिचय में रहता है, उसे निरंतर आत्मा का *लक्ष* रहता है। कभी काम में तन्मयाकार हो जाने पर ऐसा लगता है कि सारा ज्ञान चला गया लेकिन ऐसा होता नहीं है। तब आत्मा का *लक्ष* चला जाता है लेकिन प्रतीति का तार तो निरंतर जॉइन्ट ही रहता है। इसलिए स्वयं तुरंत ही, अपने आप ही, यह *लक्ष* आ जाता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। इसे क्षायक समकित कहा गया है और यदि *लक्ष* वापस न आए तो उसे उपशम समकित कहा गया है! अक्रम ज्ञान मिलने के बाद में (महात्मा) अनुभव-*लक्ष* और प्रतीति, इन तीनों सीढ़ियों के बीच ही खेलते रहते हैं, चौथे में नहीं जाते। उसे कहते हैं क्षायक समकित।

निरंतर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' की प्रतीति हो गई यानी कि मोक्ष का वीज़ा मिल गया और बाद में जब टिकिट मिल जाएगी तो हल आ जाएगा। निरंतर प्रतीति को तो सिद्ध भगवान की 1/8 दशा का उत्पन्न होना कहा जाता है!

जैसे-जैसे ज्ञान से जानते जाएँगे, वैसे-वैसे प्रतीति दृढ़ होती जाएगी। उसके बाद यदि वह उखड़े ही नहीं, तो काम हो जाएगा! दबाव आने पर टेढ़ा हो जाए लेकिन यदि टूटे नहीं तो उसे आत्मा की मज़बूत प्रतीति बैठना कहा जाएगा।

श्रद्धा और प्रतीति में क्या फर्क है? श्रद्धा जा भी सकती है लेकिन प्रतीति कभी भी नहीं जाती। एक बार आत्मा, प्रतीति में आने के बाद फिर वह कभी भी नहीं जाता। उसे क्षायक समकित कहा गया है। उस पर मोक्ष की मुहर लग जाती है! बाद में फिर प्रतीति गाढ़ होते-होते, अवगाढ़ हो जाती है। तीर्थंकरों को आत्मा की अवगाढ़ प्रतीति रहती है।

आत्मा की प्रतीति प्रत्यक्ष ज्ञानविधि के बिना नहीं हो सकती, पुस्तकों या शास्त्रों को पढ़कर नहीं हो सकती।

आत्मा की प्रतीति होने के बाद क्षमा, नम्रता, सरलता, संतोष, वगैरह लक्षण सहज रूप से ही उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रतीति शब्द का प्रयोग सिर्फ आत्मा के लिए ही होता है।

कोई भी कार्य करने के लिए उसमें तन्मयाकार होना पड़ता है। तभी वह कार्य हो सकता है। लेकिन जो तन्मयाकार हो रहा है, उसे हमें देखना और जानना है!

'वर्ते निज स्वभावनुं, अनुभव, लक्ष, प्रतीत,
वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित' –**श्रीमद् राजचंद्र**

अज्ञान दशा में वृत्तियाँ बाहर भटक रही थीं। निज स्वभाव का अनुभव–*लक्ष*–प्रतीति बरतने के बाद में वे तुरंत अपने आप ही वापस अंदर की ओर आने लगती हैं। उसे परमार्थ समकित अर्थात् अंतिम, क्षायक समकित कहा गया है, जिसका अनुभव महात्माओं को बरतता है। दादा का चेहरा याद आ जाए, तब भी ऐसा कहा जाएगा कि वृत्तियाँ वापस आ गईं। वृत्तियाँ बाहर क्यों भटकती हैं? सुख खोजने के लिए।

सब से पहले प्रतीति में आता है, उसके बाद जब धीरे-धीरे उसका अनुभव होता जाता है, तब फिर अपने आप ही वर्तन में आ जाता है।

अक्रम मार्ग के माध्यम से ज्ञानविधि प्राप्त करने के बाद में कितने ही कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। उससे आत्मा का अनुभव और *लक्ष* रहा करता है। यदि उपादान बहुत जागृत हो तो निरंतर आत्मा का *लक्ष* रहा करता है।

अक्रम में ऐसा ध्यान में रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और क्रमिक में इसका *लक्ष* रहा करता है, इन दोनों में क्या फर्क है? *लक्ष* अर्थात् किसी एक जगह पर खूँटी से बाँधा हुआ और ध्यान अर्थात् एनी व्हेयर (चाहे कहीं भी) हो सकता है! क्रमिक में क्षयोपक्षम समकित होता है और अक्रम में क्षायक समकित है। इसलिए निरंतर

आत्मा का ध्यान रहता है। कितने ही लोगों को तो बात करते हुए भी ऐसा ध्यान रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसे शुक्ल ध्यान कहा गया है।

नींद में से जगाकर पूछो तो अपने आप ही हाज़िर हो जाता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह निरंतर बैठी हुई प्रतीति का फल है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह रटन नहीं है। रटन तो शब्द रूपी होता है। समकिती को आसानी से *लक्ष* रहता ही है। स्मरण किया हुआ विस्मृत हो जाता है। अक्रम के महात्माओं को शुद्धात्मा का रटन नहीं करना है। यहाँ पर तो परमात्मा बन जाते हैं लेकिन वह प्रतीति से! रटन तो मंत्रों का होता है। यह तो स्वरूप है, मंत्र नहीं है।

सिर्फ रात को सोते समय ही, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसे बोलते-बोलते सो जाना है। उसके अलावा ऐसा बोलने की ज़रूरत नहीं है।

सहज भाव से आत्मा का *लक्ष* रहे, वही सही है। आत्मा का रटन करने जाएँगे तो सहज भाव से आने वाला (*लक्ष*) बंद हो जाएगा।

इस दुनिया के ज्ञान का *लक्ष* बैठ सकता है लेकिन आत्मा का *लक्ष* कभी भी बैठे ऐसा नहीं है। इसीलिए तो उसे अलख निरंजन कहा गया है! ज्ञानी पुरुष उसका *लक्ष* बैठा देते हैं। पैर एक ही बार टूटा हुआ हो पर उसका *लक्ष* कैसा रहा करता है! खड़े होने से पहले लाठी याद आ जाती है! भर्तृहरि राजा का नाटक करते हुए, राजा को अंदर हमेशा ध्यान ही रहता है कि मैं वास्तव में राजा नहीं हूँ लेकिन लक्ष्मीचंद हूँ। उसी प्रकार ये भी अंदर जानते ही हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

अक्रम में संपूर्ण अनुभव और संपूर्ण ज्ञान निरंतर नहीं रह पाता लेकिन संपूर्ण प्रतीति निरंतर रहती है। अंतरात्मा पद मिला है। अभी फाइलों का *निकाल* करना बाकी है। फाइलें खत्म होने पर परमात्म पद।

आत्मानुभव की कक्षा के लक्षण क्या हैं? संसार की किसी भी बात का हम पर असर न हो, वहीं पर पूर्णाहुति। तब तक इधर-उधर होता रहता है। इसका थर्मामीटर तो आत्मा खुद ही है। कोई मारे या

लूट ले, फिर भी राग-द्वेष न हों, वही उसका थर्मामीटर है। अगर कोई बहुत नाज़ुक हो तो उसका शरीर रो उठेगा जबकि मज़बूत तो हँसेगा, वह नहीं देखना है लेकिन उसके राग-द्वेष गए हैं या नहीं, वही देखना है! और फिर धीरे-धीरे, जब ज्ञान पूरी तरह से पक्का हो जाएगा तो चेहरे पर भी असर नहीं दिखाई देगा! जब तक चेहरा बिगड़ जाता है तब तक ऐसा समझ लेना है कि अभी कमी है।

अनुभव ज्ञान कब प्रकट होता है? जब पिछले अन्य कड़वे-मीठे फल आने पर जैसे-जैसे उनमें समता रहने लगे, वीतरागता रहने लगे तो वैसे-वैसे अनुभव प्रकट होता जाता है। उसके बाद जब वर्तन में आ जाए तब संपूर्ण शुद्धात्मा पद प्राप्त होता है।

आत्मानुभव होने के बाद में अंदर, सचेत करने वाला जागृत हो जाता है। वह प्रतिक्षण खुद की भूलें दिखाता है, प्रतिक्रमण करवाता है। ज्ञान से पहले अंदर से कोई सचेत नहीं करता था। बल्कि पूरे दिन दूसरे के ही दोष देखते रहते थे!

यह चैतन्य विज्ञान है, यह निरंतर अंदर सचेत करता है। जो वृत्तियाँ उल्टे रास्ते पर चली गई थीं, प्रज्ञाशक्ति (जो ज्ञान मिलने के बाद ही प्रकट होती है) उन्हें सचेत करती है। और सामने रिस्पॉन्स भी मिलता है। जिसे सचेत कर रहे हैं, वह चेत जाता है! जब से रिस्पॉन्स देता है, तभी से वह सचेत होने लगता है और रिस्पॉन्स अर्थात् प्रज्ञा कहती है कि, 'किसी को दुःख देना गलत है', तो अंदर सारी वृत्तियाँ बुद्धि-मन-चित्त-अहंकार, सभी स्वीकार करते हैं कि, 'ठीक है', और उसी अनुसार बदलाव हो जाता है, उसे रिस्पॉन्स मिलना कहते हैं। इसमें मूल आत्मा को कुछ भी नहीं करना है। यह सब तो प्रज्ञा ही कर लेती है, जो मूल आत्मा की डायरेक्ट शक्ति है। काम खत्म होने पर प्रज्ञा वापस मूल आत्मा में तन्मयाकार हो जाएगी!

सचेत होने वाला कौन है? अंदर जो वृत्तियाँ अलग हो गई हैं, वे। वृत्तियाँ *पुद्गल* नहीं हैं लेकिन बिलीफ के रूप में हैं। उस बिलीफ से *पुद्गल* उत्पन्न होता है।

यदि संपूर्ण ज्ञाता-द्रष्टा रहेंगे तो वहाँ पर सचेत होने वाला रहेगा ही नहीं न!

अब नया कुछ भी नहीं करना है। मूल आत्मा की जो प्रतीति हो चुकी है, उसी को पूर्ण करना है। बीच में बुद्धि बहन को नहीं आने देना है। आत्मा की प्रतीति हो गई, उसी को 'आत्मा को देखा' ऐसा कहा जाएगा। और आत्मा का *लक्ष* आ जाए, उसे 'जानना' कहा जाएगा। वह कुछ, इन चर्मचक्षुओं से देखा जा सके, ऐसा नहीं है।

अपमान का संयोग आए और उसका ज़रा सा भी असर नहीं हो तो वह दर्शन रूपी ज्ञान, अनुभव में आया ऐसा कहा जाएगा। अगर असर हो जाता है, चेहरा बिगड़ जाता है तो उतनी कमी है। अनुभव दशा के लिए अभी भी *टेकाज्ञान* (सपोर्टिंग ज्ञान) की ज़रूरत है। ज्ञानकला और बोधकला, वह *टेकाज्ञान* है! भुगते उसी की भूल, हुआ सो न्याय, वगैरह-वगैरह को *टेकाज्ञान* कहा जाता है। अगल-अलग समय पर, अलग-अलग *टेकाज्ञान* की ज़रूरत पड़ती है और अनुभव बढ़ता जाता है।

आत्मा का अनुभव कौन करता है? सूक्ष्मतम अहंकार। बाद में फिर वह अहंकार विलय हो जाता है और प्रज्ञा गद्दी पर आ जाती है। आत्मा को देखने वाला और अनुभव करने वाला दोनों एक ही हैं!

थ्योरिटिकल को अनुभव नहीं कहा जाएगा, उसे तो समझ कहेंगे और प्रैक्टिकल को अनुभव कहा जाएगा।

जो समझ सहित और अनुभव सहित है, वही ज्योति है, वही ज्ञान है, वही परमात्मा हैं!

ज्ञानी के परिचय में रहने से उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती है। उनके सानिध्य में नहीं रह पाएँ तो उनकी पुस्तकों का ही पठन, उनका निदिध्यासन भी खूब मदद करता है!

[5] चारित्र मोह

दर्शन मोह किसे कहते हैं? वास्तव में खुद चंदूभाई नहीं है,

वास्तव में आत्मा है। फिर भी मिथ्यात्व ऐसा मनवाता है कि, 'मैं चंदूभाई हूँ', उसे कहते हैं दर्शन मोह। शरीर को ही, 'मैं हूँ', ऐसा मानता है। जब आत्मा को, 'मैं हूँ', ऐसा मानेगा तब दर्शन मोह टूटेगा। दर्शन मोह छूटने के बाद में फिर जो बचता है, वह चारित्र मोह है। दर्शन मोह से जो कर्म बाँधे हैं, वे अब फल के रूप में रहे हुए हैं, वह चारित्र मोह है। दर्शन मोह तो चला जाता है लेकिन चारित्र मोह रह जाता है।

क्षायक समकित कब होता है? जब दर्शन मोह जाता है तब। उससे क्या होता है? शास्त्र कहते हैं कि जब चार अनंतानुबंधी कषाय और तीन मोहनीय - मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय चले जाते हैं, इस प्रकार जब सात प्रकृतियाँ खप जाती हैं, तब। अक्रम मार्ग में महात्माओं को क्षायक समकित मिलता है, जिसे क्रमिक मार्ग वाले स्वीकार नहीं करते।

अहमदाबाद से दिल्ली जाने निकले लेकिन बीच में पता चला कि यह तो चेन्नई की गाड़ी है। जहाँ से जागते हैं, वहीं से वापस मुड़ने लगते हैं। जागते ही दर्शन मोह टूट जाता है। वापस मुड़ने लगें तभी से चारित्र मोह और जब दिल्ली पहुँचेंगे, वह केवलज्ञान - मोक्ष।

जो आत्मा के द्रव्य, गुणों व पर्यायों को जानता है, निश्चय से उसका मोह नष्ट हो जाता है। फिर भी व्यवहार में जो मोह बचा है, उसे चारित्र मोह कहा गया है।

नारियल तो है लेकिन खोल निकलने के बाद ही खोपरा काम में आता है। जब तक खोल है तब तक वह किस काम का? उसी प्रकार जब दर्शन मोह का खोल चला जाए तभी काम हो पाता है। उसके बाद जो खोपरा बचता है, वह चारित्र मोह है। दर्शन मोह से निरंतर नए कर्म चार्ज होते रहते हैं। चारित्र मोह अर्थात् डिस्चार्ज परिणाम। दर्शन मोह खत्म होने के बाद ही बाकी बचे मोह को चारित्र मोह कहा जाता है। दर्शन मोह की वजह से लटके हुए को लटका हुआ कहा जाता है, चारित्र मोह वाला लटका हुआ नहीं कहा जाएगा। दर्शन मोह चला जाए, उसे तो मोक्षमार्ग की महान सिद्धि मिलना कहा जाता है!

ज्ञान के बाद में महात्माओं को चारित्र मोह बचा है। चारित्र मोह में महात्माओं को कोई चीज़ देखते ही मोह नहीं होता। क्योंकि दर्शन मोह चला गया है! अब महात्माओं का चारित्र मोह कैसा होता है? सभी कुछ अनिच्छापूर्वक होता है। इच्छा नहीं होने पर भी मोह होता रहता है। जैसे कि इच्छा नहीं होती फिर भी बर्फ पिघलती ही रहती है न! इच्छा नहीं हो फिर भी क्रोध-लोभ-मोह-कपट-अहंकार हो जाते हैं। वह चारित्र मोह उदय होता हुआ चारित्र मोह नहीं है, अस्त होता हुआ मोह है। उसका समभाव से *निकाल* कर देना है। जो करोड़ों जन्मों में भी नहीं हो सकता, अक्रम मार्ग में वह दो ही घंटों में हो जाता है।

चारित्र मोह वाले का कैसा रहता है? कोई कपड़े निकाल ले तो उसे आंतरिक रूप से ज़रा सी भी परेशानी नहीं होती।

महात्माओं को कषाय होते हैं लेकिन वे परिणाम हैं, इफेक्ट हैं, कॉज़ नहीं हैं। लेकिन बाहर के लोगों को यह समझ में नहीं आता। उन्हें ऐसा लगता है कि यह कैसा ज्ञान? महात्माओं का मोह तो खुले तौर पर दिखाई देता है न? लेकिन वह वर्तन मोह है, डिस्चार्ज मोह है। मोह के जो परमाणु थे, जब वे डिस्चार्ज होते हैं तब महात्मा उसे ज्ञान से शुद्ध करके खाली कर देते हैं। अत: वह मोह क्षीणमोह हो जाता है। महात्माओं की गाड़ी जितमोह स्टेशन से शुरू होती है और वह क्षीणमोह स्टेशन तक पहुँचाएगी। तब महात्मा भगवान बन चुके होंगे! बारहवें गुणस्थानक में भी चारित्र मोह रहता है। जब केवलज्ञान होता है तभी चारित्र मोह खत्म होता है। अब इस डिस्चार्ज मोह का समभाव से *निकाल* कर देना है।

महात्माओं का अनुभव है कि ज्ञान लेने के बाद धीरे-धीरे मोह कम होता जाता है और आत्मा में और भी अधिक स्थिर होते जाते हैं।

महात्माओं का चारित्र मोह किसे कहते हैं?

खाते-पीते हैं, नहाते हैं, डाँटते हैं, जल्दबाज़ी करते हैं, आलस्य करते हैं, अच्छे कपड़े पहनते हैं, बाल बनाते हैं, फ्रेंचकट रखते हैं,

लोभ करते हैं, कंजूसी करते हैं, सिनेमा देखते हैं, शादी करते हैं, वह सारा ही चारित्र मोह है।

परम पूज्य दादाश्री का चारित्र मोह कैसा था? ब्रश करने जाते तब यदि कोई कहे कि 'टूथपेस्ट नहीं है', तो दादा कहते थे, 'चलेगा'। 'टंग क्लीनर नहीं है', तो कहते थे, 'चलेगा'। 'नहाने के लिए ठंडा पानी है', तो कहते थे, 'चलेगा'। 'खाने में चावल नहीं हैं', तो भी 'चलेगा'। 'रोटी नहीं है', तो भी 'चलेगा'। यदि कोई परोसी हुई रोटी थाली में से उठाकर ले जाए तब भी दादा कहते, 'चलेगा'। मनचाहा भोजन थाली में से उठाकर ले जाए तब भी दादा कहते, 'चलेगा'। संपूर्ण निराग्रहता वाला।

चारित्र मोह रुक नहीं सकता लेकिन उस पर महात्माओं की जागृति तो रहनी ही चाहिए। जागृति अर्थात् पतंग उड़ाएँ लेकिन अंदर तो सतत ऐसा रहना चाहिए कि, 'यह गलत हो रहा है'। राज़ी खुशी से नहीं करना चाहिए! उसे जानना चाहिए।

ज्ञान को भी खत्म कर दें ऐसे अपवाद रूप चारित्र मोह भी होते हैं। वे विषय रूपी हैं, अन्य कुछ नहीं।

अक्रम के महात्माओं के आचरण में ऋजुता-मृदुता के बजाय कई बार कठोरता दिखाई देती हैं। लेकिन दादाश्री कहते हैं कि वास्तव में महात्माओं के अंदर ऋजुता-मृदुता रहती है और बाहर कठोरता रहती है। अब 'यह सारा डिस्चार्ज मोह ही है', ऐसा कहकर उसका दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है न? ऐसा कहना भी चारित्र मोह है। ज्ञान में रहने के प्रयत्न करने वाला मिसयूज़ नहीं करता।

जो, 'इट हैपन्स' है, वह चारित्र मोह है। उसमें खुद की दखल नहीं है कि 'ऐसा करो या न करो'।

ये सभी लोग जो प्रश्न पूछते हैं, वह भी चारित्र मोह है। निर्मोही तो पूछेगा ही नहीं न!

यात्रा करते हैं, धर्म करते हैं, पूजा-पाठ, सामायिक-प्रतिक्रमण करते हैं, वह सारा ही चारित्र मोह है।

दान दिया, वह भी चारित्र मोह है और चिढ़ गए, वह भी चारित्र मोह है। क्योंकि इसमें आत्मा तो कुछ करता ही नहीं है न! ज्ञान से तप में रहकर चारित्र मोह को शुद्ध कर देते हैं।

दादाश्री कहते हैं, 'मैं भी कोट-टोपी पहनता हूँ, अँगूठी भी पहनता हूँ, बाल बनाता हूँ, शेव भी करता हूँ तो क्या यह मोह नहीं है?' हाँ, मोह तो है लेकिन चारित्र मोह है। और 'यह सत्संग करता हूँ, ज्ञान देता हूँ, वह भी मोह है।' लेकिन यह चारित्र मोह है। जब तक चारित्र मोह है तब तक केवलज्ञान या मोक्ष नहीं हो सकता।

अब परम पूज्य दादाश्री का चारित्र मोह है और महात्माओं का भी चारित्र मोह है, इन दोनों में क्या फर्क है? महात्माओं का चारित्र मोह बोझ वाला है, संसार चलाने का और दादाश्री का चारित्र मोह बोझ रहित है, बोझ ही नहीं है संसार का! हल्के फूल! दादाश्री तो यहाँ तक कहते हैं कि हम में जो करुणाभाव है, वह भी चारित्र मोह ही कहा जाएगा। तीर्थंकरों की करुणा भी चारित्र मोह ही कहा जाएगा लेकिन वह केवलज्ञान होने से पहले, बाद में नहीं।

महात्माओं को प्रश्न होता है कि क्या दादा की आज्ञा पालन करना भी चारित्र मोह है? नहीं, वह तो पुरुषार्थ है, प्रज्ञाशक्ति का! वह चारित्र मोह नहीं है। चारित्र मोह आज्ञा पालन नहीं करने देता। सरल व्यक्ति आज्ञा पालन कर पाता है। आज्ञा पालन करने से चारों घाती कर्म खत्म हो जाते हैं।

ज्ञान से दर्शन मोह चला जाता है और पाँच आज्ञा पालन करने से चारित्र मोह जाता है। आँखों पर पट्टी बाँधने से चारित्र मोह उत्पन्न हुआ है और खुली आँखों से देखकर उसे खाली करना है!

अगर चारित्र मोह के ज्ञाता-द्रष्टा रहेंगे तो वह अपना नहीं है और अगर उसे पकड़ लेंगे तो लिपटा रहेगा! 'मुझे ऐसा क्यों हो रहा है', अगर ऐसा हुआ तो वह आपका है।

ज्ञाता-द्रष्टा वाले को दखल नहीं रहता, चारित्र मोह में दखल रहती है। 'मैं नहीं आऊँगा', वह दखल है! जैसा चारित्र मोह भरा हुआ है, वैसा ही निकलता है।

अगर चारित्र मोह देखे बगैर चला जाएगा तो वह धोए बगैर चला जाएगा। फिर से देखकर धोना पड़ेगा। जैसे नहाते समय सभी कपड़े धोकर निकलते हैं उसके बाद नहाने के बाद संभालकर, अंतिम कपड़ा इस तरह से धो देते हैं कि छींटे न उड़ें। उसी प्रकार से अब यह अंतिम मोह, चारित्र मोह को धो देना है।

अक्रम के महात्माओं के लिए उदयकर्म नहीं हैं, चारित्र मोह है। महात्माओं का यह उदयकर्म *निकाली* मोह सहित है। अत: यह चारित्र मोह कहा जाएगा और अज्ञान दशा में उदयकर्म मूल मोह सहित है इसलिए उसे उदयकर्म ही कहा जाएगा।

चाहे किसी भी प्रकार का चारित्र मोह आए, निंद्य या पूजनीय, फिर भी यदि निरंतर ऐसा ध्यान में रहे कि 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ' तो वह केवल दर्शन है। जिसे निरंतर ऐसा ध्यान रहे, उसे प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं रहती।

महात्माओं का राग वाला और द्वेष वाला माल निकलता है। जैसा भी माल निकले उसका *निकाल* करना पड़ेगा। सुविधा और असुविधा सभी का *निकाल* करना होगा। विषमभाव से लिपटा है और समभाव से छोड़ना है। अब चारित्र मोह का तिरस्कार नहीं कर सकते।

जब महात्मा तन्मयाकार हों तभी चारित्र मोह कहा जाएगा। अगर तन्मयाकार नहीं रहे तो वह चारित्र मोह नहीं है।

चंदूभाई को अलग देखते रहो तो आप मुक्त हो। वहाँ पर चारित्र मोह नहीं है। चंदूभाई को अलग नहीं देखा तो वहाँ पर चारित्र मोह रहेगा। उसे कभी न कभी छोड़ना ही होगा। एक्ज़ेक्ट देखना होगा। चंदू को एक्ज़ेक्ट देखना अर्थात् उसका शरीर वगैरह सब एक्ज़ेक्ट अलग दिखाई देना चाहिए, चंदू बातें करें तो वह भी अलग दिखाई देना चाहिए। हाथ ऊँचा करे, नीचा करे तो वह भी दिखाई देना चाहिए। यह धीरे-धीरे अनुभव में आएगा। पहले प्रतीति होती है, उसके बाद धीरे-धीरे अनुभव होता है, उसके बाद वर्तन में आता है। जिस प्रकार लड़के को कहा जाए कि, 'तेरे लिए लड़की पसंद की है। उसका नाम

चांदनी है, बहुत सुंदर है'। अब, लड़के ने लड़की को देखा नहीं है, लेकिन सिर्फ नाम ही सुना तभी से आनंद और प्रेम छलकने लगता है। सिर्फ सुनने से ही। देखा नहीं हो, फिर भी। इस प्रकार ज्ञानी से सिर्फ सुनने पर ही ज्ञान प्रकट होता जाता है!

यह पूरा अक्रम विज्ञान है। सैद्धांतिक चीज़ है और संपूर्ण, स्वयं क्रियाकारी है!

[6.1] कर्म बंधन, नया व पुराना

जब निज स्वरूप का भान हो गया, पुरुष बने, पुरुषार्थ धर्म जागा। कर्ताभाव मिटा और ज्ञाता-द्रष्टा भाव जागा, वहाँ पर कर्म बंधन रुक गया। फिर भी महात्माओं को प्रश्न होता है कि ज्ञान प्राप्त होने से पहले किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का निवारण किस तरह से होगा? उसका समाधान करते हुए पूज्य दादाश्री कहते हैं कि ज्ञानविधि के समय ज्ञानाग्नि से पाप भस्मीभूत हो जाते हैं, अंदर बैठे हुए भगवान की कृपा से। इसीलिए तो रात-दिन आत्मा हाज़िर रहता है न? चिंता और टेन्शन हमेशा के लिए चले जाते हैं।

कर्म को तीन प्रकार से सिमिली देकर समझाया है। बर्फ रूपी, पानी रूपी और भाप रूपी! ज्ञान के बाद पानी और भाप रूपी कर्म खत्म हो जाते हैं लेकिन बर्फ रूपी जो जम चुके हैं, उन्हें भोगना ही होगा। उन्हें निकाचित कर्म कहा गया है। लेकिन उन्हें भोगने के तरीके में पूरा ही फर्क पड़ जाता है! उसके बाद कर्म आत्मानंद में रहकर छूटते हैं!

ये कर्म कौन भोगता है? आत्मा? आत्मा तो परमात्मा ही है, हमेशा परमानंदी है, उसे क्यों भुगतना होगा? अहंकार दुःख भुगतता है। वहाँ पर आत्मा की मात्र उपस्थिति ही रहती है।

कई लोगों को ऐसा लगता है कि बर्फ जैसे कर्म किस तरह खपाएँ? अरे, बर्फ को पिघलाने के लिए कुछ करना पड़ता है क्या? वह तो अपने आप पिघलती ही रहती है! तू आत्मा में रहकर देखता ही रह न, उसे! अगर बहुत भार लगे तो प्रतिक्रमण-प्रश्चाताप करने से हल्कापन रहेगा। उससे कर्म खत्म हो जाएँगे!

[6.2] आचार सुधारने के लिए

अक्रम के महात्माओं में ज्ञान परिणाम, उनके आवरण के हिसाब से, उनके मोह के अनुसार अलग-अलग प्रकार से आता है। किसी को दो घंटे में तो किसी को दो साल में होता है लेकिन होता ज़रूर है।

स्वरूप ज्ञान का व्यवहार में कितना प्राकट्य होना चाहिए? व्यवहार में आने में देर लगती है। दादाश्री व्यवहार पूर्ण करके आए हैं और हमें करना बाकी है।

एक व्यक्ति ने दादाश्री से पूछा कि आप ज्ञानी हैं और ये महात्मा भी ज्ञानी हैं लेकिन दोनों में फर्क क्या है? तब पूज्य दादाश्री ने बताया, 'ज्ञान में अंतर नहीं है, व्यवहार में अंतर है!'

अब आचार, विचार और उच्चार को नहीं बदला जा सकता। जो समझ मिली है, उसे गहराई से समझते रहने से ज्ञान में फिट हो जाएगा। उसके बाद आपने आप आचरण में आएगा। अतः दादाश्री कभी भी किसी को डाँटते नहीं थे। अक्रम में आचार नहीं देखा जाता है। अंदर ज़बरदस्त बदलाव हो जाता है! मोक्ष के लिए आचार की वैल्यू नहीं है। आचार चाहे कैसा भी हो, उसका *निकाल* करके ही मोक्ष में जा पाएँगे। संसार में अगर सुख चाहिए तो आचार अच्छे होने चाहिए।

कई बार अक्रम मार्ग के इन सिद्धांतों को एकांतिक रूप से पकड़कर स्व-बचाव करके दुरुपयोग हो जाता है। ऐसे में दादाश्री उतने ही फोर्स से लालबत्ती दिखाते हैं कि इसके बचाव में नहीं पड़ना चाहिए। जिस प्रकार, ऐसा निश्चय कितना दृढ़ रहता है कि, 'कुएँ में नहीं गिरना है!' उसके बावजूद भी यदि गिर जाए तो क्या कुएँ का बचाव करना चाहिए? कुएँ का बचाव करने जाएँगे तो बार-बार गिर ही जाएँगे। टेढ़ा आचार हो जाए तो हर्ज नहीं है, लेकिन महात्माओं को उसका अर्थ इसी तरह से नहीं पकड़ लेना है। महात्माओं को तो ऐसा ही रखना चाहिए कि, 'यह नहीं होना चाहिए'। फिर उसे लेट गो कर सकते हैं। यदि दुरुपयोग करे तो उसे लेट गो नहीं कर सकते। 'व्यवस्थित' किसे कहेंगे? खुली आँखों से सावधानीपूर्वक गाड़ी चला।

उसके बाद भी अगर टकरा जाए तो वह 'व्यवस्थित' है! पहले से ही नहीं। अत: ऐसा नहीं कह सकते कि इस गलत आचार पर आपत्ति नहीं है। उससे तो लापरवाह हो जाएगा। उससे नया जोखिम खड़ा होगा। इन दोनों का एक्ज़ेक्ट बैलेन्स रखना है।

ज्ञानी की किसी भी बात को एकांतिक रूप से लेकर उपयोग करेंगे तो वह जोखिम है। अब 'मुझ पर किसी भी चीज़ का असर नहीं होगा', ऐसा मानना या कहना, वह बहुत बड़ा जोखिम है। अत: दादाश्री ने यह सूत्र दिया है कि 'विषय विष नहीं है लेकिन विषयों में निडरता विष है। अत: विषयों से डरो!' अंत तक डरते रहना, लापरवाह नहीं रहना। यहाँ पर डरते रहो अर्थात् सावधान रहने के लिए कहा है।

[6.3] पहले श्रद्धा या पहले वर्तन?

अज्ञान दशा में वर्तन की भूल निकालते थे। अब ज्ञान दशा में वर्तन की भूल नहीं निकाल सकते। उसे 'देखते' रहना है। वर्तन की भूल निकालेंगे तो चारित्र मोह नहीं जाएगा और नहीं निकालेंगे और उसे देखते रहेंगे तो वह चला जाएगा! वर्तन को तो 'देखते' ही रहना है। उदाहरण के तौर पर, 'अब्रह्मचर्य गुनाह है', ऐसा निरंतर श्रद्धा में है, फिर बाद में अनुभव में भी आया लेकिन वर्तन में न भी हो। पहले बिलीफ बदलती है, उसके बाद ज्ञान बदलने में बहुत समय लगता है और फिर बहुत समय बाद वर्तन बदलता है। जब तक वर्तन में नहीं आता तब तक यदि श्रद्धा रहे फिर भी बुद्धि काम करती रहती है, खुद को पता भी चलता है कि यह दखल कर रही है।

समझ में से वर्तन में आने तक क्या नया कर्म चार्ज होता है? ऐसा प्रश्न उद्भव होने पर पूज्य दादाश्री समाधान देते हैं कि नहीं, चार्ज नहीं होता लेकिन डिस्चार्ज खत्म नहीं होता। टाइम बेकार जाता है। हाँ, प्रतिक्रमण से वह पतला हो जाता है। अंत में तो अनुभव में आना चाहिए। अनुभव में कब आएगा कि संसार के एक भी अणु-परमाणु में सुख महसूस नहीं होना चाहिए। जब तक नींद में से सुख लेता है, खाने में से, विषय में से सुख लेता है तब तक इसका अनुभव नहीं होगा।

जहाँ पर कषाय चले जाते हैं, वहाँ तो ऐसा माना जाएगा कि बहुत उच्च प्रकार की समझ तक गया है।

महात्माओं में अंदर जितना खिलता है उतनी ही बाहर सुगंध आती है लेकिन वह धीरे-धीरे आती है।

एक व्यक्ति को दादाश्री से शिकायत थी कि, 'महात्माओं में डिसिप्लिन नहीं दिखाई देता। बाहर अपना खराब दिखाई देता है। नए लोग प्रभावित होने के बजाय पुट ऑफ हो (आने से रुक) जाते हैं'। दादाश्री ने कहा कि, 'महात्माओं का डिसिप्लिन देखकर कोई प्रभावित हो जाए तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है। वह उसकी बुद्धि को टच होगा, हृदय को नहीं। अतः यहाँ पर डिसिप्लिन नहीं लेकिन प्रेम है, राग-द्वेष रहित है! पाँच हज़ार लोग खाना खा रहे होते हैं लेकिन कहीं भी खिटपिट नहीं होती! यहाँ डिसिप्लिन अर्थात् बनावट नहीं है और डिसिप्लिन रखने जाएँगे तो आत्मा को वापस कर्ता के रूप में रखना पड़ेगा अतः वहाँ पर ज्ञान परिणाम खत्म हो जाएगा! अतः यहाँ पर तो नो लॉ, लॉ है। सभी मुक्त आनंद लेते हैं। लोक कल्याण की भावना से नए लोग आकर्षित होंगे, लोक कल्याण की क्रिया से नहीं! यहाँ पर शुद्ध व्यवहार है, शुभ नहीं। यहाँ पर आत्मा का आनुषंगिक व्यवहार है। उसे देखने की दृष्टि होनी चाहिए'।

अंदर 'देखते' रहने से ही सब शुद्ध होता जाएगा, अपने आप। 'यह गलत है', अंदर ऐसा भाव घुस जाएगा तो अपने आप ही वह सब साफ होता जाएगा और, 'इसमें बुरा क्या है', कहते ही पाँच लाख साल में भी वह दोष नहीं जाएगा!

[7] रियल पुरुषार्थ

दो प्रकार के पुरुषार्थ हैं - एक भ्रांत पुरुषार्थ और दूसरा पुरुष होने के बाद का रियल पुरुषार्थ।

इस दोनों में क्या फर्क है? रियल पुरुषार्थ में करने की चीज़ नहीं है, मात्र आत्म स्वभाव में रहकर 'देखना' है और 'जानना' ही

है। जबकि रिलेटिव पुरुषार्थ में मात्र भाव करने हैं कि 'हम ऐसा करेंगे' और 'ऐसा नहीं करेंगे'! उसे भ्रांति का भाव पुरुषार्थ कहा गया है। उसमें भी कोई क्रिया नहीं है। पुरुषार्थ आतंरिक चीज़ है। भ्रांति में कर्तापन के भाव से ही पुरुषार्थ होता है। ज्ञान दशा में ज्ञाता-द्रष्टा भाव से ही पुरुषार्थ होता है। पुरुष होने के बाद में यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहें या फिर दादा की पाँच आज्ञा में रहें तो उसे वास्तविक पुरुषार्थ कहा जाएगा। उसमें अन्य कुछ भी नहीं करना है। सारी आज्ञाएँ पुरुष के लिए हैं, प्रकृति के लिए नहीं हैं।

आज्ञा में रहना, पुरुषार्थ है और उससे भी आगे का पुरुषार्थ अर्थात् यह कि बिना आज्ञा के सहज स्वभाव में रह पाएँ। आज्ञा पालन करने से ही ये परिणाम आएँगे। अत: सब से पहले आज्ञा रूपी पुरुषार्थ और अंत में उसमें से स्वाभाविक पुरुषार्थ प्रगमित होगा!

जो ज्ञान-अज्ञान को अलग करे, वह रियल पुरुषार्थ। इसी को भेदविज्ञान कहा गया है और यह पुरुषार्थ प्रज्ञा करवाती है। आज्ञा में रहने का निश्चय भी पुरुषार्थ है, वह भी प्रज्ञा करवाती है। जैसा निश्चय किया जाए, उस अनुसार आगे प्रगति की जा सकती है। उसके बाद धीरे-धीरे पुरुषार्थ में से पराक्रम हो सकता है। पराक्रम का अर्थ क्या है? जिस प्रकार कुत्ते के शरीर पर पूरी तरह से कीचड़ लगने के बाद वह अपने आपको हिलाकर, इस तरह झाड़ देता है कि सारा कीचड़ निकल जाता है और एकदम से साफ-सुथरा हो जाता है! जैसे अभी ही नहाकर न आया हो? अब यह उसे कौन से प्रोफेसर ने सिखाया होगा!

खुद के दोषों को निष्पक्षपाती रूप से देखे तो, वह पुरुषार्थ है।

दादा की कृपा कहाँ पर बरसती है? सच्चे दिल से जिसने पुरुषार्थ करना शुरू किया हो, वहाँ पर!

दादाश्री अपने अंतिम दिनों में महात्माओं को सांकेतिक रूप से ज़बरदस्त संदेश देते गए कि, 'अभी तक हमने महात्माओं को बिल्ली के बच्चे की तरह संभाला है। अब आपको बंदर के बच्चे की तरह चिपककर हमें पकड़ लेना होगा!'

[8] शुक्लध्यान

अक्रम ज्ञान मिलने के बाद में अंदर कैसा ध्यान रहता है? 'मैं चंदूभाई हूँ', वह या फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह? ज़्यादातर सभी को पूरे समय, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ही रहा करता है। भूलना चाहें फिर भी नहीं भूल सकते! उसे शुक्लध्यान कहा गया है। शुक्लध्यान प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है, धर्मध्यान परोक्ष मोक्ष का कारण है।

वास्तव में शुद्धात्मा का ध्यान 'करना' नहीं होता। ध्येय और ध्याता का अनुसंधान ध्यान से होता है। क्रमिक मार्ग में शुद्धात्मा पद प्राप्त करने के लिए साधक को ध्येय तय करना होता है कि, 'मुझे शुद्धात्मा प्राप्त करना है'। आप हो चंदूभाई, अतः चंदूभाई ध्याता और शुद्धात्मा ध्येय है। जब उन दोनों का कनेक्शन मिल जाता है, एक तार हो जाते हैं, तब ध्यान कहा जाता है। उस ध्यान से शुद्धात्मा बन जाता है! और इस अक्रम मार्ग में तो खुद ध्येय स्वरूपी ही हो गया है न! उसके बाद ध्यान करने को रहा ही कहाँ? क्रमिक मार्ग में तो ऐसा माना जाता है कि इस काल में शुक्लध्यान हो ही नहीं सकता, जो कि अक्रम में संभव हो गया है।

खुद के स्वरूप के ध्यान में ही रहना हो तो आपको 'चंदूभाई' ही दिखाई देते रहेंगे। जो उसके मन को देखता है, वाणी को देखता है, वह आत्मा है। और इस प्रकार से देखना, वही आत्मध्यान है। मुंबई जाना तय किया हो तब घूमते-फिरते उसका ध्यान रहता ही है कि मुंबई जाना है! उसे कहते हैं, ध्यान। आँखें बंद करके बैठे रहना, वह ध्यान नहीं है। वह एकाग्रता कहलाती है!

महात्मा जब प्रतिक्रमण करते हैं तब व्यवहार से धर्मध्यान और निश्चय से शुक्लध्यान बरतता है। अक्रम में अंदर-बाहर दोनों अलग रहता है और अक्रम में निश्चय से आर्तध्यान व रौद्रध्यान होते ही नहीं हैं।

कृपालुदेव ने कहा है न, 'ज्ञानी पुरुष ही मेरा आत्मा है', तो दादा का ध्यान करना, वह आत्मध्यान ही है, शुक्लध्यान ही है।

अक्रम ज्ञान से एकावतारी पद तक जा सकते हैं। इस काल में,

इस क्षेत्र से सीधा मोक्ष संभव नहीं है लेकिन वाया महाविदेह क्षेत्र से संभव है। पाँच आज्ञा पालन करने से उच्चतम प्रकार का धर्मध्यान रहता है। जिससे सिर्फ पुण्यानुबंधी पुण्य बंधन होता है, जो महाविदेह क्षेत्र में पहुँचने के लिए उपकारी हो जाता है। अगर यों ही कोई ज्ञानी के चरण छू ले तब भी जन्म-मरण की हद में आ जाता है और अगर ज्ञान ले जाए, थोड़ी-बहुत आज्ञा में रहे तब फिर ज़्यादा से ज़्यादा पंद्रह जन्मों में उसका मोक्ष होगा ही!

शुक्लध्यान के चार स्तंभ हैं। पहले स्तंभ में अस्पष्ट वेदन। जो अक्रम के महात्माओं को रहता है। दूसरा स्तंभ वह जिसमें परम पूज्य दादाश्री रहते थे, जो स्पष्ट वेदन का है और तीसरे स्तंभ में केवलज्ञान है और चौथे स्तंभ से मोक्ष में जाते हैं!

[9] एकावतारी मोक्ष, 'इस' ज्ञान से

खुद को प्राप्त हुए आत्मज्ञान के बारे में, मृत्यु के समय और उसके बाद महाविदेह क्षेत्र, मोक्ष और महात्माओं की दिनचर्या, वगैरह-वगैरह के बारे में पूछे गए महात्माओं के विविध प्रश्नों के पूज्य दादाश्री ने सटीक समाधान दिए हैं। जिन्हें पढ़ते ही महात्माओं को इस ज्ञान मिलने की वजह से अलौकिक धन्यता का अनुभव होता है!

महात्मा किसे कहते हैं? बाह्य संयम हो या न हो लेकिन जिन्हें ज़बरदस्त आतंरिक संयम रहता है। कषाय का अंतर संयम रहता है। हालांकि बाहर क्रोध करता है लेकिन अंदर तो 'ऐसा नहीं होना चाहिए', ऐसा रहता है।

जिसने शुद्धात्मा दशा प्राप्त की, वह महात्मा है।

महात्मा का कार्य क्या है? भरे हुए माल को समतापूर्वक खाली करना।

महात्मा का फर्ज क्या है? वीतराग रहना। राग-द्वेष रहित रहना।

महात्मा का आदर्श जीवन कैसा होना चाहिए? घर वाले और आसपास वाले सभी कहें कि, 'कहना पड़ेगा'। सभी हरी झंडी दिखाएँ!

महात्माओं का नित्यक्रम क्या है? यहाँ पर तो नो लॉ-लॉ है। जो हो, वही सही। जब कुछ उल्टा निकले तब अंदर ऐसा रहना चाहिए कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'।

क्या सुबह जल्दी उठना चाहिए? जब उठो, तब। लेकिन सूर्यनारायण की आबरू रखने के लिए उनके आने से पहले ही उठ जाना अच्छा है!

सोएँ किस प्रकार से? दादा के चित्रपट का निदिध्यासन करते-करते खुद के ही कान को सुनाई दे, उस प्रकार से धीरे-धीरे 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ', रोज़ ऐसा बोलते-बोलते सो जाना है। उससे पूरी रात अंदर आत्मा की जागृति रहेगी।

मोक्ष में जाने की जल्दबाज़ी करने वाले महात्माओं से दादाश्री कहते हैं, गाड़ी में बैठने के बाद कोई जल्दबाज़ इंसान अगर ट्रेन में भागदौड़ करे तो उससे क्या होगा?

कई महात्माओं को लगता है, 'अब मोक्ष कितने जन्मों के बाद होगा?' दादाश्री उसकी गारन्टी देते हुए बताते हैं कि 'अगर हमारी पाँच आज्ञा का सत्तर प्रतिशत पालन करेगा तो एक जन्म में ही मोक्ष हो जाएगा! और अधिक से अधिक तीन या चार जन्म। कोई लोभी होगा तो वह पूरे पंद्रह भी कर सकता है और अगर आज्ञा पालन नहीं करेगा तो डेढ़ सौ जन्म भी हो सकते हैं और यदि कोई उल्टा चले और विराधना करे तो (ज्ञान) खत्म ही हो जाएगा।'

महात्माओं को मृत्यु के समय किस जागृति में रहना है? अंत समय में अपने अंदर जो चल रहा है, उसे देखते ही रहना है। उस प्रकार से न रहा जाए तो रियल-रिलेटिव की आज्ञा में या पाँच आज्ञा में रहना है! दादाश्री पूरी गारन्टी देते हैं कि अंत समय में दादा हाज़िर ही रहेंगे। समाधि मरण होगा। मृत्यु की वेदना के बजाय आत्मा का आनंद रहेगा!

कई लोग पूछते हैं कि क्या यह ज्ञान अगले जन्म में भी रहेगा?

तब दादा कहते हैं, 'यह ज्ञान चला नहीं जाएगा। अगर कोई इस जन्म में इक्यासी तक पहुँचे तो फिर अगले जन्म में इक्यासी से शुरू होगा।

जिसके आर्तध्यान और रौद्रध्यान बंद हो गए तो वह परिणाम ही उसे तीर्थंकर के पास बैठा देगा! दादाश्री कहते हैं कि ये पाँच आज्ञाएँ आपके इसी जन्म के लिए हैं। अगले जन्म में तो फिर आज्ञाएँ आपके अंदर आत्मसात हो चुकी होंगी! और जिन-जिन फाइलों के प्रति राग-द्वेष छूट गए, वे फिर से नहीं मिलेंगी, वर्ना फिर से मिलेंगी।

पाँच आज्ञा पालन करने से पुण्यानुबंधी पुण्य बंधन होता है। जिसके फलस्वरूप उसके बाद वाले जन्म में ज़बरदस्त ऐश्वर्य मिलता है! महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के पास जन्म मिलता है और सभी प्रकार की अनुकूलताएँ मिल जाती हैं!

महात्माओं को मोक्ष का वीज़ा मिल गया है, अब टिकिट बाकी है। दादाश्री कहते हैं कि कुछ होने पर ज़रा सा भी चेहरा नहीं बिगड़े और अंदर आत्म स्थिरता रहे तब समझ लेना कि महाविदेह क्षेत्र की टिकिट भी आ गई है!

[10] अक्रम विज्ञान की बलिहारी

अक्रम विज्ञान एक अद्भुत विज्ञान है। विज्ञान अर्थात् अविरोधाभासी, नकद फल देने वाला, स्वयं क्रियाकारी। सभी तरफ से मेल खाता ही है। अंदर से सावधान करता है, खुद की भूलें दिखाता है, ज़बरदस्त आतंरिक परिवर्तन करवाता है। आधि-व्याधि-*उपाधि* (बाहर से आने वाला दुःख) में भी निरंतर समाधि रखवाता है। अक्रम ज्ञान प्राप्ति करने वाले को निरंतर ऐसी स्थिति में रख देता है जहाँ चिंता-*उपाधि* या टेन्शन स्पर्श नहीं करते, शंका-भय और अशांति छू नहीं सकते।

जिनके द्वारा सर्वस्व प्रकार से *पटंतर* (जब अज्ञान से मुक्ति पाकर जीव आत्मज्ञान प्राप्त करता है वह स्थिति) प्राप्त किया, उन्हें सर्वस्व समर्पण कर देना। *पटंतर* अर्थात् जात्यांतर।

अक्रम के महात्माओं को ज्ञानविधि के समय अनंत जन्मों की

अमावस्या हमेशा के लिए मात्र दो ही घंटों में चली जाती है और दूज का चंद्रमा उग जाता है। दूज में से पूनम तक का मार्ग दादाश्री की पाँच आज्ञाओं में रहकर पूरा करना है। उसमें खास तौर पर तो पाँचवीं आज्ञा के अनुसार नियमित दादाश्री का सत्संग करना है और जिनके माध्यम से अक्रम विज्ञान प्राप्त किया, उस परम निमित्त को पकड़कर, उन्हें सर्वभाव समर्पित करके, प्रत्यक्ष में उनसे मिलकर अपने प्रश्नों के समाधान पा लेने हैं। उसके बाद अक्रम में पूर्णाहुति का मात्र यही एक मार्ग रहता है।

अक्रम में कोई साधना नहीं करनी होती। वह सब क्रमिक मार्ग में है। अक्रम में आज्ञा ही धर्म और आज्ञा ही तप है। अन्य कुछ भी नहीं है।

इसकी क्या निशानी कि कोई संपूर्ण ज्ञान में है? किसी भी प्रकार के परिग्रह में वह संपूर्ण रूप से अपरिग्रही रहता है! और कोई पूर्ण रूप से ज्ञान में नहीं रह पाता तो जितने उसके परिग्रह कम होंगे उतना ही प्रगति के लिए लाभदायक है।

अक्रम में अहंकार कब सजीवन होता है? पाँच आज्ञा पालन करना छोड़ देने पर। उसके बाद चारों तरफ से कुसंग घुसकर, अहंकार को सजीवन कर देगा।

अक्रम में गिरने का भय है क्या? प्रगति कम-ज़्यादा होती रहती है लेकिन गिरते तो हैं ही नहीं।

अक्रम में फिसलने के स्थान कौन से हैं? मांसाहार, शराब-गांजा और परस्त्रीगमन (*अणहक्क* के विषय)। इनकी वजह से जो गिरेगा, उसका फिर ठिकाना नहीं रहेगा! हड्डी भी नहीं मिलेगी।

दादाश्री ने उनके खुद के ज्ञान होने से पहले की पाँच आज्ञाओं की और खुद के क्रमिक मार्ग की साधना की अच्छी बातें की हैं। दादाश्री कहते हैं, आप अज्ञानी में से महात्मा बने हो। ज्ञान प्राप्त करने के बाद, अब आज्ञा में रहकर, प्योर रहकर, साफ दानत वाला एक दिन महात्मा में से भगवान बनकर रहेगा!

अनुक्रमणिका

[1.1] आत्म जागृति

[1.2] जुदापन की जागृति

[1.3] जुदापन रखने के लिए, बातचीत का प्रयोग

[1.4] तन्मयाकार कौन? जानता है कौन?

[1.5] सीट का सिलेक्शन, स्व और पर की

[1.6] खुद अपने आपको ठपका

[1.7] डिप्रेशन के सामने जुदापन की जागृति

[2.1] ज्ञाता-द्रष्टा

[2.2] 'चंदू क्या करता है', वह 'देखते' रहो

[2.3] पुद्गल को शुद्ध करो

[3] शुद्ध उपयोग

[6.1] कर्म बंधन, नया व पुराना

[6.2] आचार सुधारने के लिए

[6.3] पहले श्रद्धा या पहले वर्तन?

[7] रियल पुरुषार्थ

[8] शुक्लध्यान

[9] एकावतारी मोक्ष, 'इस' ज्ञान से

[10] अक्रम विज्ञान की बलिहारी

आप्तवाणी
श्रेणी-12
(पूर्वार्ध)

[1.1]
आत्म जागृति

जागृति, शुद्धात्मा स्वरूप की

प्रश्नकर्ता : जागृति क्या है ?

दादाश्री : सोएँ नहीं, वह। पूरा संसार खुली आँखों सो रहा है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो खुली आँखों से नहीं सो रहा हो। प्रेसिडेन्ट, ऑफिसर्स, मंत्री, सभी खुली आँखों से सो रहे हैं। यदि जागृति आ जाए तो 'चंदूभाई' (चंदूभाई की जगह पर वाचक को खुद का नाम समझना है।) क्या कर रहे हैं, ऐसा सब 'जानता है।' शाम को विस्तारपूर्वक लिखकर भी ले आता है। लोगों को ऐसी जागृति है क्या ? जहाँ हिताहित का भान हो, उसी को जागृति कहते हैं। हिताहित का भान मनुष्यों में है ही कहाँ ?

शास्त्रकारों ने ऐसा लिखा है, तो क्या शास्त्रकारों को इन पर द्वेष था, इसलिए ऐसा लिखा ? सारा संसार, उसमें साधु-सन्यासी जो संयमी नहीं हैं, वे भी खुली आँखों से सो रहे हैं और यदि साधुओं में कोई संयमी हो तो वह जागृत कहा जाएगा। लेकिन संयम होगा कहाँ से ? शायद ही कभी कोई होते हैं, लेकिन मिलने मुश्किल हैं।

आपको खुलासा हुआ, थोड़ा-बहुत ? 'चंदूभाई' क्या कर रहे हैं, वह दिखाई नहीं देता 'आपको' ?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देता है।

दादाश्री : और 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा कितने समय तक याद रहता है?

प्रश्नकर्ता : निरंतर।

दादाश्री : शुद्धात्मा बन गए। यह निरंतर प्रतीति है!

प्रश्नकर्ता : दादा मिल चुके हों, दादा का ज्ञान मिल चुका हो तभी ऐसी जागृति उत्पन्न हो सकती है न?

दादाश्री : उसकी तो बात ही अलग है। यों तो जागृति रहनी मुश्किल है। क्योंकि इस काल में जागृति नहीं रह सकती। शायद ही कोई, अपवाद रूप से किसी को होगी! वह जन्मजात होती है, जन्मजात जागृति लेकर आया होता है। मेरे ज्ञान देने के बाद जो जागृति शुरू हो जाती है, वह फिर जाती नहीं है। कितना आश्चर्य है कि फिर जागृति जाती ही नहीं! निरंतर जागृति रहती है!

करने वाले को अलग जाना, वही जागृति !

प्रश्नकर्ता : दादा, जागृति किसे कहेंगे? उदाहरण के तौर पर क्रोध आ जाए या चिढ़ जाएँ तो वह प्रकृति की बात हुई। उसी क्षण 'मुझे' ध्यान आ जाता है कि ''चंदूभाई' ने क्रोध किया', वही जागृति कहलाती है न!

दादाश्री : वही जागृति है। 'आप' जान गए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन यदि उसमें देर हो जाए तो जागृति उतनी कम है?

दादाश्री : देर लगी अर्थात् गाढ़ कर्म का उदय है, इसीलिए देर लगी। किसी ने थूका, वह अगर हल्का हो न, तो तुरंत ही धो देते हैं और अगर *चीकणा* (गाढ़) हो तो देर लगती है। कर्म जितना *चीकणा,* जागृति उतनी ही देर से। यदि *चीकणा* नहीं हो न, तो कुछ भी नहीं

होगा। चाहे देर से आए लेकिन जागृति तो है न! जागृत है न! जागृत इंसान बोलता है कि 'अबे! कौन है?' तो चोर चले जाते हैं, लेकिन जहाँ बोले ही नहीं, वहाँ तो सबकुछ ले ही जाएँगे न!

यदि अज्ञानी से हम ऐसा कहें 'ऐसा दोष क्यों कर रहे हो?' तो बल्कि कहेगा कि, 'वह तो ऐसा है कि, यह लड़का सीधा नहीं रहता।' यदि खुद का दोष समझ में नहीं आए और औरों के ही दोष मालूम पड़ें तो, वह अज्ञानी की निशानी है। वह निरंतर बंधन में आता रहता है और उस कारण मार खाता रहता है। जबकि ज्ञानी की निशानी क्या है? ज्ञानी की कृपा कौन प्राप्त कर गया? तुरंत ही खुद के दोष दिखाई दें, जिसे ऐसी जागृति है और जिसे निरंतर यही भाव रहता है कि इसमें किस प्रकार से छूटूँ।

पहले से आखिरी स्टेशन तक का सफर

सब से पहले शुद्धात्मा, और जो परमात्मा है, वह खुद, रियल वस्तु है। वह स्टेशन अलग है और शुद्धात्मा का स्टेशन अलग है। शुद्धात्मा तो वस्तु स्वरूप का सब से पहला '*परुं*' (शहर के मुख्य स्टेशन से पहले आने वाले उस शहर के छोटे-छोटे स्टेशन) है। फिर ऐसे कितने ही '*परुं*' आते हैं, उसके बाद फिर मुख्य स्टेशन आता है। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ते जाएँगे न, वैसे-वैसे आगे के '*परुं*' आते जाएँगे, स्टेशन बदलता जाएगा। आपको इस पहले स्टेशन पर उतार दिया है, मोक्ष की बाउन्ड्री में। शुद्धात्मा पहला स्टेशन है। वहाँ से सेन्ट्रल स्टेशन की ओर जाएँगे, तब जाकर अंतिम स्टेशन आएगा।

जो यहाँ पर आ चुका है, वह जागृति में रहता है। जागृति नामक पद उत्पन्न हो जाता है। खुद, खुद के दोष देखने लगता है। सारी जागृति उदयाकार नहीं होती। उदय आए तो उसमें हर्ज नहीं है, उदयाकार होने में हर्ज है। उदय तो ज्ञानी के भी होते हैं और अज्ञानी के भी होते हैं।

प्रश्नकर्ता : कभी जब स्व और पर की जागृति रहती है, तब निर्मलता का अंश आ जाता है।

दादाश्री : वे आगे के स्टेशनों तक पहुँचने की तैयारियाँ हैं। उससे भी आगे जाना पड़ेगा। मोक्ष का असल पुरुषार्थ वहीं से शुरू होता है।

ज्ञानी पुरुष से आत्मज्ञान समझ में आ जाए तो वहीं से *परुं* शुरू हो जाते हैं। बाकी, यदि साधु कहें 'शुद्धात्मा' तो कुछ नहीं होगा। अनंत जन्मों तक गाता रहे, फिर भी कुछ नहीं होगा। शुद्धात्मा का भान हो जाना चाहिए और 'मैं चंदूभाई हूँ' वह भान छूट जाना चाहिए।

जागृति दिखाती हैं निजदोष

आप अपनी भूलों को देखते हो, इतना सब देखते हो, क्या वह जागृति कम है? मनुष्य खुद की भूल नहीं देख सकता। बड़े-बड़े साधु महाराज होते हैं न, वे खुद की तो दो-तीन भूलें ही देख पाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के बाद जागृति तो हर एक को आ जाती है।

दादाश्री : निरंतर, चौबीसों घंटे जागृति रहनी चाहिए। यदि हमारे कहे अनुसार, हमारी संपूर्ण आज्ञा के अनुसार रहे, और फिर अगर एक भी चिंता हो तो दो लाख रुपये का दावा करना, कहा है न!

प्रश्नकर्ता : किसी को यदि जागृति कम रहती है, तो क्या उसका अर्थ ऐसा हुआ कि आपकी आज्ञा का पालन करने में कमी है?

दादाश्री : आज्ञा पालन करने की जो शक्ति है न, वह तो जागृति कम रहती है इसलिए आज्ञा का पालन नहीं कर सकता बेचारा और पालन नहीं कर सकता, इसलिए उसका वैसा ही फल मिलता है। बेचारे की आज्ञा पालन करने की इच्छा तो बहुत है, लेकिन जागृति क्यों कम रहती है? इसलिए, क्योंकि कुछ ऐसे कर्म बाँधे हुए हैं कि जिनके लिए तीन घंटों तक खड़े (विचारों में तन्मयता) रहना पड़ता है एक ही जगह पर और जो सीधे लोग हैं न, वे तो एक विचार आते ही दस-पंद्रह मिनट में उसका हल ला देते हैं। उन्हें यह ज्ञान हाज़िर रहता है पूरी तरह से, कम्प्लीट। लेकिन कोई व्यक्ति तो घंटों तक उसी में

खो जाता है। अर्थात् इस ज्ञान में वहाँ पर गड़बड़ हो जाती है। फिर भी यह ज्ञान उसकी हेल्प करेगा। क्योंकि यह *निकाली* बात है न! *निकाल* (निपटारा) होते-होते *चीकणा* माल खत्म हो जाएगा और फिर बाद में वह अच्छा माल आएगा।

जागृति, नहीं है वह इफेक्ट

प्रश्नकर्ता : क्या जागृति इफेक्ट है?

दादाश्री : जागृति को इफेक्ट नहीं कह सकते। जागृति, वह अपना पुरुषार्थ ही है। इसलिए उसे इफेक्ट नहीं कह सकते, और वह किसी पर डिपेन्डेन्ट नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह से उत्पन्न होती है?

दादाश्री : हमारे ज्ञान देने के बाद यदि आज्ञा में रहे तो जागृति उत्पन्न होती है। आज्ञा पालन से जागृति उत्पन्न होती है। यह जागृति तो रहती ही है, लेकिन आज्ञा में नहीं रहने से ऐसा असर होता रहता है। जिससे वह जागृति चली जाती है।

जागृति इफेक्ट नहीं है। यह जागृति, यही आत्मा है। संपूर्ण जागृति, वही फुल आत्मा। जितनी जागृति, उतना आत्मा और जितनी अजागृति, उतना *पुद्गल* (अहंकार)!

प्रश्नकर्ता : ऐसा भय नहीं रहता कि इसमें फँस जाएँगे लेकिन मन में ऐसा होता है कि अभी तक एन्ड नहीं आया।

दादाश्री : अभी तो एन्ड आएगा ही नहीं। एन्ड तो बहुत दिनों बाद आएगा। और जब एन्ड आएगा, तब मन में भाव भी नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : इफेक्ट न हो ऐसा हो जाए तो अच्छा, ऐसा रहता है बस!

दादाश्री : इफेक्ट तो होता ही रहेगा, माल भरा हुआ है तो इफेक्ट तो होगा न! और इफेक्ट होगा तभी जागृति रहेगी, वर्ना जागृति नहीं रहेगी।

प्रश्नकर्ता : छूटने के लिए बात बताई, वहाँ तक यह इक्वेशन (समीकरण) ठीक है, लेकिन स्वसत्ता किसमें है?

दादाश्री : जो भूलें होती हैं, उन पर जो जागृति रहती है और सचेत करती है, वह स्वसत्ता है।

प्रश्नकर्ता : उस स्वसत्ता का अनुभव करवाइए न?

दादाश्री : अभी नहीं हो पाएगा। बेहिसाब उधार है। उधार चुकाए बिना सत्ता उत्पन्न नहीं हो सकती न! सारा उधार चुक जाने के बाद स्वसत्ता उत्पन्न होगी। कहीं भी परसत्ता में नहीं घुसे तो वहीं पर स्वसत्ता है।

ज्ञान हाज़िर, वही जागृति

वीतरागता तक की जागृति रहनी चाहिए। जागृति मन को कहीं चिपकने ही नहीं देती, बुद्धि को चिपकने नहीं देती, किसी को भी चिपकने ही नहीं देती किसी भी जगह पर, जबकि अजागृति से चिपक जाता है।

प्रश्नकर्ता : जागृति तो आत्मा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए ही है न?

दादाश्री : नहीं, लक्ष्य तो मिल चुका है। जागृति अर्थात् इन पाँच वाक्यों द्वारा तुरंत ही जागृत हो जाए, यानी कि ज्ञान हाज़िर हो जाए। जिसे हर एक बात में ज्ञान हाज़िर हो जाता है, वही जागृति कहलाती है। जब आप पद गा रहे हों, तो हर बार उस पद का एक-एक शब्द दिखाई दे, तब जानना कि यह जागृति है। यह जो हम बुलवाते हैं, सीमंधर स्वामी को नमस्कार, उस क्षण हमारी जागृति उसी अनुसार करती है। उस जागृति को बढ़ाना है। ऐसे करते-करते बढ़ती जाएगी। थोड़ी आज बढ़ेगी, थोड़ी कल बढ़ेगी। ऐसे करते-करते संपूर्ण जागृति बढ़ जाएगी। जागृति ही लानी है। संपूर्ण जागृति ही केवलज्ञान है। जागृति से खुद के सभी दोष दिखाई देते हैं। जगत् जागृत है ही

नहीं और खुली आँखों से निद्रा में घूम रहा है। सामने वाले के दोष निकालने को जागृति नहीं कहते। वैसा तो अज्ञानी में बहुत रहता है। सामने वाले के बिल्कुल भी दोष नहीं दिखने चाहिए। खुद के दोष देखने से फुरसत ही नहीं मिले, वही जागृति कहलाती है।

दादा की जागृति की झलक

जागृति किसे कहते हैं? हमें कृष्ण भगवान का नाम लेते ही उनका जो चित्र देखा है, वह याद आता है। चित्र भी दिखाई देता है और कृष्ण भगवान मूल स्वरूप में भी दिखाई देते हैं, ऐसी जागृति रहती है। महावीर भगवान का नाम लो, तो भगवान महावीर भी दिखाई देते हैं और शब्द भी बोले जाते हैं, उसे जागृति कहते हैं। यह तो, जब शब्द बोलते हैं उस क्षण शब्द में जागता है परंतु उसके मूल में नहीं जागता। हम जो एक-एक शब्द बोलते हैं, उस शब्द में, हम उसमें जागृत ही होते हैं। जागृति ऐसी होनी चाहिए। सीमंधर स्वामी शब्द बोलते ही हमें फोटो-वगैरह सब दिखाई देता है, मूल स्वरूप भी दिखाई देता है, सभी प्रकार की जागृति रहती है। जागृति निरंतर रहती है, उसी से अंत में पूर्णाहुति होती है। संसार अर्थात् अजागृति। भगवान बंद आँखों से जागते थे, हम भी बंद आखों से जागते हैं।

प्रश्नकर्ता : किसी की बात ऐसी होती है कि हँसी आ जाती है, यह किस तरह का उपयोग है दादा? आपका कैसा उपयोग रहता है?

दादाश्री : हमें हँसी नहीं आती। मुझे तो हँसी ही नहीं आती न! कभी भी हँसा ही नहीं। और हमें यदि कभी आ भी जाए, तब भी उपयोग रहता है। हम चूकते नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : किस प्रकार का उपयोग रहता है आपका?

दादाश्री : भला, उसका कैसा तरीका? जागृति ही पूरी! संपूर्ण! दीया संपूर्ण रूप से जलता ही रहता हो तो उसमें तरीका कैसा! उसका तरीका होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : कैसी जागृति रहती है?

दादाश्री : दीया जलता रहे, ऐसा रखते हैं हम। अरे! लाइट जलती ही रहती है। निरंतर दीया प्रज्वलित रहता है फिर। रात-दिन तीर्थंकरों को जो निजदोष दिखाई देते हैं, उसी कक्षा के दोष हमें दिखाई देते हैं। दुनिया तो वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकती कभी भी, लेकिन ऐसे (सूक्ष्मतम) दोष दिखाई देते हैं। तीर्थंकरों को जो दिखाई देते हैं, वे।

प्रश्नकर्ता : सभी के?

दादाश्री : नहीं-नहीं। हमारे ही। सभी के दोषों का मुझे क्या करना है? हम तो दूसरे किसी के दोष ही नहीं देखते। दिखाई ज़रूर देते हैं लेकिन दोषित नहीं देखते। हम तो निर्दोष ही देखते हैं। दोष देखते ही निर्दोष देख लेते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि महात्मा से भूल हो रही हो तो दादा को कहना चाहिए न कि यह भूल हो रही है?

दादाश्री : नहीं-नहीं। मुझे क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : पूछने पर नहीं कहना चाहिए?

दादाश्री : वे तो खुद को ही ढूँढ निकालने हैं। हम ऐसा कुछ नहीं कहते। हमारा कहा हुआ तो, फिर क्या होगा कि वह तो थ्योरी में चला जाएगा। ऐसा तो हम कहते ही नहीं हैं न!

प्रश्नकर्ता : यदि खुद देखे तो प्रैक्टिकल में आ गया, कहा जाएगा?

दादाश्री : वह प्रैक्टिकल। प्रैक्टिकल में आए न, वही सही है। अर्थात् हम किसी के दोष नहीं बताते कि आपके इतने दोष हैं, सुधारना। ऐसा सब नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : हमें सहज रूप से, कभी ऐसे नैमित्तिक रूप से टोक देते हैं।

दादाश्री : वह तो सहज रूप से हो जाता है किसी के साथ। कोई बहुत नज़दीकी हो न, तो उनके साथ ऐसा हो जाता है। वर्ना तो नहीं होता हम से। क्योंकि उसे खुद को दिखाई दे तभी काम का है। वर्ना यदि मैं कहूँ न, तो वह उल्टा उसके पास पड़ा रहेगा एक तरफ और उसी में ध्यान रहेगा। वह क्या काम आएगा? यदि विधियाँ करे, सेवा करे तो फिर जागृति बढ़ती जाएगी भीतर!

प्रश्नकर्ता : आपको तो हर एक बात में कम्प्लीट जागृति रहती है।

दादाश्री : देखो, मुझे इस संसार के बारे में बिल्कुल भी जागृति नहीं रहती। आज क्या 'वार' है, उसकी भी जागृति नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : दादा आप कहते हैं कि 'इसमें मुझे जागृति नहीं रहती' लेकिन यह बात सेट नहीं होती।

दादाश्री : कैसे सेट होगी?

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञान है इसीलिए सब चीजें उनके *लक्ष* (जागृति) में रहती हैं लेकिन उनके प्रति उपेक्षा रहती है?

दादाश्री : नहीं। उनकी स्मृति नहीं रहती। स्मृति नहीं रहे तो उपयोग नहीं रहता। इसलिए दखल नहीं रहता। वहाँ पर आत्मा की वृत्ति ही नहीं रहती न उस तरफ की। देह के साथ काम की बातें करते हैं, बाकी सब करते हैं। स्थिरता पूर्वक जागृति रखते हैं, स्मृति नहीं।

जिनका निरंतर 'केवल' में ही मुकाम है, वे अन्य किसमें हो सकते हैं? निरंतर 'केवल' में ही मुकाम है, एब्सल्यूट (परम स्थिति) में! इसीलिए तो हमने कहा, आप पूछ रहे थे न कि, '(यदि) हम आपको तीर्थंकर कहें तो उसमें क्या हर्ज है?' नहीं, यदि तीर्थंकर कहोगे तो यह काल खुद विरोध करेगा। अभी तो यही फुल स्टेज है, इसलिए ऐसा कहा है न! अब यह भीतर जो फुल स्टेज है, उसे 'दादा भगवान' कहते हैं। बाहर 356 डिग्री हुआ और भीतर फुल स्टेज में हैं।

अपूर्ण, फिर भी निरंतर जागृति!

जिस काल में जो माफिक आए, वही सिद्धांत काम आता है। वह सिद्धांत काम नहीं आया और यह मार्ग इतना कल्याणकारी है। वर्ना ऐसा है कि करोड़ों जन्मों तक भी मोक्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता। और आपको तो फिर चेतावनी देता है कि 'यह गलत हो रहा है'। वह मोक्ष में ले जाने के प्रयत्न करता है। और भीतर जो जागृति है, वही आत्मा है, आत्मा और कुछ भी नहीं है। जो आपको जागृत करे, भीतर वैसी जागृति उत्पन्न हो गई, वह सब से बड़ा आश्चर्य है।

निरंतर जागृति रहनी चाहिए। यदि एक सेकन्ड भी अजागृति रहे तो नहीं चलेगा। संपूर्ण जागृति नहीं रह पाएगी लेकिन कुछ अंश तक निरंतर रहती है! संपूर्ण जागृति होने पर वह केवलज्ञान कहलाता है। संपूर्ण और निरंतर! यह अपूर्ण और निरंतर, ऐसी जागृति शुरू हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : अपूर्ण और निरंतर जागृति, वह नहीं समझ पाया।

दादाश्री : यानी कि केवलज्ञान नहीं। यदि पूर्ण होती तो केवलज्ञान कहलाता। अतः आपको अब पुरुषार्थ करना बाकी रहा, आप पुरुष बने, इसलिए, तो अब आप पुरुषार्थ करो। आप जितना आज्ञा पालन करोगे, अंदर उतनी ही जागृति बढ़ती जाएगी, पूर्णता आती जाएगी। जागृति जहाँ तक पहुँची, उतना आत्मा के नज़दीक पहुँचे। जितना नज़दीक पहुँचे, उतना ही अधिक उजाला, उतना प्रकाश होता जाएगा।

प्रज्ञा और जागृति की जुगल जोड़ी

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञाशक्ति और जागृति में कोई फर्क है?

दादाश्री : जागृति जब फुल (पूर्ण) हो जाती है न, अर्थात् प्योर होते-होते जब फुल हो जाती है, तब केवलज्ञान कहलाता है। फिर प्रज्ञाशक्ति खत्म हो जाती है। प्रज्ञाशक्ति हमें मोक्ष में जाने तक हेल्प करती है। आत्मा तो निरंतर केवलज्ञान ही है। उजाले को कुछ भी स्पर्श नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : अब, मोक्ष में पहुँचने के बाद जागृति कोई काम करती है क्या?

दादाश्री : नहीं, उसके बाद जागृति है ही नहीं। वहाँ पर तो प्रकाश ही! खुद ही है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अंत तक जागृति और प्रज्ञाशक्ति रहती है?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञाशक्ति और जागृति, दोनों साथ में चलते हैं। प्रज्ञाशक्ति उसे समझाती रहती है और जागृति उसे पकड़ लेती है।

इस प्रकार, मुख्य है जागृति ही!

प्रश्नकर्ता : जागृति से उपयोग रहता है या उपयोग से जागृति रहती है?

दादाश्री : नहीं! जागृति से उपयोग रहता है और उपयोग रहे तो फिर से जागृति उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : यह तो मुर्गी में से अंडा और अंडे में से मुर्गी?

दादाश्री : नहीं, लेकिन उपयोग ऐसी चीज़ नहीं है। जागृति ही मुख्य चीज़ है और वह जागृति संपूर्ण हो जाए तो उसी को केवलज्ञान कहते हैं। अन्य कुछ भी नहीं है। उपयोग तो जागृति का परिणाम है। शुद्ध उपयोग जागृति का परिणाम है और शुभ उपयोग भी जागृति का परिणाम है। लेकिन वह भ्रांति वाली जागृति है और यह ज्ञान जागृति है।

जागृति को टॉप पर ले जाना ही अपना धर्म है। उसी को शुद्ध उपयोग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : जागृति है, उससे हमें दिखाई देता है कि इतने अंतराय हैं। इससे ज़्यादा नहीं दौड़ सकते। अत: जहाँ-जहाँ पर सूक्ष्मता से पहुँचने जाते हैं, वहाँ-वहाँ पर पूरा आवृत होता हुआ दिखाई देता है, जैसे कि बीच में दीवार आ गई हो। अब आगे नहीं जा पाते उस एनालिसिस (विश्लेषण) में, तो दोषों के प्रतिक्रमण करते हैं और जो

असर होता है उसका पता चलता है, खुद अलग रहता है, लेकिन जिस सूक्ष्मता से वे निर्मूल होने चाहिए, उस प्रकार से हो नहीं पाते।

दादाश्री : उसमें टाइम लगेगा। यानी सारी सूक्ष्मता ही आएगी लेकिन अभी तो सूक्ष्मता से भी बहुत आगे जाना है। उन सभी किलों को पार करने के बाद आत्मा स्वसंवेदन में आएगा।

प्रश्नकर्ता : वही स्पष्ट वेदन कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन स्पष्ट वेदन होने से पहले खुद को स्वसंवेदन का पता चलता है। जब स्वसंवेदन बढ़ता जाएगा न, तब हम समझ जाएँगे कि यह बढ़-बढ़कर कहाँ तक जाएगा? तब कहते हैं, 'स्पष्ट वेदन तक'। लेकिन धीरे-धीरे जागृति बढ़ जाएगी, तब।

संपूर्ण जागृति ही केवलज्ञान है और केवलज्ञान खुद ही परमात्मा है और उस परमात्मा से हम खुद बातचीत करते हैं निरंतर। और आप हमारे साथ बैठे हो, फिर दुःख रहेगा किसी को? खुद परमात्मा कभी भी प्रकट नहीं होते, चौबीस तीर्थंकरों के अलावा अन्य कहीं खुद परमात्मा प्रकट नहीं हुए हैं!

नहीं पचा किसी को केवलज्ञान इस काल में !

इस ज्ञान का अर्थ क्या है? जागृति। शुद्धात्मा अन्य कोई चीज़ नहीं है, जागृति ही है। अब, जब जागृति बढ़ती है, तब वह जागृति अंदर हमें दुःख उत्पन्न नहीं होने देती। अंदर हमें अहंकार खड़ा नहीं होने देती, ऐसा कुछ भी नहीं होने देती; फिर और क्या चाहिए? फिर तो इन चंदूभाई का नाटक देखना है, ड्रामा देखना है।

जागृति बढ़नी चाहिए। केवलज्ञान अर्थात् संपूर्ण जागृति, एक अंश भी अजागृति नहीं। और यह विज्ञान, यही केवलज्ञान है। सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा रहने का ही साइन्स है पूरा। मैंने आपको केवलज्ञान दिया है लेकिन पचता नहीं है यह ज्ञान, इसलिए आपको कुछ अंश तक कम रहेगा। मुझे चार अंश कम रहता है, तो आपको उससे कुछ और अंशों तक

कम रहेगा। नहीं पचता तो उसमें हर्ज क्या है? अपना ज्ञान ऐसा नहीं है कि किसी को परेशानी हो।

यह ज्ञान मिला और आप आज्ञा पालन करते हो, तभी से केवलज्ञान के अंश बढ़ने की शुरुआत हो जाती है। केवलज्ञान की 360 डिग्री पूरी होने पर केवलज्ञान होता है। मेरा 356 डिग्री तक रहा। आपके अंश भी बढ़ते-बढ़ते 356 डिग्री तक पहुँचेंगे न? इस ध्यान में रहोगे तो वह केवलज्ञान का कारण है। केवलज्ञान, वही मोक्ष है। मोक्ष, वही केवलज्ञान है। यही मोक्ष का कारण है। प्रत्यक्ष मोक्ष का और दादा जैसी दशा में आ पाएँ, वही न! चढ़ना शुरू कर दिया है, यानी कि जिस रास्ते मैं चढ़ा, उसी रास्ते आप चढ़ोगे तो जहाँ पर मैं खड़ा हूँ, वहीं पर आप आकर खड़े रहोगे। मेरे लिए आगे का रास्ता बंद है। आपका रास्ता खुला है।

बढ़ती है जागृति ऐसे

प्रश्नकर्ता : जागृति किस तरह बढ़ती है?

दादाश्री : अब ज्ञान देने के बाद जागृत होते हैं। उसके बाद जितना पाँच आज्ञा का पालन करेगा, उतनी ही उसकी जागृति बढ़ती जाएगी। और जागृति से उन आज्ञाओं का पालन भी किया जा सकेगा और उससे जागृति वापस बढ़ती भी जाएगी। अन्य कोई उपाय नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन इस तरह ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहने के लिए जागृति बढ़ेगी, ऐसा है? उसके लिए कुछ करना है?

दादाश्री : जागृति तो बढ़ ही जाएगी। दादा का ज्ञान ले, पाँच आज्ञा का पालन करे तो निरी जागृति ही है।

प्रश्नकर्ता : पाँच आज्ञा का और भी अच्छी तरह से पालन करने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, उससे बढ़ता जाएगा सब। दादा के आशीर्वाद

लिए, उससे बढ़ेगा। जैसे-जैसे आशीर्वाद लेंगे, दर्शन करेंगे, विधि करेंगे तो बढ़ता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जागृति बढ़ाने के लिए प्रतिक्रमण का हथियार अधिक काम आएगा न?

दादाश्री : हाँ, उस हथियार का उपयोग तो करना ही है न! प्रतिक्रमण से क्या होगा कि सिर्फ जागृति बढ़ेगी इतना ही नहीं, और भी बहुत लाभ होंगे।

जागृत का सानिध्य बढ़ाए जागृति

प्रश्नकर्ता : जागृति बढ़ रही है, लेकिन बहुत बढ़ानी हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : जिसे जागृति बढ़ानी हो, उसे जागृत के साथ में बैठना चाहिए। ऐसा है न, सभी झोंके खा रहे हों तो हमें भी झोंके आने लगते हैं। सभी जागृत लोग साथ में हों तो जो झोंके आ रहे हों, वे भी बंद हो जाते हैं। इसलिए जागृत के साथ बैठना चाहिए। अभी जो राग है, बहुत हुआ तो वह ज्ञानी के प्रति होता है या ज्ञानी के फॉलोअर्स के प्रति होता है, लेकिन बाहर तो कहीं नहीं होता न?

प्रश्नकर्ता : अन्य कोई राग नहीं होता।

दादाश्री : तो इस राग को तो प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण कहा गया है। उस राग से तो हमें उनके पास बैठने के संयोग मिलते हैं और उसके फलस्वरूप हम में जागृति उत्पन्न हो जाती है। दीया एकदम से प्रज्वलित हो जाता है। स्टेशन पर प्लेटफॉर्म पर सब बैठे होते हैं न, अपने साथ में बैठे सभी लोग झोंके खा रहे हों तो फिर आप भी सत्संग करते-करते भी झोंके खाने लगते हो। अत: जिनके साथ बैठते हैं, वैसा ही फल मिलता है। सोए हुए व्यक्ति के साथ में बैठने से नींद का और जागृत व्यक्ति के साथ बैठने से जागृति का फल मिलता है। व्यापार के लिए जाता है, तब फिर उन्हीं लोगों के साथ बैठना पड़ता है न?

प्रश्नकर्ता : बैठना पड़ता है। तो उससे अजागृति आ जाती है न?

दादाश्री : हाँ, आती है न! स्वाभाविक रूप से आ जाती है। यदि उसे उस समय जानता रहे न, तो वह भी एक प्रकार की जागृति है। इससे अजागृति उत्पन्न हुई है, ऐसा जाने, तो वह भी एक जागृति है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, इस जागृति को रोकने वाले कारण पहले वाले हैं या अभी वाले भी कोई कारण है?

दादाश्री : पिछले तो सभी कारण अजागृति वाले ही थे। अभी जो ज्ञान दिया है उसके बाद के कारण, यदि आज्ञा में रहे तो उतनी ही उच्च प्रकार की जागृति रहेगी।

प्रश्नकर्ता : तो अभी जागृति को रोकने वाले कारण कौन से हैं?

दादाश्री : मेरे साथ ज़्यादा परिचय में नहीं आ पाए, मेरी बात पूरी समझ में नहीं आए।

प्रश्नकर्ता : आपकी बात को कोई पूर्ण रूप से समझ सकता है क्या?

दादाश्री : क्यों नहीं समझ सकता? परिचय में रहे और उसने खुद ने तय किया हो कि समझना है तो फिर क्यों नहीं समझ सकेगा?

प्रश्नकर्ता : तय करने के बावजूद भी अभी तक समझ में नहीं आता, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : परिचय नहीं है। वह खुद का संपर्क तोड़ देता है। आज दो घंटे बैठा और फिर कच्चा रह जाता है और दूसरे दिन वापस दो घंटे बेकार जाते हैं। इसके बजाय लंबे समय तक अखंड बैठा रहे न तो हल आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो फिर बाहरी संयोगों के अधीन है न? आपके संपर्क में रहने का निश्चय हो...

दादाश्री : वह ठीक है। इसीलिए हम कहते हैं न, 'व्यवस्थित है'। ऐसे संयोग मिलने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा निश्चय है इसलिए आगे ज़रूर मिलेगा? ऐसा निश्चय है इसलिए व्यवस्थित बदलेगा?

दादाश्री : वह तो बदलेगा न! व्यवस्थित बदलता ही रहता है। जैसा अपना निश्चय होगा न, व्यवस्थित उसी तरफ जाएगा। अपना निश्चय जिस दिशा में होगा, व्यवस्थित को उसी दिशा में जाना पड़ेगा। व्यवस्थित का नियम ऐसा है कि 'तेरा निश्चय किस तरफ का है?'

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर पहले के निश्चय तो बाधक नहीं होंगे न?

दादाश्री : पहले के निश्चय से तो यहाँ लेना-देना नहीं है। आज क्या निश्चय है! लेकिन वह निश्चय विरोधाभासी नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रकृति के सामने सभी लाचार होते हैं।

दादाश्री : सिर्फ असामान्य पुरुष ही प्रकृति के सामने लाचार नहीं होते। बाकी सभी प्रकृति के सामने लाचार!

जागृति दैनिक जीवन में

प्रश्नकर्ता : अब, दैनिक जीवन में जागृति कैसे आ सकती है?

दादाश्री : व्यवहार में क्लियर (शुद्ध) रहे, तो जागृति आएगी। जिस व्यवहार पर लोग उँगली उठाएँ, उस व्यवहार में जागृति नहीं आ सकती। आप व्यापारी हो और फिर एक दिन तीन बजे दुकान खोलो, एक दिन पाँच बजे खोलो तो आप में जागृति नहीं आएगी और आपका व्यवहार बिगड़ा हुआ कहा जाएगा। व्यवहार पर उँगली उठाने वाले नहीं होने चाहिए। तेरे पीछे उँगली उठाते हैं लोग?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : अतः इस व्यवहार में तू व्यावहारिक बन जा। यदि कोई उँगली नहीं उठाएगा तो अच्छी जागृति आएगी।

प्रश्नकर्ता : नहीं। लेकिन ज्ञाता-द्रष्टा बनने के बाद भी व्यवहार तो रखना चाहिए न?

दादाश्री : व्यवहार तो रहेगा। वह अपने आप होता ही रहेगा। ज्ञाता-द्रष्टा रहने में भी व्यवहार तो रहता ही है। ज्ञाता-द्रष्टा बन जाने पर निश्चय, निश्चय में आ जाता है। तब व्यवहार, व्यवहार में आ जाता है लेकिन ज़्यादातर तो ध्यान रहता ही है। क्योंकि वह ध्यान आत्मा को नहीं रखना पड़ता, वह चित्त का है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ऐसा क्यों होता होगा कि कईबार जागृति रहती है लेकिन फिर कहीं पर व्यवहार के काम-काज करने हों तो उसमें भूल हो जाती है।

दादाश्री : लेकिन वहाँ पर भी व्यवहार का काम रेग्युलर होना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे टूट क्यों जाता है?

दादाश्री : वह तो, यदि सेट करेंगे तो जागृति रहेगी ही। आपको चंदूभाई से कहना है कि भाई व्यवहार नहीं बिगाड़ना चाहिए, साफ रहना चाहिए। व्यवहार में कोई शिकायत नहीं आनी चाहिए।

कचरा जलने से बढ़ती है जागृति

प्रश्नकर्ता : फिर उस जागृति को बढ़ाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता?

दादाश्री : कुछ नहीं करना पड़ता और जैसे-जैसे फाइलें कम होती जाती हैं, वैसे-वैसे जागृति बढ़ती जाती है। आपकी जागृति बढ़ती जाएगी क्योंकि पुराना कचरा निकल जाएगा न, इसलिए। बाकी, इन्हें तो अपने आप ही, उसी दिन जागृति हो गई थी न! उसके बाद से इन्हें जागृति रहती है, निरंतर। आपकी जागृति तो, पुराना कचरा जलने के बाद बढ़ेगी।

प्रश्नकर्ता : वह कार्य कारण संबंध है न?

दादाश्री : हाँ, वह संबंध है न! वह कचरा सब जला देना पड़ेगा न? फिर वह कचरा आपको किसी तरह का नुकसान नहीं करेगा। कचरा रहा ही नहीं न फिर। सचमुच में लाइफ जीना तभी सही लगेगा न? यह तो, लाइफ पूरी बिगड़ जाती है!

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा बनने के बाद, इस *पुद्गल* की परिणति में जो परिवर्तन होता है, वह किस कारण से दिखाई देता है?

दादाश्री : जागृति बढ़ने से।

प्रश्नकर्ता : वह जागृति किसकी बढ़ी? आत्मा की बढ़ी न?

दादाश्री : वह आत्मा की नहीं है। जो सोता है, जिसे भ्रांति है, उसकी बढ़ी है।

ज्ञानी के सानिध्य से खिले जागृति

यहाँ पर यदि लोग शोर-शराबा कर रहे हों तो यहाँ की बात सुनाई नहीं देगी न हमें? वैसा ही है यह सब। भीतर कर्म का उदय आए, उस समय अंदर यों घुटन होती है। उसमें हर्ज नहीं है, वह नुकसान दायक नहीं है। उस समय कहीं जागृति चली नहीं गई है। जागृति रहती ही है। यह जागृति पूरी तरह से नहीं रहती, झोंका खा जाता है।

मैंने कहा, यह जागृति है लेकिन खिली नहीं है। इसलिए हम इस तरह बातें करते रहते हैं ताकि खिले। इस साइड से खिलती है, उस साइड से खिलती है। इस कोर्नर से खिलती है, उस कोर्नर से खिलती है, यानी जागृति पूरी तरह से खिलती है। इसलिए हम बातें करते हैं, करने को नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : जागृति का जो क्रम है, उसी अनुसार जागृति रहती है, उस जागृति को बढ़ाने का कोई रास्ता है क्या?

दादाश्री : हाँ। हमारे पास बैठे रहने से जागृति बढ़ती है। इसलिए लोग रोज़ आते रहते हैं न! वर्ना एक ही दिन में नहीं कर दूँ? अच्छे काल में तो एक ही बार बात करनी होती थी। ये तो कितनी अधिक उधारी वाले! हाँ, अत्यंत उधारी वाले। दिवालिया सीट पर बैठे हुए हैं। रोज़-रोज़ विधि करता हूँ फिर भी उधार खत्म नहीं होता। लेकिन फिर भी ऐसे करते-करते खत्म हो जाएगा।

जो हाज़िर हुआ वही ज्ञान

प्रश्नकर्ता : यों सतत जागृति नहीं रहती, लेकिन समय आने पर ज्ञान हाज़िर हो जाता है।

दादाश्री : हाज़िर हो जाता है। जो हमेशा हाज़िर हो जाए, वही ज्ञान कहलाता है। जो हाज़िर नहीं हो, वह ज्ञान कहा ही कैसे जाएगा?

प्रश्नकर्ता : आप हमें, आत्मा और बाकी सब अलग कर देते हैं, फिर हमें आत्मा में ही रहना चाहिए न? फिर सारा मिक्स्चर क्यों हो जाता है?

दादाश्री : ऐसा है न, इस *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख) को 'देखना' है, *उपाधि* में यदि तू हाथ डालेगा तो जल जाएगा। होली देखने से अपनी आँखें कहीं जल नहीं जातीं। लेकिन यदि उसमें से नारियल निकालने के लिए हाथ डालें तो जल जाएँगे। तू नारियल निकालने के लिए हाथ डाल रहा था, उससे यह हो गया। इसीलिए मैंने कहा है कि, अब जब अगली बार ज्ञान दूँ तब समझदारी से संभालकर रखना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम अलग (आत्मा-अनात्मा का जुदा होना) होने के बाद वापस नारियल लेने जाते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ। ये चले जाते हैं यानी कि अभी तक आपकी जो जागृति है, उस जागृति को धक्का मारकर आप उसमें घुस जाते हो, क्योंकि कर्म के उदय भारी हैं। यानी इंसान कब तक यह झेल सकेगा?

उँगली पर यदि नल का पानी गिर रहा हो तो कब तक ऐसे उँगली रख सकेगा? तो कहते हैं, 'आधा इंच या पौन इंच हो, तब तक, लेकिन यदि दो इंच का फोर्स आए तो उँगली खिसक जाती है। उसी तरह ये कर्म के उदय इतने भारी हैं न कि जागृति खिसक जाती है। कॉलेज से डिग्री लेने में कितने साल लगे थे?

प्रश्नकर्ता : छः।

दादाश्री : मुझे इतने सालों की ज़रूरत नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि छः ही महीने आप मेरे साथ रहोगे न, तो बहुत हो गया! अनंत जन्मों के पूरे नुकसान की सारी भरपाई हो जाएगी।

जागृति का जन्म होता है कड़वाहट में से...

इनका तो, रात-दिन किसी को दुःख नहीं हो और किसी को कुछ भी न हो, उसी में पूरा चित्त रहता है। जिसका चित्त पूरे दिन सेवा-परोपकार में ही रहता है, उसे ठंडक रहती है। अतः उन्हें इस ज्ञान की जागृति कम रहती है। इसके बजाय बिगड़े हुए लोगों को है न, उनमें यह जागृति बहुत बढ़ जाती है, क्योंकि उन्हें दुःख बहुत रहता है न, इसलिए ठंडक बहुत हो जाती है इसलिए ज़बरदस्त श्रद्धा बैठ जाती है। फिर उस अनुसार सभी कुछ ज़बरदस्त करते हैं। ऐसा कैल्कुलेशन है यह सारा!

अच्छा करने वाले को ठंडक रहती है। हम जब यह ज्ञान देते हैं न, उससे जो ठंडक होती है न, उस खराब वाले को जो ठंडक होती है, वह और ही प्रकार की होती है। बहुत उच्च प्रकार की। उसकी जागृति उसी दिन पक्की हो जाती है। इनकी (अच्छे लोगों की) जागृति मंद रहती है!

उन्हें यदि कोई हराने वाला मिल जाए, 'आप में अक्ल नहीं है', ऐसे दो-चार शब्द बोले न, तो तुरंत ही 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा जागृत हो जाता है। सभी लोग 'आइए, आइए, आइए' कहें तो फिर जागृति नहीं आती। दिन में दो-चार बार कड़वाहट मिले तो जागृति रहती है।

एक छोटे से छोटी बात, ठंडे पानी में भिगोए हुए कपड़ों में सनलाइट (साबुन) डाले और गरम पानी में भिगोए हुए कपड़ों में सनलाइट (साबुन) डालो तो इन दोनों में फर्क पड़ जाता है न, तो इसमें तो कितना अधिक फर्क पड़ जाएगा!

जागृति और पुण्य

प्रश्नकर्ता : क्या जागृति पुण्य पर आधारित है? जागृति और पुण्य का संबंध है?

दादाश्री : पुण्य तो हर कहीं रहता ही है। संयोग मिलने में भी पुण्य तो रहता ही है, लेकिन अपना निश्चय होना चाहिए कि मुझे जागृति रखनी ही है या पुरुषार्थ करना ही है।

प्रश्नकर्ता : अनुकूलता में यह सब ठंडा पड़ जाता है और प्रतिकूलता में जागृति अधिक रहती है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : अनुकूलता में तो ऐसा है न, उसे मीठा लगता है न! ठंडी हवा आ रही हो तो एक घंटा बीत जाता है और यदि बहुत गर्मी हो तो एक घंटा निकालना कितना मुश्किल लगता है! जबकि ठंडक में एक घंटा आसानी से बीत जाता है। उसी तरह खाना यदि अच्छा हो तो जल्दी से खा लेते हैं और सख्त भूख लगी हो लेकिन खाना इतना अच्छा नहीं हो तो फिर जबरन खाना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रतिकूलता में जागृति ज़्यादा क्यों रहती है?

दादाश्री : प्रतिकूलता आत्मा का विटामिन है और अनुकूलता देह का विटामिन है। अनुकूल संयोगों से शरीर अच्छा रहता है। प्रतिकूल संयोगों में आत्मा अच्छा रहता है। ये सभी संयोग फायदेमंद हैं। यदि समझना हो तो सभी संयोग फायदेमंद हैं।

अनुकूल और प्रतिकूल सभी कुछ बाह्य भाग का ही है। बाहर का जो भाग है न, वही बरतता है, आत्मा नहीं बरतता। जब प्रतिकूल हो तब बाह्य भाग एबसेन्ट हो जाता है, तब आत्मा हाज़िर हो जाता

है। अनुकूलता में बाह्य भाग प्रेज़न्ट रहता ही है। इसलिए हमें यदि आत्मा को प्रेज़न्ट रखना हो तो उसके लिए प्रतिकूलता अच्छी है और देह को प्रेज़न्ट रखना हो तो अनुकूलता अच्छी है।

हमें यदि आत्मा होना हो तो प्रतिकूलता लाभदायक है और आत्मा नहीं होना हो तो अनुकूलता लाभदायक है। जागृति के मार्ग पर चले तो प्रतिकूलता फायदेमंद है और अभानता के मार्ग पर अनुकूलता फायदेमंद है।

प्रश्नकर्ता : यदि अनुकूलता में भी जागृति रहे तो अधिक फायदा है न?

दादाश्री : पूरी तरह से नहीं रह सकती। इसलिए हम तो, यदि नहीं हो फिर भी प्रतिकूल कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : अनुकूल और प्रतिकूल तो मान्यता पर आधारित हैं न? या यों स्वाभाविक ही हैं?

दादाश्री : है एक्ज़ेक्ट। लेकिन जब तक मन है, तब तक रहेंगी ही न! जब तक मन का आधार है, तब तक रहेंगी ही।

प्रश्नकर्ता : इस देह को भी सब अनुकूल और प्रतिकूल लगता ही है न?

दादाश्री : वास्तव में देह को नहीं लगता। मन का है।

प्रश्नकर्ता : गर्मी लगने पर एकदम बेचैनी हो जाए तो यह गर्मी देह को लगती है या मन को?

दादाश्री : मन को। देह को कुछ नहीं लगता। बुद्धि कहे तो मन शुरू कर देता है, बुद्धि नहीं कहे तो कोई हर्ज नहीं। बुद्धि अर्थात् संसार जागृति।

प्रश्नकर्ता : प्रतिकूलता भी अनुकूलता ही है। अंदर ऐसी उल्टी सेटिंग कर सकता है न बुद्धि से?

दादाश्री : हाँ, लेकिन जिसे मोक्ष में जाना हो, वह ऐसी सेटिंग करता है कि यह तो अनुकूल ही है। वास्तविक में लाभ इसी में है, प्रतिकूलता में। हम सर्दी में भी ओढ़ा हुआ निकाल देते हैं। उससे जागृति रहती है।

प्रश्नकर्ता : उस समय कैसी जागृति में रहते हैं?

दादाश्री : जागृति जागृति में रहती है, नहीं तो जागृति सो जाती है।

प्रश्नकर्ता : ठंड लगने से नींद नहीं आती इसलिए फिर जग जाते हैं। फिर जागृति में रहते हैं, ऐसा है?

दादाश्री : वर्ना नींद आ जाती है और उस समय कोई जगाने वाला नहीं होता है न!

प्रश्नकर्ता : तब अंदर कौन सी जागृति में रहे?

दादाश्री : बेहोशी कम हो जाती है न! जागने पर, तू जो कुछ भी जानता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ही रहता है न!

विचार आने से पहले ही जागृति

प्रश्नकर्ता : दादा ने तो कहा है न, 'रात को 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते हुए और निदिध्यासन करते हुए सो जाना तो पूरी रात नल चलता रहेगा', तो वह कौन सी जागृति है?

दादाश्री : वह ध्यान कहलाता है। ध्यान में रहे तो भी अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : उससे आगे की स्टेज अर्थात् आप जो कहते हैं वही जागृति न?

दादाश्री : दीया बुझे नहीं। फिर से जलाना नहीं पड़े। मन क्या बताता है, उसके ज्ञाता-द्रष्टा रह सकें वहाँ तक जागृति ले जाना है। उसके बाद उसे नहीं ले जाना पड़ेगा! यानी कि जागृति किसे कहते हैं? विचार आने से पहले ही समझ में आ जाए कि यह तो ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ।

प्रश्नकर्ता : देखना-जानना और जागृति के बीच क्या फर्क है?

दादाश्री : देखना-जानना और जागृति दोनों अलग चीज़ें हैं। देखना-जानना तो करेक्टनेस है और जागृति तो कम-ज़्यादा होती रहती है। आवरण के अधीन है। अभी यदि खीर खाई हो तो जागृति डल (मंद) हो जाती है और भूखे रहें तो जागृति बढ़ जाती है। खीर खाकर देखना न एक दिन, पता चल जाएगा, कि कितनी जागृति रहती है खीर से?

झोंका खा लिया, वह नुकसान है!

प्रश्नकर्ता : दादा से मिलने के बाद, ज्ञान मिलने के बाद अजागृत रहें तो कितनी जोखिमदारी है?

दादाश्री : जितने झोकें आते हैं उतनी। और यदि झोकें नहीं आएँ तो उतनी। देखे बगैर गया उसका जोखिम रहेगा। वह फिर से देखना पड़ेगा। देखोगे तो साफ हो जाएगा। देखने से हर एक उदय साफ हो जाता है। अगर उदय में तन्मयाकार रहे तो वे कर्म शुद्ध होने बाकी रह जाएँगे और आत्मा अलग होने के बाद फिर आत्मा की जागृति में रहा तो कोई हिसाब नहीं बंधता। जागृति मंद रहे उतने समय तक उसे वह चिपकेगा।

प्रश्नकर्ता : क्या चिपकेगा?

दादाश्री : चिपकेगा अर्थात् जो हिसाब उसे साफ करना है न, उतना साफ नहीं किया तो फिर वह वैसे का वैसा पड़ा रहेगा न!

प्रश्नकर्ता : वह साफ नहीं होगा, लेकिन नया नहीं बिगड़ेगा न?

दादाश्री : नये से लेना-देना ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : इन्हीं को शुद्ध करके भेजना है न!

दादाश्री : इन्हीं को शुद्ध करके भेजना है लेकिन वे नहीं भिजवाए इसलिए उतने अपने पास जमा रहेंगे।

❖❖❖❖❖

[1.2]
जुदापन की जागृति

आधि-व्याधि-उपाधि में समाधि

दादाश्री : 'चंदूभाई' तो आपके पड़ोसी हैं न, या 'आप' खुद ही हो?

प्रश्नकर्ता : देह-मन वगैरह सब पड़ोसी नंबर एक।

दादाश्री : फर्स्ट नेबरर, नज़दीकी नेबरर। जब 'चंदूभाई' आइस्क्रीम खाते हैं तब आपको पता चल जाता है कि आइस्क्रीम खाने लगे हैं?

प्रश्नकर्ता : 'चंदूभाई' को मार पड़े, तब भी 'खुद' को पता चलता है।

दादाश्री : पता चलता है, हाँ! इस संसार में चिंता मुक्त होना है और वह भी आधि-व्याधि-*उपाधि* होने के बावजूद, *उपाधि* मुक्त होना है। ऐसा थोड़ा-बहुत हुआ है या नहीं हुआ?

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा हो गया है कि लोगों को *उपाधि* लगती है और मुझे *उपाधि* महसूस नहीं होती।

दादाश्री : कभी भी, चिंता नहीं, *उपाधि* नहीं तो ज्ञानी ही बन गए न! 'मैं चंदूभाई हूँ', उस भूत की बला थी। वे सारी बलाएँ, मार भी वही खाती हैं और माल भी वही खाती हैं। फिर अब यह ज्ञान मिलने के बाद, चोट के निशान रह गए, चोट का दर्द हमें सहन करना

पड़ेगा। वह भूत निकल गया लेकिन अब चोट पर जलन होती है। आपको दवाई लगानी पड़ेगी! यानी उसके लिए बहुत हाय-हाय मत करना। अगर चंदूभाई चार कप चाय पीए तो देखते रहना। चंदूभाई से आपको लेना-देना नहीं है।

आप खुद को पहचानते हो या नहीं?

ये चंदूभाई क्या कर रहे हैं, वह 'जानना' चाहिए। चंदूभाई जज के रूप में जजमेन्ट दे रहे हों, तब भी आपको वह 'जानना' चाहिए कि 'ये जज क्या कर रहे हैं'। आप उसे 'जानोगे', वह आपका ज्ञान है और जज क्या कर रहे हैं, वह उनका। अपने-अपने, दोनों अपने-अपने फर्ज़ निभा रहे हैं। आत्मा, आत्मा का फर्ज़ निभा रहा है और साहब, साहब का फर्ज़ निभा रहे हैं। आप साहब को पहचानते हो या नहीं? अच्छे आदमी हैं न! या थोड़े खराब भी हैं?

प्रश्नकर्ता : थोड़े खराब हैं।

दादाश्री : देखो, पहचानते हैं न! हाँ, यदि ऐसा हो कि 'मैं ही साहब हूँ' तो इतना निष्पक्षपाती कौन बोलेगा? कोई कहेगा, 'आप में अक्ल नहीं है', तो कहना कि, 'भाई आपने तो आज ही जाना कि हम में अक्ल नहीं है, लेकिन हम तो पहले से ही जानते हैं', 'आपको' ऐसा कहना चाहिए। आपने तो आज जाना लेकिन मैं चंदूभाई को शुरू से जानता हूँ। 'आप' 'चंदूभाई' को पहचानते हो या नहीं?

प्रश्नकर्ता : अच्छी तरह से पहचानता हूँ।

दादाश्री : अच्छी तरह से पहचानते हो न कि कहाँ पर टेढ़ा-मेढ़ा है, कहाँ पर सीधा है, सब जानते हो न? फिर अगर कोई टेढ़ा कहे तो उसमें हमें क्या हर्ज है? और अपना तो कोई कुछ ले जाने वाला नहीं है। अगर थोड़ा-बहुत ले भी जाएगा तो वह भी इन 'चंदूभाई' का ले जाएगा। आपका कोई कुछ भी नहीं ले जा सकता। वे लोग आपको पहचानते ही नहीं हैं न! आपको पहचानता है कौन? अपने ये महात्मा पहचानते हैं!

डिफेक्ट को जानने वाला, आत्मा

प्रश्नकर्ता : दादा, मेरा सब से बड़ा डिफेक्ट यही है कि...

दादाश्री : डिफेक्ट है लेकिन अगर आप जानते हो न, तो आप आत्मा हो। आप में कहाँ डिफेक्ट है? डिफेक्ट तो, यह *पुद्गल* ऐसा है, बंध (कर्म बंधन) ऐसा बंधा हुआ है। उससे हमें क्या नुकसान है! दादा का आशीर्वाद है और अगर *पुद्गल* खराब होगा तब भी दादा चला लेंगे, लेकिन आप क्यों सिर पर लेते हो? जब तक आप चंदूभाई थे तब तक तो सिर पर लेना पड़ता था। अब आप चंदूभाई नहीं हो तो आपको चंदूभाई का भार क्यों लेना है? पड़ोसी के साथ तो तरीके से होना चाहिए। वह रोए तो क्या आपको भी रोने लगना है? 'ये चंदूभाई ऐसे हैं', ऐसा जानो तो वही ज्ञान है!

तू आत्मा है और यह *पुद्गल* है। तू डरा कि यह चढ़ बैठेगा। कहना, 'पूरी दुनिया इधर से उधर हो जाए, इस देह को बुखार आए या पक्षाघात हो जाए या जल जाए लेकिन जो डर जाए वह कोई और'। *पुद्गल* का नुकसान है, हमें कभी नुकसान नहीं होता। नुकसान होगा तो *पुद्गल* के घर। अपने घर कभी भी नुकसान नहीं होता। दोनों का व्यवहार अलग है, व्यापार अलग। सेठ और दुकान अलग होते हैं या एक ही?

प्रश्नकर्ता : अलग-अलग।

दादाश्री : फिर भी, जब दुकान जलती है तब समझता है कि 'मैं जल गया'। अरे, तू कहाँ जल रहा है? दुकान जल रही है। चल, हम चाय पीते हैं। जबकि वह मानता है, 'मैं जल गया, मैं जल गया'। पराई चीज़ का भार लेकर घूमता है।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसी कोई घटना घटती है, तब आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो हो ही जाते हैं लेकिन फिर प्रतिक्रमण भी कर लेता हूँ।

दादाश्री : उसे आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं कहते। वे आर्तध्यान-

रौद्रध्यान आपको नहीं होते। आप तो आत्मा हो, वह तो चंदूभाई को होते हैं। उसमें यदि चंदूभाई को ज़रा ज़्यादा हो जाए, तब कहना, 'भाई ज़रा धीरज से काम लो।' और जब बातें होती हैं तब तेरी यह फाइल नंबर वन सामने वाले व्यक्ति से जो बात करती है, उसे तू भी 'जानता' है और वह भी 'जानता' है कि, क्या बातचीत हुई। आप तो ज्ञाता-द्रष्टा परमानंदी, आपका स्वभाव आप में।

चंदूभाई में समझदारी आए तो समझदारी को 'देखो', 'ओहोहो! बहुत समझदार हो।' पागलपन आए तो पागलपन को 'देखो'। चकरा जाए तो चकराए हुए को 'देखो'। उसके अलावा और क्या होना है? आप बचपन में कभी इमोशनल (भावुक) हुए थे?

प्रश्नकर्ता : हुए थे। अभी भी हो जाते हैं। लेकिन ज्ञान लेने के बाद कम हो गया है।

दादाश्री : हाँ। लेकिन ज्ञान लेने के बाद आप पर ज़िम्मेदारी नहीं रही न! वह तो फिर चंदूभाई की ज़िम्मेदारी हुई न? तो 'आप' जुदा, 'चंदूभाई' जुदा। चंदूभाई इमोशनल हो जाते हैं, लेकिन आप तो नहीं होते न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कभी वापस एक हो जाता है और कभी अलग हो जाता है।

दादाश्री : वह बात अलग है कि एक हो जाता है, लेकिन वह तो अलग हो चुका है। एक दिन फिर वास्तव में वे अलग रहेंगे। अभी बाकी के कमरे अच्छी तरह खाली नहीं हुए हैं न! इसलिए अभी एक होना पड़ता है। दूसरे कमरे जैसे-जैसे खाली होते जाएँगे, वैसे-वैसे जुदापन हो जाएगा क्योंकि जुदा हो चुके हो, इसलिए।

पुद्गल भय, वे पौद्गलिक भूत हैं। उनसे हमें नहीं डरना है। इन्हें पौद्गलिक भूत कहा है। 'हमें' 'चंदूभाई' से कहना है, 'यों बनिए की तरह करोगे, तो नहीं चलेगा। क्षत्रिय बनो। अन्य दुःखों को आना

हो तो आएँ। चाहे पैर दुःखें, सिर दर्द करे', ऐसा कहना। वह *पुद्गल* है और हम आत्मा, अलग!

चेतनपक्षी पुद्गल को क्या दुःख?

अभी कोई जेल में ले जाने के लिए आए कि 'चंदूभाई कौन है? चलो', तो आप क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : चले जाएँगे। चंदूभाई जाएँगे तो उनके साथ चले जाएँगे।

दादाश्री : हाँ। हमें कहना है कि 'ये रहे चंदूभाई! ले जाओ। हमारे घर पर तो दरवाज़े हमें खुद बंद करने पड़ते थे। आपके यहाँ पुलिस वाला दरवाज़े बंद कर देगा तो वह क्या बुरा है?' यानी कि वैभव है सारा। जेल में वैभव नहीं है? यहाँ घर पर अभी कमरे में चार लोगों को पड़े रहना पड़ता है। उसके बजाय वहाँ का वैभव अच्छा है!

बाकी, आत्मा को किसी भी जगह पर दुःख नहीं है और जो *पुद्गल* (अहंकार) आत्माधीन हो चुका है, उसे तो फिर कोई दुःख ही नहीं रह सकता न? *पुद्गल* चेतन पक्षी हो गया, फिर क्या दुःख? जब तक *पुद्गल* चेतन पक्ष का विरोधी है, तब तक ज़रा अड़चन डालता है।

बूढ़ा कौन?

प्रश्नकर्ता : दादा एकदम यंग दिखाई दे रहे हैं आज।

दादाश्री : नहीं, लेकिन ऐसा तो रोज़ सभी कहते हैं। फिर मैं भी शीशे में देखता हूँ, 'ये कैसे दिखाई दे रहे हैं?' मुझे भी यंग दिखाई देते हैं। सभी कहते हैं, उससे फिर असर होता है न अंदर। बाकी मैं ऐसा कभी भी नहीं कहता कि 'मैं बूढ़ा हूँ'। क्योंकि मैं तो शुद्धात्मा हूँ, बूढ़ा तो यही होता है, शरीर होता है। वह बोलता नहीं। हमारे पूछे बगैर कैसे बोलेगा? व्यवहार में कहते हैं कि 'भाई बूढ़े हैं', लेकिन

'मैं बूढ़ा हूँ' ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ'। यानी हमारे सब हिसाब अलग ही तरह के हैं। यदि 'मैं शुद्धात्मा' बनकर सचमुच में ऐसा बोलोगे कि 'मैं बूढ़ा हूँ', तो आप वैसे ही हो जाओगे। अत: जब आप यह कहते हो कि 'मैं बूढ़ा हो गया', तब आप वह अपने लिए नहीं कह रहे हो लेकिन आप जानते हो कि 'मैं तो जुदा हूँ और यह तो चंदूभाई के लिए कहा जा रहा है', तो आप पर असर नहीं होगा। सबकुछ इफेक्टिव है। इस वर्ल्ड में एक शब्द भी बोला जाए तो वह सारा इफेक्टिव है!

'चंदूभाई' कहे कि मेरी तबियत खराब हो गई है तो 'हमें' अंदर ही अंदर समझ लेना है कि, 'चंदूभाई की तबियत खराब हुई है लेकिन मेरी तो नहीं न!'

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। चंदूभाई के लिए कहना है। तबियत अच्छी है, ऐसा पॉज़िटिव बोलना है हमें।

दादाश्री : यानी, 'तबियत अच्छी है', ऐसा कहो। चंदूभाई कहें कि 'मेरी तबियत खराब है'। तब आपको कहना चाहिए कि 'नहीं, अच्छी है'। इसमें ज़्यादा कुछ नहीं कहना है, लेकिन शांति रहेगी उसे! बाकी, यदि आप खुद ही कहो कि 'मेरी तबियत अच्छी है', तो अच्छी हो जाएगी। आप खुद ही कहो कि 'मेरी तबियत खराब है', तो खराब हो जाएगी। यानी कि जैसा चिंतवन करता है, वह वैसा ही बन जाता है! मैं जुदा और चंदूभाई जुदा। खुद एकरूप होना ही नहीं है कभी भी। चंदूभाई को भूख लगी है, चंदूभाई को खाना है, चंदूभाई ने खाना बनाया, चंदूभाई को समझ में नहीं आ रहा, चंदूभाई को समझ में आ रहा है! ऐसी सारी भाषा रखो।

पक्षाघात में महात्मा की स्थिति

जिसे ज्ञान नहीं हो, उसे यदि पक्षाघात हो गया हो न, तो पूरा शरीर वैसा हो जाएगा। बाहर से लोग मिलने आएँगे और कहेंगे कि, 'अरेरे! यह अंग चला गया?' तब वह पक्षाघात वाला आँखों से पानी

निकालता रहेगा और कहेगा कि, 'यह भी गया और वह भी गया', अत्यंत वेदना होगी।

अब अगर अपने ज्ञान वाले को कभी पक्षाघात हुआ हो तब मिलने आने वालों से क्या कहेगा? ''भाई, यह बाईं तरफ वाला पूरा चला गया, लेकिन आप जिसे देखने आए हो, उसे 'मैं' भी 'देख' रहा हूँ। मैं भी देख रहा हूँ और आप भी देखो।'' हम सभी 'देखने वाले' हैं कि यह किसे हुआ है? यह ज्ञान यहाँ पर फल देता है। बहुत अच्छा फल देता है।

फिर भी अपने महात्माओं को जो ज्ञान में बहुत आगे हो, फिर भी यदि उनसे पूछें कि 'भाई, आपको पक्षाघात पसंद है?' तब कहेंगे, 'नहीं, पसंद तो नहीं है'। लेकिन यदि आ पड़े तो उसका तिरस्कार भी नहीं करेंगे और यदि नहीं है तो पक्षाघात को बुलाएँगे नहीं वे। हमें कहना है, 'नहीं आए तो अच्छा। इस पीड़ा को कौन बुलाए?'

मुनीम पर नहीं होता असर, नफे या नुकसान का

मान लो आप रोज़ शेयर-बाज़ार का काम करते हो, आपके मुनीम जी होशियार हों, और यदि एक दिन आप उस मुनीम से कहो कि भाई 'आज दो दिन के लिए एक शादी में जाना है, तो शेयर-बाज़ार का कामकाज तू कर लेना'। अब वह कामकाज करे और नुकसान हो जाए तब भी उसे मन में ऐसा नहीं लगेगा कि, 'यह नुकसान मुझे हुआ है'। वह जानता है कि यह नहीं हुआ होता तो अच्छा था, इन सेठ जी को नुकसान होगा। लेकिन, 'मुझे हुआ', ऐसा तो उसे लगेगा ही नहीं न! लगेगा क्या उसे? यदि फायदा हुआ हो तब भी?

प्रश्नकर्ता : तब भी कुछ नहीं।

दादाश्री : हाँ... उसी तरह हमने इन चंदूभाई से कह दिया न! फिर दादा का नाम लेकर कहना कि 'भाई, इस प्रकार से है', तो फिर

कुछ लेना-देना नहीं रहेगा। यदि हमारे कहे हुए शब्दों का पालन करे तो मुश्किल है क्या कुछ भी? ये जो बताए हैं, उतने शब्दों पर आप तुरंत अमल कर दो, तो चल पड़ेगी गाड़ी। सेफसाइड बता देते हैं।

ज्ञानी ही मेरा आत्मा

दादा कितनी बार याद आते हैं?

प्रश्नकर्ता : रोज़।

दादाश्री : भगवान ने कहा है कि ज्ञानी पुरुष ही अपना खुद का आत्मा है। और ये दादाजी याद रहते हैं न, वही आत्मा। वर्ना याद रहे ही कैसे? ज्ञानी पुरुष ही आपका आत्मा है। अत: जब तक आपको आपके आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो जाता, तब तक ज्ञानी पुरुष के कहे अनुसार चलो। यह तो आपको प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव जो रात-दिन आपको सावधान करता है। नहीं करता सावधान? अब चंदूभाई गुस्सा होते रहेंगे लेकिन यदि चिढ़ जाएँ तो अंदर 'आप' मना करते हो, 'नहीं, यह नहीं होना चाहिए।' वह क्या है? ये दो कौन हैं? पहले दो नहीं थे। वह आत्मा हाज़िर है, निरंतर। अक्रम विज्ञान वाला आत्मा, लाख जन्मों में भी ऐसा आत्मा प्रकट नहीं होता और यदि प्रकट हो जाए तो चिंता नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब फाइलें आती हैं न, तब समभाव से *निकाल* करते समय ऐसा लगता है कि यह अलग है और मैं अलग हूँ, ऐसा। यह *पुद्गल* को हो रहा है।

दादाश्री : वह भान तो रहेगा ही आपको! अलग ही है। अलग हो ही चुका है। अलग होने के बाद ही दादा याद रहते हैं, वर्ना याद नहीं रह पाते और पाँच आज्ञा का पालन नहीं हो पाता। मुक्तता (जुदापन) का अनुभव होता है न? 'मैं जुदा हूँ' ऐसा अनुभव होता है, तब फिर क्या है? आपको जुदापन का अनुभव होता है और क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों को, 'मैं अलग हूँ, ऐसा मुझे आभास होता है', ऐसा कहते हैं। वहाँ तक वे भी पहुँचते हैं।

मत करना रक्षण 'चंदू' का

अब क्या प्रश्न है? क्या कहना चाहता है तू?

प्रश्नकर्ता : दादा, मैंने प्रश्न नहीं पूछा था। इन बहन ने पूछा था।

दादाश्री : वह चाहे किसी ने भी पूछा हो, लेकिन ऐसी ही आवाज़ आई कि जैसे तेरा प्रश्न हो।

प्रश्नकर्ता : मेरा प्रश्न नहीं था, दादा।

दादाश्री : इससे आपको क्या लेना-देना? आप शुद्धात्मा हो, आपको क्या लेना-देना? आप शुद्धात्मा हो गए फिर भी चंदूभाई का पक्ष ले रहे हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं लेना चाहिए, दादा।

दादाश्री : यह लिया न, यह सभी ने खुले आम देख लिया। चाहे किसी का भी प्रश्न हो, लेकिन प्रश्न तो आपने पूछा न? मैंने तो ऐसा ही जाना कि आपने पूछा है। लेकिन 'आप' यानी किसने पूछा? वह चंदूभाई ने पूछा न? आप शुद्धात्मा हो, आपको क्या लेना-देना? अत: आपको कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई ने प्रश्न पूछा, लेकिन चंदूभाई का खुद का नहीं है यह'। फिर जब हम पूछें, 'तो फिर किसका है?' तब बताना, 'इन बहन का'। और उनका खुद का भी नहीं है यह, वह भी शुद्धात्मा है। ऐसा सब *लक्ष* (जागृति) में रहना चाहिए। यह ज्ञान उसी को कहते हैं। रिलेटिव और रियल, यह सब *लक्ष* में नहीं रहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : रहना चाहिए, दादा।

दादाश्री : हाँ में हाँ मिलाते हो, लेकिन रहता नहीं है और फिर शोर मचाते हो। *लक्ष* में रहना चाहिए न? आपका निश्चय होना चाहिए कि, 'मुझे यह *लक्ष* में रखना है।' उसके बाद दादा की कृपा होगी। आपका एक बार भी नक्की नहीं हुआ है न! ऐसा निश्चय नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : सभी आवरण खोल देते हैं आप तो। बाकी, यह तो जितना जाना हो, जितना सुना हो, जितना पढ़ा हो, उसके अलावा आगे नया दिखाई नहीं देता। आप बताते हैं तब तुरंत पता चल जाता है कि यह बात थी लेकिन यह दिखाई ही नहीं दे रही थी।

दादाश्री : वर्ना वह दिखाई ही नहीं देगी न!

प्रश्नकर्ता : आपने यह जो कहा न, कि 'वह तो चंदूभाई का प्रश्न है, तू तो शुद्धात्मा है! तुझे क्या लेना-देना?' यानी यों दोनों तरफ जुदापन समझकर...

दादाश्री : वह जो जुदापन है, वही ज्ञान कहलाता है। हमने जो दिया है, वह ऐसा ही ज्ञान दिया है, लेकिन आपकी ये जो पुरानी आदते हैं न, वे आपको छोड़ती नहीं हैं न! पहले से आदत पड़ चुकी है न! उस आदत की तरफ चला जाता है। उसमें भी हर्ज नहीं है। प्रकृति है इसलिए ऐसा हो ही जाता है लेकिन जागृति में रहना चाहिए कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

नहीं करना है वश में इन्द्रियों को अब

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन शुद्धात्मा बनने के बाद इन्द्रियों को वश में करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : इन्द्रियों को वश करना ही नहीं होता। इन्द्रियों को वश करने वाला तो अपनी कुर्सी से उठ गया। उसने चार्ज छोड़ दिया। फिर करेगा कौन? वह तो अपने आप ही जब खाली होना होगा, तब होगा। जब खाली होगा, तब अपने आप बंद हो जाएगा। हर्ष व शोक तो होंगे, वे नो-कषाय हैं, लेकिन आप जानते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आप जानते हो कि ये चंदूभाई हँसे और चंदूभाई को ज़रा डिप्रेशन हो जाता है। आप सब जानते हो न? आप अलग, ये अलग। यदि आप तन्मयाकार हो जाओगे तब आपको *भोगवटा* आएगा।

किसी भी स्थिति में आत्मा तो आत्मा ही है

प्रश्नकर्ता : व्यवहार की बात करना और आत्मा में रहना, ये दोनों एक साथ कैसे हो सकता है? कपड़ों की ये सारी बातें की, उस समय आपकी जागृति कैसी थी?

दादाश्री : वह स्वभाविक रूप से रहता है हमें तो।

प्रश्नकर्ता : वह हम कैसे सीखें, वह चीज़?

दादाश्री : 'मैं नहीं बोल रहा हूँ', यदि ऐसा भान रहे, तब फिर स्वाभाविक रूप से रहेगा। 'मैं कर्ता नहीं हूँ', ऐसा भान रहे तब फिर वही आ गया न! स्वादिष्ट लग रहा है तो क्या तू खा जाता होगा इसमें? आत्मा खा जाता होगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : खाने वाला ही खाता है। देखने वाला देखता रहता है। आपको अपने इस विज्ञान में परेशानी है किसी तरह की? खाने वाला ही खाता है न? आप तो कभी नहीं खाते हो न?

प्रश्नकर्ता : समझ में तो वैसा ही है, लेकिन वैसे रह नहीं पाते!

दादाश्री : मालपुए आप खा गए थे? खीर?

प्रश्नकर्ता : वास्तव में मैंने नहीं खाया था। खाया सब चंदूभाई (फाइल-1) ने! खाते समय याद नहीं रहा।

दादाश्री : याद नहीं रहा लेकिन इसका मतलब यह थोड़े ही है कि आत्मा खा गया? किसी भी स्थिति में आत्मा चंदूभाई नहीं बनता अब। आपने इतना बिगाड़ दिया फिर भी (चंदूभाई) नहीं बना है अभी तक। अभी भी यदि कहे अनुसार परिवर्तन लाओगे तो कल से राह पर आ जाएगा। क्योंकि आपका राह पर (आत्मज्ञान मिला) ही है, समभाव से *निकाल* करते हो। व्यवस्थित समझ में आ गया है। भूलचूक हो जाए तो सुधर सकती है।

प्रश्नकर्ता : इस दृष्टि की प्राप्ति के बाद भले ही कैसा भी वर्तन हो फिर भी यदि दृष्टि में जुदापन की जागृति रहे, तो क्या उससे बंधन है?

दादाश्री : वर्तन किसका है? दृष्टि किसकी है? यह तो अगर 'मुझे लगा, मुझे लगा' कहेंगे तो चिपक जाएगा। नहीं तो भाई, वस्तु अलग हो चुकी है। अब क्या चिपकेगा तुझे यहाँ?! आत्मा को निर्लेप जाना, निर्लेप अनुभव किया फिर उसे क्या चिपकेगा? और अगर चिपक जाए तो फिर तुरंत प्रज्ञा आपको सचेत करेगी! आज्ञा पालन करते हैं इसलिए (कर्म) बंधन नहीं होगा और बंधन नहीं हुआ यानी कि अंदर आत्मा जुदा हो ही गया है।

खुद परमात्मा और 'चंदू' पड़ोसी

प्रश्नकर्ता : खुद का जो स्वभाव है, चंदूभाई का, उसका पृथक्करण कैसे करें?

दादाश्री : चंदूभाई का और आपका क्या लेना-देना? आप तो शुद्धात्मा बन गए न! चंदूभाई तो पड़ोसी है, फाइल नंबर वन। आपको क्या लेना-देना? उसका कोई क्लेम हो तो मुझे बताओ। जुदा हो गए हो आप। अलग होने के बाद, दो भाईयों के बीच खेत का बँटवारा करने के बाद दूसरी तरफ की भिंडियाँ कोई नहीं लेगा, यदि बँटवारा होने के बाद ले लेंगे तो दोनों भाई झगड़ा करेंगे। बँटवारे से पहले वे ले सकते थे सबकुछ, जब तक साझे में था तब तक। बँटवारा होने से पहले ही झंझट है, बँटवारा होने के बाद नहीं।

प्रश्नकर्ता : जब तक बँटवारा नहीं होता, तब तक सबकुछ साझे का ही समझते हैं न!

दादाश्री : साझा समझकर ही यह सब किया। उसके लिए मैंने डिमार्केशन लाइन भी डाल दी है। अब हमेशा के लिए पहेली सुलझ जाएगी। लेकिन फिर भी कहता है, 'मुझे खाँसी हो गई'। अरे, खाँसी किसे हुई है, वह जानना है।

प्रश्नकर्ता : जानने से *अशाता* (दु:ख-परिणाम) वेदनीय, *शाता* (सुख-परिणाम) वेदनीय में बदल जाती है न?

दादाश्री : बदल जाती है न, तुरंत ही। वेदनीय गुण पड़ोसी का है, अब वेदनीय गुण अपना नहीं है। हम सभी (ज्ञान प्राप्त महात्मा) निर्लेप हैं। निर्लेप को कुछ भी नहीं होता। आपको खाँसी आए तो ऐसा लगना चाहिए कि 'खाँसी आई है'। 'मुझे आई', ऐसा नहीं लगना चाहिए। 'पड़ोसी को खाँसी हो रही है, वह ज़्यादा हो गई है', ऐसा लगना चाहिए। अनादि से यह उल्टा अध्यास अर्थात् पुरानी आदत पड़ी हुई है। अत: आपको अनादि का अभ्यास बदलना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : इस खाँसी से तो कोई परेशानी नहीं है, लेकिन जो दु:ख होता है उससे परेशानी है।

दादाश्री : पराई भिंडियाँ एक बार दिखा दी हैं, अब अलग रखने में क्या परेशानी है? ''मन-वचन-काया के लेपायमान भाव 'मेरे हैं'' कहोगे, तो उछलकूद मचाकर रख देंगे। लेकिन 'यह मेरा नहीं है' ऐसा कहते ही वे बंद हो जाएँगे। जब तक आप यह तय नहीं करोगे कि, 'यह भिंडी की लाइन मेरी नहीं है', तब तक अपने किसान और लोग, सभी शोर मचाएँगे। यह तो हमारे अनुभव की बात बता रहे हैं, हमें जो अनुभव हुए हैं, उनकी। अत: आपको दो-तीन बार कहना पड़ेगा कि, 'भाई यह मेरा नहीं है अब', ताकि वे लोग बोलना बंद कर दें। ऐसा करना तो पड़ेगा न? ऐसे ही आ जाएगा क्या (जुदापन)? भिंडियों की एक ही लाइन हो, उसके लिए तो झगड़ा कर लेता है, यदि भिंडियाँ ले जाए तो झगड़ा करता है।

आप शॉल ओढ़कर सो रहे हों और धोबी आकर कहे कि 'चाचा, यह शॉल वापस दे दीजिए, यह आपकी नहीं है'। तब यदि आप कहो, 'तू चला जा। शोर मचाएगा तो थप्पड़ मारूँगा'। क्योंकि आपको मन में यक़ीन है कि 'यह मेरी ही है'। तब यदि वह धीरे से कहे कि 'चाचा, लेकिन यह दूसरी शॉल देखिए न, यह आपकी है

और यह आपकी नहीं है।' 'तू यहाँ मत बैठना, मारूँगा तुझे।' लेटे-लेटे चाचा अंदर से फिर ऐसा कहते हैं। क्योंकि उन्हें यक़ीन हो गया है कि यह शॉल मेरी ही है। फिर जब यह बहुत कहेगा तो कहेंगे, 'फिर, यह नया तूफान क्या ले आया!' 'लेकिन ज़रा यहाँ देखिए तो सही'। 'शॉल दिखा। हाँ, ला।' तब, जब वह नाम का निशान दिखाता है न! 'अरे हाँ, यह मेरी है। तू तेरी शॉल वापस ले जा।' तब वह ऐसा करता है। लेकिन तब तक झगड़ा करता रहता है। करता है या नहीं करता? उसकी समझ में फिट हो गया था कि 'मेरी ही है।' उसे तो ऐसा ही लगता है, लेकिन क्यों? उस नाम पर से पता चलता है। धोबी भी देते समय भूल जाता है न बेचारा! फिर जब नाम देखा तब उसे पक्का हो गया कि 'अरे, यह तो भूल हो गई'। वैसी ही शॉल हो तो फिर क्या हो सकता है? हम सुनते ही नहीं है न? सो गए हों तो फिर उठते हैं क्या?

इधर-उधर कौन होता है?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा पद में बैठने के बाद *लक्ष* आ गया है। उसके बाद जागृति ठीक तरह से, बिल्कुल टॉप पर ही रहनी चाहिए न! वह (डिस्टर्ब) इधर-उधर क्यों हो जाती है।

दादाश्री : वह इधर-उधर नहीं होती। जो इधर-उधर होता है, वह अलग है और यह जागृति अलग है। दोनों अलग-अलग ही चलते हैं न! हैं ही अलग-अलग।

प्रश्नकर्ता : इस तरह से अलग कब तक? अंत तक अलग ही चलता रहेगा?

दादाश्री : यह तो, जब तक फाइलें हैं तभी तक। जब तक फाइलें हैं तब तक अंतरात्मा। फाइलें खत्म होने पर परमात्मा। इन्टरिम गवर्नमेन्ट, उसके बाद फुल गवर्नमेन्ट। यानी कि ये फाइलें परेशान करती हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ। फिर भी ये सब फाइले हैं। वे अपने लिए चाहे कितना भी खराब करें, फिर भी उनके लिए अंदर से यों खराब भाव नहीं होता। लेकिन जब फाइल सामने आए तब सामने वाला व्यक्ति निर्दोष दिखाई देना चाहिए। तुरंत होना चाहिए, वैसा नहीं होता। कुछ देर बाद होता है।

दादाश्री : जागृति तो रहती है लेकिन खुद कमज़ोर पड़ जाता है। पहले की आदत है न?

प्रश्नकर्ता : दादा, एक बार शुद्धात्मा में बैठाने के बाद फिर कमज़ोर क्यों पड़ जाते हैं?

दादाश्री : कोई गालियाँ दे तो वापस उसमें हाथ डाल देता है। उसे ऐसा लगता है कि 'मुझे गाली दी'। वास्तव में उसे गाली नहीं देता। वह तो अपनी जगह पर ही है। भला वापस यहाँ कहाँ आ गए? अक्रम विज्ञान क्या कहता है? दोषित कोई होता ही नहीं है।

'व्यवस्थित' प्रेरणा देता है और प्रेरणा से सब चल रहा है। उसे 'हमें' 'देखते' रहना है और बस इतना ही, देखते रहना है। फिल्म और फिल्म देखने वाले को, दोनों को थकान नहीं होती। देखने वाले को थकान नहीं होती, न ही फिल्म को थकान होती है। देखने से कोई असर नहीं होता। देखने और जानने से कोई असर स्पर्श नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : अब यह जो फाइल आई, समभाव से *निकाल* किया, प्रकृति की जो कुछ भी उलझनें अंदर थीं, जो कुछ भी हुआ, वह सब हम देखते रहें, वह देखते रहने से प्रकृति पूरी शुद्ध होती जाएगी न?

दादाश्री : होगा न सब। शुद्ध होती जाएगी। जैसे-जैसे आप देखोगे न, वैसे-वैसे आपकी देखने की शक्ति बढ़ती जाएगी। क्योंकि शक्ति मल्टीप्लाइ होती है और साफ हो जाता है। अंदर आनंद उत्पन्न होता है। यह तो, अगर सिर दु:खे तो कहेगा, 'मेरा सिर तो बहुत दु:ख रहा है'। 'अरे, लेकिन तेरा दु:ख रहा है या चंदूभाई का दु:ख रहा है?

तू तो शुद्धात्मा है।' तो कहेगा 'हाँ, मैं तो शुद्धात्मा हूँ। यह तो चंदूभाई का दुःख रहा है।' अब चंदूभाई का सिर दुःख रहा है, उसमें, 'मेरा सिर दुःखा', ऐसा कहने से असर हो गया!

जो डाँटे वह 'मैं' नहीं

प्रश्नकर्ता : मुझे ऑफिस में काम करते हुए किसी को डाँटना पड़ता है, कुछ कहना पड़ता है, लेकिन फिर मुझे बहुत दुःख होता है कि किसी को ऐसा कुछ कहने का निमित्त मुझे क्यों बनना पड़ा?

दादाश्री : ऐसा है न कि आप नहीं डाँटते हो न! चंदूभाई डाँटते हैं या आप डाँटते हो?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई डाँटते हैं।

दादाश्री : तो आपको ज़िम्मेदारी लेने की ज़रूरत नहीं है। आपको तो चंदूभाई से ऐसा कहना है कि 'भाई, बहुत डाँटोगे तो आपकी क्या कीमत रहेगी? आपकी आबरू जाएगी!'

प्रश्नकर्ता : इस तरह कई बार हम कुदरत के सामने मनुष्य को इतना अधिक लाचार होता हुआ देखते हैं, उस समय कुछ भी ज्ञान या कोई भी चीज़ काम नहीं आती, तब वहाँ पर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अब आप शुद्धात्मा बन गए हो। शुद्धात्मा को लाचारी हो ही नहीं सकती न! आपको चंदूभाई नहीं बन जाना चाहिए। आप चंदूभाई बन जाते हो, उसकी जवाबदारी आएगी। आपने तय कर लिया कि, 'हम कौन हैं वास्तव में?' और चंदूभाई आपका रिलेटिव स्वरूप है। यानी कि आपको तो वह बनना ही नहीं है।

दादा का जुदापन वाला निज व्यवहार

प्रश्नकर्ता : एक महात्मा को दूसरे महात्मा के साथ कैसा वर्तन रखना चाहिए?

दादाश्री : खुद आत्मा में रहकर। देहाध्यास उत्पन्न नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी कि सभी बातों का सार यही है कि खुद को आत्मा में रहना है, निरंतर।

दादाश्री : नहीं तो और क्या है? देह में तो गधा भी रहता है और आप भी रहो, तो क्या फर्क पड़ा?

प्रश्नकर्ता : कुछ नहीं। बेकार गया!

प्रश्नकर्ता : दादा, आप अपने पड़ोसी को किस तरह से देखते हैं?

दादाश्री : अच्छी तरह से। 'बहुत अच्छे इंसान हैं', वह मैं जानता हूँ न, बचपन से ही! यों अच्छे इंसान हैं। बहुत अच्छे इंसान हैं। कोई दखल नहीं, कोई गड़बड़ नहीं, कुछ भी नहीं चाहिए, कोई परेशानी नहीं। जल्दी उठाओ तो भी आपत्ति नहीं, देर से उठाओ तो भी आपत्ति नहीं। 'नीचे महात्मा आए हैं', सुनते ही, उठकर आधे घंटे में नीचे पहुँच जाते हैं। आपको क्या ऐसा लगा कि हमें परेशान करते होंगे? नहीं। अरे, ये इन्हें तो परेशान नहीं करते लेकिन हीरा बा को भी परेशान नहीं करते न कभी भी!

प्रश्नकर्ता : आत्मा और *पुद्गल* का जो डिमार्केशन है न, जिस तरह से आपको अलग लगता है, उस तरह से हमें, आत्मा अलग है, ऐसा कैसे लगेगा?

दादाश्री : अलग ही है न!

प्रश्नकर्ता : है! लेकिन आप जिस तरह से देख सकते हैं, आत्मा अलग और *पुद्गल* अलग, वैसा हम भी देख सकेंगे क्या?

दादाश्री : वह स्टेशन आएगा, तब देख पाओगे न!

प्रश्नकर्ता : यानी वह किस तरह का होता है?

दादाश्री : कोई तरीका नहीं होता। यह आत्मा और यह *पुद्गल*। ये दोनों सटे हुए ही हैं, लेकिन संग नहीं है दोनों का।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह जो अभी आप बैठे हुए हैं और दादा भगवान, 'दादा' को देख रहे हैं, वे किस तरह से ऐसा देखते हैं?

दादाश्री : स्व-पर की दृष्टि से। स्व की दृष्टि और पर की दृष्टि से। मैंने आपको जो आत्मा दिया है, उसकी दृष्टि अलग है और इसकी दृष्टि अलग। यह जो रूम दिखाई देता है, यह सारी दृष्टि अलग है, यह 'पर' की दृष्टि कहलाती है और वह, 'स्व' की दृष्टि है। स्व दृष्टि अलग होती है। स्व और 'पर' दोनों अलग दिखाई देते हैं। यह 'पर' और यह स्व, आप भी समझते हो न, लेकिन आपको गहरे उतरने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन आपको तो समझ में आता है न कि 'भाई, यह सारा अलग है'। आपको पता नहीं चलता कि यह 'पर' है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो पता चलता है।

दादाश्री : वही दृष्टि। 'यह मैं नहीं हूँ और यह मैं, यह मैं नहीं हूँ और यह मैं', तो इसी को मज़बूत कर लो! ये सारी रोड अगर कच्ची हों और फिर आगे की रोड बनाने जाएँगे तो पहले वाली कच्ची पड़ जाएगी और यह रोड मज़बूत है और जहाँ तक दिखाई दे वहाँ तक उसे मज़बूत हो जाने दो अच्छी तरह। वह तो, यह सब नियम से ही काम करता है। आपको उस सारी झंझट में नहीं उतरना है। वर्ना जैसा यहाँ पर था, वैसा ही दखल वाला बन जाएगा। वहाँ दखल की ज़रूरत ही नहीं है। आप तो आज्ञा में रहो। आज्ञा से बाहर निकलना भयंकर गुनाह है। यह तो, पहले की जो आदतें पड़ चुकी हैं न, वे सारी हेबिट परेशान करती हैं। बाकी, पाँच आज्ञा का ही पालन करना है। और कोई दखल नहीं करनी है। आपको पता चलता है न, कि यह 'पर' है, यह स्व नहीं है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा वह तो पता चल जाता है।

दादाश्री : दुनिया के लोग इसे नहीं समझ सकते।

ग़ाफ़िल किसे कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : दादा ने भेद ज्ञान दिया, भिन्न बनाया। मैं अलग, दरअसल अलग हूँ, लेकिन वह चंदूभाई तो रहेगा न? वह तो रहेगा ही न, जितने साल बाकी रहे होंगे उतने साल तक रहेगा न! चंदूभाई *पुद्गल* तो रहेगा ही न?

दादाश्री : रहेगा न! वह *पुद्गल* तो रहेगा। *पुद्गल* आपने अर्पण कर दिया है। अब यह जो *पुद्गल* है, वह व्यवस्थित के अधीन है। वह अपने व्यवस्थित के अधीन चलता रहेगा। आपको देखते रहना है। 'वह *पुद्गल* क्या कर रहा है', उसे देखते रहना है। इतना आपका पुरुषार्थ।

प्रश्नकर्ता : देखते रहना है और कभी *पुद्गल* को सावधान भी करना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : हाँ, सावधान करना चाहिए! लेकिन यदि ग़फ़लत में पड़ जाए तो सावधान करना।

प्रश्नकर्ता : अरे, चलते-फिरते ग़फ़लत तो करता ही रहता है।

दादाश्री : नहीं, यह सब तो उदयकर्म करवाते हैं। लेकिन आप खुली आँखों से चलो और सावधानीपूर्वक चलो, बस इतना ही। उसका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। वर्ना देखने की जागृति मंद हो जाएगी। यदि 'देखे', तब तो उसे कुछ भी नहीं करना है। जो आज्ञा में रहता है, वह 'देखता' ही है चंदूभाई को, तो उसे कोई बात करने की ज़रूरत ही नहीं है। लेकिन जब वह नहीं देखता है, तब सावधान करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : जागृति की जो बात की न, जागृति में रहने की और सावधान रहने की, उसका हम यह विवरण कर रहे हैं।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। जिससे ज्ञाता-द्रष्टा रहा जा सके, उसे

इस बात की ज़रूरत नहीं है। और जिसे जागृति नहीं रहती है, उसे आप कहना कि 'अब खुली आँखों से चलना, ग़ाफ़िल मत हो जाना'। वर्ना व्यवस्थित तो आपको चलाएगा ही, लेकिन वह ग़फ़लत वाला नहीं होना चाहिए। और जो ज्ञाता-द्रष्टा रहता है उसके लिए तो ग़ाफ़िल भी नहीं, कुछ भी नहीं रहा। वह आपके हिसाब में आता है। आप उसके ज्ञाता-द्रष्टा हो कि चंदूभाई क्या कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी दादा, किसी भी प्रसंग में चंदूभाई को देखने के बजाय अगर मैं ही चंदूभाई बन जाऊँ तो क्या ग़ाफ़िल होना कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ, उसे ग़ाफ़िल होना कहा जाएगा। किसी भी बात में आप यों चंदूभाई को देखने के बजाय आप चंदूभाई बन जाओ तो, वह ग़फ़लत है। तब हम क्या कहते हैं कि वहाँ पर आँखें खोलकर चलो।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन कभी ऐसा होने के बाद फिर आँखें खुल जाती हैं। दादा सावधान कर देते हैं कि, 'यह हो गया, अब इसे देखो।'

दादाश्री : हाँ। इसलिए वहाँ पर हमने कहा है कि, 'आँखें खोलकर खड़े रहो।' हमें वह जागृति रखनी है। ऐसा हो जाता है न? दादा को कहने नहीं आना पड़ता न! विज्ञान सारा काम कर रहा है। आपको किसी तरह की परेशानी नहीं है। सहज रूप से काम हो रहा है। सावधान भी करता है। लोग कहते हैं कि आत्मा का अनुभव नहीं होता। अरे भाई, क्या अंदर सावधान नहीं करता पूरे दिन? हाँ! तो भाई, वही आत्मा है। और कौन आएगा? कोई परदेशी है, जो अंदर घुस गया है?

अब हैं निकाली राग-द्वेष

प्रश्नकर्ता : कई बार खुद की तीव्र इच्छा होने पर भी यदि वह चीज़ प्राप्त नहीं हो तो फिर उसका दिमाग़ घूम जाता है, सभी पर

गुस्सा हो जाता है और ज्ञान में नहीं रह पाता। तो अब इन सब का *निकाल* करके किस तरह से खुद ज्ञाता-द्रष्टा रह सकता है?

दादाश्री : वह चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, लेकिन ज्ञाता-द्रष्टा रहना हो तो रह सकता है। ऐसा है कि यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहना हो न, तो कुछ हद तक की परिस्थितियों में रहा जा सकता है। हद से ज़्यादा हो चुका हो, दबाव बहुत हो, वहाँ पर नहीं रह पाता। अब यदि जागृति चली जाए तब भी ऐसा रहना चाहिए कि 'यह जो जागृति चली गई है, उसे भी मैं जानता हूँ!' लेकिन जानकार ही रहना चाहिए तो वह सब बेकार, निःसत्व हो जाएगा। सत्व निकल जाएगा, जल जाएगा सारा। लोगों के साथ की डीलिंग कैसी होती है, वह बताओ न मुझे! राग-द्वेष होते हैं? बिल्कुल भी नहीं?

प्रश्नकर्ता : नहीं होते। बहुत *चीकणी फाइलों* में हो जाता है। लेकिन लोगों के साथ बहुत कम हो गए हैं।

दादाश्री : हमें आत्मा प्राप्त हुआ है इसलिए राग-द्वेष नहीं होते, लेकिन डिस्चार्ज राग-द्वेष हो जाते हैं। जो *निकाली* हैं, वे। अब, जो *निकाली* हैं उन्हें राग-द्वेष नहीं माना जाता। राग-द्वेष तो जो यों पहले बीज के रूप में डलते थे न, उस चार्ज को राग-द्वेष कहा जाता है। वह तो सिर्फ गुस्सा है, और वे *पुद्गल* के गुण हैं। अतः वह कोई बहुत महत्वपूर्ण चीज़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'इसने ऐसा किया, तो मैं भी ऐसा करूँगा', इस तरह का जो गुस्सा है, वह चार्ज हो जाता है या नहीं?

दादाश्री : चंदूभाई इस तरह का कुछ गुस्सा कर रहे हों तब भी, यदि वह आपको अच्छा नहीं लगता तो वह डिस्चार्ज है। आपको अच्छा नहीं लगे, आपको रुचि नहीं हो तो आप जोखिमदार नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : दादा, अज्ञानी को भी यदि रुचि नहीं हो तो...

दादाश्री : तब भी वह जोखिमदार है। क्योंकि अज्ञानी अर्थात्

मैं ही चंदूभाई हूँ। रुचि नहीं हो, फिर भी जोखिमदार है। रुचि नहीं होगी तो अरुचि होगी। कुछ तो रहेगा उसे। जबकि आपको अरुचि नहीं रहती, 'ऐसा नहीं होना चाहिए,' वैसा रहता है! अज्ञानी को रुचि नहीं हो तो अरुचि तो रहती ही है! यानी कहीं न कहीं तो उसे फँसना ही है।

प्रश्नकर्ता : कोई गाली दे, तब हमें लगता है कि इसे दो गालियाँ देनी है और फिर देते भी है। लेकिन अगर फिर हम देखें कि चंदूभाई को ऐसा मन हुआ, वापस गाली दी और तब भी हम चंदूभाई को देखें, तो वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : यह सब जो हो गया, उसे तू बस 'देखता' रहेगा, तो छूट जाएगा। आपको लेना-देना नहीं है। आपकी जवाबदारी नहीं है। चंदूभाई की जवाबदारी तो है। तो चंदूभाई को सामने वाला व्यक्ति डाँटेगा 'कैसे नालायक हो! क्या बोल रहे हो?' और थप्पड़ मार भी देगा। अतः जोखिमदारी है चंदूभाई के सिर पर! उसके बाद आप चंदूभाई से कहना, 'अतिक्रमण क्यों किया? अब प्रतिक्रमण करो'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मान लो कि चंदूभाई ने प्रतिक्रमण नहीं किया तो वह चार्ज हो जाएगा न?

दादाश्री : नहीं, तब भी चार्ज नहीं होता। चार्ज तो होता ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या प्रतिक्रमण करना चाहिए?

दादाश्री : कर लेगा तो साफ हो जाएँगी सभी फाइलें। ज्ञान से साफ करके रख दीं। जितने कपड़े धोते हैं न, उतने साफ करके रख देने हैं। उसके बाद इस्त्री में जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : कई बार इच्छाएँ तो पूरी नहीं होतीं। इच्छाओं की जड़ें इतनी गहरी होती हैं कि ज्ञान होने के बावजूद भी वे सताती रहती हैं, तो उन्हें निकालें कैसे? इच्छाओं को निर्मूल कैसे करें?

दादाश्री : इसीलिए हम कहते हैं न, एक-दो जन्म लगेंगे। वे सारी इच्छाएँ जो अधूरी हैं, वे सब पूरी हो जाएँगी। इच्छाएँ पूरी हुए बिना कोई मोक्ष में घुसने नहीं देगा। जितनी-जितनी इच्छाएँ हैं, वे पूरी होनी ही चाहिए। बहुत गहरी होंगी तो अगले जन्म में आएँगी वापस, लेकिन पूरी करेगा।

प्रश्नकर्ता : तो क्या हमें ऐसा करना चाहिए कि आज से ही सारी इच्छाएँ पूरी करने लगें?

दादाश्री : करो न! मैंने आपको कहाँ मना किया है?

प्रश्नकर्ता : ये फाइल नं 2 करेंगे तब मेरी इच्छा पूरी होगी न! ये नहीं करते हैं मेरी इच्छा पूरी। मैं महल नहीं माँग रही, लेकिन एक छोटी सी चीज़ पंद्रह साल से माँग रही हूँ फिर भी ये नहीं देते।

दादाश्री : वह तो तेरा प्रारब्ध टेढ़ा है। तेरा प्रारब्ध यदि तैयार होगा न, तो इस दुनिया में हमारे मना करने पर भी लाकर दे जाएँगे। अभी अंतराय नहीं टूटे हैं। ये अंतराय हैं। अब अंतराय तोड़ देते हैं उस चीज़ के। मेरे सामने बात निकली है तो अंतराय टूटने लगेंगे।

'चंदू' खेद में और 'आप' ज्ञान में

अभी तक तो ऐसा कहते थे कि 'मुझे हुआ,' लेकिन अब ज्ञान के बाद इसका साथ मत देना कि 'मुझे हुआ!' अरे, आपको कैसे हो सकता है? आपको तो दादा ने अलग कर दिया! अलग नहीं कर दिया?

प्रश्नकर्ता : अलग ही हैं।

दादाश्री : हाँ, तो फिर अलग ही रखना चाहिए न! पूरा जगत् साइकोलॉजिकल (मानसिक) रोग से पीड़ित है, 'मुझे हुआ', कहकर। 'मेरा ही समधी मुझे गालियाँ दे गया', कहता है।

कोई भूल करने के बाद खेद नहीं हो, वह भी गलत है। खेद

तो होना ही चाहिए। उसे आपको जानते रहना है कि चंदूभाई बहुत खेद कर रहे हैं। तब फिर आप चंदूभाई का कंधा थप-थपा देना। इसका अवलंबन लेकर खेद बंद कर देंगे तो फिर कच्चा रह जाएगा। खेद तो होना ही चाहिए। जिसने उल्टा किया, उसे उसका खेद तो होना ही चाहिए। अतः खेद होने के बाद आप कहना कि, 'अब भूल के प्रतिक्रमण करो, प्रत्याख्यान लो। हम हैं न, आपके साथ। चलो शक्ति माँगो'। यह तो अक्रम विज्ञान है।

लोगों की दृष्टि में, शुद्धात्मा बन गए या चंदू रहे?

लोग आपको कब पहचानेंगे? वर्तन अच्छा होगा, तब। 'ये शुद्धात्मा बन गए हैं', ऐसा कब पहचानेंगे? अभी तो सब ऐसा ही जानते हैं न कि चंदूभाई हैं? और आप ऐसा समझते हो कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। आपका ज्ञान अलग है और लोग जो जानते हैं, वह ज्ञान अलग है। अलग नहीं है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अतः लोगों को ऐसा पता नहीं है कि ये शुद्धात्मा बन गए हैं। शुद्धात्मा बन गए, ऐसा कब कहा जाएगा? बाहर का वर्तन बदल जाएगा, तब लोग समझेंगे। यानी कि लोग जानते नहीं हैं न, अभी तक। जानेंगे तब की बात अलग है।

क्या अभी कोई आपका शिष्य बनेगा? नहीं। क्यों? क्योंकि उल्टा-सीधा बोल देते हो, उल्टा वर्तन देखते हैं न सभी?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वर्तन देखते हैं।

दादाश्री : लोग तो, यदि उन्हें अनुभव होगा, उनके लिए कुछ कर दें और उन्हें आनंद हो, तब वे शिष्य बनेंगे। यह तो, जब आप ज्ञान की बात समझाते हो, तब भी वे समझ जाते हैं कि ये दादा की बातें बता रहे हैं। जब आप शुद्धात्मा स्वरूप में रहकर बोलोगे और आनंद होगा, तब वैसे बनोगे। लेकिन तब तक तो आपके शिष्य नहीं हैं न, अतः आपको पहला शिष्य चंदूभाई को बनाना है? नहीं समझे?

यानी 'आपको' चंदूभाई तो एक शिष्य, ज़बरदस्त अच्छे शिष्य मिल गए। उसे कहना, 'अरे... ऐसा कर, वैसा कर।' सावधान करना, समझाना, भूलें बताना, प्रतिक्रमण करवाना। वह बल्कि अच्छा रहेगा। यदि मैं कहूँ, तब भी मेरी बात कितने लोग सुनेंगे?! लेकिन यदि आप कहोगे तो चंदूभाई सुनेंगे।

खुद को ही खुद का शिष्य बनना पड़ेगा। इन चंदूभाई को आपका शिष्य बनाना है। अन्य कौन शिष्य बनेगा? चंदूभाई का कोई शिष्य बनेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं बनेगा। दादा, आपकी बात एकदम अच्छी है!

दादाश्री : जिस तरह इनकी फाइल नंबर वन ही उनकी शिष्य बनती है और उसी तरह चंदूभाई आपके शिष्य बन सकते हैं। हमारे तो सभी लोग शिष्य बन जाते हैं। जब आप मेरे जैसे बन जाओगे, तब बाहर के लोग आपके शिष्य बनेंगे।

[1.3]

जुदापन रखने के लिए, बातचीत का प्रयोग

समझो प्रयोग जुदापन का

प्रश्नकर्ता : सत्संग में आप बार-बार यह जुदा रखने के प्रयोग के बारे में बताते ही रहते हैं।

दादाश्री : मुख्य चीज़ वही है न!

प्रश्नकर्ता : यदि मन कुछ बताए, तो मन से कह देना कि तेरा नहीं चलेगा। यानी मन के साथ बात करते ही वह अलग हो ही जाता है।

दादाश्री : हाँ, अलग हो ही जाता है और इस देह को 'फाइल नंबर वन' कहने से भी अलग हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह जो आपका जुदापन का प्रयोग है, वह किस तरह से होता है? क्या आपको वह आसानी से एक्ज़ेक्ट अलग दिखता रहता है?

दादाश्री : दिखाई देता है वह तो। यह *पुद्गल* भाग और यह चेतन भाग। इस प्रकार से पूरा पहचान जाते हैं। ऐसी जागृति रहती है। जिस प्रकार लौकी की सब्ज़ी बनानी हो तो जागृति रहती है कि छिलके अलग निकाल देने हैं, डंठल अलग निकाल देने हैं। फिर काट लेते हैं फटाफट। उसी तरह से हमें जड़ और चेतन अलग ही रहते हैं।

ज्ञाता-द्रष्टा रहने का मतलब क्या है कि 'चंदूभाई क्या कर रहे

हैं', उसे आप जानो। चंदूभाई बच्चे को थप्पड़ मारकर कलह कर रहे हों तो आपको जानना चाहिए कि चंदूभाई अभी भी कलह करते हैं। आपको चंदूभाई से कहना चाहिए कि 'क्यों कलह कर रहे हो बिना बात के?' हाँ, खुशी से कहना चाहिए। और कभी उसे *ठपका* (फटकारना, उलाहना) भी देना चाहिए। कहना, 'चंदूभाई ऐसा क्यों कर रहे हो?' शादी हुई तभी से ऐसे ही थे वे। अब ज़रा सीधे हो जाओ न! दादा मिल गए हैं अब तो!

प्रश्नकर्ता : हाँ, और आपने अलग कर दिया, उसके बाद ये चंदूभाई सामने जवाब देते हैं कि 'नहीं! मैं तो ऐसा ही रहूँगा'।

दादाश्री : ना, अब वह नहीं बोलेगा। एक अक्षर भी नहीं बोलेगा।

खुद के साथ बातचीत का प्रयोग

प्रश्नकर्ता : ठीक है। आप कहते हैं कि, 'हम वाणी के ज्ञाता-द्रष्टा हैं, वाणी को 'देखते' रहते हैं कि क्या निकल रहा है', तो एक्चुअली अंदर इस तरह से कहते हैं, अंदर इस तरह से बातें कहते हैं, ऐसा ही कुछ है न?

दादाश्री : इस तरह से देखना सीखो। तू चंदूभाई को 'देखना' सीख।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन इस तरह से 'देखना' सीखना अर्थात् इस तरह से बातें करनी हैं न अंदर?

दादाश्री : बातें करने से और भी अधिक 'देखना' सीख सकते हैं। इन्टरेस्ट आता जाता है इसलिए अलग रहने का भाव होता जाता है और हैं ही इतने ज़्यादा अलग!

प्रश्नकर्ता : इस तरह बोलने से वास्तव में जुदापन का यह व्यवहार शुरू हो जाता है।

दादाश्री : यों हँसी मज़ाक करने से, मज़ाक करने से, देखने

से जुदापन आ जाता है। मैं तो ऐसा भी कहता हूँ न 'कैसे हो! मज़े में हो न! अंबालाल भाई, मौज में आ गए हो, कुछ हुआ लगता है!' इसलिए हम फ्रेश रह सकते हैं न! यों हम पूरे दिन फ्रेश रहते हैं इसलिए इतना काम करते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने बहुत सालों पहले कहा था कि, 'खुद से बातचीत करना। शक्ति बहुत बढ़ जाएगी।' अतः यह बातचीत का प्रयोग बहुत ही उच्च चीज़ है। अपने अक्रम विज्ञान के बारे में जो कहें न, तो इतना, यह जुदा रखने की प्रक्रिया पूरी आधार जैसी चीज़ है।

दादाश्री : हम कहें कि 'ज़्यादा चाय पीना तेरे लिए अच्छा नहीं है'। तब यदि वह कहे कि 'नहीं! पीनी है।' 'तो पीओ फिर।' बातचीत करके जुदापन का लाभ ले लेना है हमें।

प्रश्नकर्ता : सही है, और इस तरह की बातचीत से बाहर की *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) तो अपने आप हो ही जाएगी। यह सब उपयोगपूर्वक कहा जाएगा न? यों बाहर पूरा बीमारी का असर हो, वीकनेस हो फिर भी अंदर बातचीत चलती ही रहेगी?

दादाश्री : वह तो रहेगी ही।

प्रश्नकर्ता : उस समय आप क्या बात करते हैं?

दादाश्री : सभी। वह तो जैसा है वैसा ही।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आप अंदर पूछते हैं? 'कैसी लग रही है तबियत', ऐसा पूछते हैं? ऐसा सब करते हैं?

दादाश्री : ये भाई अगर कहें कि, 'दादा, अब रूम में अंदर थोड़ा चलिए, घूमिए।' तो वे घूमते हैं। उस समय मैं देखता रहता हूँ कि 'ओहोहो! कैसे दिख रहे हैं! क्या हालत हुई है आपकी? आप जिस तरह से चल रहे हो उस पर मुझे हँसी आ रही है कि यह हालत तो देखो! किसी को छूने नहीं दें ऐसे इंसान, तो आज आपको हाथ पकड़कर चलाना पड़ रहा है!'

प्रश्नकर्ता : तो इसमें, वह जो किसी को छूने नहीं दें, वही आप! हाथ पकड़कर चलते हैं, वह भी आप! सब पूरा अलग हो जाता है। इसमें अंहकार बिल्कुल भी नहीं रहता। मालिकी भाव नहीं रहता। सबकुछ खत्म हो जाता है पूरी तरह से!

दादाश्री : हम छूट देते हैं उसे कि जो करना हो कर। फिर हम उनके साथ ऐसी मज़ाक भी कर लेते हैं कि 'ओहोहो! आप पर तो कोई असर ही नहीं होता न! अब तो आप पूरे भगवान बन गए लगते हो न!' तब कहते हैं, ''नहीं, 'आप' भगवान हैं, 'मै' नहीं हूँ भगवान।''

'मैं' भी पटेल से करता था बातें

अज्ञान अभी भी इसका रक्षण करता है। अगर हम उससे कहेंगे न, तो ठीक हो जाएगा। कहेंगे कि, 'तुझे जिस रास्ते जाना हो उस रास्ते जा। वर्ना अपने घर पर क्या गलत थे?'

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : प्लानिंग बहुत बड़ी है। प्रगति नहीं करनी है क्या मेरी उपस्थिति में? वर्ना ऐसा कहते ही फाइल नंबर वन से बातें करने लगते।

मैं पटेल से (खुद के साथ) बहुत बातें करता था। मुझे मज़ा आए वैसी बातें करता था। हम भी इतने बड़े छिहत्तर साल के अंबालाल भाई से ऐसा कहते हैं न!!! 'छिहत्तर साल की उम्र में कुछ सयाने हुए हो क्या? यह तो गढ़ने पर समझदार हुए'।

प्रश्नकर्ता : आप कब से बातें करने लगे थे?

दादाश्री : ज्ञान होने के बाद से। पहले तो कैसे बात करता मैं? 'मैं जुदा हूँ' ऐसा भान हुआ न, उसके बाद से।

जो शादी करने बैठे थे, उसे भी याद करके अंबालाल भाई से

कहता हूँ कि 'ओहोहो, आप तो कैसे शादी करने बैठे थे! फिर सिर पर से पगड़ी खिसक गई थी, तब फिर वैधव्य का विचार आया था आपको', ऐसा भी कहता हूँ। वह सब दिखाई देता है। साफा कैसे खिसक गया था और शादी का मंडप वगैरह कैसा था, वह भी दिखाई देता है। सोचते ही दिखाई देता है। हम कहते हैं और हमें आनंद होता है। ऐसी बात करने से वे खुश हो जाते हैं।

'हमारे' अनुभव की बात

मैं फर्स्ट क्लास में सफर नहीं करता था क्योंकि दूसरे पैसन्जर्स फिर पीछे पड़ते हैं। मुझे टेढ़ा बोलना नहीं आता। पॉलिश करना नहीं आता। वह पूछे कि, 'आपका पता क्या है?' तो मैं बता देता था तब फिर वह घर पर आ जाता था। अतः ये सब तो परेशानियाँ हैं, बेहिसाब। इसके बजाय मेरे सगे भाईयों जैसे थर्ड क्लास वाले पैसन्जर्स अच्छे हैं। आते-जाते किसी की ठोकर लगे तो अंदर क्या कषाय भाव भरे हुए हैं, उनका पता चलता था। किसी की ठोकर लगे तो सब पता चल जाता कि क्या कमियाँ हैं। यानी इस तरह सभी कमियाँ निकल जाती हैं।

फिर यदि अगर पैर दुःखने लगें न, तब मैं क्या कहता हूँ, 'अंबालाल भाई आपके पैर बहुत दुःख रहे हैं। नहीं? थक गए हो। क्योंकि इसी तरह एक जगह बैठे रहे होंगे इसलिए पैर दुःख रहे हैं।' तो फिर वापस बाथरूम में लेकर जाता हूँ और वहाँ जाकर कंधा थपथपाता हूँ, 'मैं आपके साथ हूँ न, क्यों डर रहे हो? हम, शुद्धात्मा भगवान हैं न आपके साथ', तब फिर वापस फर्स्ट क्लास हो जाते हैं।

मुश्किल में पड़ जाए तब कंधा थपथपाकर कहना, 'पहले एक थे लेकिन अब दो हो गए हैं'। पहले तो किसी का सहारा ही नहीं था। अपनी तरह से खुद ही खुद का सहारा ढूँढते रहते थे। अब एक से दो हो गए हैं। ऐसा कभी किया था या नहीं किया?

प्रश्नकर्ता : किया है।

दादाश्री : उस समय हमें कुछ अलग ही तरह का लगता है

न? जैसे पूरे ब्रह्मांड के राजा हों न, हमें उस तरह से बोलना है। यह सब, मेरे अनुभव की सारी बातें आपको दिखा दीं।

हर एक से करते हैं बातें दादा

यह कब से पूछ रहा है, 'पिस्ते लाऊँ? आम लाऊँ?' अरे, पिस्ते बैठे हुए हैं, उन्हें यह उठाएगा वापस! वह भी ऐसा करता है, 'दादा, यह लाऊँ, आम लाऊँ?' अब बैठा रहने दे न एक जगह पर उन्हें, पिस्तों को!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी वाणी में है न, वह टिन की पेटी रखते थे न, पेटी से कह दिया था कि 'तुझे जब जाना हो तब जाना'। तो उसके साथ भी बातचीत।

दादाश्री : तुझे जब जाना हो तब जाना, हमारी इच्छा नहीं है। हम तो ये सो गए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर तू जाए तो मुझे हर्ज नहीं।

दादाश्री : नहीं। यों, 'हर्ज ही नहीं है', ऐसा नहीं कहते। 'तुझे जब जाना हो तब जाना, हमारी इच्छा नहीं है।' 'हर्ज नहीं है' ऐसा कहेंगे तब तो वह चिढ़कर चली जाएगी। हमें तो ऐसा कहना चाहिए कि 'हमारी इच्छा नहीं है' और फिर 'तुझे जाना हो तो जाना'।

प्रश्नकर्ता : उस स्टीमर के कान में भी फूँक मारी थी।

दादाश्री : हाँ, फूँक मार दी। 'जब डूबना हो, तब डूबना हमारी इच्छा नहीं है। यदि हमारी इच्छा तुझे डुबोने की होती तो यह पूजा किसलिए की?' पूजा-वूजा करवाकर फिर (तैरने के लिए) छोड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : इसमें खूबी यह है कि हर एक से, स्टीमर, बैग, चाय हो या पिस्ते हों, उन सब के अस्तित्व से बातचीत होती है।

दादाश्री : हाँ, वह ऐसा ही है न! ये सब लोग बुद्धि से कहते हैं, 'कल दोपहर को खाना खाने आना' तो वह आज दखल नहीं

करेगी। जब तक ये लोग कहेंगे नहीं, तब तक वह अंदर सिर उठाती रहेगी। यह सब तो ऐसा ही है, भीतर। यह भी, अब चंचलता वाला चित्त, मिश्रचेतनता है, पावर वाला है। यदि नहीं कहेंगे तब तो फिर आ भी सकती है वापस, वह अपना काम किए बगैर नहीं रहेगी।

ट्रेन में यों बैग रखकर सो जाते हैं हम तो। लोग कहते हैं, 'यहाँ पर बैग उठा ले जाते हैं'। अरे, वह बात जान ली। अब क्या ऐसा जानकर वह इतना हितकारी रहेगा? पूरी रात जगाएगा। और तुझे झपकी लगेगी, उसी समय ले जाएगा। अब छोड़ न यह सब। इसके बजाय तो सो जा न चैन से। यदि होना होगा, तो क्या ले जाने वाला इंतज़ार करेगा? इसके बजाय पूरी रात सो जाएँ। 'तुझे जब जाना हो तब जाना, हमारी इच्छा नहीं है।' लेकिन वह सुबह दिखाई तो देती है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए जूतों से भी कह दिया था।

दादाश्री : हाँ, जूतों से कहा था, 'तुम्हें जब जाना हो तब जाना' मैं कहाँ तुम्हारे लिए परेशान होऊँ सारी रात! मुझे तो सोए रहने दो न आराम से! किस तरह से जाते हैं और आते हैं, वह हम जानते हैं, पहले से ही। इसलिए वह आपको बता देते हैं।

प्रश्नकर्ता : इसमें यह जो बातें करने का है, उस प्रयोग का पूरा हेतु क्या है?

दादाश्री : इसलिए क्योंकि वह एक्ज़ेक्ट फल देता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा तो किसी को विचार ही नहीं आ सकता कि इनसे बातें करें। आपने किस तरह से यह प्रयोग ढूँढ निकाला?

दादाश्री : जब तक बुद्धिकला और ज्ञानकला नहीं फूटते, तब तक ऐसे विचार कैसे आ सकते हैं? यह तो बुद्धिकला है। ऐसी कला कहाँ से हो सकती है इंसान में? ऐसा सामर्थ्य नहीं है न! अगर एक बार अभी साथ में रहे, उसके बाद थोड़ी सीखे, तब बुद्धिकला आती जाती है उसमें। फिर अपने आप ही फूट निकलती है कुछ समय बाद,

लेकिन बुद्धिकला जानता ही नहीं है न! बुद्धि नामक कला। वे तो अंदर ही अंदर कहेंगे, 'इनके ब्रेन टॉनिक ज़बरदस्त हैं।' अरे! नहीं भाई, ब्रेन तो, मुझसे भी बड़े-बड़े बहुत हैं। बड़े-बड़े सोलीसिटर्स के! यह तो हमारी बुद्धिकला है।

ज्ञानी की पसंद - नापसंद

प्रश्नकर्ता : क्या आपको कभी लाइक या डिसलाइक जैसा कुछ होता ही नहीं है?

दादाश्री : होता है। यहाँ पर (नीचे) बैठना हो तो उदयकर्म कहता है, 'डिसलाइक' और फिर 'हम' कहते हैं कि 'लाइक है!' यानी उदयकर्म तो कहेगा न! हर बात में नहीं, किसी-किसी बात में कहता है। जितना साफ नहीं किया है, उस बारे में कहता है। जितना साफ हो गया हो, उस बारे में नहीं कहता। अगर अंदर से उल्टा बोले तो हमें सीधा बोलना चाहिए। वह बोले कि कमज़ोरी लग रही है, तो कहना बोलो चंदूभाई, 'अनंत शक्ति वाला हूँ' प्लस-माइनस तो करना पड़ेगा न!

दर्पण में पूर्ण जुदापन

प्रश्नकर्ता : सभी प्रकार की परवशता से मुक्त कैसे हो सकते हैं?

दादाश्री : परवशता तो चंदूभाई को है, आपको नहीं है न? आपको चंदूभाई से कहना है, 'हम हैं तेरे साथ। तुझे कोई परेशानी है क्या? घबराना मत। तू लोगों के वश में मत रहना। हमारे वश में रहना। और किसी के वश में मत रहना।' ऐसा कहना। यों जुदापन की जागृति है, लेकिन यदि इस तरह से बोलना नहीं आए तो यों दर्पण में दिखाकर बातचीत करना। तुझे दिखाई देता है या नहीं? तुझे अच्छा लगा न? तुझे यह रास्ता अच्छा लगा न? हाँ। यदि हम से पूछो तो हम जो रास्ता अपनाते हैं, वही रास्ता आपको दिखाएँगे।

प्रश्नकर्ता : हम भी करेंगे न!

दादाश्री : यदि (रास्ता) करना हो तो यह रहा दर्पण, कौन मना करता है? ''मैं साथ में हूँ और 'दादा' का आशीर्वाद है। बता, क्या अड़चन है?'' बस। तो हो जाएगा चुप। हम ऐसा ही करते थे। फिर भले ही पैर दुःख रहे हों, लेकिन पूरी रात निकल जाती थी। 'हम हैं न तेरे साथ' इतना कहते, या उसके साथ बातें करते थे। वर्ना और कोई आश्ववासन देने वाला नहीं है न! यदि किसी आदमी को बहुत नुकसान हो जाए और कोई कहे 'हम हैं तेरे साथ' तो उस बेचारे को रात को नींद आएगी, लेकिन अभी तो ऐसा कोई कहने वाला ही नहीं है न?'

जानते हैं खुद को बचपन से ही

इस ज्ञान के बाद अब आप में क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं रहे। अब आप में किसी तरह का कुछ भी नहीं रहा। सर्वस्व शुद्धात्मा बन गए हो आप। अब मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, सब चंदूभाई का और आपको कोई लेना-देना नहीं है। और मन में *कढ़ापा* (क्लेश) करे या *अजंपा* (अशांत) करे, वह सब आपको देखते रहना है।

आपके अब घर बदल गए हैं। आपका विभाग शुद्धात्मा विभाग और यह है चंदूभाई का विभाग। तो आपको दोनों विभागों का ध्यान रखना है। अब यह मन चंदूभाई के विभाग में गया, अब आपको इस मन का उपयोग नहीं करना है। मन जो कुछ भी करे, वह दाँव-पेंच खेले या कुछ भी, देखते रहना। यदि मन खराब हो जाए और चंदूभाई परेशान हो जाएँ तो फिर पीछे से आप कंधा थपथापा देना कि, 'हम हैं आपके साथ।' घबराना मत। हमारा कंधा थपथपाने वाला कोई मिलेगा नहीं इस दुनिया में। हम खुद ही थपथपाएँगे, तभी। हम शुद्धात्मा भगवान हैं। पहले कोई कहने वाला ही नहीं था न! कंधा थपथपाने वाला कोई था नहीं न!

यह अपना शुद्ध उपयोग कहलाता है। जब कोई नहीं हो तब हमें कहना चाहिए कि 'चंदूभाई, आज आपने अच्छा किया' और अगले दिन ज़रा चिढ़ जाए तो कहना चाहिए कि 'भाई इस तरह चिढ़ना अच्छा

नहीं है, अतः प्रतिक्रमण करो।' होता है या नहीं होता ऐसा? बस, इतना ही करना है हमें। आप पहचानते हो या नहीं पहचानते फाइल नंबर वन को?

प्रश्नकर्ता : हाँ, अच्छी तरह से। दादा के पास आने के बाद से इस पड़ोसी को अच्छी तरह से पहचान गए।

दादाश्री : बचपन से पहचानते हो? उसका जीवन चरित्र पहले से पूरा जानते हो या नहीं जानते?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : तो फिर आपको उससे कहना है कि 'भाई, अब ऐसा नहीं चलेगा। अब ऐसे चलो। अभी तक तो हम सो रहे थे तो आपका चल गया लेकिन अब हम जाग ही रहे हैं। अब जाग गए हैं तो चलो अब पिछली बातों का दंड नहीं देंगे आपको लेकिन अब जाग गए हैं तो हमारी मर्यादा रखो' तो वह इतनी अच्छी मर्यादा रखेंगे। वास्तव में मर्यादा रखेंगे। यह तो ऐसा है कि कोई बताने वाला होना चाहिए। क्योंकि अपनी उपस्थिति में अपने घर पर उन सभी ने खाया है उसके बाद भी यदि वे अपने नहीं बनेंगे तो किसके बनेंगे?

और प्रकृति से छूटता जाता है आतम...

दर्पण में देखकर रोज़ चंदूभाई से कहना तो आत्मा अलग होता जाएगा। अगर प्रकृति से आत्मा अलग होता गया तो काम हो जाएगा। बोतल का कॉर्क ढीला हो जाए तो काम नहीं आता न? लोग कहते भी हैं न, 'ढीला हो गया है।' ढीला हो भी जाता है न? और यदि आत्मा प्रकृति से ढीला (अलग) हो जाए, वह तो अच्छा है। हम अच्छी तरह कस कर लगा दें, तब भी वापस अलग का अलग। ज़रा दर्पण में देखकर कहोगे न, तो आत्मा अलग हो जाएगा। बाद में फिर हम मज़बूत करने जाएँगे तब भी नहीं होगा। ढीला पड़ गया है। दिया हुआ आत्मा, शुद्धात्मा है। ढीला होने पर अन्य और कोई बिगाड़ साथ में नहीं आएगा। दिया हुआ शुद्धात्मा है इसीलिए अलग हो सकता है।

हम पूछेंगे तो जवाब मिलेगा। आप चंदूभाई से बात करो न! कभी की है क्या? अगर आप चंदूभाई से पूछो कि 'क्या आपको अब कोई हिंसा करने के भाव होते हैं?' तब वे मना करेंगे। 'किसी का ले लेना है?' तब कहेंगे, 'नहीं'। पूछने पर जवाब देंगे या नहीं?

प्रश्नकर्ता : देंगे।

दादाश्री : क्योंकि मिश्रचेतन है न! हाँ, आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ता। सिर्फ आत्मा की उपस्थिति से ही, यह मिश्रचेतन चलता है!

खुद ही अपना कंधा थपथपाना

कभी अगर चंदूभाई ढीले पड़ जाएँ, तो कंधा थपाथपा देना। कोई कंधा थपथपाने वाला भी नहीं मिला। इंसान कितना परेशान हो जाता है बेचारा! पाँच लाख का नुकसान हो जाए और पिता को जाकर बताए तो वे कहेंगे, 'पाँच लाख का नुकसान हो गया? तुझ में बरकत ही नहीं है।' अरे भाई, वह तो आश्वासन लेने आया है, फिर भी उसका यह हाल किया? पत्नी से कहता है, उसे लगता है कि, 'शायद पत्नी मुझे आश्वासन देगी, मेरा आधा अंग है न, अर्धांगिनी मुझे आश्वासन देगी'। तब वह कहती है, 'हम तो आपसे रोज़ कहते थे कि ज़रा दुकान पर जाकर बैठो। यह मुनीम ठीक नहीं है।' तो यह आश्वासन! अरे भाई, अभी मुझे जो आश्वासन चाहिए, वह आश्वासन दे न! तो अब आपको कंधा थपथपाकर आश्वासन देना है कि 'हम हैं'। ऐसा आश्वासन कोई नहीं देगा। अब देखो न, एक बार थपथपाकर तो देखो। देखो, चंदूभाई दौड़ते हैं न! कभी कोई एक बार भी कंधा थपथपाने वाला मिला ही नहीं है इस दुनिया में। ये जितने हमारे अनुभव वाले प्रयोग हैं न, वे सभी अनुभव आपको दे दिए हैं। जिन हथियारों का उपयोग मैंने किया है, वे दे दिए।

हम दर्पण के सामने देखकर थपथपाते थे तो ये सयाने हो गए, देखो ये, छिहत्तर की उम्र में। अब छिहत्तरवाँ लगेगा... यों ही नहीं

बिताए हैं! क्या कोई थपथपाता है? तेरे घर पर कोई थपथपाता है? कोई नहीं थपथपाता। घर पर तो पूरा अहंकारी। उल्टा ही बोलते हैं। ये तो कहेंगे, 'मैं तुझे शुरू से ही मना कर रहा था? बेवकूफ! देख आखिर में उल्टा कर दिया न तूने?' 'अरे भाई, इसलिए नहीं आया हूँ, अभी तो मुझे आत्महत्या करने का मन हो रहा है, इसलिए मैं आपके पास आश्वासन लेने आया हूँ,' लेकिन तब भी चैन से नहीं बैठने देते। क्या हो सकता है अब?

उदासीन मन से बातें करो

प्रश्नकर्ता : मेरे साथ ऐसा होता है कि मुझे थोड़ा लिखना है। संस्था का कुछ काम करना है। फिर किताब लेकर बैठता हूँ, कुछ देर बाद उस किताब में ज़रा सा भी मन नहीं लगता और फिर आप्तसूत्र या दादा की कोई किताब लेकर पढ़ने लगता हूँ। 'इसे कल करूँगा', ऐसे करते-करते दिन बीतते जाते हैं। काम हाथ में लेता हूँ लेकिन ऐसा लगता है कि, 'नहीं करना', रख देता हूँ। यानी मन, इतना उदासीन हो गया है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

दादाश्री : नहीं, लेकिन आप चंदूभाई को थोड़ा-बहुत कहो, थोड़ी बातचीत करो। अब आपको चंदूभाई से बातचीत करनी चाहिए ताकि ज़रा उस तरफ मुड़े। भेद रखना पड़ेगा। आपको जुदा रहकर बोलने में कोई हर्ज नहीं है। जुदा रहकर बोलोगे न तो धीरे-धीरे रास्ते पर आ जाएगा। तो ज़रा इतना सुधारना न! आप चंदूभाई से बातचीत करना। कोई काम कल होने को हो तो आप चंदूभाई से कहना कि 'भाई यह कल की बजाय आज कर आओ न!' तो फिर क्या होगा? वह होता रहेगा और ज़रूरत है इसकी। वास्तव में यह तो, यह जो आवश्यक है न, वैसा किए बगैर चारा ही नहीं है न! यदि उस समय का उपयोग वहाँ पर होना होगा और उस अनुसार यह होने वाला होगा तो वह करेगा। करना तो पड़ेगा न! खाना खाने में देर कर रहे हों, तब कहना, 'खाना खा लो न समय से। क्या परेशानी है?'

आप देखो, बातचीत करके देखो तो सही। तब फिर आपको

ऐसा नहीं लगेगा कि 'मुझ पर कोई असर हो गया है'। क्योंकि आप अलग हो गए। आप अलग हुए, अब इसे कहना, आपका फर्ज़ है उसे चेतावनी देने का। फर्ज़, पड़ोसी के रूप में। पड़ोसी के रूप में फर्ज़ नहीं है क्या? क्या लगता है?

वह तो भरा हुआ माल है। वह निकलेगा तो सही न? अगर नहीं निकलेगा तो अंदर दुर्गंध मारेगा कोठी में। फिर, बुढ़ापे में निकलने के बजाय तो, अभी यह शरीर अच्छा है, अभी कोई दिक्कत नहीं है न? शरीर मज़बूत है न? हमें कुछ बताओगे तो आपके बारे में पता चलेगा न? लेकिन शरीर को अब दोष मत देना। शरीर से कहना 'तू मत घबराना, तेरा दोष नहीं है। दोष किसका था, वह मैं जानता हूँ' अहंकार का दोष था। अहंकार ने भरा है यह सब।

ऐसे किया जाता है 'प्रकृति' को टैकल

प्रश्नकर्ता : अब वैसा कुछ नहीं करना है। आपने जो आज्ञा दी है कि आपको अब कुछ नहीं करना है। अब किसी व्यक्ति को कुछ पढ़ने का मन हो, किसी व्यक्ति को क्रिया करने का मन हो तब भी उस समय यह उपयोग रहता है कि 'यह मुझे नहीं करना है, यह तो मेरा उदयकर्म है और मुझे इसे डिस्चार्ज समझकर निकालना है'।

दादाश्री : यह मैं नहीं कर रहा हूँ, यह चंदूभाई कर रहे हैं। इस तरह चंदूभाई के नाम से ही व्यवहार रखना आप। उदयकर्म बोलना ही न पड़े। 'चंदूभाई, कैसे हो? आपकी तबियत अच्छी है या नहीं?' सुबह उठकर ऐसा सब पूछना। क्योंकि अपने पड़ोसी हैं न! हर्ज ही क्या है? इस तरह आप उनसे काम तो लेना। देखो, कैसा सुंदर करते हैं! प्रकृति के साथ...

प्रश्नकर्ता : लड़ने की ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : नहीं। प्रकृति के साथ एडजस्ट होना आना चाहिए। प्रकृति तो सुंदर स्वभाव वाली है।

प्रकृति बहुत सुंदर होती है लेकिन हम उसे उलझा देते हैं। अतः

हम ऐसा भी कह सकते हैं, 'अब तो आप इन पुत्रों के फादर हो, बेटियों के फादर हो, आपकी तो बात ही अलग है न! आप बड़े वकील बन गए,' इस तरह बातचीत करने में कोई हर्ज नहीं है। रूम बंद करके बातचीत करना। हम तो बोलना किसे कहेंगे? कि जितना अपने कानों को सुनाई दे, उतना। दूसरा कोई नहीं सुने, सिर्फ अपने कान ही सुनें। लेकिन ऐसे बोलते ही नहीं हैं न! और हम हो गए हैं अलग, इसीलिए अलगपने का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। कुछ लोग तो इस तरह बात करते हैं और अंदर प्रत्यक्ष जुदापन का अनुभव करते हैं। लेकिन आपको, 'कैसे हो, कैसे नहीं', ऐसा पूछने में क्या हर्ज है? पड़ोसी बनकर पूछो तो हर्ज क्या है? फिर भी चाय तो पीएँगे ही और क्या चाय अपनी है? वह उसी की चाय है। अपनी है ही नहीं न! 'ज़रा डेढ़ कप चाय-वाय पीओ', कहना। और सामने वाले से कहना, 'दो, चंदूभाई को चाय दो'। हँसते-खेलते मोक्ष में जा सकें, ऐसा मार्ग है।

सौ प्रतिशत जुदापन का अनुभव

प्रश्नकर्ता : जब अकेले बैठे हों, शाम को बैठे हों, तब चंदूभाई को देखते रहना है कि...

दादाश्री : चंदूभाई को देखना है कि उनका मन क्या कर रहा है, उनकी बुद्धि क्या कर रही है, अहंकार क्या कर रहा है, वह देखते रहना है और जब सब शांत हो तब चंदूभाई अलग दिखाई देंगे, उन्हें देखते रहना। दर्पण में चेहरा देखोगे न तो चंदूभाई दिखाई देंगे। उन्हें देखते रहना। फिर हम ऐसा भी कह सकते हैं कि, 'चंदूभाई, आप तो बहुत अच्छे हो। बहुत समझदार दिखाई देते हो!' हम ऐसा सब कह सकते हैं। हम उनसे बातें करेंगे तो सौ प्रतिशत अलगपन है, ऐसा अनुभव होगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कि दिन के अंत में बैठकर हमें चंदूभाई को देखना है और याद करके ऐसा कहना है कि 'आज सुबह तूने ऐसा किया था। आज दोपहर को गुस्सा किया था...'

दादाश्री : हाँ, ऐसा सब कह सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसी को 'देखना' कहा जाएगा न? प्रकृति को 'देखा' ऐसा कहा जाएगा न?

दादाश्री : हाँ, 'देखने' के बाद हम ऐसा कह सकते हैं कि 'ऐसा जो किया है, वह शोभा नहीं देता। अब तो उम्र हो गई। अब तो मोक्ष में जाना है न?'

प्रश्नकर्ता : हाँ। यदि गुस्सा हो जाए तो फिर हमें उन्हें डाँटना है कि, 'आप यह क्या कर रहे हो? दादा से मिलने के बाद भी अब ऐसे गुस्सा करते हो, शोभा नहीं देता।'

दादाश्री : हाँ, बस। 'यह आपको शोभा नहीं देता।' हाँ, इस तरह डाँट सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : इसे 'देखना' कहा जाएगा न?

दादाश्री : हाँ, उसे 'देखना' कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उसे अनुभव कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ, उसे अनुभव कहा जाएगा। आप थोड़ा-बहुत ऐसे कह सकते हो कि 'अब आपकी उम्र हो गई है। अब ज़रा ऐसा सोचो। सास यहाँ नहीं है इसलिए रौब जमा रही हो', ऐसा कहना चाहिए। सास डाँटे तो क्या करोगी? 'कोई कहने वाला नहीं है इसलिए आप ऐसा कर रही हो?' जितना कह सको उतना कहना। इसमें कहाँ इज़्ज़त चली जाएगी? इज़्ज़त तो गई हुई ही है न! इज़्ज़त तो गई हुई है इसीलिए तो ये दादा मिले हैं और इज़्ज़तदार लोग तो देखो कैसे घूम रहे हैं! उन लोगों को अंदर ही अंदर चिंता करनी है लेकिन बाहर इज़्ज़त रखनी है कि 'बाहर इज़्ज़त नहीं बिगड़ने देंगे!'

बाघ देखकर बीमार कैसे दौड़ता है

पूरा जगत् अवस्था में ही तन्मयाकार रहता है। अज्ञानी की समझ कैसी होती है? अवस्था में ही तन्मयाकार। जो अवस्था उत्पन्न हुई, उसी में तन्मयाकार। गरीबी की अवस्था उत्पन्न हुई तो गरीबी में, धनवान

की अवस्था उत्पन्न हुई तो उसमें तन्मयाकार। यों साँड की तरह घूमता है। यानी तन्मयाकार होकर घूमता रहता है। बुखार आए तब, 'मैं क्या करूँ? चला नहीं जा रहा। मैं क्या करूँ?'

अरे बेकार ही, 'चला नहीं जा रहा, चला नहीं जा रहा' ऐसा कहकर बल्कि कमज़ोर बन जाता है। जैसा बोले वैसा बन जाता है। आत्मा का स्वभाव है कि जैसा बोले खुद वैसा ही बन जाता है और बुखार वाला तो कहता है, 'चला नहीं जाता, पैर तो चल ही नहीं रहे।' फिर पैर समझ जाते हैं कि 'हमें कह रहे हैं कि चल नहीं रहे। तो कोई डाँटने वाला नहीं है', यदि हम कहें कि 'नहीं क्यों चलेगा? चल आगे!' ऐसे दो-एक बार डाँटोगे तो अपने आप चलेगा। नहीं क्यों चलेगा? करार किया है। करार पूरा नहीं हुआ है अभी। फाइल नंबर वन को खिलाते हैं, पिलाते हैं तो चलेगी क्यों नहीं? यह कैसी बात! मसालेदार चाय पिलाते हैं और घी में तले हुए पांव (पाउ) वगैरह सब खिलाते-पिलाते हैं, तब भी फिर कहता है, 'नहीं चल रहे?' तो हमें कहना है, 'चल। चलता है या नहीं?' बाघ पीछे पड़े तब चलेगा या नहीं? तो फिर बाघ पीछे पड़े और दौड़ें उसके बजाय समझो न कि बाघ पीछे पड़ा हुआ ही है न! संसार बाघ ही है न! संसार बाघ से भी अधिक विकट है। बाघ तो एक बार खाता है जबकि संसार तो जन्मोंजन्म खा जाता है।

करार के अनुसार ही चलना पड़ेगा न? उसे चलना है। हमें 'देखते' रहना है। 'अगर हम अपना फर्ज़ नहीं निभाएँ तो कहना। चलना है आपको, हम 'देखेंगे'!'

दोषों के सामने जागृति...

शूट ऑन साइट। दोष दिखाई दिया कि कहना 'चंदूभाई चलो, प्रतिक्रमण करो'। अब आपको चंदूभाई का दम निकाल लेना है। तब चंदूभाई कहेंगे, 'इस बुढ़ापे के कारण नहीं हो पाता', तब आप कहना, 'हम तुम्हें शक्ति देंगे।' तब वह कहेगा, 'दो।' तब फिर आपको बुलवाना

है, 'बोलो! मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' आप जब ऐसा बुलवाओगे न, तब फिर शक्ति अपने आत्मा में से उसमें जाएँगी। ऊब जाने पर भी हमें करना तो पड़ेगा ही न! पड़ोसी है न! और निश्चेतन-चेतन है। जीव के सिवा बाकी के पाँचों तत्वों में चेतन नहीं है! जिसे खुद के दोष दिखाई देने लगें, तभी से जानना कि अब हल आने को है।

जिसे अंतिम उपयोग रखना हो न, तो 'चंदूभाई अभी किस उलझन में हैं, चंदूभाई को कितना टेन्शन है', वह सब हमें 'देखते' रहना है, वही अंतिम उपयोग है!

प्रश्नकर्ता : टेन्शन का अनुभव हो रहा हो, वेदना का अनुभव हो रहा हो तो?

दादाश्री : वेदना का अनुभव नहीं करना है! उस अनुभव को 'देखना' है कि 'ओहोहो, चंदूभाई! खूब टेन्शन का अनुभव कर रहे हो? हम हैं न आपके साथ! कोई दिक्कत नहीं, चाय-वाय पीओ ज़रा।' आप बातें करना फिर।

प्रश्नकर्ता : इस तरह चंदूभाई से बातें करने को उपयोग करना कहा जाएगा न?

दादाश्री : यह अंतिम प्रकार का उपयोग है! चंदूभाई को 'देखते' ही रहना। चंदूभाई का टेन्शन कितना बढ़ा या घटा, वह सब 'देखते' रहो। फिर कहना 'हम हैं आपके साथ, घबराना मत।' बस, इतना ही करना है। वही उपयोग रखना है। चाहे कैसा भी टेन्शन हो जाए, फिर भी चंदूभाई को ही होगा न! आपको कैसे हो सकता है? आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : कोई इन्कम टैक्स वाला आ गया, तो अगर हिसाब होगा तभी वह शोर मचाएगा न! लेकिन अब अगर आ गया तो आपको क्या है? वह झंझट तो चंदूभाई को है!

इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद भी कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि

'मुझे हार्ट में घबराहट हो रही है।' जैसा दृढ़ हो चुका है, वैसा ही बोलते हैं। ऐसी भूल-चूक हो जाती है न, उसका क्या कारण है? उसके पास गृहित मिथ्यात्व है। अर्थात् इन लोगों ने कहा कि 'आप चंदूभाई हो। आपकी शादी करवाई, आप पास हो गए हो', लोगों ने जो कहा वह हमने संभालकर रखा। अब वह हिसाब निकल रहा है। हमें तुरंत कह देना है कि 'मैं चंदूभाई को पहचानता हूँ भाई।' 'पहचानता हूँ' ऐसा कहने पर चंदूभाई समझ जाएँगे कि 'अब यह कौन है भला?' ब्योरेवार (समझ में) आ जाना चाहिए।

आत्मा बन जाने के बाद तुझे हार्ट में घबराहट कैसे हो सकती है? तुझे क्यों होगा ऐसा? होगी तो इसे होगी! पड़ोसी को होगी। लेकिन प्रैक्टिस करनी पड़ेगी कि 'आओ चंदूभाई, जाओ चंदूभाई।' इस तरह से बगीचे में बैठे-बैठे बोलना। 'चंदूभाई, चाय-वाय पीनी है आपको?' ऐसी सब बातें करना। कोई ऐसा समझेगा कि, 'यह पागल है क्या?' इसलिए, इस तरह मत बोलना कि कोई सुन ले। लोगों से दूर बैठना आप। बोलने से अभ्यास होगा इसका।

खुद टेढ़ा चले तब

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान लेने के बाद भी अगर क्रोध आए तो क्या वह भी डिस्चार्ज कहा जाएगा?

दादाश्री : क्रोध किसे आता है, वह 'देख' लेना।

प्रश्नकर्ता : बहुत बार आता रहे, तब भी डिस्चार्ज कहा जाएगा?

दादाश्री : सौ बार आए या पाँच सौ बार आए, वह सब डिस्चार्ज ही कहा जाएगा न! आपको ऐसा कहना चाहिए कि 'चंदूभाई, बहुत अकुलाते रहते हो। माफी माँगो सभी से।' आप नहीं कहते ऐसा? भूल तो एक्ज़ेक्ट हो चुकी है।

प्रश्नकर्ता : हम उन्हें बहुत कहते हैं। चंदूभाई को हम बहुत डाँटते हैं, फिर भी वे टेढ़े चलें तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तो वे जब टेढ़े चलें तो उन्हें 'देखते' रहना। करना कुछ भी नहीं है। आत्मा में करने की शक्ति ही नहीं है। आत्मा अक्रिय स्वभाव वाला है और ज्ञाता-द्रष्टा परमानंदी है। जो कुछ भी, 'करना है', वह इस *पुद्गल* का है। जो जड़ वस्तु है, उसी की हैं न ये सारी क्रियाएँ।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई *आड़ाई* करें और दूसरों को दु:ख हो जाए तो फिर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : माफी मँगवाना। '*आड़ाई* की है तो उसके लिए माफी माँगो' कहना। यह अक्रम विज्ञान कितना सुंदर है कि आपको कुछ नहीं करना है, बल्कि चंदूभाई से कहना है, डाँटना है, 'आप इन पर किसलिए चिढ़े? ऐसा क्यों करते हो?' कहना चाहिए। चंदूभाई से कहना कि 'तेरा कहा हुआ मैं सबकुछ करूँगा लेकिन एक घंटे हमारे कहे अनुसार रहना।' एक घंटे दादा की आज्ञा में रहना और फिर चंदूभाई के कहे अनुसार करना, उसे भी फिर देखना है। ध्येय से विरुद्ध करवाए तो मत मानना।

कोई गाली दे तब...

प्रश्नकर्ता : जब कोई खराब व्यवहार करे, तब मुझे क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आप चंदूभाई से कहना, 'देखो न! आपकी फोटो तो देखो।' ऐसा बोलते रहना। ताकि आपको कुछ स्पर्श न करे। चंदूभाई शांत दिखाई देंगे। सामने वाले के मन में ऐसा होगा कि ये इतनी ठंडक (शांति) में कैसे रह पाते हैं?

अब यदि कोई चंदूभाई को गाली दे रहा हो, फिर भी आप तो अलग हो। वह आपको पहचानता ही नहीं है फिर आपको कैसे गाली देगा? वह चंदूभाई को पहचानता है। चंदूभाई तो आपका स्वरूप नहीं है। चंदूभाई आपसे अलग हैं। चंदूभाई अर्थात् फाइल नंबर वन, तो फिर उसका असर आप पर कैसे होगा? अब असर नहीं होगा न?

कहना, 'तुझे देनी हो उतनी दे'। आप चंदूभाई से कहना 'तूने कुछ किया होगा, इसीलिए गाली दे रहा है, वर्ना कौन देगा?'

शास्त्रकारों ने कहा है कि यदि तू अपना शुद्धात्मा पद नहीं चूकेगा तो तू मुक्त ही है और अगर चूक जाएगा तो तप चला जाएगा। तप तो करना पड़ेगा। लोग निंदा करें तब भी आपको तप करना पड़ेगा। लोग मज़ाक उड़ाकर हँसें, तो हमें भी मज़ाक में हँसना है कि 'ओहोहो! चंदूभाई आप कैसे इंसान हो! देखो ये लोग कैसा कह रहे हैं! चंदूभाई देखो आपकी यह दशा, लोग क्या बातें कर रहे हैं! निंदा कर रहे हैं! कैसे थे आप! हम भी यह जानते हैं कि आप ऐसे थे।' ऐसा कहना चाहिए।

इसी को अक्रम विज्ञान कहते हैं। फिर बंधेगा ही नहीं। यहाँ तप करना है। लेकिन यदि इस तरह से अलग रहकर बोलेंगे तो फिर तप रहा ही कहाँ? आप भी कहने लगो न कि 'चंदूभाई, देखा आपका यह? यह दुनिया तो देखो आपकी! यह कैसी दशा है आपकी!' हमें भी शर्म आती है!' इस तरह मन ही मन चंदूभाई से बातें करना, लोग सुनें नहीं, उस तरह से।

कुछ गलत हो जाए तो कुछ लोगों को घबराहट हो जाती है कि 'मुझसे ऐसा हो जाता है।' अरे भाई, ऐसा मत बोलना। जो गलत करे, उससे कहना कि 'प्रतिकमण कर। अतिक्रमण क्यों किया?' जो गलत करता है, उसे नहीं पहचानते क्या हम?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई को तो पहचानते हैं।

दादाश्री : वे तो हमेशा के परिचित हैं, पुराने संबंध वाले। 'गलत क्यों किया? प्रतिक्रमण करो।' यानी ऐसा साबित हो गया कि हम अलग हैं।

जागृति : लोभ और मान के सामने

प्रश्नकर्ता : शब्दों में नहीं रख सकते लेकिन अनुभव हो गया

न! आपसे ज्ञान लिया और फिर कुछ दिनों बाद ही कारखाने में सभी लोगों ने चंदूभाई को मारा। वर्ना यदि कोई चंदूभाई को मारे तो चंदूभाई चला नहीं लेते, सामना करते। ज्ञान से समता रही।

दादाश्री : ऐसा है कि मारपीट में समता रही, लेकिन लक्ष्मी में रहती है या नहीं, वह देखने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी में? लेकिन अगर ज्ञान परिणामित नहीं हुआ हो तो मारपीट के वक्त भी अहंकार खड़ा हो जाएगा न दादा?

दादाश्री : नहीं, लेकिन वह परिणामित हो गया है इसलिए वह मान कषाय तो बंद हो गया। अब है लक्ष्मी वाला कषाय। वह लोभ कषाय है। उस लोभ कषाय में समता नहीं रह पाती।

प्रश्नकर्ता : लोभ कषाय यानी यह कि चाहे कितना भी फायदा या नुकसान हो जाए, फिर भी हर समय मन सम स्थिति में रहे, वह?

दादाश्री : वह तो रहेगी, लेकिन व्यक्तिगत रूप से आपने एक व्यक्ति को 25000 रुपये दिए हैं और वह उल्टा बोले तब आपको क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : उस पर एकदम गुस्सा आ जाएगा।

दादाश्री : नहीं, लेकिन ऐसा नहीं, पर उस समय ज्ञान रहेगा या चला जाएगा?

प्रश्नकर्ता : अब रहता है।

दादाश्री : वह शुद्धात्मा है। अगर चंदूभाई गुस्सा करें तो उसे हमें देखना है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है। चंदूभाई शायद गुस्सा करे।

दादाश्री : गुस्सा हो जाएगा क्योंकि भरा हुआ माल है न! लेकिन हमें वह देखना चाहिए और फिर चंदूभाई से कहना चाहिए कि 'ऐसा

क्यों करते हो! ज़रा सीधे रहो न! अनंत जन्मों से भटके हो, अब तो सीधे चलो'। फिर यदि वह कहे, 'चार आने भी नहीं दूँगा', तब क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : तो 'भुगते उसी की भूल' मानकर समाधान ला देंगे।

दादाश्री : तुरंत ही?

प्रश्नकर्ता : हाँ। ऐसे कभी लिए होंगे इसीलिए वह नहीं दे रहा।

दादाश्री : तो इसका मतलब लोभ कषाय खत्म हो गया। लोभ कषाय गया।

प्रश्नकर्ता : वर्ना यों तो लोभ कषाय खत्म होना बहुत मुश्किल है।

दादाश्री : बहुत मुश्किल है, लेकिन ऐसा है कि यदि आप अक्ल नहीं लड़ाओगे तो यह ज्ञान बिल्कुल सही स्टेज में रखेगा।

एक लाख बाकी हों और एक आना भी नहीं दे, तब भी अपना मुंह नहीं बिगड़ना चाहिए। मुंह बिगाड़ा तो खत्म हो गया!

प्रश्नकर्ता : दस लाख रुपये लेने हों और उनमें से बाद में दो-तीन लाख रुपये चले जाएँ, तब तो मकड़ी का एक पैर गया, लेकिन दस लाख के बदले जब बारह लाख का नुकसान हो जाए तो...

दादाश्री : अठारह लाख का हो जाए, तब भी क्या है?

प्रश्नकर्ता : तब रहना चाहिए।

दादाश्री : अठाईस लाख का नुकसान हो जाए, तब भी क्या है?

प्रश्नकर्ता : फिर तो अगर पाँच करोड़ हों तब भी एक समान ही है न! उसे देने नहीं हैं, इसलिए!

दादाश्री : आप चंदूभाई से इतना ही कहना कि 'चंदूभाई देना है ऐसा निश्चय मत तोड़ना। जब आए तब दे देने हैं, ऐसा पक्का

रखना।' जो उसका होता है, वह उसे मिले बिना रहता नहीं और जब नहीं होता तब मार खाता है।

प्रश्नकर्ता : बहुत बड़ी बात कही। उसका होगा तो उसे मिलना ही है।

दादाश्री : उसे मिलना ही है। पूरा हिसाब है यह तो। मन बिगड़ा कि खराब हुआ। मन बिगड़ जाता है इसीलिए ऐसा कहता है, 'पुलिस केस करूँगा और ऐसा करूँगा और वैसा करूँगा,' ऐसा करके सामने वाले से पाँच-दस हज़ार ले लेता है। तो इन्होंने यह जो गुनाह किया उसका दंड भुगतना पड़ेगा। इसलिए गुनाह होना ही नहीं चाहिए। शांति से जाने देना पड़ेगा। मैंने तो पूरी ज़िंदगी ऐसा ही किया है। यदि मोक्ष चाहिए तो लोभ और मान, ये दोनों बिल्कुल भी नहीं रहने चाहिए।

नहीं है आत्मा किसी का पति

प्रश्नकर्ता : अभी भी पैसों के लिए थोड़ी झंझट हो जाती है, रोज़ सुबह होते ही घर में पहली चर्चा यही होती है कि, 'खर्चे बढ़ते जा रहे हैं तो फिर कमाई बढ़नी चाहिए न!'

दादाश्री : हाँ, किन्तु चंदूभाई कलह करते हैं न, 'आप' तो नहीं करते न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, चंदूभाई करते हैं।

दादाश्री : चंदूभाई तो उसके पति बन बैठे हैं न! किसी के बेटे बन बैठे हो। नहीं? किसी के बाप भी बने होंगे न? और 'आप' तो किसी के बाप भी नहीं बने, किसी के पति नहीं हो, ऐसे निर्लेप हो 'आप'।

समय बिगड़ जाए तब

प्रश्नकर्ता : व्यापार में और सभी जगह पर ऐसी सभी बेकार की बातों में, निरर्थक बातों में ध्यान और समय बहुत बिगड़ जाता है।

दादाश्री : बेकार की बातें, बेकार ही बिलोना बिलोते रहते हैं,

लेकिन क्या कभी आपने कहा कि 'चंदूभाई, बेकार ही ऐसे समय क्यों बिगाड़ते हो, बिना बात के?'

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन वह तो दो घंटे बाद में कहा। फिर तो बाद में एकाध प्रतिक्रमण कर लेता हूँ।

दादाश्री : और प्रतिक्रमण की ओर भी ध्यान न दे तो हमें ऐसा कहना चाहिए कि, 'हे चंदूभाई, बैठ जा सामने। देख, व्यर्थ ही यों समय बिगाड़ रहा है, इससे तेरे हाथ में क्या आया? बोल।' तो तुरंत अपने आप ही ठिकाने पर आ जाएगा। क्या चंदूभाई अनपढ़ हैं? पढ़े-लिखे इंसान हैं!

बॉस डाँटे तब...

अब वह जो बॉस हैं, वे चंदूभाई को डाँटते हैं, आपको कैसे डाँट सकते हैं? आपको वे पहचानते हैं क्या? चंदूभाई को डाँटते हैं। बॉस चंदूभाई को डाँटकर जाएँ, उसके बाद अपने ऑफिस में जाकर कहना कि 'आपने कुछ कहा होगा तभी कह रहे होंगे न! शांति रखो न ज़रा!' कह सकते हैं या नहीं? और बॉस तो डाँटते हैं या नहीं डाँटते इस ज़माने में?

प्रश्नकर्ता : डाँटते हैं।

दादाश्री : वह अपनी पत्नी के साथ लड़कर आया होगा, इसलिए आप पर चिढ़ गया। क्या ऐसा नहीं हो सकता? आपकी भूल नहीं हो, फिर भी डाँटता है? आपको चंदूभाई को 'जानते' रहना है। ऑफिस का काम कैसा करते हैं, कैसा नहीं, वह आप जानो और फिर उनसे कहना भी सही कि, 'ऐसा क्यों करते हो? पूरा काम करो न!' कहने में क्या हर्ज है? बोलने में क्या हर्ज है आपको? सिर्फ एडजस्टमेन्ट ही है, वर्ना और कर भी क्या सकते हो। अगर ऐसा भी बोलोगे तो अंदर हलचल नहीं मचेंगी।

प्रश्नकर्ता : जब ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं उस समय, चंदूभाई ठीक से रहते हैं या नहीं, ऐसा डिफरेन्शिएट करें या नहीं?

दादाश्री : चंदूभाई रहें या नहीं रहें, उससे हमें लेना-देना नहीं है। हम रह पाए या नहीं, वह देखना है। चंदूभाई रहें या न भी रहें, डिफॉल्टर भी हो सकते हैं, उससे हमें लेना-देना नहीं है अब।

निराधार, हुए साधार...

गाड़ी मुंबई से निकली और बीच में नॉनस्टॉप है, फिर क्या परेशानी है? ज़रा धीरे चलेगी फिर भी पहुँचेगी ही। यह तो आ ही गया समझो न! आप तैयारियाँ करके रखो अब सारी। अंदर से ऐसा कहेगा कि आ गया।

आप शुद्धात्मा हो और यह है चंदूभाई। आप दो हो गए। एक से दो हो गए। अब आपको चंदूभाई की देख-रेख करनी है, पड़ोसी की तरह और चंदूभाई को यदि कोई परेशानी आ जाए तो आप चंदूभाई का कंधा थपथपा देना, 'हम हैं न आपके साथ'। पहले अकेले थे, निराधार थे। अब आधार वाले हुए। पहले तो निराधार थे। किसके पास जाकर रोते? पत्नी के पास जाकर रोएँ तो पत्नी उल्टा समझेगी, माँ-बाप के पास तो रो नहीं सकते।

प्रश्नकर्ता : अब अगर कोई बुलाए तो फिर बात करें या नहीं?

दादाश्री : वह तो करना। व्यवहार से सबकुछ करना, आप जानते रहना। आप कहना, 'चंदूभाई इन भाई से ज़रा बात करो अब, बातचीत करो न कुछ!' तब वे बोलेंगे भी सही और व्यवहार चलता रहेगा। आपको 'देखते' रहना है। सामने वाले को पता भी नहीं चलेगा कि आप क्या कर रहे हो! लेकिन आप उसे देखते रहो कि चंदूभाई क्या कर रहे हैं! ज्ञाता-द्रष्टा दोनों के स्वभाव अलग हो गए। अब आत्मा, आत्मा के स्वभाव में रहेगा और *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है), *पुद्गल* के स्वभाव में रहेगा। दोनों अपने-अपने गुणधर्मों में रहेंगे।

अलग रखने के लिए, समझ लेना इतना

चंदूभाई का सभी कुछ व्यवस्थित शक्ति चलाती है। तब आपको

तो इतना ही देखते रहना है कि चंदूभाई क्या कर रहे हैं और क्या नहीं? मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, इनमें से किसी में भी आपको दखल देने की ज़रूरत नहीं है। बुद्धि क्या कर रही है, वह देखते रहना। कुछ टेढ़ा-मेढ़ा करे तो वह भी आपको देखते रहना है; अच्छा-बुरा करे, वह भी देखते रहना है। लेकिन आपको दखल कब देना है, कि जब चंदूभाई को कोई बहुत बड़ी सांसारिक परेशानी आ जाए, तब अगर आप, 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ, मैं तुम्हारे साथ हूँ', ऐसा कहोगे तो वे ऑल राइट हो जाएँगे। सांसारिक तकलीफें आएँ, हाथ की, पैर में, बहुत तकलीफ हो रही हो उस पल कहना, 'भले ही हो, मैं हूँ न! घबराना मत' या फिर यदि शरीर में बहुत तकलीफ हो रही हो तो, 'मेरा नहीं है', ऐसा कहोगे तो जुदा रहेगा। क्योंकि लाइन ऑफ डीमार्केशन डाल दी है। यह आपका और यह आपका नहीं है, ऐसा सब। अर्थात् इसे रेग्युलर कोर्स में ज़रा समझ लेने की ज़रूरत है। यह भूलोगे नहीं न, मैं जो बता रहा हूँ वह?

मोक्ष और आचरण का नहीं है लेना-देना

प्रत्येक व्यक्ति को 'यह' ब्रह्मचर्य व्रत लेने की ज़रूरत नहीं है। इन सब का तो समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना है! लेकिन यदि उसमें रुचि बढ़ने लगे तब आप कहना कि 'चंदूभाई इसमें बहुत रुचि मत रखना!' आप ऐसा कुछ कहना। लेकिन आपको तो शुद्धात्मा में ही रहना है। चंदूभाई का चाहे कुछ भी हो लेकिन आपको तो चंदूभाई के साथ बातचीत का ही व्यवहार रखना है। इस तरह व्यवहार अलग रखोगे तो लिफ्ट मार्ग जल्दी फायदेमंद हो जाएगा! और हमने व्यवहार को जुदा कर दिया है और वह जुदा रखा जा सके, ऐसा है! चंदूभाई ने कोई गड़बड़ की हो, तो उनसे कहना पड़ेगा कि, 'ऐसा करोगे तो हमें नहीं पुसाएगा। हम तो शुद्धात्मा हो गए, लेकिन ऐसी गड़बड़ नहीं चलेगी। आपको भी शुद्ध होना पड़ेगा।' ऐसा कहोगे न तो कुदरती रूप से अपने आप शुद्ध होते रहेंगे! आप यदि व्यवहार को अलग रखोगे तो शुद्ध ही है! जो व्यक्ति व्यवहार को अलग रखता हो, वह व्यक्ति

चाहे कैसा भी आचरण करे फिर भी उसका मोक्ष हो ही जाएगा! वहाँ पर आचरण से लेना-देना नहीं है! चंदूभाई से तो ऐसा कहना कि, 'ऐसा क्यों करते हो', यानी व्यवहार से अलग हो गए, यानी कि आप शुद्धात्मा और ये चंदूभाई जुदा!

आत्मा वृत्तियों से क्या कहता है कि 'चंदूभाई, आपको यदि अपना करना हो तो आप जुदा और मैं जुदा और यदि आपको मेरे साथ एकता रखनी हो तो जो चाहिए, वह मिलेगा। शाश्वत सुख मिलेगा। अगर एकता नहीं रखनी है तो अपना सुख बाहर से ढूँढो।' हम शुद्धात्मा हैं, वह अपना स्वरूप है और परमानंदी स्वरूप है। इटर्नल सुख है! सांसारिक सुख, वे सुख ही नहीं कहे जाएँगे न! यह सुख तो जाएगा ही नहीं। यदि कोई गाली दे रहा हो तब भी अंदर से सुख नहीं जाएगा।

डाँटो चंदू को, जुदा रखकर

अभी खंभात गए थे, तब एक भाई से कहा कि 'भाई, दादा भगवान के असीम जय-जयकार' बोलो। वह बोलने लगा। बोल ज़रूर रहा था लेकिन उत्साह नहीं था, उत्साह नहीं दिखाई दे रहा था। तब मैंने कहा, 'तू ऐसा कर, क्या है तेरा नाम?' 'चंदू!' तो तू चंदू से कह कि 'ढंग से बोलो। ऐसा घोटाले वाला नहीं चलेगा।' ऐसा कहलवाकर फिर बुलवाया। अच्छी तरह बोला। इतनी अच्छी तरह से बोला, वास्तव में, अंत तक। तो यही तरीका है, और कुछ नहीं। आपको सिर्फ कहना चाहिए, 'ऐसा क्यों हो रहा है? नहीं होना चाहिए,' तो चली गाड़ी। यह तो, कोई कहने वाला ही नहीं है न! कोई नहीं हो तो हम तो हैं न, फिर कोई डोज़िंग रहेगी क्या? कोई दूसरा कहे तो हमें अच्छा नहीं लगेगा, इसके बजाय हम खुद ही कहें तो क्या बुरा है? अब ये बातें आपको कहनी हैं। आपको समझ में आ गया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादाजी।

दादाश्री : यानी वे ऐसा सिर्फ एक ही बार कहे न, 'अरे चंदूभाई, आप इतने बड़े, पी.एच.डी. होकर, ऐसा तो कैसा बोल रहे हो?', इस

प्रकार उनसे कहना। क्योंकि वे जानते हैं कि ये 'जुदा' हैं और आप भी जानते हो कि ये 'जुदा' हैं, लेकिन फिर जुदाई रखते नहीं हो। ऐसा रखो। क्या जुदाई नहीं रखनी चाहिए? फिर देखना कि आपके कहे अनुसार चलते हैं या नहीं। आप कहकर तो देखना, मैंने ये जो उदाहरण दिए हैं, वहाँ।

हम तो पटेल से कहते हैं 'पैर बहुत दुःख रहे हैं? नहीं? ठीक है, आज की रात ही है न, और हम हैं न आपके साथ।' ऐसा करके कंधा थपथपा देते हैं। जैसे कुछ भी नहीं हुआ। इससे दुखना भी बंद हो जाता है। क्योंकि दिन तो निकालना पड़ेगा न? क्या पत्नी से लड़ाई-झगड़ा करने से कुछ हो पाएगा?

प्रतिक्रमण से टूटेंगे अभिप्राय

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद सारी वृत्तियाँ अपने घर की ओर मुड़ती हैं न? अब दादा, मुझे तो है न, जब यहाँ पर आता हूँ तब इसके अलावा अन्य कोई विचार ही नहीं आते और जब बाहर जाता हूँ तो सारे बाहर के ही विचार आते हैं। कपड़ों के, बूट के, खाने के ही...

दादाश्री : वह तो मन का कार्य है, उसे आपको देखना है।

प्रश्नकर्ता : अंदर इच्छापूर्वक इन्टरेस्ट आ जाता है, ऐसा होता है।

दादाश्री : इन्टरेस्ट तो चंदूभाई को आता है। वह भी आपको देखना है और आपको चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई! इसमें से इतना क्या सुख लेना है? क्या सुख लेने हैं?' इन्टरेस्ट तो आ सकता है न! इन्टरेस्ट तो देह के अधीन है न। तो चंदूभाई को इन्टरेस्ट आता है!

वास्तविक सुख के अलावा बाकी सारे कल्पित सुख आपको नापसंद तो करने हैं। आपको देखना है कि 'इसमें क्या मज़ा है?' ऐसा सब कहना है चंदूभाई से।

प्रश्नकर्ता : दादा, बाद में ऐसा लगता है कि क्या मज़ा है? लेकिन उस समय भूल जाते हैं।

दादाश्री : नहीं, लेकिन भूल ही जाओगे न, वह। कर्म का उदय है न! इसलिए इसका सब से अच्छा उपाय यह है कि फाइल नंबर वन से बातें करो कि 'कैसे हो, कैसे नहीं' इस तरह बातें करने से वह चला जाएगा। क्या कहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : निरंतर उससे बातें करके उसे कहते रहना चाहिए कि, 'यह तुमने अच्छा नहीं किया'। ऐसे चूक क्यों जाते हो?

दादाश्री : ऐसा कह सकते हैं। इतने तक कह सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'इतना ज्ञान समझते हो फिर भी समय पर चूक क्यों जाते हो?'

दादाश्री : इतना कह सकते हैं। वापस यदि बार-बार ऐसे चूक जाए तो फिर से कहना और प्रतिक्रमण करवाना। पश्चाताप तो करना ही पड़ेगा, वर्ना फिर ऐसा मान लेगा कि, 'यह सही था'। प्रतिक्रमण अर्थात् इस बारे में आपका अभिप्राय टूटा कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए। यह सही है और यह गलत है', ऐसा अभिप्राय टूट गया हमारा।

खुद अपने आपके साथ भी सत्संग

प्रश्नकर्ता : दादा के मिलने के बाद मानो कि कभी ऐसा हो कि कोई सत्संगी नहीं मिले तो हम खुद चंदूभाई से कह सकते हैं न कि, 'चलो चंदूभाई, हम सत्संग करें?'

दादाश्री : सबकुछ कह सकते हैं। चंदूभाई को पहचानने लगे हो, उसे क्या कुछ नहीं कह सकते? चंदूभाई को पहचान लिया कि 'अभी भी चंदूभाई हैं साथ में।' फिर रहा ही नहीं न कुछ!

प्रश्नकर्ता : अब चंदूभाई अकेले सत्संग करें, वह अच्छा है या बहुत सारे लोग इकट्ठे होकर सत्संग करें, वह अच्छा है?

दादाश्री : हमारे लिए तो अकेले करें या सब मिलकर करें, अगर चंदूभाई से बातें करें तो सब हो गया। सत्संग शुरू हो गया। चंदूभाई से बातें करने को ही कहते हैं सत्संग।

सत्संग में हिल-मिल जाना सभी के साथ

हमारे सत्संग में बाकी सब लोग जो कुछ भी करें, उसी अनुसार खुद अपने आपको उसमें जोइन (जुड़ जाना) कर दे, तो सर्वोत्तम है वह स्थान! सभी लोग जो कर रहे हों, उसमें वह खुद जोइन हो जाए। ''चंदूभाई, आप 'जोइन' हो जाओ उसमें'', ऐसा कहते रहना चाहिए। तब वह कहे, 'सभी गा रहे हैं'। तब कहना, 'गाओ'। 'सभी तालियाँ बजा रहे हैं', तो कहना, 'तालियाँ बजाओ।' तो हो गया सर्वोत्तम। क्योंकि पुरुषार्थ सहित है न यह! और खुद खुद के पुरुषार्थ में है, यानी अंदर शुक्लध्यान और बाहर धर्मध्यान।

कोई अहंकार को ठेस पहुँचाए, ऐसे में...

प्रश्नकर्ता : कई बार कोई आक्षेप लगाए तब अहंकार आहत हो जाता है, अहंकार को ठेस लगती है, तब खुद को भी ठेस लगती है, सामने वाले से खुद को ठेस लगती है, उसकी बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : उसे तो लेट गो कर लेना। यदि अपने अहंकार को ठेस लगे तब तो बल्कि अच्छा है। हम से उसके अहंकार को ठेस लगे तो उसकी ज़िम्मेदारी आप पर है लेकिन यह तो बल्कि अच्छा है। अंदर का सब से बड़ा तूफान खत्म हो गया!

प्रश्नकर्ता : फिर भी, अंदर हमें सब समझ में आता है कि अहंकार को आहत हो रहा है। ऐसा पता भी चलता है, लेकिन फिर भी वह आहत हुआ अहंकार दु:ख देता है।

दादाश्री : वह (अपना अहंकार) दु:ख दे तब समझना कि आज बहुत फायदा हुआ।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा सब नहीं रहता।

दादाश्री : वह तो रहेगा, अभी नहीं रहेगा तो बाद में रहेगा। कभी न कभी तो ऐसा रहेगा ही न! अभी आपको आदत नहीं है इसलिए नहीं रहता। कड़वी चाय पीने की आदत नहीं है न! इसलिए

फिर जब वह कहेगा कि 'ओहोहो! इसका स्वाद तो अच्छा है, चाय जैसा है,' तो अच्छा लगेगा। यह तो, कभी पी नहीं है न कड़वी, इसलिए शुरुआत में पीना अच्छा नहीं लगेगा। क्योंकि, अगर कोई अहंकार को ठेस पहुँचाए तो वह तो अच्छा है। मन को ठेस पहुँचाने पर बहुत फायदा नहीं होता। कोई अहंकार को ठेस पहुँचाए, वह तो बहुत फायदेमंद है। यदि हम किसी के अहंकार को ठेस पहुँचाएँ, तो वह बहुत बड़ा नुकसान है। हमें तो, जो नुकसान है, उसे खत्म करना है न! नहीं समझे आप?

प्रश्नकर्ता : आप जो कह रहे हैं, वह सब समझ में आता है, लेकिन फिर भी वह दुःखता रहता है, वह नहीं दुःखे, उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : वह तो उतना दुःख भुगतने का कर्म लिखा हुआ है, *अशाता* (दुःख-परिणाम) वेदनीय भुगतनी हो न, तो होता रहेगा। तो उस दुःख भुगतने वाले को हमें जानना है कि यह भुगत रहा है। हमने उसमें रुचि ली तो कर्म चिपक जाएगा!

प्रश्नकर्ता : रुचि ली, मतलब क्या?

दादाश्री : 'मुझे ऐसा क्यों हो रहा है? मुझे ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसा क्यों कर रहा है वह?' उसे 'रुचि लेना' कहते हैं। ऐसा कुछ आए तो उसे बहुत गुणकारी मानना कि 'ओहोहो, आज बहुत बड़ा नुकसान चुक गया!'

प्रश्नकर्ता : यह तो ऐसा है न दादा, ये सारे बाहर के एडजस्टमेन्ट हैं कि, 'तेरा बहुत उपकार है कि मुझे नुकसान हुआ, बहुत अच्छा हुआ, तेरा भला हो'।

दादाश्री : हाँ, यदि ऐसे एडजस्टमेन्ट हो पाएगा तभी अंदर के एडजस्टमेन्ट हो पाएँगे, वर्ना अंदर के एडजस्टमेन्ट नहीं हो पाएँगे न! बाहर के एडजस्टमेन्ट लेंगे तो अंदर का सॉल्यूशन आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : बाहर के उन सभी एडजस्टमेन्ट्स के बारे में तो पता है लेकिन वे कुछ हद तक ही काम आते हैं, फिर कुंद हो जाते हैं।

दादाश्री : इस तरह से शुरुआत करते-करते फिर बिल्कुल खत्म हो जाएँगे। अभी उसमें इन्टरेस्ट है इसलिए यह दुःख सहन नहीं होता। इन्टरेस्ट आ जाता है अंदर।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं है कि सहन नहीं होता, दूसरों को पता चले या न भी चले, लेकिन भीतर खुद का अपना अहंकार दुःखी होता रहता है।

दादाश्री : वह जो दुखता है, उसी को 'देखना' है न हमें! ज़्यादा दुःखे तो अच्छा है। बहुत अच्छा फायदा हुआ। तब वहाँ पर दुःखी को खत्म ही करना है न! वह तो बिल्कुल नफा-नुकसान रहित ही हो जाएगा न! नुकसान भी नहीं और नफा भी नहीं, तो बहुत अच्छा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यह हकीकत है या सिर्फ आश्वासन देने के लिए है? अहंकार से ऐसा कहें न, तो वह कहता है कि ये सारे आश्वासन हैं।

दादाश्री : तो फिर और क्या है? आश्वसन नहीं दें तो और क्या दें?

प्रश्नकर्ता : सोलिड चाहिए उसे तो।

दादाश्री : सोलिड ही है न! हमें चंदूभाई से कहना है 'आपको लेना हो तो लो, वर्ना हम तो ये रहे! आपका घाटा आपको भारी पड़ेगा, हमें क्या हर्ज है?' यानी यही आश्वसन है, वर्ना और क्या कह सकते हैं? क्या हम उसके सामने ज़हर पी लें? उसे पीना हो तो पीए।

हमने तो ऐसी पूरी दुनिया देख ली है। मुझे तो बल्कि आनंद होता है यदि ऐसा कुछ आए तो।

प्रश्नकर्ता : सॉल्यूशन नहीं मिलता। क्या पूछूँ? जैसा मुझे चाहिए, वैसा नहीं मिलता।

दादाश्री : नहीं। अगर वह नहीं मिलेगा तो अपने आप ही ठिकाने पर आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा तो नहीं कह सकते न कि अपने आप ठिकाने पर आएगा। अपने आप ठिकाने पर आएगा, वह कैसे? उसका तो कोई अर्थ ही नहीं है न? ऐसे तो बैठे ही रहेंगे न?

दादाश्री : बैठे रहना ही उत्तम है। उसे 'देखते' रहना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर अहंकार जलता रहता है। उसका क्या?

दादाश्री : जितना जलेगा उतना कम होता जाएगा। हमें यह सब कम ही करना है न! लकड़ी जला देनी है, जितनी जल जाएगी, उतना कम। बल्कि और भी ज़्यादा जले तो अच्छा है। 'देखते' रहना है। जलाना ही है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर अंदर खुद थोड़ा-बहुत जलने लगता है... जब अहंकार जल रहा होता है, तब उसकी आंच खुद को भी लगती है न दादा?

दादाश्री : खुद को वह जो आंच लगती है, उसे भी जानना है न कि भाई, इतना बड़ा विस्फोट हुआ कि उसकी आंच लगी। आंच लगे तो हट जाना वहाँ से। क्योंकि आत्मा ऐसा है कि उसे आंच छूती ही नहीं। वह मन में मानता है कि, 'मुझे आंच लगी,' वह तो गलत है। लगी, ऐसा दिखाई ज़रूर देता है लेकिन उसे स्पर्श नहीं करती, उसे दु:ख नहीं देती। उसे ऐसा भी लगता है कि 'मुझे जला डाला'। लेकिन आत्मा ऐसा है कि कुछ भी नहीं छूता। सौ प्रतिशत गारन्टी है उसकी। इतना अच्छा आत्मा दिया है फिर ऐसी सारी बात ही कहाँ रही? आप जितना नुकसान उठाएँगे उतना ही नुकसान होगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, जो आत्मा दिया है न, दिन भर उसका पूरा-पूरा अनुभव कैसे रह सकता है?

दादाश्री : हाँ। लेकिन जो उल्टा रहता था, वह सीधा रहने लगा

है इसलिए फिर आप पूछ-पूछकर आगे चलने लगो न! वह जो पाँच सौ के नुकसान वाला है, उसका *निकाल* हो जाता है लेकिन जिसमें पाँच हज़ार का नुकसान हुआ हो, उसमें देर लगेगी। उसे आपको देखते ही रहना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : जिसके प्रति भाव था, उसी के प्रति अभाव रखना है। अत: यदि अभाव रहता हो तो आपको समझना है कि यहाँ पर भाव बहुत रहता था, उसी कारण हमें कड़वा मिल रहा है।

उस पक्ष में बैठ जाते हैं इसलिए समझ में नहीं आता। यदि स्वतंत्र होना हो तो यह सब समझ में आ सके, ऐसा है। हमें उसके पक्ष में रहने का मतलब ही क्या है? न लेना, न देना।

प्रश्नकर्ता : दादा, छूटना है, छूट नहीं पाते।

दादाश्री : अरे! छूटना है, छूट नहीं पा रहे हो, वह तो आप जानते हो न। अगर आप उसके पीछे लगे रहोगे तो अपने आप ही धीरे-धीरे छूट जाएगा। आपको जानना चाहिए कि यहाँ पर यह पट्टी चिपकी हुई है जो उखड़ नहीं रही। पानी लगाओगे, कुछ और लगाओगे तो ऐसे करते-करते उखड़ जाएगी। उखड़े बगैर चारा ही नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : तो आशा रखकर बैठे रहना है?

दादाश्री : आशा रखनी ही नहीं है। बैठे नहीं रहना है। जो छूट नहीं रहा है, उसे आपको देखते रहना है। फिर आशा किसे रखनी है? आशा नहीं रहती आत्मा को। क्या एक ही घंटे में पूरा घाटा खत्म हो सकता है? अनंत जन्मों का घाटा है, दो-तीन जन्म तो लगेंगे न! इससे पहले तो यह लाख जन्मों में नहीं जा सकता था। दादा के ज्ञान से यह इतना सरल हो गया है। बल्कि दादा के ज्ञान के बारे में ऐसा कहना चाहिए कि 'धन्य भाग्य! मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ और दादा मिले।'

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं रहता। अब ऐसा लगता है, अब ऐसा रहता है कि 'हम कितने अभागे हैं कि ऐसे दादा मिले हैं फिर भी काम निकालना नहीं आता।'

दादाश्री : हं, दादा मिले हैं तो काम निकाल लेना। फिर कहीं ये देखने भी नहीं मिलेंगे।

नहीं चलाओगे न, तो यह जो नुकसान है वह खत्म हो जाएगा। अपने आप ही खत्म हो जाएगा। लेकिन यदि आपने दादा की अनुपस्थिति में, उनकी आज्ञा का पालन किया तो आपका काम ही निकल जाएगा। उसके बारे में सोचना ही मत। यह नहीं देखना है कि नुकसान कितना है, आपको तो बस, किस तरह से आज्ञा पालन करें और यह कि हम आज्ञा भूलें नहीं, इतना ही देखना है। इसमें क्या नुकसान है भला?

अहंकार भग्न हो जाए तो क्या करना चाहिए? बुरी तरह से अहंकार को तोड़ दे तो? आसपास में शस्त्रों से घाव को गहरा करें, लेकिन आत्मा में अनंत शक्ति है, इसलिए, 'अनंत शक्ति वाला हूँ, तुझे जो करना हो, वह करता रह न!' आपको हठ पकड़कर बैठ जाना है। तप करना है। 'अनंत शक्ति वाला हूँ' तब फिर धीरे-धीरे कम हो जाएँगे, अपने आप ही। और यहाँ भीड़ कम होगी उसके बाद फिर उसका बल टूट जाएगा। मेरी उपस्थिति में सारा ही टूट जाएगा। शक्ति बहुत ज़बरदस्त है न! हमारी उपस्थिति में सारा टूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : आपकी उपस्थिति में यह जो निश्चय किया है, वह आपकी उपस्थिति में ही पूरा करना है।

दादाश्री : पूरा हो जाएगा, बस-बस! आपको ऐसा लगेगा कि यह तो बहुत शक्ति बढ़ गई।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। पहले की तुलना में इन्टेन्सिटी (तीव्रता) कम हो गई है। पहले जितनी तीव्रता से विचार आते थे, वैसी तीव्रता अब नहीं रहती।

दादाश्री : हाँ, बस। वह तो अपने आप ही खत्म हो जाती है। हम अगर स्ट्रोंग रहें न, तो अन्य कुछ भी बाधा नहीं डालेगा और आत्मा में अनंत शक्ति है, उससे अधिक शक्तिवान अन्य कोई है ही नहीं। फिर अन्य कोई क्या कर सकता है? और वे हैं न्यूट्रल। न तो स्त्री जाति है, न ही पुरुष जाति।

प्रश्नकर्ता : सही है। पहले की तरह अब अंदर से इच्छापूर्वक हस्ताक्षर नहीं होते।

दादाश्री : नहीं होंगे। वही सब से बड़ा आश्चर्य है न! उसी कारण यह शक्ति है न। यह ज़बरदस्त शक्ति उसी की है। वर्ना रह पाती क्या? एक दिन यह (अहंकार) पूर्णतः चला गया तो खत्म।

प्रश्नकर्ता : अक्रम विज्ञान के बिना नहीं हो सकता यह।

दादाश्री : हाँ! ठीक है! 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' कह देना। 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' ऐसा करके ज़िद पकड़ लेना और फिर तप ही करना, बस। तो अंत आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : यदि विचार आए... तो कोई भी विचार महत्वपूर्ण नहीं होता। जब तक वह विचार अपने आप चले, तब तक चलने देना। नहीं चले और चला जाए, तो भेज देना। उसी अनुसार होता है व्यवस्थित। जो हो रहा है, वही करेक्ट है। यानी किसी और झंझट में मत पड़ना। 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ' कहा, कि बाकी सब बंद हो जाएगा। चाहे कैसा भी हो, फिर भी 'अनंत शक्ति वाला हूँ' कहा कि हल आ जाएगा। आत्मा की शक्ति अपार है।

अक्रम विज्ञान की अद्भुतता

यदि आप आत्मा बनकर रहते हो तो सभी कर्मों की *निर्जरा* है और आत्मा बनकर नहीं रहते, यदि ज़रा सा भी (आत्म जागृति में से)

हटे तो उस कर्म का कुछ दाग़ पड़ेगा। क्योंकि वह जो है, वह मान्यता नहीं है आपकी। भूल होती है वहाँ पर।

प्रश्नकर्ता : स्वपद में से पर-पद में चला जाता है?

दादाश्री : नहीं, चला नहीं जाता। पर-पद में नहीं जाता, लेकिन उसके मन में ऐसा लगता है कि 'यह कौन है फिर? मेरी ही भूल है न, यह?' लेकिन वह 'मेरी भूल,' कब तक थी? जब तक 'हम' 'चंदूभाई' थे, तब तक भूल थी। अब तो 'हम' 'शुद्धात्मा' हुए। शुद्धात्मा तो ऐसी भूल वाला है ही नहीं। अत: यदि बहुत ज़्यादा ऐसा हो तब आपको कहना है कि 'चंदूभाई! ओ हो हो! बहुत भूलें की हैं। भारी भूलें की हैं।' उससे क्या होता है? जब ऐसा बोलते हैं न, तो वही जुदापन दर्शाता है और 'आपकी' जवाबदारी का एन्ड हो जाता है वहाँ पर!

अपना ज्ञान तो कैसा है कि कोई कहे कि 'आपने मेरी घड़ी चोरी कर ली,' तब कहना कि, 'भाई यदि आपको लगता है कि घड़ी चोरी की है तो ठीक है।' आपको आत्म स्वरूप होकर जवाब देना है। फिर यदि उस क्षण आप चंदूभाई बन जाओगे तो दिया हुआ आत्मा वापस चला जाएगा। अपने अक्रम विज्ञान में यह परेशानी है।

प्रश्नकर्ता : परेशानी होने के बावजूद भी उस समय जागृति विकसित होती जाती है। यह मार्ग जागृति बढ़ाने का है।

दादाश्री : हाँ, जागृति एकदम बढ़ जाती है। जागृति तो बहुत बढ़ जाती है। जागृति बहुत बढ़ती है, लेकिन वास्तव में यदि अभी ज़रा कुछ दखल हो जाती है तो तुरंत स्वीकार कर लेता है, 'मैंने कहाँ चोरी की है?' अरे, रक्षण क्यों करते हो? जो तेरा नहीं है, उसका रक्षण क्यों करता है? जो तेरी बात ही नहीं है उसका रक्षण करने की तुझे ज़रूरत ही नहीं है। स्वीकार करने के बाद तो भूल अपनी कही जाएगी न? फिर उसे पता चल जाता है कि 'मुझसे भूल हो गई'। बाद में पता चलता है लेकिन उतनी जागृति तो है।

यह ज्ञान ही ऐसा है कि मोक्ष में ले जाएगा। लेकिन आपकी जागृति से बहुत हेल्प करनी चाहिए इसे, पुरुषार्थ करना चाहिए। पुरुष हो जाने के बाद ही पुरुषार्थ होता है। प्रकृति और पुरुष दोनों अलग हो गए। जब तक आप चंदूभाई थे, तब तक प्रकृति थी। जैसे प्रकृति नचाए वैसे आप नाचते थे। आप पुरुष बन गए और प्रकृति अलग हो गई। पुरुष हो जाने के बाद पुरुषार्थ उत्पन्न होता है। पुरुषार्थ में वह जागृति तो है ही। पुरुषार्थ में तो सिर्फ क्या है? हमें निश्चित करना चाहिए। स्थिरतापूर्वक सारी बातचीत करनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ यह हुआ कि यह गलत है या सही, उसका आग्रह नहीं रखना है?

दादाश्री : गलत और सही तो जैसे कि हैं ही नहीं। वह आग्रह तो रखना ही नहीं है। लेकिन आपने कभी ऐसा चखा नहीं है। और यदि आपसे कहे कि, 'आपने चोरी की', अब ऐसा कभी सुना नहीं, कभी प्रैक्टिस नहीं हुई न और अगर एकदम से सुनना पड़े तो वहाँ पर क्या होगा? तब इमोशनल हो जाएगा। अत: आप चंदूभाई से कहकर रखो कि, 'भाई, चोर ही हो। कोई चोर कहे तो घबराना मत।' ऐसा पहले से ही कहकर रखना पड़ेगा। हाँ, 'कोई ऐसा कहे तब घबराना मत, कोई धौल लगाए तब भी घबराना मत', आप ऐसा कहकर रखना। वर्ना यदि कोई धौल नहीं मारे और बस ऐसे-ऐसे करे न, तब भी असर हो जाएगा। अत: ऐसी प्रैक्टिस कर लेनी होगी। ऐसी रिहर्सल करवाकर रखना। करवानी नहीं पड़ेगी? करवाकर रखना अच्छा है। कभी अगर परेशानी आ जाए तो उस क्षण रिहर्सल किया हुआ फल देगा। वर्ना यह ज्ञान तो सभी, काफी लोगों को, कितने ही लोगों को समाधि देता है निरंतर!

[1.4]

तन्मयाकार कौन? जानता है कौन?

नहीं होता आत्मा तन्मयाकार कभी

प्रश्नकर्ता : दादा याद रहते हैं, लेकिन कई बार जब काम में लगे रहते हैं, तब तन्मयाकार हो जाते हैं।

दादाश्री : तन्मयाकार हो जाते हो तो उसमें हर्ज नहीं है। यह जो तन्मयाकार हो जाता है, वह 'आप' तन्मयाकार नहीं होते, वह तो ये 'चंदूभाई' होते हैं, लेकिन आपको ऐसा लगता है कि 'मैं' हो गया, बस इतना ही है। आपको जानना चाहिए कि चंदूभाई तन्मयाकार होकर चाय पी रहे हैं। इतना आपको जानना है।

जब आप तन्मयाकार होते हो, तब आपको पता नहीं चलता। ऐसा पता किसे चला कि तन्मयाकार हो गए हो? 'आपको' तो पता चलता है यानी कि आप तन्मयाकार नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : तो यह *पुद्गल* होता है?

दादाश्री : *पुद्गल* में कुछ ऐसा बल है, वह इतना बड़ा हेड बन जाता है। कभी अहंकार तन्मयाकार हो जाता है, कभी बुद्धि तन्मयाकार हो जाती है, लेकिन आप नहीं। तन्मयाकार हो जाता है, ऐसा पता कैसे चला? अत: आप 'जानते' हो यह सब। आप तो बल्कि अपने आपके लिए ऐसा मानते हो कि 'मैं तन्मयाकार हो गया'। नहीं, आप नहीं होते हो।

प्रश्नकर्ता : तन्मयाकार होते समय पता नहीं चलता कि मैं तन्मयाकार हो गया, लेकिन बाद में पता चलता है।

दादाश्री : बाद में पता चले तो भी हर्ज नहीं है। वह तो, उस तरफ का बहुत ज़ोर है, इसलिए। उस तरफ का ज़ोर कम हो जाने के बाद जागृति आएगी। ज़ोर बहुत अधिक है, इसलिए कम पता चलता है।

आप स्टेशन पर टिकट दे रहे हों और बहुत सारे लोग आकर आपा-धापी कर रहे हों तो उस घड़ी आपको ज़रा परेशानी हो जाती है। लेकिन यह आपा-धापी अभी कम हो जाएगी। तू टिकट काटता रह न! बाद में मज़ा आएगा। यह तो फोर्स है। हल्के कर्म में तुम्हें ऐसा नहीं होता। जब भारी कर्मों का फोर्स होता है, तब ऐसा हो जाता है। यानी कितने ही लोगों को काम-धंधे के बारे में ऐसा हो जाता है, कितने ही लोगों को विषय के बारे में ऐसा हो जाता है। यदि विषय की फाइल हो तो छः महीने का ब्रह्मचर्य व्रत ले लेना चाहिए, तो जागृति रहेगी।

प्रश्नकर्ता : यदि तन्मयाकार हो जाते हैं तो उसे जागृति का अभाव समझना चाहिए या क्या समझना चाहिए?

दादाश्री : जागृति का अभाव नहीं। जागृति तो वहाँ पर है ही। जागृति तो है, आपके कर्म का उदयबल ज़बरदस्त है, फोर्स है। जब तक आधे इंच के पाइप में से पानी आ रहा हो तब तक उँगली टिकी रहती है और अगर बहुत फोर्स से डेढ़ इंच के पाइप में से पानी आए तो उँगली खिसक जाती है। ऐसा फोर्स है कर्मों का। बाद में जब वह फोर्स कुछ कम हो जाएगा तब फिर से उँगली टिकेगी। जागृति तो निरंतर रहती ही है। लेकिन जितना भी इस तरह से हुआ, उन फाइलों का आपको फिर से *निकाल* करना पड़ेगा। जागृति उपस्थित रखे बिना जो फाइलें गई, उन फाइलों का फिर से जागृतिपूर्वक *निकाल* करना पड़ेगा। यानी कि वे सेकन्ड टाइम आएँगी। इसी जन्म में आती रहेंगी। जागृति तो निरंतर रहेगी।

प्रश्नकर्ता : यह *लक्ष* तुरंत आ जाता है, लेकिन ऐसे हर मिनट का *लक्ष* नहीं रहता।

दादाश्री : वह तो, चंदूभाई तन्मयाकार हो जाते हैं, आप नहीं होते। यह ज्ञान ही ऐसा है न, तन्मय होता ही नहीं है न! आपको, चंदूभाई तन्मय हो जाते हैं उसे देखते रहना है और उस अभ्यास की ज़रूरत है। उसे सत्संग की ज़रूरत है। जैसे-जैसे आप हमारे पास आकर बैठोगे, वैसे-वैसे शक्ति बढ़ती जाएगी।

प्रश्नकर्ता : तन्मयाकार होते हैं तो क्या नया कर्म चार्ज होता है?

दादाश्री : नहीं, वह पता चल जाता है न बाद में! फिर आपको पता चलता है न कि ये चंदूभाई तन्मयाकार हो गए हैं। तो वह चार्ज नहीं होगा। कपड़ों में साबुन डाला लेकिन उसे धोने में कमी रह गई हो तो फिर से धो देना। उस कपड़ों को निचोड़ने में कुछ भूलचूक हो जाए तो फिर से निचोड़ लेना... आसान रास्ता है न, दादा का रास्ता।

प्रश्नकर्ता : जब कोई क्रिया करते हैं, उस समय एकाकार हो जाते हैं, उसके बाद हमें वापस शुद्धात्मा के *लक्ष* में कौन लाता है?

दादाश्री : कोई भी नहीं लाता। उस समय भी था ही। यह तो, वृतियाँ तन्मयाकार हो जाती हैं। आत्मा खुद तो प्रकाश के रूप में था ही। वह तो, जब वृतियाँ तन्मयाकार हो जाती हैं न, तब ऐसा लगता है कि शुद्धात्मा का *लक्ष* नहीं रहा या क्या? अरे, है ही। उस घोटाले के चले जाने के बाद शुद्धात्मा वापस हाज़िर ही दिखाई देगा आपको। वह नींद में भी हाज़िर है।

प्रश्नकर्ता : खास तौर पर कभी जब पसंदीदा (संयोग) आए तब उसमें तन्मयाकार हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह तो चंदूभाई होते हैं न, आप कहाँ होते हो?! आपको जब पता चले कि चंदूभाई अब तन्मयाकार हो

गए हैं तो उसके बाद 'आप' 'चंदूभाई' से कहना, 'कुछ अनचाहा आए तब फज़ीता करते हो, उसकी बजाय ऐसे सीधा रखो न!'

अनचाहा आए तब विरोध करता है। अच्छा नहीं लगने पर जो विरोध करता है, वह भी चंदूभाई है, जिसे अच्छा लगता है, वह भी चंदूभाई। अर्थात् जो राग-द्वेष करता रहता है, वह चंदूभाई और जो वीतराग रहता है, वह 'आप!' चंदूभाई द्वेष करे फिर भी उस वक्त आप वीतराग रहते हो और चंदूभाई राग करते हैं फिर भी वीतराग रह सकते हो, आप ऐसे ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंदी हो!

तन्मयाकार हो जाते हो, वह भ्रमणा ही है

प्रश्नकर्ता : जिन संयोगों में तन्मयाकार हो जाते हैं...

दादाश्री : जो तन्मयाकार हो जाता है, वह भी तू नहीं है, शुद्धात्मा नहीं है। शुद्धात्मा तन्मयाकार हो ही नहीं सकता। वह तेरी भ्रामक मान्यता है, उस मान्यता के कारण तन्मयाकार हो जाता है। उसे जानो कि यह कितना तन्मयाकार हुआ है। एकदम तन्मयाकार हो गया है या थोड़ा-थोड़ा, कच्चा है या संपूर्ण एडजस्ट हो गया है? यह सब जानो। जानेगा तो तू छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यह बहुत अहम सवाल है। क्योंकि आपने कहा था कि ज्ञान प्राप्ति के बाद सभी निर्लेप हो जाते हैं, तो फिर हमें तो अभी ऐसे नहीं दिखाई देते कि निर्लेप हो गए हैं। हमें ऐसा दिखाई देता है कि ये लेपायमान हो गए, फिर वापस जुदा हो गए, फिर से लेपायमान हो गए, हमें ऐसा जो भान होता है, वह क्यों होता है?

दादाश्री : आप खुद लेपायमान हो जाते हो, ऐसा भान होता है। नहीं? वह भान, आत्मभान नहीं है। आत्मभान तो, जो कभी भी लेपायमान नहीं हो, उसे आत्मभान कहा जाता है। इसलिए आपको कहना है कि यह जगह अपनी नहीं है। अपनी जगह ऐसी वीरान नहीं है। आपकी तो जायजेन्टिक है (भव्य)। यह वीरान जगह अपनी कैसे

हो सकती है? क्या ऐसा पता नहीं चलेगा कि यह होटल अपनी नहीं है? हम किस जाति के हैं, उस हिसाब से अपनी होटल का पता नहीं चलेगा? सुगंध पर से समझ जाएँगे कि यहाँ बिरयानी वाली होटल है... यानी कि हम होटल के बारे में भी समझ जाते हैं। उसी तरह आप जो तन्मयाकार हो जाते हो, वह भाव अपना नहीं है। अत: तन्मयाकार किस प्रकार से होता है, वह 'देखते' रहना है। संपूर्ण तन्मयाकार हो जाता है या आधा तन्मयाकार होता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ। अर्थात् अलग-अलग डिग्रियों में तन्मयाकार होते हैं!

दादाश्री : हाँ, लेकिन अलग-अलग डिग्रियों को जो जानता है, वह आत्मा है। ऐसा है न, इतने सारे थर्मामीटरों का उपयोग होता है, लेकिन क्या किसी डॉक्टर के थर्मामीटर को कभी बुखार हुआ है? शुद्धात्मा थर्मामीटर के समान है। वह यह दिखाता है कि कितनी डिग्री का बुखार है। थर्मामीटर को कभी भी बुखार नहीं आता! वह तो बल्कि ऐसा है कि बुखार दिखाता है! लोग कहेंगे कि, 'भाई, बुखार को छूते-छूते इस थर्मामीटर को बुखार आ गया है!' 'अरे, इसे बुखार हो सकता है क्या?' डॉक्टरों को हो सकता है लेकिन थर्मामीटर को नहीं हो सकता। थर्मामीटर का मालिक जो है न, उसे हो सकता है, डॉक्टर को!

प्रश्नकर्ता : जब हम तन्मयाकार हो जाते हैं, उतने समय तक हमें शुद्धात्मा पद का भान नहीं रहता न!

दादाश्री : क्यों नहीं रहता लेकिन? (मानता है) 'मैं तन्मयाकार हो गया' इसलिए वह भान खो जाता है। किसी व्यक्ति ने शराब नहीं पी हो, फिर भी यों ही कहे कि, 'मैंने तो आज शराब पी है', तो उतने समय तक चढ़ जाएगी। यानी कि शराबी जैसे लक्षण दिखाई देंगे, नहीं पी हो फिर भी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कितनी ही बार ऐसे लेपायमान हो जाते हैं

न, तो पूरी तरह से ऐसा ही दिखाई देता है जैसे शराब पी हो! यही सवाल है न! तो फिर हम खुद को निर्लेप कैसे कहें?

दादाश्री : आपको समझ जाना है कि यह होटल अपनी नहीं है। तब फिर अन्य कौन सी होटल जो अपनी है, वह मिलेगी। दादा ने जो होटल बताई है, उसमें 'मैं निर्लेप हूँ, शुद्ध ही हूँ। मुझे ऐसा कैसे हो सकता है?'

दृश्य और द्रष्टा एक नहीं हो सकते। तन्मयाकार हो गए हैं, वह दृश्य है और दृश्य खुद नहीं समझ सकता कि, 'तन्मयाकार हो गया हूँ'। उसे तो द्रष्टा ही जान सकता है। जाना किसने? तब कहते हैं, द्रष्टा ने। आप खुद द्रष्टा हो! फिर भी 'खुद' को पता नहीं चलता। कैसा आश्चर्य है!

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ होता है जिससे कि हम दृश्य का भाग बन जाते हैं। हमारा द्रष्टापन उस समय कहाँ चला जाता है?

दादाश्री : नहीं। ऐसा है न, आप तो लेबोरेटरी में पढ़े हो, तो क्या चार ही घंटों में आप पढ़ लेते हो पूरा?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : एक बार प्रयोग करवाने के बाद, अगर फिर से करते हो, तब अंदर कितनी ही, कुछ की कुछ चीज़ें डाल देते हो। तो यदि उसमें इतना समय लगता है, तो यह तो, यहाँ टाइम तो लगेगा न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय 'मैं' द्रष्टा के रूप में साथ में बैठा हुआ होना चाहिए न, 'देखने वाला?' वह देखने वाला अंदर उलझ जाता है।

दादाश्री : नहीं, वह तो अलग ही बैठा रहता है। एकाकार हो गया, ऐसा आपको लगता है, भासित होता है, ज़रा प्रैक्टिस करनी पड़ेगी। प्रैक्टिस किए बिना कैसे चलेगा? और यदि एकाकार हो गया होता तो जुदा नहीं हो पाता, जुदा कैसे करोगे वापस? वापस एकाकार

हो ही नहीं सकता। यह तो, दोनों के स्वभाव अलग हो गए हैं न! अपने-अपने स्वभाव में आ गए!

भास्यमान परिणाम नहीं हैं मेरे

आपको ऐसा जानना है कि यह इस तरह भास्यमान (परिणाम) हो रहा है, लेकिन यह भास्यमान परिणाम अपना नहीं है। ऐसा समझोगे तो बहुत जागृति रहेगी। यह ज्ञान भी बहुत जागृति वाला दिया है। लेकिन खुद जान-बूझकर गड़बड़ करता है इसलिए जागृति कम है। यदि जागृति रहे, तब तो उसे कुछ स्पर्श ही नहीं करेगा!

प्रश्नकर्ता : आप जब कहते हैं कि सभी चाबियाँ आपके पास हैं, हमारा निश्चय है कि आज्ञा में रहना है, तो फिर हमारी वह अजागृति इतनी देर तक क्यों रहती है?

दादाश्री : जागृति तो लानी ही चाहिए न! जागृति तो बढ़ानी ही चाहिए न आपको। वही पुरुषार्थ है न! जागृति ही पुरुषार्थ है। अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं है। पाँच आज्ञाओं का जितना पालन होगा, तब सारी जागृति उत्पन्न हो जाएगी। वर्ना जागृति कैसे उत्पन्न होगी? आज्ञा पालन नहीं करते हो इसलिए जागृति कम है!

अब भास्यमान परिणामों को देखना है। भास्यमान का मतलब तो, हो या न भी हो। सिर्फ आभास ही होता है। यानी कि आपको वैसा आभास होता है। आभास होता है मतलब दिखाई देता है, लेकिन वह सही चीज़ नहीं है। यदि खुद को ऐसा लगे कि 'नहीं, सच है' तो लगेगा, वर्ना नहीं। गलत तो नहीं लगता, ऐसा भास्यमान परिणाम है। सिर्फ आभास ही है। जब तक उलझन रहे, तब तक भास्यमान परिणाम बहुत परेशान करते हैं।

दादा ने दिया निर्लेप-निःशंक आत्मा

प्रश्नकर्ता : आपने यह जो डिस्चार्ज कहा वह तो *संवरपूर्वक निर्जरा* (नए कर्म बीज डले बिना कर्मफल की निर्जरा हो जाना) हुई। वह तो जब खुद निर्लेप रहेगा, तभी यह चीज़ हो सकेगी न?

दादाश्री : निर्लेप हो ही! फिर अब आएगा कहाँ से? कौन से गाँव से आएगा? निर्लेप ही है। यह जो आपको शंका है, वही आपको लेपायमान कर रही है। लेकिन यदि भगवान से पूछें कि, 'भगवान इसे शंका हो रही है, इसलिए यह निर्लेप नहीं है न?' तब वे कहेंगे, 'नहीं, ऐसी शंका है, फिर भी इसे कर्म नहीं बंधेंगे।' क्योंकि यह शंका वह जागृति है। भगवान क्या कहते हैं? 'इस जगत् के लोगों को शंका नहीं होती। इन्हें शंका है, इसीलिए जागृति है। इसीलिए इन्हें कर्म नहीं बंधेंगे।' तो ये भगावन कैसे पक्के हैं?

मैं तरफदारी नहीं करता। कहते हैं, 'हम तरफदारी नहीं करते।' बेटा बाप की तरफदारी करता है या बाप बेटे की करता है। यह ज्ञान तरफदारी करने का नहीं है। यह ज्ञान तो एक्ज़ेक्ट है कि शंका हुई, इसीलिए तू निःशंक है। इसीलिए तू शुद्धात्मा है। तू शुद्धात्मा बन गया है वह बात तय हो गई। तुझे शंका क्यों हुई? शंका किसी को होती ही नहीं है। किसी को शंका नहीं होती कि मैं इसमें तन्मयाकार हो गया चंदूभाई के साथ। अतः यह बात भी सही है कि, शंका हुई फिर भी तू निःशंक है! शंका हुई इसलिए यह तय हो गया कि तू शुद्धात्मा है। तब कहे, तय हो गया। फिर अब मुझे कोई हर्ज नहीं है। कोई दुःख भी नहीं है भाई। जीवित इंसान को चिंता होती है या मृत को?

प्रश्नकर्ता : जीवित को ही होती है।

दादाश्री : ज्ञान ऐसा कहता है कि तो जितने लोगों को शंका होती है, उन्हें भगवान ने जीवित कहा है और बाकी को मृत कहा है, ज्ञान ऐसा कहता है। समझदारी की बात है न? तीर्थंकरों की बात समझदारी वाली है? वीतरागों की बात समझदारी वाली है? शंका होती है फिर भी तू निःशंक है। यानी कि ऐसा ग़ज़ब का विज्ञान है, और वहाँ पर भी यदि ज़ोर नहीं लगाए तो फिर उसी की भूल है न?

उदय को देखना, वही है अक्रम

अंदर अंतःकरण तन्मयाकार हो रहा है, उसे आपको 'जानना'

पड़ेगा और 'देखना' भी पड़ेगा न? अंदर अंत:करण यदि तन्मयाकार नहीं होगा, तो कोई कार्य ही नहीं हो पाएगा। तन्मयाकार तो होना ही चाहिए न?

हम गाड़ी में यहाँ आने के लिए निकलते हैं तब अंदर पूरा सब तन्मयाकार ही रहता है न, लेकिन हम 'देखते' और 'जानते' हैं। हम अलग रहकर काम करते हैं। आपसे इतना अधिक काम नहीं हो पाता लेकिन आपको *लक्ष* रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ।' कभी अगर *लक्ष* भूल जाते हो तो प्रतीति रहा करती है। बाकी, अंदर सबकुछ चलता ही रहता है। आपको 'देखते' रहना है।

प्रश्नकर्ता : विचार आए और फिर उनमें तन्मयाकार हो जाता है। चित्र और फोटो दिखाता है, उसे तन्मयाकार दशा कहते हैं न?

दादाश्री : लेकिन वह तो डिस्चार्ज ही है न, उसमें हर्ज नहीं है। जब से उसे आपने 'जाना', तभी से आप अलग और वह अलग। 'जानने वाला' अलग ही है। 'करने वाला' झंझट वाला होता है। आप अलग के अलग।

प्रश्नकर्ता : उसमें ऐसा ही रहता है कि यह सब चंदूभाई ही कर रहा है। पहले उदय में तन्मयाकार हो जाते थे, उसके बजाय अब हम अपने उदय को देखते हैं।

दादाश्री : उदय को देखते हैं।

प्रश्नकर्ता : अपने उदय को देखते हैं कि मेरा ऐसा उदय आया।

दादाश्री : अब सभी उदयों को 'देखना', उसी को कहते हैं अक्रम।

प्रश्नकर्ता : हम 'देखना' चूक जाते हैं तभी बुद्धि दखलंदाज़ी करती है न?

दादाश्री : हाँ। लेकिन जहाँ चूक जाते हो, वह सब 'देखते' हो

न? लेकिन उसमें हर्ज नहीं है। अभी तो हमारा केवलज्ञान रुका हुआ है और कुछ नहीं। ये सभी सूक्ष्म चीज़ें ही केवलज्ञान को रोकती हैं।

प्रश्नकर्ता : इसमें दो बातें हुईं। जब चंदूभाई की बुद्धि दखल करती है तब वह दखल करती है और मैं उसे 'जानता' हूँ।

दादाश्री : आप 'जानते' हो तो आप मुक्त हो और चंदूभाई भी मुक्त है। यदि आप 'जानते हो' तो दोनों मुक्त हो और नहीं 'जानते' तो दोनों बंधे हुए हो।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि फिर बुद्धि की दखल का कोई अर्थ ही नहीं रहा।

दादाश्री : कोई भी अर्थ नहीं रहा। बुद्धि के अर्थ की यहाँ पर कीमत ही नहीं है। इसके उदयकर्म से यह इसे देता है और उसके उदयकर्म से वह लेता है। इसने उसके उदयकर्म से उसे पाँच लाख रुपये उधार दिए और उसने अपने उदयकर्म से लिए। फिर उसमें दखल रहा ही कहाँ? अब जब देने वाले का लौटाने का उदयकर्म आएगा, तब वह देगा और जब लेने वाले का लेने का उदयकर्म होगा तो वह लेगा, वर्ना नहीं।

प्रश्नकर्ता : तब फिर अगर हिसाब नहीं लिखेंगे तो भी चलेगा?

दादाश्री : हिसाब लिखने की ज़रूरत ही कहाँ रहती है? ये सारी सूक्ष्म बातें हैं। तीर्थंकरों की घर की बातें हैं ये सारी!

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न कि यदि आप इसे 'जानते हो' तो चंदूभाई भी मुक्त और आप भी मुक्त। दोनों ही मुक्त। वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : इसमें क्यों समझ में नहीं आएगा? चंदूभाई मुक्त हो गए तो खुद मुक्त ही है। वह तो उदयकर्म के अधीन है। उदयकर्म के अधीन में जोखिमदारी नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : नहीं, ज़रा घोटाला हो रहा है। 'वह' उदयकर्म के अधीन है तो 'वह' कौन है? जो उदयकर्म के अधीन है, वह कौन है?

दादाश्री : वह चंदूभाई है।

प्रश्नकर्ता : उदयकर्म के अधीन 'चंदूभाई' है और जानने वाला 'खुद' है।

दादाश्री : हाँ, खुद या खुद की प्रज्ञा ही!

प्रश्नकर्ता : अब यदि जानने वाली खुद प्रज्ञाशक्ति हो, तो दखल नहीं करेगी न?

दादाश्री : दखल तो अंदर चंदूभाई करते हैं, यदि उदयकर्म के अधीन होना होगा, तो। लेकिन यदि उसमें इसे प्रज्ञाशक्ति की जागृति नहीं रहेगी तो वह एकाकार हो जाएगा। जागृति नहीं हो तो उस समय दखल हो जाता है चंदूभाई में।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रज्ञा एकाकार हो जाती है?

दादाश्री : नहीं। प्रज्ञा एकाकार नहीं होती। प्रज्ञा तो अपना काम करती रहती है, लेकिन यदि जागृति नहीं रहे तो दखल हो जाता है। हमें पता भी चलता है कि यह दखल हुआ।

प्रश्नकर्ता : प्रज्ञा यदि जागृति में नहीं रहे तो चंदूभाई के साथ एकाकार कौन हो जाता है? चंदूभाई की दखल में एकाकार कौन होता है?

दादाश्री : अजागृति। अर्थात् बोलना नहीं और मौन रहना, वही दखल है। 'देखा-जाना' नहीं, उसी को मौन रहना कहते हैं। अजागृति का मतलब ही दखल है। अन्य कौन तन्मयाकार होगा? उसे फिर मिठास भी बरतती है, उसी को तन्मयाकार होना कहा जाता है न!

प्रश्नकर्ता : किसे मिठास बरतती है?

दादाश्री : यह जो उसका डिस्चार्ज अहंकार है, उसे। अब वहाँ

पर यदि 'देखने वाला' होता तो दोनों अलग हो जाते। इसका जो हिसाब बाकी रहा, वह अगले जन्म के लिए जमापूँजी है। शेष बचा, जबकि तीर्थंकर निःशेष होते हैं। इसका शेष बच गया। फिर से वापस भागाकार करना पड़ेगा। शेष नहीं बचे ऐसा होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उदयकर्म और चंदूभाई, वे दोनों क्या अलग-अलग हैं? क्योंकि आपने कहा न कि चंदूभाई उदयकर्म में दखल करते हैं, लेकिन हम उसमें एकाकार नहीं होते।

दादाश्री : चंदूभाई तो दखल करेंगे। अज्ञानता का तो उदयकर्म में दखल करवाने का स्वभाव ही है। चंदूभाई अर्थात् अज्ञानता और उसका स्वभाव ही दखल करने का है। लेकिन उसे यदि हम 'जानें' तो दोनों अलग हैं। जानते नहीं हैं इसलिए मौन रहते हैं और मौन रहने से उसमें हस्ताक्षर हो गए!

प्रश्नकर्ता : हम तन्मय हो गए, उसमें एकात्म होकर मौन रहे तो फिर? उसमें एक हो गए ऐसा?

दादाश्री : अरे, किसी को धमकाता है, फिर भी पता नहीं चलता कि 'यह मैं गलत कर रहा हूँ'। बोलो अब, कैसे-कैसे बड़े उदयकर्म चले जाते होंगे?!

प्रश्नकर्ता : उदयकर्म में जो दखल हो रही हो, उस समय यदि मौन रहे तो इसका मतलब है कि हस्ताक्षर हो गए। वह मौन रहना, वहाँ नहीं रहना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : उदयकर्म में जैसा है, वैसा होने दे न! कुछ करने को तो रहा नहीं। अब 'जानना' बाकी रहा है। मौन का मतलब क्या है? उदयकर्म जब आमने-सामने लड़ते हैं तब आपने उसे 'देखा' नहीं इसका मतलब कि मौन रहे। उपयोग नहीं रखा इसलिए प्रमाद में गया, वही मौन है। प्रमाद ही मौन है। आपको अपने अगले जन्म की जमापूँजी भी चाहिए न! सबकुछ खर्च कर देंगे तो कैसे चलेगा?

प्रश्नकर्ता : और यदि वह मौन नहीं रहता, तो कैसा रहता है?

दादाश्री : अलग हो जाते हैं दोनों। जब चंदूभाई किसी के साथ दखल कर रहे हों तब यदि उसे हमने 'देखा' और 'जाना' तो हम भी मुक्त और चंदूभाई भी मुक्त। चंदूभाई को फिर से कर्म बंधन का कोई कारण नहीं रहा और हमें भी नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : जब मौन नहीं रहता तब क्या होता है? जिसे आप जागृति कहते हैं, वह? उसका विरोधी शब्द क्या है?

दादाश्री : जागृति! अजागृति को मौन कहते हैं हम। जागृति नहीं रहे तो उसी को प्रमाद कहते हैं। जागृति मतलब अप्रमत्त।

'मैं' बरतता है अब जागृति में

प्रश्नकर्ता : तन्मयाकार कौन होता है?

दादाश्री : अहंकार। उसमें जो तन्मयाकार नहीं होने देती, वह जागृति है। वही जुदा रखती है। मूल आत्मा तन्मयाकार नहीं होता। आप अजागृति के कारण तन्मयाकार हो जाते हो न!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान प्राप्त करने के बाद यदि जागृति रहे, तो प्रतिष्ठित आत्मा तन्मयाकार नहीं होता?

दादाश्री : फिर भान रहता है, वह एक जागृति है और जागृति जब अपने स्वभाव में आएगी, तब वह तन्मयाकार नहीं होगा। जब तक पिछला फोर्स है, तभी तक हिल जाता है। फोर्स कम हो जाने के बाद में तन्मयाकार नहीं होगा। जो भी डिस्चार्ज है, वह सारा टंकी का पानी है, भरा हुआ माल है।

प्रश्नकर्ता : तो हमें क्या समझना है? आपने ऐसा कहा कि जागृति आ जाएगी तब आप तन्मयाकार नहीं होओगे तो उसे किस प्रकार से समझना है?

दादाश्री : 'आप' अर्थात् क्या? मूल आत्मा नहीं। अभी भी 'मैं'

तो रहा हुआ ही है, पहले वह 'मैं' प्रतिष्ठित आत्मा के रूप में था, अब वह 'मैं' जागृति के रूप में है। वह 'मैं' तन्मयाकार नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम तन्मयाकार नहीं होते तो प्रतिष्ठित आत्मा तन्मयाकार नहीं होता?

दादाश्री : नहीं। 'हम' यानी कौन? उस समय जो हाज़िर है, वह! उस समय जो आपकी बिलीफ में है। अभी तक संपूर्ण रूप से शुद्धात्मा नहीं हुए हैं। और फिर मूल प्रतिष्ठित आत्मा छूट गया। अब, जागृत आत्मा अर्थात् जागृति। जागृति, जो कि परिणाम है, वह अभी वहाँ पर तन्मयाकार नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान मिलने के बाद प्रतिष्ठित आत्मा तो है ही, तो वह क्या करता है? बाद में उसकी स्थिति क्या रहती है?

दादाश्री : फिर उसकी कोई स्थिति नहीं रहती। वह डिस्चार्ज के रूप में है। अर्थात् निश्चेतन-चेतन है। वह ज्ञेय के रूप में रहता है। फिर ज्ञेय के रूप में वह 'क्या करता है और क्या नहीं', उसे जो जानती है, वह जागृति है।

स्वरूप का भान होने से पहले प्रतिष्ठित आत्मा को ही हम ज्ञाता मानते थे। स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति के बाद में वह प्रतिष्ठित आत्मा खुद ही ज्ञेय बन जाता है और तब फिर खुद जागृति ही ज्ञाता बन जाती है। यानी कि पहले 'मैं' प्रतिष्ठित आत्मा के रूप में था, वही 'मैं' अब जागृति रूपी हो गया है और मूल आत्मा तो अभी उससे भी आगे है। यह, 'जागृति में आ गया।' संपूर्ण जागृत होने पर मूल आत्मा में एकाकार हो जाता है। जब तक संपूर्ण नहीं होता, तब तक जुदा रहता है। तब तक अंतरात्मा के रूप में रहता है। वहाँ पर बहिर्मुखी पद छूट चुका होता है। अंतरात्म दशा खत्म हुई कि परमात्मा पद प्राप्त हो जाता है!

तन्मयाकार नहीं है, उसकी निशानी

प्रश्नकर्ता : ऐसा कब कह सकते हैं कि मन के विचार, वाणी

के संयोग और देह के वर्तन में आत्मा तन्मयाकार नहीं हुआ है? वह परिस्थिति कैसी होती है?

दादाश्री : बातें करते समय उसे अंदर ज़रा सा भी असर नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : असर नहीं होना अर्थात् किसका असर नहीं होना चाहिए?

दादाश्री : चेहरे पर बदलाव होता रहता है, वह। जैसे खुद जुदा हो न, उस तरह से बात करता है। जैसे अन्य किसी व्यक्ति की बात कर रहा हो, उस तरह से। अन्य व्यक्ति की बात कर रहा हो न, उस तरह बात करे तो उसे कहेंगे कि, तन्मयाकार नहीं है, और चंदूभाई को देखकर बात करता है। यदि आप चंदूभाई को देखते हुए बात करते हो न, तो आत्मा जुदा कहलाएगा।

व्यवहार के समय भी खुद जानने वाला ही

संसार की चीज़ों में तो आत्मा को तन्मायाकार रखने की ज़रूरत ही नहीं है। वह सारा साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है। देह व मन, सब एक होकर संसार का काम करें तो उसका फल मिलता है। वह तो, यदि कोई पुण्य होगा तो फायदा रूपी फल मिलेगा वर्ना यदि पाप होगा तो नुकसान रूपी उल्टा फल मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : इसमें वह व्यवहार पूरा होने में खुद की ज़रूरत नहीं है, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : आत्मा की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् आत्मा जुदा रह सकता है, ज्ञान जागृति में रह सकता है?

दादाश्री : यह सबकुछ हो सकता है और आत्मा जुदा रह सकता है। लोग आत्मा को भी साथ में ले जाते हैं और समय बिगाड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : संसार की क्रियाओं में आत्मा को लगाने की ज़रूरत ही नहीं है?

दादाश्री : मन-वचन-काया तो जाते ही हैं उसमें और नुकसान में भी मन-वचन-काया रहते हैं। अपने यहाँ लोग कहते हैं न, 'लेकिन कुछ किए बगैर पुण्य फल कैसे देगा?' अरे भाई, यदि करने से ही मिलता तो नुकसान क्यों उठाते हो? अत: यह पुण्य और पाप का ही प्रभाव है। यह (प्रयत्न) करना वगैरह तो इसके साथ में एविडेन्स है एक प्रकार का।

प्रश्नकर्ता : पुण्य या पाप के फल की प्राप्ति के लिए ही तो ये सारी क्रियाएँ हो रही हैं।

दादाश्री : ये सारे संयोग मिल आते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब कोई भी काम आता है, उससे पहले जागृति होती है और फिर वह चली जाती है सारी। वह काम करते समय पूरा एकाकार हो जाना पड़ता है और फिर पूरा होने के बाद वापस ज्ञान की बातें शुरू होती है...

दादाश्री : वहाँ पर आत्मा एकाकार होता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अब वहाँ पर जागृति कैसे रखनी चाहिए?

दादाश्री : वह जागृति अहंकार और बुद्धि की होती है।

प्रश्नकर्ता : यानी जिनके एकाकार हुए बगैर काम पूरा नहीं होगा?

दादाश्री : तब बुद्धि एकाकार होती है। खुद के मन में ऐसा लगता है कि, 'मैं एकाकार हो गया।' इसलिए वैसा असर हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो वहाँ पर कैसा रहना चाहिए?

दादाश्री : वहाँ पर तो जानकार रहना चाहिए कि बुद्धि के एकाकार होने से यह गाड़ी चली और जो यह जानता है कि यह सही

हुआ या गलत हुआ, वह आत्मा है। वह कहता है कि मैं एकाकार हो गया, तो फिर सही या गलत किसने जाना?

प्रश्नकर्ता : ठीक है। यानी उस पूरे व्यवहार के समय वह खुद जानकार ही था।

दादाश्री : जो जानकार रहता है, वही आत्मा है। जो इसमें घुस गया, वह आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह घुस जाने जैसा ही लगता है।

दादाश्री : वह बुद्धि और अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : यानी वहाँ पर ऐसा समझ लेना है कि वास्तव में हम नहीं घुसते हैं उसमें?

दादाश्री : ऐसा ही समझना है क्योंकि फिर हम कहते हैं, लेकिन... 'सीधा हुआ या टेढ़ा?' तब कहता है, 'सीधा हुआ'। घुस जाने वाले को पता नहीं होता। सही हुआ या गलत, घुस जाने वाले को वह पता नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिस क्षण व्यवहार हो रहा है, उस क्षण इस प्रकार से जागृत रहना, ये दोनों चीज़ें एट ए टाइम हो जाती हैं या फिर दोनों के बीच अंतर रहता है?

दादाश्री : एट ए टाइम रहता ही हैं, कोई अंतर है ही नहीं। उसकी मान्याता में फर्क रहता है। उस मान्यता में फर्क हो तब भी फिर यदि पूछें कि, 'यह जाना किसने?' जो वह जानता है, वह आत्मा है। जो घुस गया, वह आत्मा नहीं है। जो एकाकार हो गया, वह आत्मा नहीं है। आत्मा कभी भी अहंकार नहीं बन सकता, वह तो जानकार की तरह ही रहता है न! आत्मा अलग ही रहता है, जानकार ही रहता है। ऐसा लगे कि घुस गया है तो वापस प्रतिक्रमण करके (अपनी जगह पर) लौट आना चाहिए कि, 'मुझसे भूल हो गई।' घुसता ही नहीं है। यह पहले की आदत थी। वही आदत अभी भी हो रही है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् आपके कहे अनुसार सिर्फ समझ को ही बदलना है, बाकी तो सारा व्यवहार हो ही रहा है।

दादाश्री : हो ही रहा है।

प्रश्नकर्ता : समझने में भूल नहीं हो, ऐसी सेटिंग करते रहना है?

दादाश्री : जो घुस गया वह मैं नहीं हूँ। मैं अलग, घुसने वाला अलग है।

क्रमिक मार्ग वाले में आत्मा वेदक है और अपने यहाँ निर्वेद है। वे ऐसा कहते हैं, 'मेरा आत्मा तन्मयाकार हो गया' और हम जानकार रहते हैं कि *शाता* बरत रही है या *अशाता* बरत रही है। यानी कि क्रमिक मार्ग में ऐसा होता है कि वेदक घुस जाता है इसलिए वे ऐसा कहते हैं कि मेरा आत्मा घुस गया और वह घुसने भी नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : घुसने नहीं दे तो व्यवहार डिस्टर्ब हो जाएगा?

दादाश्री : व्यवहार पूरा डिस्टर्ब हो जाता है। लेकिन वे व्यवहार को छोड़ते-छोड़ते जाते हैं, त्याग करते-करते आगे जाते हैं। अपने यहाँ व्यवहार में रहने की छूट किसलिए दी है? क्योंकि आत्मा तो वेदक है नहीं। बाहर वाले तो, क्रमिक मार्ग तो ऐसा ही कहता है कि वह खुद ही वेदक है क्योंकि उसे पूरा ज्ञान नहीं हुआ है। पूरी तरह से आत्मा नहीं हुआ है। जो पूरी तरह से आत्मा हो चुका है, वह वेदक नहीं होता, निर्वेद होता है।

प्रश्नकर्ता : आपका ऐसा कहना है न कि मूल आत्मा तो पूर्ण ही है, लेकिन उसकी दृष्टि पूरी तरह से वैसी नहीं हुई है?

दादाश्री : हाँ, आत्मा तो पूर्ण ही है, लेकिन क्रमिक में ऐसी दृष्टि नहीं हुई है। क्रम पूर्वक होगी। जैसे-जैसे छोड़ता जाएगा, वैसे-वैसे दृष्टि खिलती जाएगी। जैसे-जैसे परिग्रह कम होंगे, वैसे-वैसे दृष्टि खिलती जाएगी।

प्रश्नकर्ता : उन लोगों को, क्रमिक मार्ग वालों को ऐसा निश्चय है कि परिग्रह अथवा व्यवहार कम हो जाए या वे उनके उदय में ऐसा लेकर ही आए हुए हैं?

दादाश्री : ऐसा निश्चय ही होता है।

प्रश्नकर्ता : यदि व्यवहार कम हो जाए तो क्या वह जागृति के लिए अधिक हितकारी है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : उससे क्या जागृति आसानी से बढ़ती है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन उन्हें अग्रशोच रहती है। यह तो, अक्रम विज्ञान में ये सभी लोग आत्मा को जानते हैं, वर्ना आत्मा कहाँ से जानते? किसी के मानने में नहीं आएगा न?

प्रश्नकर्ता : तो उनमें से कोई आत्मा की प्राप्ति करे, ऐसा हो ही नहीं सकता?

दादाश्री : जिस दिन आत्मा प्राप्त करता है, तब वह या तो तीर्थंकर बन जाता है या केवली, फिर मोक्ष में चला जाता है इसलिए (आत्म जागृति के बारे में) बताने का समय ही नहीं मिलता।

[1.5]
सीट का सिलेक्शन, स्व और पर की

रोंग सीट में बैठे हैं इसलिए...

प्रश्नकर्ता : दादा, चंदूभाई को जो करना है, और चंदूभाई को जो करना चाहिए, वे दोनों चीज़ें अलग हैं। उदाहरण के तौर पर चंदूभाई को सिनेमा देखने जाना है और घर में खूब मेहमान आए हुए हों तो उसे पता है कि घर पर काम करना चाहिए लेकिन उसमें उसकी सिन्सियरिटी नहीं है। तो इसमें सिन्सियरिटी कैसे लाई जाए?

दादाश्री : आप थोड़ा धीरज रखो और जो हो रहा है, उसे 'देखते' रहो तो बहुत हो गया। अर्थात् कम्प्लीट सिन्सियरिटी आ गई।

प्रश्नकर्ता : लेकिन चंदूभाई ऐसे हैं कि आग में ही हाथ डालने जाते हैं।

दादाश्री : नहीं। तब भी आपको 'देखना' चाहिए कि चंदूभाई ने कितना हाथ डाला, इतना हाथ डाला या इतना डाला, वह 'देखना' है। आप तो क्लियर हो, मैंने आपको क्लियरन्स वाली जगह पर बैठाया हुआ है। आप क्यों अनक्लियर हो जाते हो? आप किस स्थिति पर बैठते हो? रिज़र्वेशन पर न! जहाँ आपका रिज़र्वेशन किया है, वहाँ बैठते हो या अनरिज़र्व्ड जगह पर बैठते हो? चंदूभाई तो शौक़ीन हैं इसलिए अनरिज़र्व्ड जगह पर भी बैठ आएँ ऐसे हैं।

प्रश्नकर्ता : वह जो पराई सीट पर बैठ जाते हैं, तो किस तरह वहाँ पर न बैठें और किस तरह आत्मा को ही पकड़े रहें? यानी कर्तापन में आ जाते हैं बार-बार।

दादाश्री : उस सीट पर बैठ गए और शॉक लगे तो समझ जाना कि यह अपनी नहीं है। अगर शॉक लगे तो उठ जाना चाहिए। जहाँ शॉक लगे, वह कुर्सी अपनी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : शॉक लगता है फिर भी बैठे रहते हैं।

दादाश्री : तो मज़े करो। मौज करो, और पकोड़े खाओ।

प्रश्नकर्ता : शॉक लगता है लेकिन उठता नहीं है, तो फिर कैसे उठेगा? क्योंकि वह ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रह पाता तो वह किस तरह रहना चाहिए?

दादाश्री : जो उठते नहीं हैं, उन्हें आप देखते हो न! जो नहीं उठते हैं, वह आप नहीं हो। एक 'चंदूभाई' है और एक 'आप' हो। जो नहीं उठते हैं, वे चंदूभाई हैं। चंदूभाई से कहना, ''चलो सोए रहो। बैठना हो तो बैठ जाओ भाई, यदि अच्छा लगे तो! मैं 'देखता' रहूँगा और आप बैठे रहो।'' सॉल्यूशन (हल) तो होना चाहिए न!

प्रश्नकर्ता : यानी कि जो कुछ होता है, उसे *नोंध* (नोट) करते रहें?

दादाश्री : सभी क्रियाओं को 'देखना' है। वह यदि किच-किच करे तो उसे भी आपको देखना है कि, 'यह भी मेरा स्वरूप नहीं है', कहना। ऐसा है दादा का यह ज्ञान। ऊपर कोई नहीं, विदाउट बॉस। *ऊपरी* के भी *ऊपरी* हैं दादा भगवान!

प्रश्नकर्ता : यानी किच-किच करता है, वह कौन सा भाग है?

दादाश्री : वह दूसरा भाग है, वह चंदूभाई के पक्ष वाला।

प्रश्नकर्ता : यानी वह जो किच-किच करता है, उसे भी देखना है?

दादाश्री : उसे भी देखना है।

प्रश्नकर्ता : यानी जो देखते हैं, वे तो कुछ बोलते ही नहीं, सिर्फ देखते ही हैं।

दादाश्री : जो देखता है उसका कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं है। उसे कोई डाँटने वाला नहीं है, कुछ भी नहीं है। अनंत शक्तियाँ भरी पड़ी हैं लेकिन चंदूभाई का रक्षण करते हो न, इसलिए सारी शक्तियाँ आवरण में छुपी रहती हैं। रक्षण करते हो न चंदूभाई का? खुले आम करते हो न? इसीलिए शक्तियाँ नहीं खिलतीं। यदि इन आज्ञाओं का पालन करके रहोगे तब भी कभी समाधि नहीं जाएगी। आप अपनी कुर्सी पर और चंदूभाई अपनी कुर्सी पर बैठे रहेंगे। आप चंदूभाई की कुर्सी पर बैठने जाते हो, उसी से यह परेशानी है। पहले की आदत पड़ी हुई है वह!

आपको तो बाहर से हटकर खुद की सीट पर बैठना है। अब अपनी सीट कौन सी है? अंदर चार-पाँच तरह की सीटें हैं। तो अपनी कौन सी सीट है? जहाँ पर एकदम ईज़ी लगे, वह अपनी सीट है। ज़रा सी भी चुभन लगे तो जानना कि यह दूसरी सीट आई। चुभे तो समझ जाना या फिर शॉक लगे तो समझ जाना कि यह शॉक लगा। उन सभी सीटों पर नहीं बैठकर, अपनी सीट पर बैठना।

कोई-कोई तो मक्खन लगाता है, 'चंदूभाई साहब, आप तो बहुत लायक इंसान हो, बहुत अच्छे हो।' लेकिन जब वह लगाए तब क्या हमें लगाने देना है? 'चंदूभाई, वह अपनी सीट नहीं है। वहाँ से तो दादा ने हटा दिया है।' 'मैं चंदूभाई हूँ' मानते थे, इसीलिए तो मार खा रहे थे।

कोई भी *भोगवटा* (सुख या दु:ख का असर, भुगतना) आए तो समझ में आएगा कि, 'मैं दूसरी सीट पर बैठा हूँ, यह सीट मेरी नहीं है', तब वहाँ से उठकर वापस शुद्धात्मा की सीट पर बैठ जाना है। अपनी सीट पर बैठ जाना है लेकिन तू तो वहाँ बैठा रहता है, ऐसे

जैसे कि डबल चार्ज देना हो! मन कोई भी उल्टा विचार करे कि तुरंत ही समझ जाना कि इस दूसरी, उल्टी सीट पर हूँ, अपनी सीट पर नहीं हूँ। खुद की सीट पर चले जाना तुरंत। बहुत देर बैठा रहता है, नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। ऐसा होता है।

दादाश्री : इसीलिए तेरा चेहरा बिगड़ा हुआ दिखाई देता है। मैंने कहा, 'यह चेहरा क्यों बिगड़ा हुआ है!' कोई भी अड़चन आए, तो फिर अपनी खुद की सीट पर चले जाना तुरंत। जो दोष हो चुके हैं, उनके लिए फिर माफी माँग लेना।

यह दुनिया उलझने योग्य नहीं है। यदि कोई उलझन होने लगे या शरीर में कुछ परेशानी शुरू हो तो उठकर तुरंत अपनी कुर्सी पर बैठ जाना। उसे 'देखते' रहना। कहना 'चंदूभाई, क्यों उलझ रहे हो आप?'

अंत में बिराजो परमात्मा की ही सीट पर

'मैं यह हूँ, मैं यह हूँ, मैं उपदेशक हूँ, मैं फलाना हूँ।' वह सब छूट गया और 'मैं आत्मा हूँ' में आ गया। उन सभी पर से बैठक छूट गई। दूसरी गद्दी (बैठक) पर बैठने के बाद फिर आत्मा छूट ही जाएगा न?

जहाँ बैठे थे वहाँ से भी अंततः फिर उठ जाना है। हम बैठाते भी है कि, 'अब चंदूभाई ऐसा कर सकते हैं, वैसा कर सकते हैं', और बाद में जब वे गद्दी पर बैठे रहते हैं, तब हम एक लगाते हैं। हर एक पद पर बैठकर उठ जाना है। ज़रा मीठा लगने लगे, कुछ दिन बैठा रहे न, तो हम एक लगाते हैं। उठकर वापस यहीं पर आना है आखिर में। लेकिन नियमपूर्वक उन पदों पर बैठ-बैठकर आना है। अगर वह बैठा ही रहेगा तो क्या होगा? मुझे तो परेशानी होगी न! उस गाँव (मोक्ष में) नहीं जाएगा न! वहाँ पर जाना रह जाएगा न! यानी कि यह सारा चक्कर बहुत उल्टा है। चंदूभाई को आज बैठाते हैं यहाँ पर, परसों वापस उठा देते हैं। अंत में आत्मा में बैठना है और बाहर कह देना है कि 'मुझे कुछ नहीं आता', तब तक 'उस कार्यकुशलता' में रहना है। तब तक गद्दी पर बैठना है। उसके बाद कह देना 'मुझे

कुछ नहीं आता'। वर्ना यदि वैसी कार्यकुशलता नहीं होगी तो स्टेज पर नहीं बैठ सकेगा। यदि चंदूभाई मन में ऐसा समझे कि 'मैं समझा सकता हूँ', तो वह नहीं बैठ पाएगा और बैठे बिना निबेड़ा आएगा नहीं। अतः हम पहले पोषण देते हैं। बाद में वापस उठाते हैं, एक लगाकर। यानी कि ऐसा करते-करते मोक्ष में जा पाओगे। आसान चीज़ नहीं है। ये सब तो बहुत बड़े जोखिम हैं लेकिन इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद परेशानी नहीं है, दुःखदायी नहीं रहेगा।

बाद में उसे खुद को समझ में आता है कि, 'मुझे उठाया तो अच्छा हुआ'। वापस दूसरी जगह पर बैठाते हैं। वापस वही का वही न फिर। ऐसा करते-करते जब कुर्सियाँ खत्म हो जाती हैं तब हम कहते हैं कि, 'यहाँ पर बैठ जा', और कहते हैं, 'बाहर की कुर्सियाँ झूठी हैं।'

प्रश्नकर्ता : दादा, शुरुआत में ही बैठा दीजिए न, तो झंझट मिट जाए।

दादाश्री : नहीं, शुरुआत में नहीं हो सकता। वह तो सभी पद भोगने पड़ेंगे। हर एक पद भोगना है। अनुभव हो जाना चाहिए। वर्ना आत्मा में बैठने के बाद वापस मन में भाव होगा कि इस पद में जाकर आऊँ, चख आऊँ। पहले ही चखकर आया होगा तो फिर झंझट ही नहीं रहेगी न!

प्रश्नकर्ता : वह बात सही है। अनुभव सिद्ध करना है।

दादाश्री : अनुभव होना ही चाहिए। सभी प्रकार के अनुभवों में से गुज़रने के बाद में मैंने कहा, 'मुझे कुछ नहीं आता।'

प्रश्नकर्ता : और हम तो यों ही बोलना शुरू कर देते हैं?

दादाश्री : नहीं चलेगा। ऐसा कैसे चलेगा? आत्मा की सीट प्राप्त हुई नहीं और उससे पहले ही यदि यह छोड़ दोगे, तो क्या होगा? वह प्राप्त होना चाहिए उसके बाद दूसरी तरफ पूर्णता होती जाएगी।

लेकिन जब यह पूर्ण हो जाएगा तब वह पूर्ण होगा। बहुत समझने जैसी, सूक्ष्म बातें हैं। अगर आप यहाँ पर मेरे पास पड़े रहे न, तो सब उच्च प्रकार का होगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपको सौंप दिया। फिर आपको जो करना हो, जहाँ बैठाना हो वहाँ बैठाइए, और जहाँ से उठाना हो वहाँ से उठाइए। आपको जैसा करना हो वैसा कीजिए दादा।

दादाश्री : हाँ, बस-बस। तो फिर परेशानी नहीं है। जिसने सौंप दिया हो न, उसे। सौंप दिया इसलिए उठाते हैं और बैठाते हैं, उठाते हैं और बैठाते हैं। जिसने नहीं सौंपा हो न, उसके लिए फिर हमें कुछ करना पड़ता है थोड़ा-बहुत। फिर बच्चा मार खाते-खाते से सीख लेकर आ जाएगा लेकिन आएगा ज़रूर। एक बार आत्मा प्राप्त किया है न! छोड़ेगा नहीं फिर। यह रास्ता नहीं मिले तो ऐसे उलझकर, वैसे उलझकर लेकिन वापस रास्ता निकाल देगा।

जागृति, नहीं है व्यवस्थित के अधीन

अंदर ठिकाने पर लाएगा या ऐसा ही रहेगा? भटकवा देगा?

प्रश्नकर्ता : ठिकाने पर ही लाना है।

दादाश्री : अभी तो जब और अधिक सुलगेगा तब फिर मुझसे कहता है, 'सहन नहीं होता'। अरे, तुझसे सहन नहीं होता या उससे (चंदूभाई से) सहन नहीं होता? तू तो जानने वाला है। तो उस पद पर मत बैठ न कि, 'सहन नहीं होता।' अभी तक तो उसी पद पर बैठा हुआ है न!

प्रश्नकर्ता : एक्ज़ेक्ट है। ऐसा ही है।

दादाश्री : फिर कहता है, 'मुझसे सहन नहीं होता'। तो तू उस पद पर बैठा हुआ है। यहाँ पर बैठ। ऐसे उठा-उठाकर सौ एक बार यहाँ पर बैठाया होगा और फिर से बैठ गया तो बैठ गया, तब फिर वापस किसी दिन उठेगा। वापस जाकर बैठ आएगा।

प्रश्नकर्ता : इस तरफ सुलगता है और खुद जुदा रहता है। क्या इस तरह जुदा रहना व्यवस्थित के ताबे में माना जाएगा?

दादाश्री : नहीं-नहीं। कहीं व्यवस्थित के ताबे में होता होगा? व्यवस्थित तो उसे उस (चंदूभाई की) ओर बैठाता है, पुरुषार्थ इस तरफ बैठाता है। व्यवस्थित तो उसे वहीं पर ले जाता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों? ऐसा किस वजह से?

दादाश्री : व्यवस्थित *पुद्गल* से जुड़ा हुआ है, आत्मा से नहीं। इसलिए यदि वह वहाँ पर जाता है तो वह व्यवस्थित के ताबे में है। यदि यहाँ पर रहे तो व्यवस्थित के ताबे में नहीं है, स्वतंत्र है।

प्रश्नकर्ता : दादा, अंतर तप की बात है न यह?

दादाश्री : हाँ, अंतर तप के समय वहाँ पर एकाकार हो गया तो व्यवस्थित के ताबे में है और अगर एकाकार नहीं हुआ और मेरे वचनबल से यों अलग रहा तो व्यवस्थित के ताबे में नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि एकाकार हो जाना, वह चीज़ या फिर यह जो तप है, इनमें से कौन से विभाग के लिए आप ऐसा कह रहे हैं कि व्यवस्थित के ताबे में है?

दादाश्री : नहीं, एकाकार हो जाना ही व्यवस्थित है। व्यवस्थित ऐसा ही था, उसमें से पुरुषार्थ करके इसे जुदा किया और उसी बात का दुःख है। व्यवस्थित को पार किया, उस बात की जलन दिन-रात चलती रहती है और हमें मज़ा आता है, आराम से आइस्क्रीम खाता है फिर भी पिघलती नहीं। असल मज़ा आता है, नहीं?

मैंने कहा है न, 'उत्तम पद आया है यह।' यदि यह सुलगता रहेगा तो काम निकल जाएगा। सारा कचरा जलाकर भस्मीभूत कर देगा न! अतः जिस कुर्सी पर तू बैठेगा, वहाँ पर यदि कोई दुःख न हो, तब जानना कि यह कुर्सी अपनी है। वेदना वाले भाग पर कोई बैठेगा ही नहीं न! किसी कुर्सी पर ज़रा सा जल जाते हैं, किसी कुर्सी पर

ज़्यादा जल जाते हैं, किसी कुर्सी पर शॉक लगता है। तो वहाँ से उठ जाना जल्दी से। अंदर ऐसी चार-पाँच कुर्सियाँ हैं। इस तरह से समझाया उसे। फिर वापस बैठता भी था लेकिन वापस फिर से उठा देता हूँ। अब पता चलता है तुझे कि, 'इस कुर्सी पर गलती से बैठ गया हूँ?'

प्रश्नकर्ता : दादा, पता तो चलता ही है।

दादाश्री : अभी जब तक पता चलता है, तब तक उसके बदलने की आशा है। अगर पता ही नहीं चले तो उसका फिर क्या उपाय? अभी तो आप जो बातें कर रहे हो, वह मुझे सुनाई नहीं दे, तो फिर मुझे इससे क्या लेना-देना? मुझे क्या फायदा?

जब हम रिलेटिव पर बैठ जाते हैं तो पता नहीं चलता कि शॉक लग रहा है? तब उठकर वहाँ पर उस शुद्धात्मा की कुर्सी पर बैठ जाना। यानी कि स्वभाव को पहचानो। जहाँ शॉक लगता है वहीं पर बैठते हैं और फिर शोर मचाते हैं, 'दादा, मुझे अंदर कुछ हो रहा है...' 'अरे भाई! तू उठ न यहाँ से। वहाँ पर तेरी कुर्सी पर बैठ न! तुझे रिलेटिव और रियल का विभाजन कर दिया है कि यह तेरी कुर्सी है और यह उसकी।'

प्रश्नकर्ता : रिलेटिव की कुर्सी पर इतना ज़ोरदार शॉक नहीं लगता इसलिए पता नहीं चलता। उसमें बैठे ही रहते हैं वहाँ।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह अच्छा लगता है, मीठा लगता है लेकिन जीभ ज़रा कटती भी है। तलवार की धार पर शहद रखा हो न, तब वह मीठा तो लगता है लेकिन जीभ भी कटती है। बीच-बीच में जलन भी होती है, दोनों साथ में चलता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, रिलेटिव की कुर्सी पर जब झटका लगता है, तब कभी एकदम उठ जाते हैं और दादा याद आ जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन ऐसा हो जाता है न, यानी कि थोड़ा-बहुत तो उठे न! उठने का भाव तो हुआ न! लेकिन यदि इस स्वभाव को

पहचान जाएगा, तो वह तुरंत उठ जाएगा कि 'यह नहीं है, यह नहीं है, यह तो भटक गया'। जैसे कि यदि हम इलेक्ट्रिक वायर को हाथ लगाएँ और शॉक लगे तो फिर हम क्या कहते हैं कि 'देखना, उसे मत छूना।' उसी तरह इसे भी सावधान करते रहना है, बिवेयर। उस चार सौ वॉल्ट वाले से तो मृत्यु होती है लेकिन यहाँ तो अनंत जन्मों का मरण होता है! इसलिए बहुत बड़ा बोर्ड लगाकर रखो। यदि आत्मा प्राप्त हुआ हो तो, वर्ना बाहर तो किसी से भी कुछ नहीं कह सकते। आपको रिलेटिव और रियल, दोनों कुर्सी का पता चल गया है इसलिए कह सकते हैं। बाहर बात करने से कोई फायदा नहीं होगा।

पराई सीट पर लगती है मिठास, लेकिन...

प्रश्नकर्ता : उस *पोतापणां* (मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन) की सीट पर नहीं चले जाना है, क्या निरंतर यही जागृति रहनी चाहिए?

दादाश्री : अंदर मार पड़ती है, शॉक लगता है फिर भी वहीं बैठा रहता है। इलेक्ट्रिक शॉक लगने पर आप खींच लेते हो?

प्रश्नकर्ता : खींच ही लेता है।

दादाश्री : ऐसा क्यों किया? तब कहते हैं कि, 'शॉक लगता है'। उसी तरह इस कुर्सी पर शॉक लगा। कम टु द ईज़ी। पता चलता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : जहाँ शॉक लगता है वहाँ से तो तुरंत वापस हट जाता है, लेकिन अब जहाँ पर मिठास आती है, वहाँ पर सिट डाउन हो जाता है। लेकिन पराई सीट यानी मिठास भी लग सकती है अथवा शॉक भी लग सकता है, ऐसा भी होता है।

दादाश्री : मिठास लगती है, लेकिन शॉक लगे बगैर तो रहेगा ही नहीं। मिठास हो तब भी शॉक लगता है। पुरुषों को तो शॉक लगता ही है, स्त्रियों को नहीं लगता। जहाँ पर मिठास होती है, स्त्रियाँ वहाँ

पर बैठी रहती हैं। उन पर शॉक का असर नहीं होता। इफेक्ट का पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : वर्ना वह तो पूरा शॉक वाला ही है।

दादाश्री : वह भी शॉक वाला है और वह भी शॉक वाला। पुरुषों को कुछ चीज़ों में शॉक लगता है। कुछ लोगों को, थोड़ा-बहुत जो स्त्रियों जैसा होता है, उसे। और जिसके रंग-ढंग स्त्री जैसे होते हैं न, तो उसे भी पता नहीं चलता।

परेशानी ही है। हमें तो एक सेकन्ड के लिए भी सहन नहीं होता था, ज्ञान होने से पहले। *पोतापणुं* उसी दिन निकल गया, ज्ञान होते ही।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान होने के बाद सारा *पोतापणुं* खत्म कर दिया।

दादाश्री : खत्म नहीं किया जा सकता न? मैं क्यों खत्म करूँ? अपने आप ही हो गया।

प्रश्नकर्ता : आप खुद की सीट पर बैठ गए इसलिए बाकी का सब अपने आप ही खत्म हो गया।

दादाश्री : मैं बैठा ही नहीं। वह तो ज़रा आराम करने गया था, तब साथ वाले से कहा था, 'तू *चोविहार* (सूर्यास्त से पहले भोजन करना) के बर्तन धोकर आ।' गाड़ी में *चोविहार* कर लिया था। वह तो अपने आप ही हो गया। लोग मुझसे पूछते हैं, 'किस तरह से हुआ?' मैंने कहाँ, 'यह क्या कोई गणित है? यह सब? दिस इज़ बट नैचुरल। यह इफेक्ट है, कॉज़ नहीं है!

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न, ज्ञान होने के पहले से ही मुझे *पोतापणुं* बिल्कुल भी सहन नहीं होता था, वह सीट...

दादाश्री : ज्ञान होते ही वह खत्म हो गया। *पोतापणुं* सहन ही नहीं होता था एक सेकन्ड के लिए भी। सुख हो या दुःख, वह कड़वा ज़हर जैसा लगता था। सिर्फ हीरा बा ही जानते थे कि इन्हें सब कड़वा ही लगता है।

प्रश्नकर्ता : खुद की सीट मिल गई इसीलिए बाद में फिर इनका वह दु:ख बंद हो गया।

दादाश्री : मेरा तो यों ही खत्म हो गया था। भूल निकालनी ही नहीं पड़ी न कोई। लोग पूछते हैं, 'दादा, आपको यह सब किस तरह से हुआ?' तो क्या यह तुझे कुछ गणित जैसा लगता है? सीधा अंदर ही बैठा देते हैं, अक्रम विज्ञान से, क्रम-व्रम नहीं। हो पाएगा न अब?

खुद की सीट तैयार हो गई, ऐसा कब कहा जा सकता है? जब पाँच आज्ञा का पालन करते हो तब, एक्ज़ेक्ट।

प्रश्नकर्ता : उनका पालन करने पर खुद की सीट पर आ गए, ऐसा कहा जाएगा।

दादाश्री : ये आज्ञाएँ, यही खुद की सीट है और आज्ञा से बाहर गया कि उस दूसरी सीट पर बैठ जाएगा। यह ईज़ी और वह अनईज़ी! ज़रा सा भी अनईज़ी में जाते ही शॉक लगेगा। वहाँ पर अगर (बिजली का) शॉक लगे तो तुरंत खींच लेता है। यहाँ का शॉक उसे समझ में नहीं आता। अभी तक तो शॉक लगने की आदत पड़ी हुई है न! किस चीज़ की आदत पड़ी हुई है?

प्रश्नकर्ता : वह शॉक, उसी चीज़ को करेक्ट मान लिया था।

दादाश्री : फिर यह तो बहुत नाजुक है न, ज़रा सा भी दु:ख पड़े तो सहन नहीं होता। उसे मैंने कहा न, तो तुरंत सीट बदलने लगा। मेरी गैरहाज़िरी उससे सहन नहीं हो रही थी। इसलिए फिर ऐसा कहा कि, 'इसमें (शुद्धात्मा में) रहना'। फिर उसमें रहने लगा।

प्रश्नकर्ता : खुद जब तक खुद की सीट पर नहीं आ जाए, तब तक वह पराई सीट पर ही है न? ऐसा ही है न?

दादाश्री : उसका पता ही नहीं लगाना है। अपने आप वहीं पर होगा। वह तो, कुदरत ही बैठा देती है न! तुझे ढूँढना नहीं है। ज़बरदस्ती बैठा दे, तो बैठना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वहाँ से खुद उठकर अपनी सीट पर बैठ जाना है।

दादाश्री : यह पुरुषार्थ है और वह व्यवस्थित। निश्चय की ज़रूरत पड़ेगी और वह व्यवहार तो है ही, व्यवस्थित में। और जिनके व्यवहार और निश्चय के बीच भेद नहीं डला है उनके लिए यह व्यवहार, और यह निश्चय। अपने लिए व्यवहार व निश्चय नहीं हैं। अपने लिए सिर्फ निश्चय ही है। जिस गाँव जाना है, उसी की झंझट, बाकी क्या झंझट है हमें? और तू क्या कहता है कि, 'व्यवहार का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा न?'

प्रश्नकर्ता : नहीं, उसका ध्यान नहीं रखना है लेकिन व्यवहार तो अपने आप हो ही जाएगा न वहाँ पर।

दादाश्री : वह होता ही रहेगा। अब पसंद नहीं हो फिर भी होता रहेगा, कॉज़ किए हैं तो क्या इफेक्ट आए बगैर रहेगा? परीक्षा दी है, तो पास या फेल का रिज़ल्ट आएगा ही न?! क्या कोई चारा है?

प्रश्नकर्ता : यानी खुद उस (व्यवहार की) सीट पर से उठ गए, फिर भी व्यवहार तो होता ही रहता है उस तरफ।

दादाश्री : फिर होता रहेगा। आपके उठने की ही देर है। बल्कि नहीं उठते हो इसीलिए बिगड़ा है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि एक कुर्सी वहाँ पर है और एक कुर्सी यहाँ, क्या ऐसा है? इस कुर्सी पर बैठूँ तो वह कुर्सी खाली रही न एक जगह पर! क्या ऐसा होता है?

दादाश्री : व्यवहार वाली तो रहेगी ही। कोई चारा ही नहीं है, कुदरत बैठा देती है वहाँ पर, अपनी इच्छा नहीं हो फिर भी।

प्रश्नकर्ता : तो वहाँ से उठने का पुरुषार्थ करना है।

दादाश्री : हाँ, आनंद होना हो तब बैठाती है या फिर दुःख

होना हो तब भी बैठाती है, व्यवस्थित में। अतः आप तो उस सीट को छूते ही समझ जाना कि यह सीट मेरी नहीं है, किंचित्मात्र भी अनईज़ी नहीं होनी चाहिए। ईज़ी! मैं क्या कहना चाहता हूँ वह बात समझ में आ रही है न?

जिसे ज्ञान समझ में आया, वह अलग और खुद अलग

प्रश्नकर्ता : बहुत अच्छा लगा दादा।

दादाश्री : या कहीं पर भी उलझन हुई?

प्रश्नकर्ता : ज़रा सी भी नहीं। स्पष्ट हो गया।

दादाश्री : बल्कि जो उलझन थी वह सुलझ गई। नहीं? तो अब इसका ध्यान रखना।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ध्यान रखना। सुनने वाला अलग, ध्यान नहीं रखने वाला अलग और फिर आप भी अलग हो। इसलिए हमने ऐसा कहा है कि 'ध्यान रखना'। क्योंकि हम पिछला सब जानते हैं कि इसे कहने वाला कौन है। ताकि आपको उस झंझट में पड़ना ही नहीं पड़े। आप तो दादा के कहे अनुसार चलो। आपको चंदूभाई से कहना है, ''हम' देखेंगे और आप दादा के कहे अनुसार चलते रहो।' 'आप ध्यान रखना', कहने के बजाय 'दादा ने जैसा बताया है, वैसे ध्यान रखना'' ऐसा कहना।

आपको उलझन में डालने वाले ज्ञान को निकाल दिया। अगर आप चंदूभाई से कहो कि, 'ध्यान रखना'। तो फिर वह कहेगा कि, 'ऐसा कहने वाला कौन है यहाँ पर?' ऐसा प्रश्न होगा न?

फिर अंदर पूछेगा न कि 'यह कौन कह रहा है?' अगर आप कहो, 'मैं कह रहा हूँ।' लेकिन 'मैं कौन?' अतः, 'दादा यह कह रहे हैं', तो उसमें कोई हर्ज नहीं है। दादा के नाम से कर लो। दादा की जवाबदारी पर है। लेकिन दादा खुद की जवाबदारी समझकर खुद जुदा

रखकर ही कहते हैं। क्या आपको पूरी तरह से समझ में नहीं आया? मुझे लगता है, मेरे कहने का भावार्थ समझ में नहीं आया।

प्रश्नकर्ता : समझ में आया, दादा।

दादाश्री : आखिर तक? हँसते नहीं हो न आप। समझ में आए तो हँसते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप जो कह रहे हैं न, वह अंदर देख रहा हूँ। अच्छी तरह से समझ में आया या नहीं, ऐसा देख रहा था।

दादाश्री : समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हं। समझ में आया, दादा।

दादाश्री : जिसे समझ में आया, वह भी अलग और आप अलग।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसे भी देखना है। जिसे समझ में आया, वह भी मैं नहीं हूँ दादा।

दादाश्री : इसी सब को फुल स्टॉप मानकर बैठ जाओगे तो उससे क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : बहुत मार पड़ेगी दादा।

दादाश्री : इन सब का देखने वाला तू है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि कुल मिलाकार यह सब माइनस करना है, 'यह मैं नहीं हूँ, मैं नहीं हूँ, मैं नहीं हूँ'। इसलिए फिर मैंने ऐसा बैलेन्स रखा है कि 'यह सीट मेरी नहीं है' कहकर वे हट तो गए लेकिन फिर तुरंत ही अपनी सीट, जो कि 'जानने वाले' की है, उस सीट पर बैठ जाना है। ताकि एक तरफा साइकोलॉजी (सोच) न हो जाए।

दादाश्री : तो उस समय यदि आनंद रहे तो समझना कि आप करेक्ट रास्ते पर हो।

[1.6]

खुद अपने आपको ठपका

घर में तो एक जैसा चाहिए न?

जागृत हो गया आत्मा, इतना ही चाहिए हमें। तेरा जागृत हुआ है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : चलो! अब, सब से पहले तो घर में क्लेश, कलह वगैरह कुछ भी नहीं रहना चाहिए। क्योंकि आप शुद्धात्मा हो गए और चंदूभाई अलग हैं। अगर चंदूभाई वाइफ पर चिढ़ जाएँ, तब चंदूभाई से कहना 'ऐसा क्यों कर रहे हो? पूरी ज़िंदगी ऐसा ही किया है।' आपको अपने आपको *ठपका* (फटकारना, उलाहना) देना है। एक-दूसरे को *ठपका* दोगे तो क्लेश होगा। आपको चंदूभाई से कहना है, नहीं हो सकेगा? चंदूभाई से कहना, 'ऐसा क्यों कर रहे हो? घर में तो एक फैमिली है अपनी!'

जहाँ गलत हो जाए वहाँ पर (फाइल नंबर वन को) *ठपका* देना चाहिए। कंधा थपथपाना और *ठपका* देना। फिर कंधा थपथपाकर कहना, 'हम आपके साथ हैं'। ऐसे करते-करते सबकुछ राह पर आ जाएगा।

आप जो करते हो, वह मुश्किल है जबकि यों तरीके से करना आ जाए तो आसान है सब। यह तो उलझन भरा कर देते हो। ऐसा सब तो बहुत समय तक किया। अभी रहने दो न, वह उलझन। उलझन तो कठिन कहलाती है।

कभी यदि बहुत हुआ तो आप *ठपका* देना कि, 'चंदूभाई क्यों यह तूफान मचाया है? ये लक्षण क्या अच्छे कहे जाएँगे? ऐसा क्यों करते हो?' लेकिन अपने हाथ में कोई सत्ता ही नहीं है न? लेकिन हम इससे अलग हो गए। हम ज्ञाता-द्रष्टा। पड़ोसी के तौर पर सलाह देते हैं, उतना ही। मालिकी ही नहीं है न! मालिकी हो तभी ज़िम्मेदारी रहती है न? यह 'नो रिस्पोन्सिबिलिटी।' चंदूभाई जो कुछ भी करें वह आपकी रिस्पोन्सिबिलिटी नहीं है, उस प्रकार से यह ज्ञान दिया है।

फटकारो खुद को ज़ोर-ज़ोर से

यह शुद्धात्मा का भाग है। फिर, इस चंदूभाई के भाग को पहचानते हो क्या? कौन आया इसमें? इसमें फाइल नंबर वन। नहीं? फिर फाइल नंबर वन में क्या-क्या माल भरा हुआ है? वह सारा पता चलता है क्या?

प्रश्नकर्ता : पता चलता है।

दादाश्री : ऐसा? तो वह जो माल है, वह *पुद्गल* पक्ष का है। जाओ पंद्रह मिनट बाहर बैठकर उसे कहो, 'चंदूभाई, तू यूज़लेस है, नालायक है, बदमाश है, हरामखोर है, अहित करने वाला है'। जाओ, पंद्रह मिनट तक ऐसा सब बोलते रहो, अंदर आत्मा जुदा है। हमारी आज्ञा है न! लेकिन यह जानना चाहिए कि कौन से पक्ष को डाँट रहे हो, वर्ना फिर दूसरे पक्ष को ही डाँट दोगे।

आपने आनंद माँगा। यह आनंद तो इच्छा से भी अधिक है। यदि पंद्रह मिनट करोगे तो पंद्रह मिनट और यदि पचास मिनट करोगे तो ऑलराइट। और फिर कानों से सुनाई दे, ऐसे बोलना पड़ेगा। न हो तो छत पर जाकर बोलो। जाओ!

निजदोषों की प्रतीति होने पर प्रगति

प्रश्नकर्ता : आपने यह सब बोलने को कहा है लेकिन अंदर मुझे खुद को प्रतीति होनी चाहिए न कि, 'मैं बदमाश हूँ?' आपने एक

घंटे तक बोलने को कहा है लेकिन जब तक प्रतीति नहीं हो, तो उस तरह से मिकेनिकली बोलने का कोई अर्थ है क्या दादा?

दादाश्री : प्रतीति ही नहीं हुई है?

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा लगता है, 'मैं अच्छा हूँ'।

दादाश्री : नहीं, लेकिन पीछे से लोग क्या कहते हैं? यह इंसान... ?

प्रश्नकर्ता : बदमाश नहीं कहते, नालायक नहीं कहते।

दादाश्री : तो भगवान कहते हैं?!

प्रश्नकर्ता : नहीं, भगवान भी नहीं कहते।

दादाश्री : तब क्या कहते हैं? भगवान नहीं कहते, बदमाश नहीं कहते, तो क्या कहते हैं? जिसे जो ठीक लगे, वह डिग्री नहीं देते हैं लोग?

प्रश्नकर्ता : नहीं देते। लोग जानते हैं न कि बदमाशी या नालायकी नहीं करते।

दादाश्री : लोगों को कुछ भी जानने की पड़ी ही नहीं होती न! ये सब बैठे हैं, और तू कहे कि, 'चलो, बाहर जाओ', और तू अंदर बैठा रहे तो क्या कहेंगे? 'यह नालायक है, बदमाश आदमी है', कहेंगे। तुझे पता ही नहीं है कि दुनिया क्या कहती है। मुझे तो तुरंत समझ में आ जाता है कि ये सब क्या कहेंगे।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा पता चल जाए न, तो फिर करने में मज़ा आएगा ज़रा। अगर मिकेनिकली बोल दूँ, तो उससे फिर उतना हल नहीं हो पाएगा।

दादाश्री : वह तो ठीक है। तेरी यह बात सही है लेकिन हमारे पास तो बातें भी आती हैं कि लोग ऐसा कहते हैं। क्योंकि लोगों को जो ठीक लगे वैसे अभिप्राय देते हैं न! क्या कहीं ऐसा नियम लिखा हुआ है कि भाई, ऐसा ही अभिप्राय देना।

अरे, मेरे लिए भी अभिप्राय देते हैं न, एक मिनट के लिए भी संसार में नहीं हूँ, तब भी अभिप्राय देते हैं न कि, 'बुरे हैं' ऐसा कहते हैं। मैं जानता भी हूँ कि ऐसा कहते हैं। इसलिए मैंने भी अंबालाल से कहा कि, 'आप बुरे हो'। लोग जैसा कहते हैं, वैसा नहीं कहना पड़ेगा इनसे?

प्रश्नकर्ता : कहना पड़ेगा, लोग जो कहते हैं वैसा कहना पड़ेगा।

दादाश्री : हं। तब फिर, इसीलिए हम तुझे यह सिखाते हैं। हमारे शब्दों पर विश्वास रखकर भी करेगा तब भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा। वह तो मैंने कहा है कि आपके शब्दों पर विश्वास है, उस अनुसार करूँगा लेकिन वह प्रतीति हो जाए न, तो उससे बहुत फर्क पड़ेगा न?

दादाश्री : हाँ, यह बात मुझे अच्छी लगी लेकिन अब तुझे लगता है न कि, 'बुरा हूँ?'

प्रश्नकर्ता : आपने कहा तब समझ में आया।

दादाश्री : हं। हम भी ऐसा सब कहते हैं, 'नालायक है, ढीठ है, बदमाश है!' तो ढीठपन चला जाता है, बदमाशी चली जाती है। वर्ना जा पाएगी क्या? दूध पिलाकर साँप को पाला है और अब वही हमारा विरोध कर रहा है? हं, क्या इतना भी नहीं कहना होगा? क्या दांत नहीं निकाल देने चाहिए?

प्रश्नकर्ता : मार भी सकते हैं।

दादाश्री : और फिर उसका ज़हर निकालकर उसे रखे रखना। दाँत तो निकाल लेने पड़ेंगे क्योंकि वह खुद का भी अहित करता है और आपका भी अहित करता है। दोनों का अहित करता है। फिर क्या आपको उसे मार नहीं डालना चाहिए। क्योंकि उसका *निकाल* करना है। आपका ही खड़ा किया हुआ है न यह सब। इसलिए उसका समभाव से *निकाल* करना है लेकिन पहले दाँत निकाल लेने पड़ेंगे। उसके बाद अगर दूध पिलाएँगे तो उसमें ज़हर बनेगा ही नहीं।

अब प्रतीति हो गई? तब हो गया, जा! तो फिर एक घंटा करके आ और चंदूभाई को अच्छी तरह से सुनाई दे, उस तरह से बोलना। सभी अंदर वाले सुन लें उस तरह से और पहले से कह देना कि '*पुद्गल*पक्षी-विरोधपक्षी। *पुद्गल*पक्षी अर्थात् विरोधपक्षी, हे अहंकार, हे मन, हे बुद्धि, हे चित्त, सभी सुनो। हे पाँच इन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और ग्यारहवाँ मन, सभी सुनो। हे लबाड़ों, हे बेशर्मों, हे बदमाशों, सभी सुनो। फिर इस पूरे *पुद्गल*पक्ष को बदनाम कर देना। आपने ही हमारा अहित किया है।' जल्दी जाओ। अच्छा उपाय मिल गया। पुण्यशाली हो, महापुण्यशाली हो! यह तो सर्वोत्तम दवाई है। अभी वह घंटे भर करके आएगा न, बहुत उत्तम दवाई है।

हम तो यहाँ तक कहते थे, 'नालायक, बदमाश, घर खाली करके निकल। चल!' फिर घर खाली नहीं करवाते थे। वह कहता, 'भाई साहब आपके ताबे में हैं!' तब कहते थे, 'रहना भाई'। हम हिंसक नहीं हैं। अहिंसक-हिंसक हैं। उसका भी नुकसान नहीं करते और अपना भी नुकसान नहीं करते!

अब बोलेगा न? 'जड़ दूँगा अच्छी तरह।' लेकिन तू तो कुछ समझता होगा! कोई दूसरा न्यायाधीश कुछ नहीं कहेगा। हर कोई अपनी तनख्वाह लेने तक के लिए ही न्यायाधीश है। वकालत करने के लिए ही बोलते हैं। कौन ऐसा साफ-साफ बोलता है?

प्रश्नकर्ता : कोई नहीं बोलता।

दादाश्री : शास्त्रकार यानी अनुभवी लोग, शास्त्रकारों ने क्या कहा है? जीवमात्र जीने के लिए ज़हर पीता है। जीना है अधिक और पीता है ज़हर। उसे कैसे समझ में आ सकेगा? पीया है कभी वह?

प्रश्नकर्ता : वही पीते थे न। खराब काम करते थे और ऊपर से फिर अभिमान करते थे।

दादाश्री : अब सभी खराब कामों को याद करके, रिपेयर करके

आ, 'ऐसे ही कर्म किए हैं अभी तक, मुझे पता है' ऐसा कहना। 'आपने कौन से कर्म करने बाकी रखे हैं? वह मुझे बताओ।'

प्रश्नकर्ता : इसमें भी दादा, पंद्रह-बीस मिनट की बजाय एक घंटे और अब तो चार-चार, छः-छः घंटे हो जाते हैं, उससे बहुत आनंद रहता है। सबकुछ एकदम साफ होता जा रहा है।

दादाश्री : हाँ, मैं आपको ऐसा यह सब दिखाता हूँ लेकिन करो तब न?

प्रश्नकर्ता : करेंगे, दादा।

दादाश्री : कहना, 'आपने उल्टा करने में बाकी क्या रखा है? यह दुनिया तो अच्छी है कि अभी तक आपको अच्छा कहती है, दुनिया ही अच्छी है'। जब तक ढके रखा है तब तक लोग अच्छा कहेंगे। छुपाते रहने से क्या बदलेगा? उसके बजाय खुला कर दो न! देख लेंगे। छुपाकर आबरू रखते हो, उसका क्या करना है? आबरू तो उसे कहते हैं कि कपड़ा निकल जाए और आबरू रहे, तब सही है। कोई रास्ते पर इन दादा के कपड़े निकाल दे तो क्या करेंगे?

प्रश्नकर्ता : कुछ नहीं करेंगे, दादा को क्या करना है!

दादाश्री : नहीं। भक्त तो दर्शन करते रहेंगे और बाकी सब हँसेंगे। तब मैं भी हँसूंगा न! क्योंकि जिसे आप नंगा देखते हो, उसे मैं भी देखता हूँ। मुझे भी हँसना तो आएगा न कि, 'यह क्या हाल हो गया आपका! देखो न, एक चुटकी भर आबरू रखने लायक कपड़े थे, वे भी निकाल लिए आपके'।

ठपका सामायिक का अद्भुत परिणाम

एक व्यक्ति ने आकर मुझसे कहा, 'मुझसे ऐसा गलत काम हो गया है कि उसे भूल ही नहीं पा रहा हूँ'। अब ज्ञान लिया हुआ व्यक्ति, भूल ही नहीं पाता और अंदर कचोटता रहता है! यह कैसा? मैंने ज्ञान दिया है न, और फिर भी तुझे ऐसा सब हो रहा है। तब कहने लगा,

'मुझे ऐसा हो रहा है। हकीकत में जो हो रहा है, वह बता रहा हूँ'। मैंने कहा, 'छत पर जाकर तेरी फाइल नंबर वन से कहना'। तब कहता है 'क्या कहूँ?' 'अरे, तुम नालायक हो, बदमाश हो, लुच्चे हो, चोर हो। पूरा आधा घंटा *ठपका* देना। जिसने गुनाह किया है उसे *ठपका* देना। तू *ठपका* देना, यदि ठीक न हो जाए तो मेरी ज़िम्मेदारी'। ठीक हो गया! एक ही बार में ठीक हो गया।

'सीधा नहीं होता है तो डाँटना।' उसे ऐसा कहा, तब फिर उसने छत पर जाकर क्या किया? जिस तरह किसी अन्य व्यक्ति को धमकाते हैं उतना तो धमकाया लेकिन उससे भी ज़्यादा धमकाया। तब फाइल-1 रो रहा था और वह देख रहा था। बहुत रोया। ज़ोर-ज़ोर से रोया और वह उसे देखता रहा। तब नीचे से जो लोग आ-जा रहे थे उन्होंने कहा, 'अरे, कौन लड़ाई-झगड़ा कर रहा है?! अरे, कौन डाँट रहा है इसे?' बाद में सीधा हो गया!

प्रश्नकर्ता : अब *ठपका* देता हूँ, करने के बाद भी और करने से पहले भी पता चल जाता है। तब ऐसा लगता है कि 'चंदूभाई को यह चीज़ शोभा नहीं देती', लेकिन हो जाता है।

दादाश्री : हो जाता है, वह तो दूसरी परत है। ऐसी तो हज़ारों परतें आएँगी और किसी में दो ही परतें होंगी लेकिन आपको *ठपका* देना है। आप *ठपका* दोगे तो आप अलग और वह अलग। उसका अनुभव हुआ आपको। और *ठपका* देना ही चाहिए आपको और वे परतें तो आती ही रहेंगी। हैं तभी आएँगी न! अगर नहीं होंगी तो कैसे आएँगी? यानी जितना गाढ़, परतें उतनी ही अधिक। इसलिए *ठपका* देना कि, 'ऐसा क्यों करते हो?' आप शुद्धात्मा हो, चंदूभाई से कहना, 'इतना तो आपका क्या रौब पड़ गया है कि इतने गुस्सा हो रहे हो?' उल्टा आप चंदूभाई को डाँटना। आप शुद्धात्मा, आपको क्या लेना-देना?

उस भाई ने डाँटा था और फिर रो रहा था बेचारा। फिर भी उसने क्या कहा कि 'अब अगर तू रोएगा, तब भी मैं तुझसे कन्विन्स

नहीं होऊँगा। तुझे नहीं छोड़ूँगा मैं'। उसके बाद उसके दोष चले गए। इतना धमकाया कि रोना आ जाए! ऐसे दो शब्द तो कहने पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : खुद ध्यान नहीं दे तो वैसा ही चलता है फिर।

दादाश्री : ध्यान नहीं, आप मन का चलने देते हो इसीलिए वह उल्टा चलता रहता है। अतः यदि अन्य कोई डाँटेगा तो वह नहीं चलेगा, तुझे ही तेरी फाइल नंबर वन को डाँटना पड़ेगा। यह मार्ग तो डाँटने का है ही नहीं न, हम डाँटते ही नहीं न इस तरह! हम कहाँ डाँटे? और किसे डाँटें हम? आप तो शुद्धात्मा हो, हम तो आपको डाँट नहीं सकते इसलिए आपको ही चंदूभाई को डाँटना पड़ेगा। तब फिर हमें नहीं डाँटना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : डाँटने का मन क्यों नहीं होता? दूसरा कोई भूल करे तो उसे तो डाँट देता है अच्छी तरह।

दादाश्री : यह तो, जानते नहीं है न, जानेगा तो डाँटेगा। जैसा दूसरे को करता हुआ देखता है, वैसा ही करता है। वह भाई तो आँखें निकाल-निकालकर कह रहा था! वह रो उठा।

प्रश्नकर्ता : यह डाँटने का प्रयोग बहुत सुंदर है।

दादाश्री : लेकिन बहुत नहीं डाँटना है। वह तो हमें पूछकर डाँटना चाहिए। सभी को डाँटने की ज़रूरत नहीं पड़ती। इस जैसे को ज़रूरत पड़ती है। इसकी इच्छा दृढ़ है न! अतः सभी के आरपार निकल जाए, ऐसा है। ये सभी निकल जाएँगे, रास्ता मिल जाएगा।

डाँटने-करने वाले डाँटते रहते हैं और रोने वाला रोता रहता है। बहुत बड़ा आश्चर्य है न! फिर मैंने दूसरे लोगों से कहा हुआ है कि इस तरह मत डाँटना। मुझसे पूछे बिना कोई भी डाँटने मत जाना। हम आज्ञा दें, तभी यह करना। क्योंकि जोखिम है यह तो। ये पैंसठ साल के वकील हैं, इन्हें डाँटने जाओगे तो क्या-क्या दावा कर लेंगे, कहा नहीं जा सकता न?

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी वे भाई आए थे न, वे कह रहे थे कि फाइल नंबर वन इतनी अधिक घबरा गई है न कि अब टेढ़ा करती ही नहीं है।

दादाश्री : हाँ, वह डर ही जाएगी न! उसे धमकाने वाला कोई मिला ही नहीं था न और जो धमकाने जाए उसी पर दावा करता है, क्लेम करता है। यदि ज्ञानी पुरुष ज़बरदस्त धमकाएँ न तो यहाँ से अपना हित छोड़कर भी चला जाए। इसलिए यदि आप खुद ही धमकाओगे, तो फिर कहाँ जाएगा वह?

प्रश्नकर्ता : दादा, इन सब बड़े लोगों का ऐसा ही होता है। उन्हें कोई धमकाने वाला नहीं है। कोई कहने वाला नहीं है।

दादाश्री : कोई कहने वाला नहीं होता, बात सही है। इसलिए कोई कहने वाला चाहिए सिर पर। लेकिन उसे तो उसने जो डाँटा है, उससे तो सब स्तब्ध हो गए और जब फाइल-1 रोने लगा, तब कहा, 'रोकर *त्रागा* (अपनी मनमानी, बात मनवाने के लिए किए जाने वाला नाटक) कर रहा है? तू क्या समझता है?' जैसे कि आत्मा बिल्कुल जुदा ही पड़ गया था। अब ऐसा प्रयोग अन्य कहीं पर तो होता नहीं है। क्या और कहीं पर ऐसा प्रयोग हो सकता है? थप्पड़ भी मार देते हैं! ऐसे खुद के गाल पर थप्पड़ ठोक दी!

प्रश्नकर्ता : दादा, चंदूभाई को आईने के सामने खड़ा रखकर अच्छी तरह से मारना चाहिए, तब इसे पता चलेगा।

दादाश्री : नहीं, वह सब आपके लिए। इन सब के लिए तो ऐसा स्थूल चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, ज़रूरत पड़ती है, कई बार ऐसी ज़रूरत पड़ती है।

दादाश्री : ठीक है। लेकिन काफी कुछ राह पर ला दिया है। फाइल को राह पर ला दिया। सुनती ही नहीं थी। मुझे कहता था,

'दादा, फाइल वन बात ही नहीं सुनता।' मैंने कहा, 'सुनेगा क्यों नहीं? जा, मेरा नाम लेकर मार। धमका अच्छी तरह से।' दादा के कहे अनुसार चलना है। 'तू कौन है भाई? अब तो तुझे राह पर ले आऊँगा।' खूब धमकाया।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा कुछ करना हो तो पहले आपके पास आकर करना चाहिए, तब ठीक से उसका फायदा, लाभ होगा, सही न?

दादाश्री : वैसे आशीर्वाद दे देते हैं न, फिर आपको क्या? क्योंकि जब मैं आशीर्वाद देता हूँ न, तब सिर्फ आत्मा ही होता है। इसलिए सिर्फ प्रज्ञाशक्ति ही काम करती है। वर्ना साथ-साथ यदि दूसरा कुछ अंदर चिपक जाए तो बेहाल हो जाएगा।

डाँटने पर विरोधपक्ष वाले अलग हो जाएँगे। यह तो, विरोधपक्ष की सीट पर बैठना है, और सरकार को बदनाम करना है। यह जो विरोधपक्ष की सीट पर बैठते हैं, वह पूर्वकर्म के कारण है लेकिन विरोधपक्ष के अभिप्राय में रहना या नहीं रहना, वह आज का पुरुषार्थ है। अत: आपको सरकार को (आत्मा को) ही अभिप्राय देना चाहिए। विरोधपक्ष में बैठकर भी अपना मत सरकार को देने लगे, तब समझना कि अब आत्मा की तरफ मुड़ा। आत्मपक्ष वाले रहो। चाहे बैठे हो सामने वाले पक्ष में। वह पूर्वकर्म के अधीन है।

कहने वाला कौन है? किसे कह रहा है? जो वह जानता है, वह शुद्धात्मा संपूर्ण है। कहता कौन है? वह प्रज्ञा समिति है। किसे कहती है? अज्ञा समिति को। अज्ञा समिति में अहंकार, क्रोध-मान-माया-लोभ हैं। वह समिति अलग है। यह समिति अलग। यदि एक घंटे तक इस तरह चंदूभाई को *ठपका* दिया जाए तो बोलो, उसकी शक्ति कितनी बढ़ जाएगी!

इस तरह झिड़को अपने आपको

दूसरों को ऐसा करने से मना किया है मैंने। हम जिसे आज्ञा दें उसी को करना है यह। और किसी को नहीं करना है। सीखना नहीं

है यह। हम तो, जिसे आज्ञा दें, जिसके कर्म बहुत गाढ़ और भारी हों, तभी उसे कहते हैं। बाकी सब के लिए नहीं है यह। आपको तो देखना है। सिर्फ कभी एकाध बार डाँट सकते हो, 'चंदूभाई क्या समझते हो?' 'चंदूभाई अपने मन में क्या समझते हो? आपको आज शाम का खाना नहीं मिलेगा, यदि ऐसे बहुत टेढ़े चलोगे तो', ऐसा कह सकते हो आप।

हमने ये उपाय बताए हैं लेकिन हम दूसरे लोगों को यह उपाय करने से मना करते हैं। हम से पूछे बगैर मत करना। वह तो जब हम आपको आर्शीवाद देकर भेजें, तब कर सकते हो। वर्ना कुछ उल्टा हो जाएगा। औरों को हम यह उपाय करने से मना करते हैं। वह तो उसकी फाइल-1 विकट थी, इसलिए उसने किया।

खुद को डाँटने के लिए चाहिए ताक़त

आपने अपनी फाइल नंबर वन से कुछ कहा है? एकांत में डाँटा है?

प्रश्नकर्ता : अभी तक नहीं किया है।

दादाश्री : तो करो न अब, कुछ करो न!

प्रश्नकर्ता : आज मैं सोचूँगा।

दादाश्री : इसमें भी सोचना है? जो सोचती है, वह फाइल नंबर वन है। आप में सोचने की शक्ति है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : डाँटने की ताक़त आनी चाहिए न वैसी!

दादाश्री : ताक़त क्यों नहीं आएगी! मैंने कहा हो कि 'आप अब मिर्ची की चटनी मत खाना और मिर्ची की सब्ज़ी नहीं खायी', तो क्या आपको ताक़त नहीं आएगी?

प्रश्नकर्ता : आप मना करेंगे तो नहीं खाऊँगा!

दादाश्री : तो ऐसी ताक़त है या नहीं? मैं कहूँ तो आप में ताक़त आएगी ही न! मैं कहूँगा तो ताक़त आ जाएगी।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप कहते थे कि छत पर जाकर डाँटना। ठेठ इतनी दूर क्यों जाएँ? यहाँ पर दर्पण है, उसके सामने देखकर ही डाँटा जा सकता है न?

दादाश्री : नहीं, लेकिन छत पर जाकर करेंगे न, तो वह शरमाएगा नहीं। वर्ना यहाँ पर शरमाता रहेगा। उसे ऐसा है न, पावर आत्मा तो है ही न अंदर। मिश्रचेतन है वह। अभी ऐसे शरमाने के, डिप्रेस हो जाने के गुण हैं उसमें।

इसलिए अगर फिर आप सब के सामने कहोगे तो आबरू चली जाएगी उसकी और ऊपर जाकर धमकाओगे तो वह समझेगा कि 'कोई है ही नहीं। तो भले ही कहें। हम तो चलेंगे, सुधर जाएँगे अब। तो सुधर भी जाता है', सुधरता भी है। अवश्य सुधरता है। क्योंकि कोई कहने वाला मिला ही नहीं था। कोई कहने वाला हो तब फिर आप रक्षण करते हो कि 'तू क्या समझता है। हम क्या ऐसे-वैसे हैं!'

प्रश्नकर्ता : तो सभी सत्संगियों की उपस्थिति में कहना चाहिए या नहीं कहना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, सब के सामने क्यों अपनी आबरू बिगाड़ें? आप तो सीधे छत पर जाकर ही कहना, 'क्या, आप कैसे इंसान हो? यह भी कोई तरीका है?' समझकर थोड़ा झिड़कोगे तो वह भी समझ जाएगा कि अब इनके साथ ढंग से रहना पड़ेगा, वर्ना ये बाहर निकाल देंगे। कब निकाल दें, कहा नहीं जा सकता?

चंदूभाई को डाँटना पड़ेगा? घर पर कोई नहीं हो उस समय डाँटना, हाँ। फिर चंदूभाई की आबरू नहीं जाएगी। जब वाइफ नहीं हो तब डाँटना और असल व्यक्ति तो वाइफ की हाज़िरी में भी डाँटते हैं। क्या? देख लो फिर मज़ा। जुदा हुए हैं इसलिए संभव है। उपाय हैं ये सारे। यदि जुदा नहीं होते तब तो उपाय ही नहीं है न?

ऐसा लगता है आपको कि एडजस्ट होगा? फिर उसका निबेड़ा लाना चाहिए। अकेले हों, तब डाँटना। फिर मैं सब की उपस्थिति में

बोलूँ, वह अलग है। मैं तो नीरू बहन की उपस्थिति में भी कह देता हूँ। क्या कहता हूँ? 'अंबालाल भाई कॉन्ट्रैक्टर, आप कैसे इंसान हो? आप क्या मान बैठे हो खुद अपने आप को?' नीरू बहन कहती हैं, 'आप बातें कर रहे हैं?' तब मैं कहता हूँ, 'क्या करूँ फिर? सभी बातें कहीं अकेले में थोड़े ही होती हैं?'

प्रश्नकर्ता : दादा, आप निर्भेदी हैं न इसलिए। भेद रहित हैं इसीलिए आप अलग रहकर कह सकते हैं।

दादाश्री : हैं ही अलग। मैंने अलग कर ही दिया है। बिल्कुल अलग कर दिया है। अब आप उसका उपयोग नहीं करो तो...

प्रश्नकर्ता : यों *ठपका* देने की हमारी ताक़त नहीं है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन *ठपका* दो न, मेरा नाम लेकर। दादा ने कहा है। अब *ठपका* देना है। ज़ोर से *ठपका* दो, 'क्या समझता है? गलत काम करता है। वापस मुझे शर्मिंदा कर रहा है, साथ ही फिर मेरी आबरू भी बिगाड़ रहा है तू!'

मैं आपसे कहता हूँ, 'आप पर असर नहीं हुआ'। तब आप कहते हो, 'नहीं, मुझ पर असर हुआ है'।

प्रश्नकर्ता : इतना देहाध्यास रहता है न, इसलिए?

दादाश्री : नहीं, पहले का देहाध्यास है, वह आदत है, वह आदत जल्दी नहीं छूटेगी। क्या हो सकता है फिर? वह आदत छूटती नहीं। इसलिए हम यह तरीका बता रहे हैं।

यह तो विज्ञान है पूरा। भले ही कर्मों के कैसे भी उदय आएँ फिर भी एक सेकन्ड के लिए भी आपको कोई कर्म बाधक नहीं होगा। लेकिन मुझसे पूछ लोगे तो चलेगा। मुझे पूछ लोगे कि 'मैं यहाँ पर उलझ गया हूँ', तो मैं तैयार ही हूँ। लेकिन वह अकेला ही ज़रूरत से ज़्यादा अक्लमंदी करता रहता है तो मैं क्या करूँ?

आप उससे सटकर बैठे रहते हो लेकिन डाँटने से तो अपने आप ही अलग हो जाएगा। थोड़ा समझ में आए ऐसी बात है न? अब रोज़ आपको इस तरह *ठपका* नहीं देना है, रोएँ ऐसा, लेकिन यों ही रोज़ थोड़ा–बहुत *ठपका* देते रहना। जैसे कि जब सास किच–किच करने लगे तो बहू समझ जाती है कि इनके साथ मेल नहीं पड़ेगा हमारा। बात–बात पर सास किच–किच करे तो बहू समझ जाती है न कि, 'इनके साथ मेल नहीं पड़ेगा। अब इनसे अलग होने का रास्ता निकालो!' अतः आपको चंदूभाई से बातें करनी चाहिए। फिर जैसा चाहिए वैसा आनंद रहेगा न। कभी जाएगा ही नहीं न! वह आनंद नहीं जाएगा, इससे तो बढ़ेगा। वह आनंद और भी बढ़ेगा।

प्रश्नकर्ता : वही आनंद प्राप्त करना है।

दादाश्री : लेकिन ऐसा करके देखना न आप। जैसा हमने बताया है न, ऐसा रोज़ दो–दो, तीन–चार बार *ठपका* देते जाना न! बाथरूम में कहना, 'आप अपने आपको अच्छा कहते हों लेकिन आप तो बिल्कुल निक्कमे हो...' ऐसा कहने में हर्ज ही क्या है?

जो दोष देखता है, वह नहीं हो 'आप'

यानी मन नहीं ऊबे उस तरह से बार–बार बदलकर करना पड़ेगा। विधि बोलना, मंत्र बोलना। यदि मन को आप खुराक नहीं दोगे तो वह आपको खा जाएगा। इसलिए उसके लिए आपको अंदर खुराक देनी ही पड़ेगी। इससे (बातचीत का प्रयोग से) तो यों ही खुराक मिलती रहती है। वह कुछ कहे, उससे पहले तो आप ही उसे कुछ सुना देते हो इससे फिर मन को खुराक मिलती ही रहती है। लेकिन इसमें कौन सी खुराक मिलती है? इसमें मुंह से नहीं खिलाना होता न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मन ही मन, विचारों से तो सामने दे ही देते हैं न?

दादाश्री : कैसे विचार?

प्रश्नकर्ता : उल्टे विचार, अच्छे विचार, सभी तरह के विचार। इस तरह मैं मन से दे देता हूँ।

दादाश्री : अरेरे! अभी भी ऐसा होता है! मेरे साथ रहते हो फिर भी! क्या दशा होगी? मन से देने पर तो प्रतिक्रमण करते हैं लोग!

प्रश्नकर्ता : यह तो मैं बता रहा हूँ कि ऐसा होता है। इसलिए आपको बता रहा हूँ।

दादाश्री : अगर ऐसा होता है, तो वह आपको कहाँ होता है? लेकिन आप अपने ऊपर ले लेते हो। उससे बल्कि गलत असर होता है। चंदूलाल को ऐसा होता है। तो उसे आप डाँटो, फिर *ठपका* दो। हर बार ऐसा करते ही तुरंत कह देना कि 'अक्ल नहीं है? शर्म नहीं आती?'

प्रश्नकर्ता : मैं (उसे) फटकारता हूँ लेकिन जुदापन नहीं रहता है।

दादाश्री : लेकिन आप तो कह रहे हो न, कि 'मुझे ऐसा होता है' यानी आपने खुद पर ही ले लिया न! हस्ताक्षर करके! 'चंदूभाई को ऐसा होता है', ऐसा कहना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा कहूँगा।

दादाश्री : खुद पर ले लेते हो इसलिए पहुँच जाता है।

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा जुदा नहीं रहता। क्या करूँ मैं?

दादाश्री : वह अलग ही रहता है। आप जानते हो इसलिए अलग ही कहा जाएगा न! अलग हुए बगैर जानेगा कौन? जानने वाला और बोलने वाला दोनों अलग ही होते हैं। अत: अलग ही रहता है। आपका आत्मा जुदा रहता है। आपको समझ में नहीं आया?

प्रश्नकर्ता : आया न! मुझे सामने वाले में, किसी में भी शुद्धात्मा नहीं दिखाई देते।

दादाश्री : शुद्धात्मा नहीं दिखाई देते तो उसमें हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अगर शुद्धात्मा दिखाई दें तब तो दोष ही नहीं देखूँगा न? ये तो मुझे सामने वाले के दोष ही दिखाई देते हैं।

दादाश्री : दोष तो चंदूभाई देखता है, भला आप कहाँ देखते हो? ऐसा पागलपन करते हो। फिर दोष देखते हो, तो वह चंदूभाई देखता है, तब अगर आप डाँटते रहोगे तो अलग हो जाएगा। फिर हर्ज नहीं है। जैसे-जैसे आप डाँटोगे न, वैसे-वैसे आत्मा मज़बूत होता जाएगा। और यदि ऐसा कहो कि, 'देखो, मुझे ऐसा हो रहा है?' तो आत्मा मलिन हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा तो करना ही नहीं है न! लेकिन यह तो, जो हो जाता है, वह बता रहा हूँ आपको।

दादाश्री : हो जाता है तो क्या वह आपको होता है भला? नहीं। आप अपने हिसाब से मान बैठे हो। बाकी सभी लोग तो खुद के मन में समझ ही जाते हैं! पूरे जगत् को पता नहीं चलता कि चंदूभाई को क्या हो जाता है लेकिन आपको तो पता चलता है। अत: आपका आत्मा अलग है ही।

ये तो साथ में रहते हो, फिर भी सारा टाइम बेकार जा रहा है। कब तक ऐसे गोते लगाते रहोगे? नहीं तो आप उस रास्ते पर चलो, मैं आपको दूसरा रास्ता दिखाऊँगा। लेकिन आपने बीड़ा उठाया है इस तरफ का, तो आपका काम हो सकता है, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : रास्ता तो यही पकड़ना है, दूसरा रास्ता मेरे किस काम आएगा? मुझे भक्ति मार्ग में नहीं जाना है।

दादाश्री : तो मत जाना। लेकिन यह करना चाहिए न, मैं बताता हूँ वैसा।

प्रश्नकर्ता : वह तो करता ही हूँ न! और फिर साथ ही साथ जो होता है, वह मैं आपको बताता हूँ।

दादाश्री : लेकिन आत्मा जुदा ही रहता है अंदर। दोष तो

चंदूभाई देखता है। जितना-जितना उल्टा करता है, वह सब चंदूभाई का, और सीधा भी चंदूभाई करता है, आप जानने वाले हो। एक बार सिखाने के बाद क्या ऐसा समझ में नहीं आएगा कि यह सास है और यह बहू। मूर्छित क्यों हो जाते हो? फिर कहते हो कि 'मैं उलझन में पड़ जाता हूँ'। एक बार बता दिया था न कि यह सास लगती है और यह आपकी बहू लगती है।

आप ऐसा मत करना। मेरे पास आपने बड़ा ध्येय निश्चित किया है और पार उतर सकते हो, ऐसा है। खुद उलझन में से निकाल सकता है। लेकिन पता नहीं, क्यों पहला आवरण ही नहीं खिसकता! वैसा पावर होना चाहिए पार उतरने के लिए।

प्रश्नकर्ता : उस पावर में क्या होता है?

दादाश्री : निश्चय। जिसे मोह-वोह कुछ भी बाधक नहीं हो, वैसा निश्चय। इसे निश्चय, ज़बरदस्त निश्चय कहा जाएगा इनका। ऐसा निश्चय तो मैंने देखा ही नहीं है। जगत् तो पूरा फँसा हुआ ही रहता है। ये भी फँसे हुए ज़रूर हैं लेकिन निकल जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : फेंक देने की शक्ति तो है।

दादाश्री : ज़बरदस्त शक्ति है। इसलिए मैं अलाउ करता हूँ न कि, 'भाई ठीक है', लेकिन यदि मेरे कहे अनुसार आगे ही नहीं बढ़ रहे हों तो! इतनी जागृति होने के बावजूद भी यदि बहू को सास कहोगे, तो सास क्या कहेगी? चली जा तेरे घर!

प्रश्नकर्ता : सास को बहू और बहू को सास, ऐसा क्यों हो जाता होगा?

दादाश्री : हिंसक भाव इतना अधिक गाढ़ हो चुका है।

प्रश्नकर्ता : किस प्रकार का हिंसक भाव?

दादाश्री : अहंकार का। ज़बरदस्त अहंकार। सभी में से पहले नंबर पर और कपट बहुत है न!

प्रश्नकर्ता : वह सब ठीक हो जाएगा क्या?

दादाश्री : वैसा कब रहेगा? हर बार खुद आत्मा बनकर चंदूलाल को डाँटेगा तो फिर वैसी प्रैक्टिस हो जाएगी। लेकिन वैसा करते ही नहीं हैं न! यदि हमारे कहे अनुसार करो न, तो मैं तेज़ी से आगे ले जाऊँ।

प्रश्नकर्ता : आपने किसी को कोई सेवा सौपी हो और मुझे वह अच्छा नहीं लगे तो अंदर तुरंत कुछ हो जाता है!

दादाश्री : अगर कहे, 'मुझे अच्छा नहीं लगा' तो चंदूभाई को मारना कि तुम्हें दो थप्पड़ मारूँगा। 'मुझे अच्छा नहीं लगा' कहने से तो यह सब पागल जैसा ही बोलेगा। मेड ही लगता है मुझे।

प्रश्नकर्ता : फिर अंदर मुझे उल्टा बताता है।

दादाश्री : अरे, अगर बताए तो आपका क्या गया फिर? आप शुद्धात्मा, आप देखने वाले और वह दिखाने वाला।

प्रश्नकर्ता : फिर मैं चंदूभाई को डाँटता हूँ।

दादाश्री : डाँटते रहने से तो अलग हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन डाँटने के बाद कई बार अंदर जो उल्टा चलने लगे तो डिप्रेशन आ जाता है। कई बार नहीं भी आता और कई बार आ भी जाता है।

दादाश्री : डिप्रेशन किसे आता है लेकिन? चंदूभाई को आए तो बल्कि अच्छा है, कमज़ोर पड़ जाएँगे। इसलिए यदि आप मेरे कहे अनुसार रखोगे तो आपको अच्छा रास्ता बता दूँ।

प्रश्नकर्ता : एकदम साइन्टिफिक अप्रोच है।

दादाश्री : हाँ, साइन्टिफिक अप्रोच है। लेकिन तू इसी तरह करता रहता है। 'मुझे डिप्रेशन आया?' लेकिन डिप्रेशन किसे आया?

बहू को या सास को? भान ही नहीं है। हमारी वाणी है न, हमारी समझ ऐसी है न कि अगर उसे पकड़ लोगे न, तो अंदर अलग हो जाएगा। यह तो ऐसा है कि अंदर वाले जो कहते हैं, वही वह खुद भी कहता है कि, 'मुझे ऐसा हो गया।' इसलिए फिर एकाकार हो जाता है तुरंत।

यह तो चंदूलाल जो कहते हैं, उसमें खुद एकाकार हो जाता है। आपको तो चंदूभाई जो भी कहें, वह 'देखते' रहना चाहिए और चंदूभाई को डाँटना चाहिए कि 'क्यों ऐसे खींचातानी कर रहा है? शर्म नहीं आती?' यह तो, सभी के पास, 'मैं ऐसा कर लूँ, मैं ऐसा कर लूँ'। उसे, वह खुद को विजेता मानता है। आप बार-बार *ठपका* देना, यदि चंदूभाई ऐसा करें तो!

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई *खेंच* (आग्रह) रखे तो भले ही रखे। आपको अलग रहने में क्या हर्ज है? यदि खुद *खेंच* से अलग हो जाए न, तो *खेंच* अपने आप चली जाएगी।

दादाश्री : वैसा हो जाता है, वैसा ही है। लेकिन यह तो, आपके मन में ऐसा है कि 'इन सब को नहीं करने दूँ, मैं कर लूँ। मैं ही कर लूँ'। लेकिन 'मैं' करते-करते 'चंदूभाई' बन जाते हो आप।

प्रश्नकर्ता : खुद चंदूभाई ही बन जाता है उस घड़ी।

दादाश्री : यह जो *खेंच* है, वही सारा रोग है। *खेंच* छोड़ दे न, तो उसका सबकुछ ठीक हो जाएगा। *खेंच* छोड़ देते थे तब ठीक हो जाता था न, और *खेंच* पकड़ते (आग्रह करते) ही एकाकार हो जाएगा! इस *खेंच* को तुड़वाने के लिए ही तो हम दूसरों से कहते हैं कि 'तू यह कर'। जब तक *खेंच* है तब तक चंदूभाई है। *खेंच* छूटी कि तुरंत ही आत्मा। आपको तो दादा के पास रहने को मिला, वही आश्चर्य है न! क्या इसमें आपको सब समझ में आता है? कुछ काम का है?

प्रश्नकर्ता : सबकुछ काम का ही है। मुझे ऐसा लगता है कि

यह *खेंच* कर रहा है, इतना मुझे समझ में आता है। लेकिन फिर पहले की बिलीफें पड़ी हुई है न...

दादाश्री : अरे, लेकिन वे बिलीफें किसे हैं? अरे, ऐसा ही बोलते रहते हो। आत्मा के तौर पर जुदा कर दिया, फिर भी!

प्रश्नकर्ता : मुझे अंदर इतना समझ में आता है कि यह गलत हो रहा है और एक बार मुझे ऐसा भी लगता है कि मैं चंदूभाई से अलग हूँ लेकिन फिर भी मुझे ऐसा सब एक हो जाता है।

दादाश्री : अगर आप डाँटने लगोगे तो सबकुछ अलग हो जाएगा। झगड़ा होते ही दृष्टि विरोधी हो जाती है। इसलिए यदि बातचीत में *खेंच* रखे तब 'चंदूभाई, यह क्या *खेंच* रख रहा है? तुझ में जानवरपन है या क्या? इसमें आग्रह क्या कर रहा है? बाहर कैसा दिखाई देता है?' यों अच्छी तरह से डाँटने लगो तो क्या बुराई है? ऐसा कहो न, 'दादा कहते हैं तो तुम सोचो तो सही'! और दिन में पाँच-पच्चीस बार यदि डाँट लोगे न, तो अलगपन हो जाएगा। यह हमारा वचन बल है।

प्रश्नकर्ता : जब से आपने डाँटने को कहा न, तभी से डाँटना शुरू हो गया है।

दादाश्री : अच्छा हुआ वह। डाँटने लगा तो खुद आत्मा हो गया।

प्रश्नकर्ता : मैं तो छील ही देता हूँ। उसके बाद यों अच्छा रहता है। फिर अलगपन रहता है।

दादाश्री : आत्मा अलग रहता है।

प्रश्नकर्ता : फिर जब अच्छा करे तो धीरे से कहना भी पड़ेगा कि 'तुमने यह अच्छा किया'।

दादाश्री : वह भी कहना पड़ेगा, वर्ना फिर बहुत रूठ जाएगा। वह भी गलत है। फिर ऐसा भी करना पड़ेगा। ऐसा भी कहना कि 'दादा को खुश रखा। आपने बहुत अच्छा किया'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यों सभी के शुद्धात्मा नहीं दिखाई देते।

दादाश्री : दिखाई ही देने चाहिए शुद्धात्मा। अगर नहीं दिखाई देते तो 'चंदूभाई' को नहीं दिखाई देते। आपको तो दिखाई ही देंगे शुद्धात्मा। डाँटो न, *ठपका* देते रहो पूरे दिन, एक-दो दिन करके देखना।

प्रश्नकर्ता : हाँ, करूँगा।

दादाश्री : 'आत्मा क्यों नहीं दिखाई देता? सभी आत्मा ही हैं न', ऐसा कहना।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न, 'इन सभी में शुद्धात्मा नहीं दिखाई देते तो वह 'चंदूभाई' को नहीं दिखाई देते।'

दादाश्री : हं, 'आपको' दिखाई देते हैं न! 'दिखाई देते हैं', फिर भी आप मना कर रहे हो। इस तरह मना करते हो न, इसलिए अंधकार छा जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो वहाँ पर कैसा रखना चाहिए?

दादाश्री : शुद्धात्मा दिखाई देते हैं न फिर। निर्दोष दिखाई दे, वहीं से नहीं समझ जाना चाहिए कि कौन दिखाई दे रहा है?!

प्रश्नकर्ता : निर्दोष कहाँ दिखाई देते हैं? दोष ही दिखाई देते हैं।

दादाश्री : लेकिन वे तो 'चंदूभाई' को दिखाई देते हैं।

प्रश्नकर्ता : हमें अपने ऊपर लेने की ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : अपने ऊपर है ही नहीं। यह तो, अपने ऊपर ले लेता है, उसका फल मिलता है उसे।

प्रश्नकर्ता : फल में क्या मिलता है?

दादाश्री : दुनिया की मार पड़ती है और फिर मोह बढ़ता जाता है।

प्रश्नकर्ता : इसमें मोह किस तरह से बढ़ता है?

दादाश्री : जिस मोह को हमने धकेल दिया था, वह फिर से दिखाई देने लगता है। जिस मोह को ज्ञानी पुरुष की आज्ञा से धक्का लगा है, वह फिर से दिखाई देने लगता है और जान-बूझकर कुएँ में गिरते हो।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई को डाँटते हैं फिर भी अपने ऊपर ले लेता है।

दादाश्री : देखो न, फिर अब क्या हो सकता है? बल्कि आपको कहना चाहिए, 'डाँटो, डाँटने जैसे ही हैं। टेढ़े ही हैं'। क्या ऐसा नहीं कहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : तभी जुदा रह सकता है।

दादाश्री : अगर डिप्रेशन आएगा तो चंदूभाई को आएगा, उससे आपको क्या? आपको तो खुश होना है। आपके डाँटने से डिप्रेशन आए तब तो बल्कि आपको खुश होना चाहिए कि अब ठिकाने आए न! अभी तो और भी ठिकाने पर ला दूँगा। बहुत ज़ोर मारे तब ऐसा कहना। नहीं आएगा क्या इस तरह से डाँटना?

प्रश्नकर्ता : आएगा।

दादाश्री : तो आज के आज ही कर दे तू। कल मुझे दिखाना। मेरी उपस्थिति में, चौबीस घंटों की उपस्थिति है, फिर ऐसी उपस्थिति नहीं मिलेगी। बाकी सबकुछ मिलेगा। आपको समझ में आया? ये दिन मत बिगाड़ना। अब, मेरे सोने के बाद यहाँ रूम में बैठकर बातचीत करना सारी, भले ही कोई सुन जाए, क्या बिगड़ जाएगा?

आप भी कहना सीख गए न? आपने भी कहना शुरू कर दिया न? जुदापन का अभ्यास करना पड़ेगा और वह भी मेरी उपस्थिति में। बाकी यों ही नहीं होगा। यों ही बाहर करने जाओगे तो नहीं होगा। मेरी हाज़िरी में होगा, वचन बल से होगा।

डाँटकर घुमा देते हो न! लेकिन चंदूभाई डाँटते हैं न, आप कहाँ डाँटते हो? कुछ दिन हैं। अब कर लेना। हम सावधान कर देते हैं। वर्ना फिर क्या हो सकता है? एक बार जुदा करने के बाद फिर चंदूभाई सेवा करेंगे तो उसका फल मिलता रहेगा। चंदूभाई 'इस' पक्ष में आ जाने चाहिए। बस! तब तक अलग करते जाना है। ऐसा भी कह सकते हो, 'आपकी वजह से मुझे संतोष रहता है। आपकी वजह से मुझे आनंद रहता है। पहले जो दुःख होता था, वह बंद हो गया है।' चंदूभाई को ऐसा अनुभव होगा न, तो इस पक्ष में आते जाएँगे। चंदूभाई को पहले जो दुःख होता था, वह बंद हो जाएगा। तब फिर खुद इस पक्ष में नहीं आएगा कि 'भाई, हमें आपका साथ अच्छा रहा!'

प्रश्नकर्ता : ठीक है। उसे भी सुख मिले, तो उसे लगेगा कि यही करने जैसा है।

दादाश्री : हाँ, वही कहता हूँ न!

प्रश्नकर्ता : फिर वह डिप्रेशन नहीं आया! लेकिन लोगों का वह सब बताया कि 'देखो, तुम ऐसा सब करते हो?' चंदूलाल से कहा मैंने।

दादाश्री : वह तो थोड़ा-थोड़ा डाँटते रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा है कि अभी और भी ज़रा ठीक तरह से कहेंगे, तब फिर रास्ते पर आएगा?

दादाश्री : कहते रहना, फिर मेरी उपस्थिति में हो जाएगा। फिर उससे भी डिप्रेशन आ सकता है। उसे *ठपका* दो, *ठपका* देकर देखो अगर डिप्रेशन आ जाए तो वह बंद करके वापस नई तरह का *ठपका* देना। अंदर देखते रहना आप। आप ऑर्गेनाइज़र हो। हाउ टु ऑर्गेनाइज़, वही आपका काम है।

[1.7]

डिप्रेशन के सामने जुदापन की जागृति

नहीं डिप्रेशन किसी से अब

लाखों लोग डिप्रेशन करवाने आएँ, फिर भी ज़रा सा भी डिप्रेशन नहीं आना चाहिए। लाखों नहीं, भले ही करोड़ों लोग हों लेकिन डिप्रेशन नहीं आना चाहिए। डिप्रेशन क्यों आना चाहिए? अभी भी 'आपको' डिप्रेशन नहीं आ रहा है। जो भी डिप्रेशन है, वह चंदूभाई को आ रहा है। आपको खुद को तो नहीं आ रहा। लेकिन वास्तव में लोग इसे एक्सेप्ट नहीं करते हैं न! लोग कब एक्सेप्ट करेंगे? चंदूभाई को भी नहीं आए, वहाँ तक का पुरुषार्थ करना है आपको। अभी भी तो चंदूभाई को डिप्रेशन आ जाता है न! वह नहीं आए, उसी को पूर्णाहुति कहते हैं।

अभी आपको खुद को डिप्रेशन नहीं आता है, ऐसा मैं भी जानता हूँ कि आत्मस्वरूप से आपको डिप्रेशन नहीं है, लेकिन इस बाह्य स्वरूप में डिप्रेशन आता है। उसका असर होता है इसलिए चेहरा लटक जाता है और यदि अंदर चंदूभाई को डिप्रेशन हो जाए तो आप उनसे कहना कि 'हम तुम्हारे साथ है, घबराना मत'।

जिसे डिप्रेशन, वह 'मैं' नहीं

चंदूभाई डिप्रेशन में आए तो संभालना भी पड़ेगा कि 'आप ऐसे

इंसान हो, आप इतने अच्छे हो! वर्ना दादा कहाँ से मिलते आपको! कैसे पुण्यशाली हो!' ऐसा सब कहना।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसकी बहुत ज़रूरत पड़ेगी। डिप्रेशन बहुत आ जाता है।

दादाश्री : नहीं। अगर डिप्रेशन आ जाए तो उसे ऐसा कहना पड़ेगा। ज़रा निर्बलता हो तब फिर डिप्रेशन आ जाता है। कई लोगों को डिप्रेशन आ जाता है। इसलिए हम कहते हैं न कि भाई डाँटना हो तो हम से पूछकर डाँटना। क्या पता शायद डिप्रेशन में आ जाए। लेकिन यदि उस समय जागृति रहे कि जिसे डिप्रेशन आया है वह मैं नहीं हूँ, तो परेशानी नहीं होगी।

डिप्रेशन में ही मिलता है आत्मा

भूख लगी हो और समय पर खाना नहीं मिले, उस समय तड़पने को भगवान ने गुनाह कहा है। उस समय तो आत्मा मिल (दिख) सकता है। कब मिलता है? ज़बरदस्त डिप्रेशन आ जाए तब उसमें शांति बनाए रखे तब आत्मा मिलता है। उसका उपाय किया तो मारा जाएगा। डिप्रेशन में सांसारिक उपाय किया। डिप्रेशन में ही आत्मा मिलता है (डिप्रेशन में ही आत्मा का पता चलता है)।

डिप्रेशन तप कहलाता है। और तप करने पर आत्मा मिलता है। लेकिन ये बच्चे बेचारे उसे खो देते हैं, समझ नहीं है न! आत्मा कब मिलता है (आत्मा का पता कब चलता है)?

प्रश्नकर्ता : दु:ख में।

दादाश्री : जब चारों तरफ से उपसर्ग व परिषह हों न, तब आत्मा मिलता है। तुझे समझ आ रहा है या नहीं? हाँ, तो अब क्या करेगा?

प्रश्नकर्ता : अब नहीं खोऊँगा।

दादाश्री : डिप्रेशन में कोई उपाय नहीं। डिप्रेशन जैसी तो कोई भी दवाई नहीं है इस दुनिया में। उसे इन नासमझ (अज्ञानी) लोगों ने मिट्टी में मिला दिया। नासमझ लोग। बहुत ही स्ट्रोंग रहना। सूखकर मर जाना लेकिन अब जो एकाकार हों तो वे कोई और। 'आप अलग और हम अलग', कहना। उस समय चमकारा होगा।

जब बहुत भूख लगे तब किसी की भी जूठन खा लेते हैं। इज़ दिस द वे? अब इसे जंगली नहीं तो और क्या कहेंगे? लोगों की जूठन खानी है या रौब रखना है? जिसने रौब रखा, उसका आत्मा हाज़िर हो जाता है। क्या करोगे अब?

प्रश्नकर्ता : अभी तक तो जब डिप्रेशन आता था, तो उसे दूर करने के उपाय करते थे।

दादाश्री : डिप्रेशन तो हितकारी है अब। सब से ज़्यादा हितकारी, डिप्रेशन है।

प्रश्नकर्ता : वह अब फिट हो गया है।

दादाश्री : फिट हो गया है लेकिन मेरा कहना है कि डिप्रेशन में से अब निकल जाना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : वह निकल रहा है।

दादाश्री : निकल रहा है, लेकिन उसमें से अब निकल ही जाना चाहिए। इसमें है ही क्यों? साफ ही कर देना है कि 'चंदूभाई, सूख-सूख कर खत्म हो जाएगा फिर भी हम तो तुझसे अलग ही है'।

डिप्रेशन में तो अवश्य इस प्रकार से रह सकते हैं। डिप्रेशन नहीं हो तो बात अलग है। डिप्रेशन यानी क्या कि आत्मा प्राप्त होने की हद आ चुकी है। क्या तुझे मालूम नहीं है यह?

प्रश्नकर्ता : जब वह सहन नहीं होता तब फिर भौतिक में से सुख ढूँढने का प्रयत्न करता है।

दादाश्री : सहनशीलता की उस हद पर आत्मा प्रकट होता है। यों ही क्या आत्मा प्रकट हो जाता है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यह जो बात की है, वह एक्ज़ेक्ट है लेकिन अभी वह अकेला युद्ध लड़ सके, ऐसा नहीं है।

दादाश्री : नहीं। लड़ सकता है, सब लड़ सकता है। ये उसने जो धमकाया और वह जो रोया है, ऐसा रोया है, फिर पूरी तरह से बंद हो गया सब। उल्टा बहीखाता बंद ही हो गया।

डिप्रेशन तो सब से अच्छा समय कहलाता है। लाभ उठाना चाहिए। यों ही डिप्रेशन नहीं आता और आत्मा प्रकट होता नहीं। डिप्रेशन में ही आत्मा प्रकट होता है। डिप्रेशन का सौ प्रतिशत लाभ ले लेना, डिप्रेशन को जाने मत देना। अब लाभ लेगा न? कितने प्रतिशत?

प्रश्नकर्ता : सौ प्रतिशत लाभ लेना है।

दादाश्री : ये लोग, मेरे साथ रहने वाले जब नहीं समझते तब मुझे चिढ़ मचती है कि, 'ये कैसे हैं?!' ब्रह्मचर्य पालन करने वाले क्या ऐसे होते हैं? देह से कहना, 'जल, एक तरफ तू जल और मैं देखूँगा। तू भभककर जलेगा, तब मैं देखूँगा' कहना। इतने स्ट्रोंग होने चाहिए। यह तो, इतना छोटा सा परिषह भी सहन नहीं होता तब फिर बाईस परिषह क्या सहन करेंगे ये प्यादे?

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी पुरुष बल देंगे न?

दादाश्री : ज्ञानी पुरुष तो बहुत बल देते हैं लेकिन फिर भी खुद की समझ से ही चलता है। पागलपन करता है। डिप्रेशन का इलाज करवाता है। ओहोहो इलाज करवाया! डिप्रेशन तो आत्मा प्रकट होने के लिए सब से बड़ा प्रवेश द्वार है। बल्कि यदि अंदर डिप्रेशन नहीं आ रहा हो तो किसी से कहना, 'मुझे डाँटो'।

'मुझे डाँटो', ऐसा क्यों कहना चाहिए? इसलिए ताकि डिप्रेशन

आए। डिप्रेशन आएगा तो मुझे आत्मा का पता चलेगा। तब निदिध्यान प्रकट होगा! वर्ना प्रकट ही नहीं होगा न यह सब तो। डिप्रेशन में से आत्मा मिला है इसलिए जब वह डिप्रशन आए तब कहना 'और भी आओ', कहना। उपाय नहीं करना है। डिप्रेशन का उपाय किया यानी कि जब उसमें आत्मा प्रकट होने ही वाला था, उस समय किवाड़ बंद कर दिए।

वे हद नहीं जानते कि हमें कहाँ पर स्थिरता रखनी है। मैंने तो समझा कि स्थिरता रखते होंगे। जबकि ये कहते हैं, 'डिप्रेशन आता है तब हम जूठन खा लेते हैं। रास्ते से गुज़र रहे हों तो किसी ने जो कुछ भी फेंका हो, थोड़ा-बहुत वह भी खा लेते हैं', कहा। सुनकर मैं तो स्तब्ध रह गया, मेरा सिर घूम गया। लोगों की जूठन भी खा जाते हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं खानी चाहिए।

दादाश्री : यह कह रहा है न, 'हम तो खा लेते हैं'। कितनी जूठन खा लेते हैं। 'डिप्रेशन आए तब खा लेता हूँ,' ऐसा कह रहा था न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो फिर? क्या अभी भी ऐसा करेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा नहीं करूँगा।

दादाश्री : डिप्रेशन में तो, और भी अधिक रहना चाहिए। 'डिप्रेशन, अभी तो तू और आ' कहना। 'मैं हूँ और तू है।' उस घड़ी आत्मा अलग हो जाएगा एकदम से। अगर पट्टी उखाड़ते समय 'अरे बाप रे, अरे बाप रे', करने से क्या वह उखड़ेगी? क्या करना पड़ेगा? 'उखाड़ दे भाई', कहना। भले ही बालों के साथ चली जाए लेकिन फिर उखड़ेगी। इस तरह तो पट्टी नहीं उखड़ती और रोज़ जलता है। यह भी कोई धंधा है?

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन वह तो अहंकार हुआ न?

दादाश्री : वह तो डिस्चार्ज अहंकार है। उसमें चार्ज अहंकार

तो है ही नहीं न! तू अपनी बुद्धि से मत चलना। बेकार ही मार खा जाएगा। प्रोटेक्शन मत करना। डिप्रेशन तो भगवान बनने का एक सब से बड़ा प्रवेश द्वार है। अंदर घमासान चलने लगे, अंदर बिल्कुल चैन नहीं पड़े। अंदर ऐसे-ऐसे होने लगे, उस समय, 'चलो, सब दूर बैठो', कहते ही सब दूर बैठ जाएँगे एकदम से। 'जाता है या नहीं?' ऐसा कहते ही सभी हट जाएँगे एकदम से। डिप्रेशन में क्यों आएँ भला! ऐसे गर्जना करो... '*रे सिंहना संतानने शियाल ते शुं करी शके?*'

जब डिप्रेशन आए न, तब कहना चाहिए 'और भी आओ'। वह नहीं ले जा सकता आपको। आत्मा तो वहीं का वहीं है न! 'और भी आओ सब मिलकर', और जब आएँ न, तब ये दादा मिले हैं न, तो दादाई बैंक में बेहिसाब माल है। मैं आपका पेमेन्ट कर दूँगा। दादा के बैंक में कमी नहीं है!

ज्ञानी पुरुष मिले हैं, अक्रम विज्ञानी हैं। खाने-पीने की छूट, सारी छूट है लेकिन यह ऐसा?! यह भला, ज़रा सा डिप्रेशन आ जाए तो उस डिप्रेशन से घबरा जाते हो? बम गिरने वाला हो तब भी अंदर ज़रा सा भी विचलित नहीं होना चाहिए जबकि इस डिप्रेशन से घबरा जाता है? अरेरे! बम गिरने वाला हो, और कोई कहे कि बम गिरने वाला है, तब कहना 'भाई! जब गिरना हो तब गिरना, मैं हूँ और तू है, तू गिरने वाला है और मैं जानने वाला हूँ'। जिस पर गिरेगा, वह जलेगा, जानने वाला कभी भी नहीं जल सकता। चाहे कितनी भी बड़ी होली जलाई जाए लेकिन उस होली देखने वाले की आँखें कहीं जल नहीं जातीं। अत: आत्मा पर तो कोई असर नहीं होता। आत्मा तो बम के भी आरपार निकल जाए लेकिन उस पर तो कोई असर नहीं होगा! ऐसा आत्मा दिया है मैंने आपको!

रूम में दो-चार मच्छर देख ले तो कहेगा, 'अरे! बहुत मच्छर हैं'। अभी से मच्छर-मच्छर करता रहेगा तो पूरी रात नींद कैसे आएगी? और इसी रूम में सोना है। अरे! मच्छर भी नहीं है और मच्छर का बाप भी नहीं है और खाकर, ओढ़कर सो जा। कहना, 'काटना हो तो

काटो। तुम्हारा हिसाब हो उतना ले जाना'। बाकी, हिसाब से बाहर कोई नहीं ले जा सकता। और फिर, कोई रोएगा, उसका भी ले जाएँगे और हँसेगा, उसका भी ले जाएँगे। रोने वाले को छोड़ देंगे क्या?! नहीं छोड़ेंगे? वे तो रोने वाले का भी ले जाएँगे, तो भाई हँस-हँसकर पिला न! अभी भोजन करवा ही रहा है तो हँसकर करवा न! इतने सारे भोजन करके तो जाएँगे ही। क्या वे मच्छर भोजन नहीं कर जाएँगे? तो उसके लिए क्या उलझन? अंदर अलग आत्मा प्रकट कर दिया है, अलग कर लेने के बाद। जब तक अहंकार एकाकार रहता है, तब तक अंदर ज़रा उलझन हो जाती है लेकिन इसे तो मैंने अलग कर दिया है, बिल्कुल अलग कर दिया और फिर ऐसा शोर मचाता है, 'मैं जल गया-जल गया'। तो भाई, ऐसी आदत तो तुझे थी ही न, वह आदत छोड़ देनी है अब!

शुद्धात्मा अलग होने के बाद परिषह और उपसर्ग का असर किस पर होता है? चंदूभाई पर होता है। और फिर यदि चंदूभाई घबराए, तब आप कहना 'मैं हूँ आपके साथ, घबराना मत'।

प्रश्नकर्ता : 'हिम्मते मर्दां तो मददे दादा।' आज अच्छा वाक्य निकला।

दादाश्री : हाँ! डिप्रेशन तो लोगों को आता है। आपको भला डिप्रेशन क्यों आएगा? आपको कहीं डिप्रेशन होना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : डिप्रेशन का रूट कॉज़ क्या है दादा? डिप्रेशन आने का रूट कॉज़ क्या?

दादाश्री : खुद की कमज़ोरी, और क्या?

प्रश्नकर्ता : किस प्रकार की कमज़ोरी?

दादाश्री : हर प्रकार की। खुद की चोर नीयत है तो डिप्रेशन ही आएगा।

प्रश्नकर्ता : एक्ज़ेक्ट शब्द है, दादा।

दादाश्री : जिसकी नीयत चोर नहीं है और निखालसता है, उसे डिप्रेशन कैसा? भोगने की इच्छा है इसीलिए न! जिसे इच्छा नहीं है उसे डिप्रेशन क्यों आएगा, निरीच्छक को? आप सब आत्मा हो गए हो तो अब इच्छा नहीं है, निरीच्छक हो!

चंदू में बरकत नहीं है, शुरू से ही

आत्मा बनकर आत्मा बोलो, आत्मा बनकर रहोगे तो फिर परेशानी नहीं होगी, तकलीफ नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : क्या बोलना चाहिए?

दादाश्री : चंदूभाई क्या करते हैं, वह सब आपके ध्यान में रहे और डिप्रेशन आए तो जानना कि आत्मा को नहीं हो रहा है। आत्मा को डिप्रेशन नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : अब, क्या ऐसा हो सकता है कि इस डिप्रेशन को जानें?

दादाश्री : हाँ, ऐसा हो सकता है न!

प्रश्नकर्ता : तो जो डिप्रेशन आ गया, वह क्या है? यानी एक बार आत्मा के तौर पर रहने में?

दादाश्री : डिप्रेशन आया यानी कि अभी तक उस तरफ रह रहा था तो अब वह अचानक वहाँ से छूटने लगा!

प्रश्नकर्ता : तो उसके असर की वजह से डिप्रेशन आया?

दादाश्री : हाँ, आया। लेकिन अब वापस बार-बार, और भी अधिक जुदापन रखेगा तो डिप्रेशन बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : फिर कभी भी डिप्रेशन परिणाम नहीं आएगा।

दादाश्री : फिर कभी भी नहीं आएगा, लेकिन फिर भी अभी तो पाँच-सात-दस-बार आ भी सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब वैसा हो जाए तब क्या ऐसा कहा जाएगा कि जागृति चूक गए?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं चूकते। वह तो परिणाम है पहले का। अगर हम कभी कहें कि 'तुझे यह नहीं आता' तो उस तरफ से उठकर इधर, शुद्धात्मा बनकर इस चंदूलाल को देखना है। आपको तो बल्कि चंदूलाल से कहना चाहिए कि 'तुझ में कोई बरकत नहीं है, कौशल नहीं है'।

प्रश्नकर्ता : अब यदि वह सब सुनते समय यह वाक्य हाज़िर रहे न, तो डिप्रेशन का असर नहीं होता।

दादाश्री : हाँ, हम कहें कि 'आप में बरकत ही नहीं है। ये लोग सही कह रहे हैं, मैं तो अनुभव कर रहा हूँ लेकिन इन लोगों ने कहा है न, देखो बात खुल गई न! इसमें क्या मज़ा आया आपको? ऐसे कहना आप चंदूभाई से। लेकिन आप ऐसा कहते नहीं हो न?

प्रश्नकर्ता : अभी आपसे यह सुना तो अब ऐसा लगा कि कहना चाहिए।

दादाश्री : कहो तो अच्छा है, राह पर आ जाएगा न! इन्हें तो बहुत समय से सिखा रहा हूँ लेकिन वे तो कहते हैं कि 'मेरा जो पद है, वह मैं जानता हूँ। आपको क्या पता चले इसमें? डिप्रेशन आए तो भले आए'। मैंने कहा, 'किस बात का डिप्रेशन आया है?' ये सब मुझे कुछ कहते हैं, उससे डिप्रेशन आ गया है! तो तब वह चंदूभाई में रहता है आराम से, आत्मा का जो पद दिया है उसमें रहना छोड़कर!

प्रश्नकर्ता : अभी जब मुझे नींद आ गई थी, झोंका आ गया था तब आपने मुझे बाहर निकाल दिया था, तब यों डिप्रेशन आ गया था। यों मुंह लटक गया।

दादाश्री : उस क्षण ऐसा कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई, देखा न, देख तुझ में बरकत नहीं है न!' ऐसा कहना तो फिर डिप्रेशन नहीं

आएगा। लेकिन तुझे तो तुरंत आ गया न? क्योंकि तू चंदूभाई बन जाता है और प्रोटेक्शन भी करता है कि 'वास्तव में मुझे नींद नहीं आई थी'। उस समय तुझे कहना चाहिए कि 'चंदूभाई, मैं जानता था, तू पास होने के चक्कर में है लेकिन तू पास नहीं हो पाता। लेकिन एक बार पास हो जा। मैं हूँ न तेरे साथ', ऐसा भी कहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : डिप्रेशन आए तो कंधा थपथपाना। 'मैं हूँ न तेरे साथ!' इस बुढ़ापे में ये भी कंधा थपथपाते हैं न कि 'मैं हूँ न तेरे साथ।' तो तुम्हें इस जवानी में क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : यह बहुत परफेक्ट तरीका है और जुदापन रह सकता है। डिप्रेशन नहीं आता, पूरा लाभ मिलता है।

दादाश्री : हाँ। वे मिल-मालिक सेठ मुझसे कहने लगे 'चाचा आप तो पहले से बहुत बदल गए हैं। पहले जो आपका स्वभाव था, वह कितना अच्छा था! और अब कैसा हो गया!' मैंने कहाँ, 'वह शुरू से ऐसा ही था। आपको पता ही नहीं था। मैं तो साथ ही रहता हूँ न!' तो कहने लगे, 'ऐसा कैसा कह रहे हैं?' मैंने कहा, 'शुरू से जानता हूँ। पहचानता हूँ तेरे चाचा को!' तब फिर वह मुझे डिप्रेस नहीं कर सकेगा न! तो क्या हम नहीं पहचानते हैं? पूरा पहचानते हैं। कहाँ-कहाँ पेशाब करने गया, नहीं जानते क्या हम? कहाँ पर संडास करने बैठ गया, कोई नहीं हो तो दिन-दहाड़े रास्ते पर बैठ जाता है। शौचालय क्यों नहीं ढूँढते? तब कहा, 'अभी यहाँ कोई है ही नहीं न'। कोई है, उसीसे परेशानी है उसे। उसे किस बात से परेशानी है?

प्रश्नकर्ता : कोई है, कोई मुझे देख रहा है...

दादाश्री : तो मुए, ये देख रहे हैं, ये पेड़-पौधे सभी देख रहे हैं! तब कहा, 'ये तो मुझे नहीं पहचानते। ये समझते नहीं हैं न!' और ये सब अक्ल वाले, ये जो सब दिखाई देते हैं न, स्कूल-कॉलेज में,

ये सभी अक्ल वाले, पेड़ों से भी ज़्यादा हैं। हमें तो ये अक्ल वाले भी पेड़ ही दिखाई देते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसमें इसे जो लगता है कि, 'ये सब मुझे देख लेते हैं, उससे शर्म आती है', वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : वह खुद, 'मैं चंदूभाई हूँ', इसलिए!

प्रश्नकर्ता : और जो आत्मा के रूप में बरतता है, उसे कैसा रहता है?

दादाश्री : उसे क्या रहेगा? वह तो कहेगा 'यहाँ कोई नहीं है ऐसा तुझे लग रहा है, तो यहाँ बैठ जा न! जा न चल, मैं तेरे साथ हूँ, यहाँ बैठ जा'। आप उसे छूट देना।

प्रश्नकर्ता : फिर भी प्रकृति में वैसा होगा तो सही न अंदर?

दादाश्री : पूरा आत्मा अलग कर दिया, उसके बाद इसे 'फाइल' कहा न। इस हद तक फाइल कहा कि आत्मा को ढूँढना रहा ही नहीं। फाइल के अलावा बाकी का सबकुछ आत्मा और आत्मा के अलावा बाकी का सबकुछ फाइल। लाइन ऑफ डिमार्केशन कितनी अच्छी!

प्रश्नकर्ता : इसमें तो, जब से बैठता है, तभी से एकाकार होकर बैठता है। फिर कहता है, 'मुझे उठा दिया' तभी से असर होने लगता है न?

दादाश्री : हाँ। लेकिन आपको तो बल्कि कहना चाहिए कि 'चंदूभाई, सीधे बैठो न! देखो, अगर आज उठा दें तो तुम्हारी बात तुम जानो। नहीं तो आ बनेगी तुम्हारी', ऐसा कहना पड़ेगा। उससे हमें कुछ नहीं होगा और गाड़ी चलती रहेगी। आप उसे खुद पर ले लेते हो, 'इस बार तय करना है आज विचलित नहीं होना है, आज ऐसा करना है', तो बन गए चंदूभाई!

प्रश्नकर्ता : हाँ, बस। 'ऐसा नहीं करना है, ऐसा करना है' इसका मतलब अपने सिर ले लिया?

दादाश्री : हाँ, बिना बात की पीड़ा! मैंने शुद्ध आत्मा दिया है। यदि उसमें रहने लगोगे तो शांति हो जाएगी। रूम से बाहर जाने के बाद क्या डिप्रेशन शांत हो गया था?

प्रश्नकर्ता : फिर चंदूभाई को ज़रा *ठपका* दिया कि तेरे कारण मुझे बाहर निकल जाना पड़ा।

दादाश्री : उस समय तू कौन?

प्रश्नकर्ता : उस समय खुद आत्मा।

दादाश्री : प्रज्ञा! आत्मा खुद हाथ नहीं डालता। सबकुछ सेक्रेटरी (करता है)। सेक्रेटरी ऑफ गवर्नमेन्ट!

जुदा रखते ही डिप्रेशन गायब

चंदूभाई ऐसा कहें तब आप टोकते रहोगे तो उससे ऐसा तय हो जाएगा कि आपका अभिप्राय अलग है या फिर अगर ऐसा पूछे कि चंदूभाई ऐसा क्यों होता है, तब भी काफी है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो कहता हूँ, चंदूभाई से।

दादाश्री : बस। कहा यानी कि आपका अभिप्राय अलग हुआ कि आप हो गए जुदा। इसके बावजूद भी यदि हो जाए तो वह भरा हुआ माल है न!

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई के ही आग्रह हैं, वे देखता रहता हूँ।

दादाश्री : वह ठीक है। देखने से वे कम हो जाएँगे। बहुत कम हो गए है और मैं ये जो धक्के लगाता हूँ, वह तो आपको याद दिलवाने के लिए। धक्के नहीं लगाता मैं आपको?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ लगता नहीं है कि आप धक्के लगाते हैं, यह तो अच्छा लगता है लेकिन इस चंदूभाई का ऐसा सब निकलता है, वह वेदता (वेदन करता) है, वह अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : हाँ, वह ठीक है। जब ऐसा निकलता है न, तो उसके लिए तुझे कहना है कि भाई, 'ऐसा नहीं होना चाहिए', बस इतना ही। उसी का लेकर बैठे रहोगे और भूतकाल को याद करते रहोगे तब तो फिर आज का खो दोगे।

प्रश्नकर्ता : प्रेज़न्ट को नहीं छोड़ना है।

दादाश्री : यदि हम धक्का मारें तब भी कहना ''प्रेज़न्ट को 'देख', धक्के को मत देख।''

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि ऐसा बोलना। वह मैं बोलता हूँ कि 'आइ वॉन्ट टू रिमेन इन प्रेज़न्ट' (मैं वर्तमान में रहना चाहता हूँ) लेकिन फिर भी डिप्रेशन आ ही जाता है।

दादाश्री : डिप्रेशन तो चंदूभाई को आता है न, तो आपको क्या हर्ज है? देखना है। 'क्या चंदूभाई! आपको डिप्रेशन आ रहा है?!' ऐसा सब कहना। ताकि मुझे नहीं डाँटना पड़े। मैं तो ऐसा-ऐसा कह देता हूँ, 'बड़े बाप बनकर बैठे हो पूरी दुनिया के!' ऐसा कहता हूँ। उसी तरह आप भी ऐसा कहना 'क्या चंदूभाई!' कहना आएगा या नहीं आएगा! यानी कि किसी भी प्रकार से प्रेज़न्ट में ही रहना है। जब डिप्रेशन आए न, तब आप कहना, 'दादाजी देखो न, चंदूभाई डिप्रेस हो गए हैं'। आप ऐसा कहना। वह ज़बरदस्त पुरुषार्थ कहा जाएगा। कहना, 'बड़े आए चंदूभाई! आपको शर्म नहीं आती?' बोलोगे तब फिर दोनों की सगाई कितनी चलेगी?

प्रश्नकर्ता : अलग ही हो जाएगा।

दादाश्री : तैर पाओगे न? समुद्र बहुत बड़ा है!

डिप्रेशन आने पर...

जब डिप्रेशन आए उस समय 'यह मेरा स्वरूप नहीं है', 'मैं शुद्धात्मा हूँ, इस डिप्रेशन को जानने वाला हूँ', ऐसा तय हो जाए कि वह अलग है तो हो गया कल्याण। जागृति को ही संभालते रहना है, उसी को पोषण देते रहना है, वही शुद्धात्मा है।

प्रश्नकर्ता : और वास्तव में खुद जानने वाला ही है न? डिप्रेशन कब आया, कितना आया, पिछली बार से यह कम है या ज़्यादा?

दादाश्री : सबकुछ जानता है।

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार डिप्रेशन को जानने वाले आत्मा की तरह रहना है, उसी प्रकार यदि एलिवेशन के समय भी जानने वाले की तरह रहा जाए तो डिप्रेस होने का समय नहीं आएगा न?

दादाश्री : कुछ सुनकर टाइट हो जाए तब आत्मा जान जाता है कि छाती फुलाई है, एलिवेट हो गया है। अब डिप्रेशन आए बगैर नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : तो क्या एलिवेशन के समय अंदर ऐसी जागृति रखनी चाहिए कि हम (फाइल वन) टाइट हो गए?

दादाश्री : वैसी जागृति रहे तो कल्याण हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जितना एलिवेशन होगा उतना ही अधिक डिप्रेशन आएगा न?

दादाश्री : डेढ़ सौ फुट ऊँची कुर्सी पर बैठा हुआ हो तो डेढ़ सौ फुट से गिरेगा।

स्त्री से कोई भूल हो जाए, तो पुरुष उसे कुछ ऐसा कहता है कि डिप्रेशन आ जाए, लेकिन स्त्री को खुद को डिप्रेशन नहीं आता न! वह तो ऐसा कह देती है, 'तू बहुत खराब आदमी है'। यानी कि खुद ने डिप्रेशन की मार खाई और सामने वाले को डिप्रेशन की मार खिलाई। अतः डबल गुनाह हुआ। *भोगवटा* भी उतना ही आता है। उससे तो ज़बरदस्त *भोगवटा* आता है। खुद की भूल हो फिर भी सामने वाले पर अटैक करे और सामने वाले को धमकाए तो वह डबल गुनाह है। उसके रिएक्शन में डिप्रेशन बढ़ जाता है। लेकिन फिर उस समय तो आनंद आता है कि मैंने इसे कैसा सुना दिया।

प्रश्नकर्ता : ऊपर से फिर ऐसा हिसाब लगाती है न कि ऐसा सुना दूँगी तो अगली बार मेरे साथ ऐसी डीलिंग नहीं करेगा।

दादाश्री : ऐसा सारा हिसाब लगाती है।

प्रश्नकर्ता : जब सामने वाला धमकाए तो उस समय खुद को कैसे रहना चाहिए?

दादाश्री : धमकाए तो हँसना। जब वह धमकाए तब आपको भी कहना चाहिए कि, 'अरे चंदूभाई! आपने ऐसे क्या गुनाह किए थे कि लोग ऐसा कह जाते हैं? आपको शर्म नहीं आती?'

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहना चाहिए, वह ठीक है लेकिन उसका धमकाना अपने कर्म का उदय ही माना जाएगा न?

दादाश्री : नहीं तो और क्या?

प्रश्नकर्ता : अत: मूलत: यह जागृति रखनी चाहिए। और व्यवहार में कैसा रखना चाहिए?

दादाश्री : व्यवहार में अगर सेफसाइड चाहिए तो मौन रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मौन देखकर वह और ज़्यादा धमकाएगा न?

दादाश्री : वह कह जाएगा तो उसे बोझ लगेगा, हमें क्या? वे तो हैं ही ऐसे!

डिप्रेशन होने लगे, उस समय आप उसे ऐसा कहो कि, 'कैसा रौब जमा रहा था?' तो वही आत्मा है! डिप्रेशन भुगतने वाला वह है जो चढ़ गया था, वही उतरता है। जो उसे जानता है, वह आत्मा है। डिप्रेशन आ गया है, वह भी पता चलता है, वह किसे? आत्मा को। इसलिए तुझे तो बल्कि उस समय ऐसा कहना चाहिए 'देखो कूद-फाँद करके चढ़े थे, तो उसका स्वाद आया?' ऐसा कहने से बहुत फल मिलेगा। ज़बरदस्त फल मिलेगा। हर बार ऐसा बोलोगे न, तो प्रतिक्रमण भी नहीं करने पड़ेंगे!

हम भी कहते हैं, 'मिर्ची खानी है और खाँसी से आपका रौब पड़ता है?' पूरी की पूरी मिर्च खा जाते हैं, तली हुई? बंद कर दिया है लेकिन। हम बंद नहीं करते हैं। हम तय करते हैं कि, 'अब यह नहीं होना चाहिए', क्योंकि शरीर पर असर होता है न! आत्मा कहाँ है, वह समझ लिया न? जो कम-ज़्यादा हो वह कौन है?

प्रश्नकर्ता : अंदर तो आप कईबार ऐसे जुदापन की बात करते होंगे, लेकिन कईबार बाहर भी इस तरह जुदापन का बोल देते हैं।

दादाश्री : हाँ, बोलता हूँ न बाहर।

प्रश्नकर्ता : तो क्या ऐसे बाहर बोलना अधिक इफेक्टिव है?

दादाश्री : बहुत असर होता है। यानी जुदा ही हो गए न! बाहर देखने वाले भी जुदा हो गए न! और हैं ही सब जुदा। आपको भी ऐसा कहना है। 'लो! बड़े डॉक्टर बन बैठे हो, चखो अब स्वाद? क्या मिलेगा? कुछ भी नहीं चला!'

प्रश्नकर्ता : जब उल्टी वाणी निकलती है न, तो मैं कहती हूँ कि तुम डायन जैसी लगती हो।

दादाश्री : डायन कहती हो? तो फिर सारे संबंध टूटते जाएँगे। संबंध तोड़ना है, ऐसा बोलने से संबंध टूट जाएँगे, क्योंकि प्रकृति को बुरा लगे बगैर रहेगा नहीं।

जहाँ आत्मशक्ति जागे, वहाँ से डिप्रेशन भागे

प्रश्नकर्ता : उस जागृति को वहाँ तक कैसे ले जाएँ? उस जागृति को वहाँ तक लाने के लिए किस तरह से पुरुषार्थ करें?

दादाश्री : च्यूंटियाँ भरकर भी जागृति लानी है न! च्यूंटियाँ भरने से पूरा जागृत हो जाएगा, उसके बाद अच्छा नहीं लगेगा। खटमल काटने पर जागृति आती है। मन के ज्ञाता-द्रष्टा रहा जा सके, उस हद तक ले जाना है जागृति को। फिर वह जागृति ही जागृति को संभाल

लेगी। उसके बाद आपको नहीं ले जानी पड़ेगी। इस तरह कब तक चलते जाना है?

प्रश्नकर्ता : मन तो वाणी से भी आगे हुआ न?

दादाश्री : वह जब सभी से अलग ही हो जाएगा, तब ज्ञाता-द्रष्टा रहेगा। वहाँ से फिर इस घोड़ाघाड़ी में से उतर जाना है। वहाँ से फिर कुछ और मिल जाएगा। ऐसा आएगा कि चढ़ना-उतरना नहीं पड़ेगा।

थोड़ा-बहुत रहना सीखेगा तो आ जाएगा। मन तो अंत तक रहेगा। मन को अनुकूल अच्छा लगता है और प्रतिकूल अच्छा नहीं लगता। 'चंदूभाई बहुत समझदार हैं', कहते ही उसके मन को अच्छा लगता है इसलिए चेहरा फर्स्ट क्लास हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : मन को अच्छा लगे, तब खुद क्या करता है?

दादाश्री : खुद वहाँ से नीचे उतर जाता है। स्लिप होता रहता है वह तो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें तो आगे का चाहिए न, मन के ज्ञाता-द्रष्टा तक का, तो क्या फिर वैसा होना चाहिए जो मन को अच्छा नहीं लगे?

दादाश्री : नहीं मन को तो अच्छा लगेगा, आपको मना करना है। 'हमें क्या लेना-देना?' कहना। 'तुझे पसंद है तो हमें क्या लेना-देना? तू तेरे कमरे में सो जा। मैं अपने कमरे में सो जाऊँगा'। जहाँ मन की नहीं सुनोगे तो वहाँ काम होगा। ऐसा कहने से खुद वहाँ पर जुदा हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उसी को ज्ञाता-द्रष्टा कहते हैं?

दादाश्री : वहीं से ज्ञाता-द्रष्टा की शुरुआत हुई। अंत तक जो मन को कड़वा लगे ऐसा ही पीते रहना पड़ता है। हम पिलाते हैं, जो साथ में रहता है, उसे। वर्ना ऐसा लगेगा कि, फालतू बैठे हैं। अन्य

किसी के पास टाइम नहीं है न! और किसी के पास तो टाइम कहाँ से होगा? (वर्ना) सभी लोग टूट पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : अब, जब मन को कड़वा पीने का समय आए, तब ज्ञाता-द्रष्टा का लाभ किस तरह से उठाना चाहिए?

दादाश्री : एक्ज़ेक्ट जागृतिपूर्वक कड़वा पी लोगे तो ज्ञाता-द्रष्टा बन ही जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मन को अच्छा नहीं लगे तब परेशानी होती है कि ऐसा क्यों वगैरह-वगैरह। तब फिर जागृति का लाभ चला जाएगा न?

दादाश्री : तो फिर वह डिम हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो जागृति का लाभ लेने के लिए कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : मन को अच्छा नहीं लगे तो कहना, 'तू अपने रूम में सो जा, मैं अपने घर!'

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा कहना होगा न?

दादाश्री : मन को अच्छा नहीं लगे तो खुद अलग है, ऐसा भान रहना ही चाहिए कि, 'तू अलग है, तू कौन है? और मुझे क्या लेना-देना?'

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसा कहेंगे कि रहना ही चाहिए, क्या तभी जुदापन का लाभ मिलेगा, एक्ज़ेक्ट?

दादाश्री : तभी जी पाएगा। वर्ना जीएगा कैसे? डिप्रेशन आएगा। डिप्रेशन आने के बाद फिर खत्म हो जाएगा। खुद जुदा है, ऐसा भान रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा हो सकता है कि मन डिप्रेशन में हो और खुद जुदा रहे?

दादाश्री : हाँ। मन के डिप्रेशन को जानो। मन के डिप्रेशन को जो जाने, वह आपका स्वरूप।

प्रश्नकर्ता : मन को भी डिप्रेशन नहीं आना चाहिए न?

दादाश्री : वह तो आगे की स्टेज में। पहले डिप्रेशन आना ही चाहिए। उसे जानना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उस डिप्रेशन को जाने नहीं और उस डिप्रेशन में एकाकार रहे तो?

दादाश्री : इन सब बाहर के लोगों जैसा हो जाएगा फिर तो। जब डिप्रेशन आए, उस समय हताश नहीं होना चाहिए। 'ओहोहो, अब मुझे अपने बारे में पता चला', इस तरह लाभ उठाना चाहिए। 'मुझे अपने बारे में पता नहीं चल रहा था। मैं कौन हूँ', वह पता नहीं चल रहा था, वह जाना अब। आत्मा के अलावा और किसी को डिप्रेशन का पता ही नहीं चलता। वही मेरा आत्मा और वही मेरा स्वरूप!

प्रश्नकर्ता : 'यह डिप्रेशन है', इस तरह से उसे जुदा देखा जाए तो क्या वही आत्मा है।

दादाश्री : जुदा देखने वाला आत्मा है, और डिप्रेशन आए तो फिर से चुप हो जाता है। 'आइस्क्रीम खा लो न', वह कहेगा। लेकिन वह खुद अपने आपको नहीं जानता। उस घड़ी खुश रहना चाहिए कि 'ओहो, आज मुझे अपने बारे में पता चला!' उसकी बजाय हताश हो जाता है। ये कहते हैं न, 'मुझे डिप्रेशन आ गया।' 'अरे, तुझे डिप्रेशन कैसे आ सकता है? तो यह जाना किसने?' उसे आत्मा ने जाना। यह सब तो डिस्चार्ज है। डिस्चार्ज है इसलिए आपको देखते रहना है। डिप्रेशन कम हो गया है या बढ़ गया है, वह देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : वास्तव में डिप्रेशन के समय भी खुद जान ही रहा होता है।

दादाश्री : वही आत्मा है। उसके बजाय ये तो हताश हो जाते

हैं। डिप्रेशन आए तब आपको एलिवेट करने की ज़रूरत है। बाकी और क्या करना है? रोज़-रोज़ एलिवेट करने की ज़रूरत नहीं है। डिप्रेशन आए तभी करने की ज़रूरत है कि 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ, मैं अनंत सुख का धाम हूँ' इस तरह एलिवेट करना चाहिए।

जहाँ डिप्रेशन नहीं आए, वह जगह अपनी। जहाँ आनंद नहीं जाता, वह जगह अपनी। जहाँ जगत् का कल्याण हो, वह जगह अपनी! ऐसा कहेगा न, तो तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ पाओगे। कर्ज़ा बहुत है न!

[2.1]

ज्ञाता-द्रष्टा

जहाँ ज्ञाता-द्रष्टा वहाँ परमानंद

आत्मा का मुख्य स्वभाव क्या है? ज्ञाता-द्रष्टा, परमानंद! इनके अलावा तो अपार गुण हैं लेकिन ज्ञाता-द्रष्टा, वे मुख्य हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या ज्ञाता-द्रष्टा भाव के साथ परमानंद भी रहता है?

दादाश्री : परमानंद ही रहता है। निरंतर परमानंद। हमें छब्बीस साल से टेन्शन नहीं हुआ है, एक सेकन्ड भी। कोई गालियाँ दे, मारे, जेल में ले जाए, फिर भी हमें टेन्शन नहीं होगा। और वह शक्ति आप में भी है। सिर्फ शक्ति को विकसित करने की ज़रूरत है। जो सामान मुझ में है, वही सामान आप में भी है। ज्ञाता-द्रष्टा पद के सिवा सब भ्रांति है। हाँ, जब ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रहते, तब फिर भ्रांति उत्पन्न होती है। ज्ञाता-द्रष्टा अर्थात् सभी चीज़ें ज्ञेय दिखाई दें। अर्थात् ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहना। जो खुद निरंतर ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहते हैं, वे ज्ञानी।

पूर्वकर्म बाधा डालते हैं ज्ञाता-द्रष्टा रहने में

प्रश्नकर्ता : आपने वह जो ज्ञाता-द्रष्टा रहने को कहा है तो ज्ञाता-द्रष्टा रहने में हमें कौन सी चीज़ रुकावट डालती है?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहने में पूर्वकर्म के उदय रुकावट डालते

हैं। अब पिछले सभी कर्म उलझाएँगे। मन में विचार आएँगे, तो आपको उनमें नहीं उलझना है। उनमें एकाकार नहीं हो जाना है। वे ज्ञेय हैं और आप ज्ञाता हो। ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध ही रहा है इस जगत् के साथ। अन्य कोई संबंध है ही नहीं अब। अब अन्य किसी संबंध में उतरना ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : द्वंद्व, वे स्पंदन निर्मूल नहीं हुए हैं न?

दादाश्री : नहीं। वे ज्ञेय के रूप में ही रहे हुए हैं न! वह सारा ज्ञेय रूपी है। और आपको मन में उलझन होती है कि, 'भाई! ये मुझसे चिपक गए हैं या क्या है?' आपको तो इतना ही देखना है कि दिनोंदिन राग-द्वेष कम हो रहे हैं या नहीं।

प्रश्नकर्ता : आत्म तत्त्व को जानने के बाद में जो भी प्रश्न होते हैं या उलझनें होती हैं, वह अपना विभाग नहीं है न?

दादाश्री : वे सब ज्ञेय हैं और डिस्चार्ज रूपी हैं और आपके ताबे में नहीं हैं, व्यवस्थित के ताबे में हैं। आपका और उनका स्वभाव अलग है। वे ज्ञेय स्वभाव वाले हैं और हम ज्ञाता स्वभाव वाले हैं। ज्ञेय चीज़ें वीतराग हैं, ज्ञाता भी वीतराग है और बीच में अहंकार है, वह राग-द्वेष करवाता है। अहंकार चला गया है इसलिए ज्ञेय के प्रति वीतरागी भाव रखना है। ज्ञेय को *तरछोड़* (तिरस्कार सहित दुत्कारना) लगाएँगे तो वह भी *तरछोड़* लगाएगा। फिर भी यदि अंदर से खराब पौद्गलिक भाव निकलें तो आपको प्रतिक्रमण करना चाहिए। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद जो कुछ भी बाकी बचता है, वह सब ज्ञेय के रूप में रहता है। अंदर जो चीज़ उत्पन्न हुई, वह ज्ञेय है और हम ज्ञाता हैं।

ज्ञाता-द्रष्टा को नहीं है 'फॉरेन' का जोखिम

हमारे ज्ञान देने के बाद में होम और फॉरेन (स्व-पर) दोनों अलग हो गए, उसके बाद हम कहते हैं कि यदि आप अपना ज्ञाता-द्रष्टापन नहीं चूकोगे तो आप 'फॉरेन' के लिए बिल्कुल भी जोखिमदार नहीं हो।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-द्रष्टा का *लक्ष* ठीक से नहीं बैठता। वह आता है और चला जाता है।

दादाश्री : वह तो चला जाएगा लेकिन जब वह निरंतर रहने लगेगा न, तब आप भगवान बन चुके होंगे। अतः यह चला जाता है, फिर भी वह पूर्ण तो ज़रूर होगा। क्योंकि अभी तो संसार में सभी कार्य बाकी हैं न! संसार की सभी फाइलें बाकी हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बाकी हैं अभी।

दादाश्री : वे फाइलें जैसे-जैसे कम होती जाएँगी, वैसे-वैसे यह *लक्ष* अधिक से अधिक दृढ़ होता जाएगा। फाइलों के कारण रुका हुआ है सारा।

प्रश्नकर्ता : खुद में अविरत रूप से रहा जा सके, ऐसी कृपा कीजिए। *पुद्गल* के हर एक संयोग को पर-परिणाम जानने में कमी रह जाती है।

दादाश्री : आपकी जो पहले की फाइलें हैं न, उन फाइलों का *निकाल* (निपटारा) कर देना। कोई कमी रह जाए, वहाँ पर समझ जाना कि यह फाइलों के कारण ही है। अविरत रूप से ज्ञाता-द्रष्टा पद में नहीं रह पाते हैं, उसका कारण यही है। यह सारी एक तरह की पिछले हिसाब की दखल है फाइलों की। इसलिए अविरत रूप से नहीं रह पाता।

अक्रम अर्थात् इसे तो ऐसा ही कहा जाएगा कि कारण मोक्ष हो गया, लेकिन ये जितने कर्म बाकी बचे हैं उनका ज्ञाता-द्रष्टा पूर्वक निबेड़ा लाना है। ज्ञाता-द्रष्टा की तरह यह सब 'देखने' से निबेड़ा आएगा तो आत्यंतिक मोक्ष हो जाएगा। बस, और कुछ नहीं है। फिर चाहे कैसे भी कर्म हों, चाहे कितने ही गाढ़ हों, खराब हों लेकिन यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो छूट जाओगे।

उदयकर्म में दखलंदाज़ी

जब उदयकर्म में दखल देते हैं, उस क्षण बुद्धि होती है और

जब उदयकर्म में दखल नहीं देते, उस क्षण ज्ञान रहता है। ज्ञान और बुद्धि का है वह भेद।

प्रश्नकर्ता : गड़बड़ सिर्फ बुद्धि से ही होती है न?

दादाश्री : गड़बड़ सिर्फ बुद्धि की ही है सारी। इस बुद्धि ने ही सारी झंझट और गड़बड़ की है। ज्ञान में ऐसा कुछ है ही नहीं। ज्ञान में तो दखल होती ही नहीं है न! हाँ, यदि चंदूभाई गड़बड़ करें और ज्ञान उसे जाने तो आप मुक्त।

प्रश्नकर्ता : कोई घटना घटे तब अज्ञानता खड़ी हो जाती है और उसका असर होता है। उस समय यदि इस ज्ञान की स्थिति में रहना हो तो किस तरह से आ सकते हैं?

दादाश्री : वह तो, चंदूभाई उसमें रहेंगे और आप इसमें रहो। अगर आप अंदर अलग रहोगे तो अन्य किसी भी चीज़ का असर नहीं होगा। वह कुछ सुधरेगा नहीं। अब जो जम चुका है, वह थोड़े ही सुधरेगा?! उसे देखते रहोगे तो वह छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह तो, जो चंदूभाई का है, वह डिस्चार्ज होता रहेगा।

दादाश्री : वह *पुद्गल* है, उसका धर्म अलग है। आत्मा का धर्म अलग है। दोनों का लेना-देना नहीं है। किसी के धर्म में दखल कैसे की जा सकती है? उसे सिर्फ 'देखना' है कि *पुद्गल* इस भाव में घूम रहा है। जिसे 'देखना' आ गया, उसका यह सब चला जाएगा। यदि उदयकर्म में हाथ नहीं डाला जाए तो काम हो जाएगा। यदि हाथ डाल दिया हो और बाद में पछतावा करके तुरंत उसे छोड़ दे तो वह ज्ञान के नज़दीक है। तब भी काम हो जाएगा उसका!

किसने लिया, किसने दिया, इन्होंने इन्हें दिया और इन्होंने लिया, भगवान ऐसी कोई बही नहीं रखते। कितने समझदार हैं! बही ही नहीं रखते। हिसाब पूरा साफ। बिना बही के हिसाब साफ। इसीलिए मैंने कहा

है न कि भगवान बही नहीं लिखते और यह जो बुद्धि है, वह बही लिखती है। हस्तक्षेप करती है उदयकर्म में, दखल देती है उदयकर्म में। अरे, जो देता है, वह भी उदयकर्म है और वह लेता है तो वे उसके उदयकर्म। उसमें तुझे बीच में हस्तक्षेप करने का रहा ही कहाँ? उदयकर्म देता है न? और लेने वाला भी उदयकर्म है। वहाँ पर फिर जमा-उधार करने को रहा ही कहाँ? लेकिन इस बुद्धि की गड़बड़ है। वह यदि उदयकर्म में गड़बड़ न करे, तो उसी को ज्ञान कहते हैं, पूरा ज्ञान, हाँ! यहाँ पर आपके पास कुछ हद तक का ज्ञान तो है लेकिन केवलज्ञान उसे कहते हैं कि उदयकर्म में दखल न करे! आपके पास सम्यक् ज्ञान तो है ही, लेकिन अब केवलज्ञान होने से पहले ऐसी सारी चीज़ें होनी चाहिए न? ज्ञान तो है ही। लेकिन केवलज्ञान में यह सब रुकावट डालेगा न?

फिर, उदयकर्म में दखल नहीं करना है। यदि कोई थप्पड़ लगाए तब आपको ऐसा नहीं कहना है कि, 'तू क्यों मार रहा है?' और क्यों मार रहा है, वह बोलने का अधिकार चंदूभाई को है लेकिन आपको वह अधिकार नहीं है। ये चंदूभाई भी उदयकर्म के अधीन बोलते हैं। आपको ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। समझना तो पड़ेगा न? वीतराग मार्ग में गप्प नहीं चलेगी! अन्य मार्ग में चल सकती है गप्प। यह तो बहुत काता हुआ है, बहुत बारीकी से कातकर रेग्युलर स्टेज वाला ही दिया है और फिर केवलज्ञान से 'देखकर' बताते हैं। यों ही नहीं बोलते एक भी अक्षर। समझ में आए, ऐसी बात है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन, ये उदयकर्म हैं, ऐसा भी यदि पूर्ण जागृति होगी तभी समझ में आएगा।

दादाश्री : हाँ, वर्ना उदयकर्म को भी नहीं समझ सकेगा। कितनी अधिक जागृति रहने पर समझ में आता है कि यह उदयकर्म है। थोड़ी-थोड़ी जागृति तो रहती है महात्माओं को। यह ज्ञान तो है ही न! ज्ञान तो हो चुका है, अब सिर्फ केवलज्ञान होना बाकी रहा।

प्रश्नकर्ता : केवलज्ञान होने में क्या बाकी रहा?

दादाश्री : अभी भी बुद्धि के कहाँ-कहाँ पर दखल हैं, वह

'देख' लेना। अतः यदि चंदूभाई बुद्धि से दखल करते हैं तो उसमें हर्ज नहीं है। आपको तो सिर्फ उस दखल में एकाकार नहीं होना है। यदि आप 'देखते' हो तो आप अपने हिसाब में हो। और उसमें यदि हिसाब चूक जाते हो तो उसे उदयकर्म में दखल करना कहा जाएगा। चंदूभाई का उदयकर्म है लेकिन ऐसा नहीं होना चाहिए कि आप उसमें एकाकार हो जाओ। तब आप पर उसका असर नहीं होगा।

ज्ञाता-द्रष्टा के अलावा बाकी सब दखलंदाज़ी

प्रश्नकर्ता : तो फिर इसका अर्थ क्या ऐसा हुआ कि जहाँ ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रह पाते, वहाँ पर दखलंदाज़ी है?

दादाश्री : हाँ, ज्ञाता-द्रष्टा के अलावा बाकी सब दखलंदाज़ी, उसी को संसार कहते हैं। लेकिन अब यह तो वास्तविकता है कि ज्ञाता-द्रष्टा तो नहीं रहा जा सकता कि मनुष्य की इतनी शक्ति नहीं है। वर्ना, जो ज्ञाता-द्रष्टा रहा, वह तो भगवान ही हो गया। लेकिन तब तक क्या करना चाहिए? जब अंदर दखल देने का विचार आए तो उस समय प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। तब फिर उसे दखल नहीं कहा जाएगा। दखल होने जा रहा था लेकिन आपने मोड़ लिया।

प्रश्नकर्ता : यह तो बहुत बड़ी बात कर दी लेकिन हर बार इंसान 'देखता' रहे, उस तरह का रह नहीं सकता न?

दादाश्री : यदि नहीं रह सकता, तो फिर उसे प्रतिक्रमण करने चाहिए। आपको विचार आएँ, उनके लिए प्रतिक्रमण करने चाहिए। एक्ज़ेक्ट ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रह पाते तो प्रतिक्रमण करना चाहिए। यदि ऐसा बोल दिया कि 'इतनी तेज़ गाड़ी क्यों चला रहे हो', तब फिर आपको प्रतिक्रमण करना है कि, 'यह भूल हो गई हम से'।

प्रश्नकर्ता : नहीं, इंसान दखलंदाज़ी करने की सोचता नहीं है लेकिन हो ही जाती है।

दादाश्री : हाँ, हो ही जाती है। नहीं होगा ऐसा नहीं है लेकिन

हो ही जाता है। ऐसी जो दखलंदाज़ी करते हैं, वही झंझट है और उसी वजह से यह संसार खड़ा रहा है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-द्रष्टा रहने के बाद, यह जो प्रतिक्रमण करने की बात है, उसका कोई अर्थ ही नहीं है न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो किसे करना है? हमें खुद को नहीं करना है। अपना यह अक्रम विज्ञान है न, इसलिए ज़रा तगड़े कषाय रहे हुए हैं। अब किसी को डाँटा तो ऐसा डाँटा कि उसे दु:ख हो गया। तब आपको चंदूभाई से कहना चाहिए कि, 'भैया! आपने अतिक्रमण क्यों किया? तो अब प्रतिक्रमण कर लो'। 'आपको', शुद्धात्मा को प्रतिक्रमण नहीं करने हैं।

प्रश्नकर्ता : हमें तो ज्ञाता-द्रष्टा ही रहना है और उसे प्रतिक्रमण करना है। यानी कि ज्ञाता-द्रष्टा तो आत्मा का स्वभाव है और प्रतिक्रमण *पुद्गल* को करने हैं।

दादाश्री : अतिक्रमण *पुद्गल* का है और प्रतिक्रमण भी *पुद्गल* का है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह यदि समझ में आ जाए तो फिर ज़्यादा उलझन नहीं रहती।

देखना व जानना है तत्क्षण ही

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई की इन सारी क्रियाओं को 'देखना' ही है न?

दादाश्री : आप खुद इन सारी क्रियाओं के ज्ञाता बन गए हो। आपको स्वरूप में रहना चाहिए, ज्ञाता-द्रष्टापन ही रहना चाहिए, फिर क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : यानी कि इस समय अभी मैं आपसे बातें कर रहा हूँ, तो उस समय मुझे तो उसे 'देखना' चाहिए कि चंदूभाई यह क्या बोल रहे हैं।

दादाश्री : हाँ, यदि वैसा नहीं रहे तो फिर बाद में वह फाइल फिर से 'देखनी' पड़ेगी।

प्रश्नकर्ता : हाँ, क्योंकि दोनों एक ही साथ, बाद में नहीं लेकिन एट ए टाइम (उसी समय) रहना चाहिए।

दादाश्री : यदि नहीं रहे तो जागृति उतनी ही कम है।

प्रश्नकर्ता : जब घटना घट रही हो तब मुझे उसका ज्ञाता-द्रष्टा रहना चाहिए। हमें बाद में पता चलता है लेकिन वह काम का नहीं है न?

दादाश्री : फिर भी यदि बाद में पता चले, तब भी बहुत हो गया।

यदि फाइल बिना देखे चली गई तो?

प्रश्नकर्ता : अब भोजन करते समय जागृति नहीं रही। अतः फिर बाद में जब जागृति आ जाए तब जुदा कर देता है कि यह खाने वाला अलग और मैं अलग...

दादाश्री : अलग ही है न, वह तो!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे अलग नहीं रखा इसीलिए तो बंधे हुए हैं न?

दादाश्री : तो फिर से निबेड़ा लाएँगे। फिर से इस फाइल को 'देखना' पड़ेगा। यदि फाइल एक बार बिना हस्ताक्षर किए चली गई तो फिर बाद में हस्ताक्षर करने पड़ेंगे। बिना हस्ताक्षर किए तो जाने ही नहीं देना है।

प्रश्नकर्ता : हस्ताक्षर यानी क्या?

दादाश्री : 'देखा' तो हस्ताक्षर हो गए। यदि 'देखे' बगैर चला गया तो वहाँ हस्ताक्षर करना रह गया। हमें हस्ताक्षर करके ही जाना पड़ेगा। उसके लिए क्या साहब को गालियाँ देनी चाहिए? एक हस्ताक्षर की ज़रूरत है, सिग्नेचर।

प्रश्नकर्ता : उस सिग्नेचर के बारे में ज़रा ठीक से बताइए। सिग्नेचर करना यानी कैसे बरतना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा भाव से 'देखने' पर जाएगी फाइल।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब खाना शुरू करता है तब बोलता है कि, 'आहारी आहार करता है और मैं निराहारी सिर्फ उसे जानता हूँ।' फिर आराम से अच्छी तरह खाता है तो उसमें जुदापन के हस्ताक्षर तो प्रतिक्षण होने चाहिए न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। जहाँ पर भूल हो जाए वहाँ 'देख' लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : खाने में पूरा दस मिनट का टाइम बीत गया और उन दस मिनटों के बाद भी जागृति नहीं आई थी। आज डेढ़ महीने बाद पता चला कि उस दिन जागृति नहीं रही थी तो वहाँ पर हस्ताक्षर करना तो रह गया न...

दादाश्री : फिर से खाते समय हस्ताक्षर होंगे।

प्रश्नकर्ता : वह जो चूक गए थे, उसका क्या फल आएगा?

दादाश्री : उस पर फिर से हस्ताक्षर करने पड़ेंगे न!

प्रश्नकर्ता : पहले जहाँ-जहाँ चूक गया था, वह सब अभी 'देखा', तो क्या उसे हस्ताक्षर करना कह सकते हैं? यदि वह जागृतिपूर्वक पृथक्करण करे कि कहाँ चूक गए थे तो उसका क्या फल आएगा?

दादाश्री : उसमें तो फल क्या आना है? वह तो करेक्ट किया इसलिए वही फाइल दोबारा नहीं आएगी।

प्रश्नकर्ता : यदि हस्ताक्षर करना रह जाए तो क्या वह भूल कहलाएगी?

दादाश्री : तो क्या नहीं कहलाएगी?

प्रश्नकर्ता : और उस भूल का परिणाम क्या आएगा?

दादाश्री : तेरी जितनी फाइलें हैं न, उनमें हस्ताक्षर करने हैं। यदि दो-चार फाइलें एक साथ निकल जाएँ तो तीन रह जाएँगी न? उसके लिए कैसा क्लेश? नब्बे थीं, उनमें से साठ तो हो गईं। जो शेष रहीं वे फिर से आएँगी।

प्रश्नकर्ता : घंटे भर बाद पता चला कि यह देखना-जानना तो बाकी रह गया तो उन्हें फिर से यदि देख लेगा, जान लेगा तो छूट जाएगा न?

दादाश्री : छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कोई नियम है कि अगले जन्म में आएँगे?

दादाश्री : उनमें से कुछ अगले जन्म में चले जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : कोई भी संयोग यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहे बगैर चला जाए तो क्या हमें उसे कभी न कभी फिर से भुगतना पड़ेगा?

दादाश्री : उसे फिर से 'देखना' पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : यदि एक घंटे के बाद फिर से याद आए और उसका प्रतिक्रमण कर लें तो?

दादाश्री : याद आने पर भी फायदा तो होता ही है न! फिर वह हल्का हो जाता है। वही की वही चीज़ प्रतिक्रमण करने पर धुल जाती है।

प्रश्नकर्ता : उसका *निकाल* फिर इसी जन्म में हो जाएगा या फिर अगले जन्म में *निकाल* करना बाकी रहेगा?

दादाश्री : फाइलों का जितना समभाव से *निकाल* करेंगे तो उनमें से काफी कुछ फाइलों का इसी जन्म में *निकाल* हो जाएगा। यदि कोई फाइल बाकी रह जाएगी, तो वह तो अगले जन्म में भी आ सकती है लेकिन पुरुषार्थ धर्म है न! इसलिए सभी बातों में दोनों छूट हैं।

वहाँ बाकी रह जाता है निकाल

यदि नहीं देखा और नहीं जाना तो वह डिस्चार्ज भाव फिर से *निकाल* करवाने आएगा, लेकिन है डिस्चार्ज भाव।

प्रश्नकर्ता : यदि ज्ञान लेने के बाद उपयोग न रहे तो क्या बाद में वह डिस्चार्ज फिर से आएगा?

दादाश्री : हाँ, यदि हस्ताक्षर नहीं हो पाएँगे तो हस्ताक्षर करवाने के लिए फिर से कागज़ आएँगे, उतना घाटा।

प्रश्नकर्ता : तो वह घाटा दूसरी बार में खत्म हो जाएगा क्या?

दादाश्री : खत्म हो ही जाएगा न! और क्या होगा? काम ही क्या है? अभी तो कागज़ ज़्यादा और टाइम कम, तो जल्दबाज़ी में थोड़े-बहुत कागज़ रह जाते हैं। इसलिए अगली बार जब टाइम ज़्यादा होगा और कागज़ों का काम कम हो चुका होगा, तब पूरा *निकाल* हो जाएगा। उन्हें यदि *निकाली* समझेगा तो उसे परेशानी नहीं होगी। वर्ना उसे बार-बार *निकाल* करना पड़ेगा। उसमें तो चलेगा ही नहीं न! जब तक फाइल पर ऐसे हस्ताक्षर नहीं हो जाएँगे कि (क्लियर) 'साफ है', तब तक बार-बार फाइलें आती ही रहेंगी। जो *पुद्गल* शुद्ध हो जाएगा, वह फिर नहीं आएगा।

जागृति बढ़ती है ध्यान डाइवर्ट करने पर

प्रश्नकर्ता : फाइल अर्थात् कोई व्यक्ति हो, वैसा?

दादाश्री : कुछ भी हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : वे विचार भी फाइल ही माने जाते हैं न! फाइल रूपी जो विचार हैं उनका प्रतिक्रमण करना अच्छा है या उन्हें 'देखना' पड़ेगा?

दादाश्री : जब वे विचार आएँ, तब उन्हें 'देखना' ही है। 'देखने' पर शुद्ध होकर चले जाएँगे। अच्छे नहीं लगते, ऐसा पता चलता है

न? अच्छे लगें तब भी 'देखने' हैं। उन्हें पसंदीदा नहीं करना है, उसी को कहते हैं 'देखना'।

विचारों का उद्‌भव तो मन में से होता है, इसलिए फिर यदि अच्छे नहीं लगें तो फिर उनसे दूर रहते हैं और अच्छे लगें तो एकाकार हो जाते हैं। जो अच्छा नहीं लगता उनमें तन्मयाकार नहीं होते, नापसंद में अलग रहे तो नापसंद के ज्ञाता-द्रष्टा बन गए। अब जो अच्छा लगता है, उसके लिए भी ज्ञाता-द्रष्टा का ज्ञान दिया हुआ ही है इसलिए फाइल को फिर से 'देखने' पर साफ हो जाता है। देखने के प्रयोग से ही हो सकता है, अन्य कोई उपाय नहीं है। देखना नहीं आए तो दूसरा प्रयोग सेट कर लेना। चरणविधि बोलना और फिर (आँखें बंद करके) पढ़ना।

जो माल भरा है, उसके उदय के समय आप ध्यान नहीं दोगे तो वह माल यूज़लेस, बेकार ही चला जाएगा। फिर यदि बहुत ध्यान नहीं दोगे तो अपने आप बेकार ही चला जाएगा, भले ही फिर कचरा भरा हो। यदि उस पर ध्यान दोगे और तन्मयाकार हो जाओगे, तब उसे विकल्प कहा जाएगा। अत: यदि उसे 'देखते' रहोगे या फिर भीतर दूसरा कोई काम करने लगोगे तो वह बेकार हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो दोनों ही रास्ते हैं न? या तो उस पर ध्यान न दें, और विधि में या ऐसी किसी बात में लग जाएँ या फिर उसके सामने ज्ञाता रहें।

दादाश्री : ज्ञाता रहना है, और यदि नहीं रह पाओ तो, विधि करके।

प्रश्नकर्ता : यानी कि दोनों ही तरीकों से वे गांठें विलय होंगी?

दादाश्री : हाँ, और जब मरने का विचार आता है तब वहाँ तन्मयाकार नहीं होते। होता कुछ भी नहीं है लेकिन वह समझता है कि यहाँ पर नुकसानदेह है इसलिए वहाँ अलग रहता है। यह तो उसे जहाँ मज़ा आता है, वहाँ तन्मयाकार हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : जहाँ मज़ा आता है, उसे जोखिमी समझेंगे तो वहाँ सावधान रहेंगे न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : मन में विचार आएँ और उन पर ध्यान न दें तो उसे खाली हो गया, ऐसा कहेंगे या फिर दूसरी कोई इफेक्ट देकर जाएगा?

दादाश्री : हं। खाली हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : इसमें वह जो विचार आता है उसके लिए दो चीज़ें बताई हैं। एक तो उनके ज्ञाता-द्रष्टा रहना है और दूसरा, उन पर ध्यान नहीं देना है। तो उन दोनों तरीकों के लिए आपने बताया है कि विचार झड़ जाएँगे, तो फिर दोनों में फर्क कहाँ है?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहने से ज़्यादा फायदा होता है। दूसरे तरीके से कम फायदा होता है।

प्रश्नकर्ता : फायदा यानी? ज़्यादा फायदा यानी?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहना, वह रियल पुरुषार्थ कहा जाता है। कुछ भी (अन्य पुरुषार्थ) उसकी बराबरी नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर इन दोनों में यों फर्क क्या है? दूसरी ओर ध्यान देने को क्या कहा जाएगा और ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो वह क्या कहा जाएगा?

दादाश्री : यदि ज्ञाता-द्रष्टा नहीं रह पाते हो तो ध्यान दूसरी जगह रखना। नवकार मंत्र पढ़ना, अन्य कोई विधि बोलना।

बसों के यातायात (ट्रैफिक) से चूक जाते हैं, 'देखना'

प्रश्नकर्ता : जो कुछ भी मेरा डिस्चार्ज आता है, उसे मैं सिर्फ 'देखता' रहता हूँ, दूसरा कुछ नहीं करता। क्या यह ठीक है?

दादाश्री : हाँ, ठीक है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान एक सरीखा क्यों नहीं रहता? उतर जाता है वापस, वापस चढ़ता है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : नहीं उतरता। एक बार चढ़ने के बाद फिर नहीं उतरता। ज्ञान तो ज्ञान ही रहेगा। एक बार यदि अंधा हो जाए तो फिर दिखाई देना बंद हो जाता है लेकिन इसमें तो फिर से दिखाई देता है न?

'केवल निजस्वभावनुं, अखंड वर्ते ज्ञान,
कहीए कैवल्यज्ञान ते, देह छतां निर्वाण।' – **श्रीमद् राजचंद्र**

'भले ही देह है लेकिन फिर भी निर्वाण है', ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, अखंड रहना बहुत कठिन है।

दादाश्री : अरे, जिसका खंड हुआ, उसे अखंड होते देर नहीं लगेगी। जो खंड है, उसे अखंड होने की झंझट नहीं करनी है। अखंड होने के लिए ही वह खंड वाला हुआ है।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसमें ऐसा होता है कि कार्य शुरू करने से पहले इसका ध्यान रहता है। उसके बाद काम में मग्न हो जाते हैं तब तो भूल ही जाते हैं आधे घंटे तक। काम पूरा होने के बाद वापस प्रतीति आती है।

दादाश्री : ऐसा है न, यह कैसा है, वह आपको समझाता हूँ कि अपने यहाँ एक जगह पर, कोठी (बड़ौदा का एक एरिया) के ढलान पर जो चौराहा है, वहाँ एक बड़ी कुर्सी डालकर सभी बैठे हुए हों, अब हमें सामने की ओर देखना है तब अगर बीच में बस आ जाए तो क्या हम देख पाएँगे? यानी कि जब तक बसें आती-जाती रहेंगी, तब तक सामने अखंड रूप से नहीं दिखाई देगा। अरे! बसों का आना-जाना बंद हो जाएगा। रात होते ही अपने आप बसें बंद हो जाएँगी, एकदम से।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, सब को यह बच्चों की किताब सा उदाहरण एकदम से कैसे दे दिया?

दादाश्री : हाँ, लेकिन क्या हो सकता है? काम आ जाता है न! उसे डर लगता है कि अब यह अखंड कब होगा! डर रखने जैसा नहीं है। ये सारी बसें बंद हो जाएँगी तब पूरा ही रहेगा, अखंड ही।

तेरा ज्ञान तो अखंड ही है। इन बसों का अवरोध है और बसों का संयोग है। वे संयोग फिर वियोगी स्वभाव वाले हैं। वे तेज़ी से चले जाएँगे। अब तू नए संयोग खड़े मत करना।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह सब समझने के लिए दस दिन तक बैठना पड़ता लेकिन आपने तो एक ही वाक्य में समझा दिया कि बीच में बसें ही दौड़ रही हैं। इस पर से तो हमें अनुभव ले लेना चाहिए कि अब बेकार झंझट क्यों करें?

दादाश्री : अरे! यह आपका मोक्ष ही है। यह तो, बसें आती-जाती रहें तो उसके लिए बस वालों को हम कुछ नहीं कह सकते? मोक्ष के हेतु के कारण हमें कुछ भी नहीं कहना चाहिए। वे दो मंज़िल वाली भी आ सकती हैं और एक मंज़िल वाली भी आ सकती है। फिर यदि हाथी जा रहा होगा तब भी नहीं दिखाई देगा लेकिन अब वे संयोग हैं। अत: जितने हैं, उतने आकर चले जाएँगे और बाद में फिर वह अखंड ही रहेगा। है ही अखंड। वह अखंड नहीं रहता लेकिन कई लोगों को दादा (का निदिध्यासन) तो अखंड रहते हैं न!

तो यों समझ में आ जाएगा न, अखंड! देखो न, कितनी उलझन थी कि यह खंडित हो गया, अब अखंड कब होगा? तो अब किसकी मानता मानें? अखंड ही है यह। अब आपकी समझ में आ गया, अखंड? कठिन लगता था न, बहुत कठिन, 'ओहोहो। इसका कब अंत आएगा और कब वह होगा?' आ चुका है अंत! यहाँ उसके अभ्यास की ज़रूरत है। यह अक्रम विज्ञान है इसलिए टच में आने की ज़रूरत है। जो एक बार मिलकर जाए, उसकी यह जागृति जाती नहीं है। जो एक बार मुझसे मिला और ज्ञान लिया हो तो उसकी जागृति नहीं जाती।

अब ज्ञाता-द्रष्टा रहना, वही चारित्र है लेकिन आप रह नहीं पाओगे क्योंकि आपके साथ तो हज़ारों बलाएँ हैं। बीच में बसें आती-जाती रहें तो उसमें ज्ञाता-द्रष्टा कैसे रह पाओगे? आप कहते हो कि 'इन बसों के कारण कुछ दिखाई नहीं देता'। है तो सही लेकिन बसों की वजह से दिखाई नहीं देता कुछ भी। तब यदि मैं पूछूँ कि, 'वे

बसें आपकी बुलाई हुई हैं या अन्य किसी के द्वारा?' तब कहते हैं, 'हाँ, वे तो मैंने ही बुलाई हैं'। मैंने पूछा, 'दो मंज़िला भी बुलाई?' तब कहते हैं, 'हाँ। दो मंज़िला भी बुलाई।' आपने ही जमाई है यह बाज़ी। मेरी सभी बसें बंद हो गई हैं और आपकी तो चल ही रही हैं न!

प्रश्नकर्ता : इन बसों का ट्रैफिक आने से दिखाई देना बंद हो जाता है तो ऐसे में क्या देखें?

दादाश्री : ज्ञेय दिखाई देंगे। यह आत्मा आईने जैसा है। आईने की जगह पर यदि आत्मा को रखोगे तो जो आईने में है, वह वही चीज़ है जो सामने थी। सामने जो सजाया हुआ खंभा था, वह आईने में दिखाई देना बंद क्यों हो गया? खंभा अंदर झलकता रहता है। वह झलकना बंद हो जाए तब देखने वाला शोर मचाता है कि, 'मेरे आत्मा में अब कुछ दिखाई नहीं देता'। तब कहते हैं, भैया, बीच में ये बसें जा रही हैं, इसलिए।

आत्मा ज्ञाता-द्रष्टा है। वह इन आँखों की तरह नहीं देखता है, यों उसमें झलकता है। ज्ञाता-द्रष्टा रहने में क्या कोई क्रिया करनी पड़ती है? झलकता है तब क्या इस आईने को कोई मेहनत करनी पड़ती है? यहाँ से यों जाए तो अंदर दिखाई देता है।

मत खोजना ट्रैफिक क्लियरन्स को

प्रश्नकर्ता : उन बसों का आना-जाना बंद कैसे करें?

दादाश्री : बंद नहीं करना है। वे तो जितनी हैं, डिसाइडेड हो चुकी हैं उतनी जाने ही देना। कुछ भी बंद नहीं करना है। जब बसें जा रही हों, तब हमारे *लक्ष* में रहना चाहिए कि उस तरफ है ही। यह तो पहले का हिसाब है। ये जो बसें जा रही हैं, वे नियमानुसार जा रही हैं।

प्रश्नकर्ता : मैं तो इसी खोज में हूँ कि बसें कैसे बंद करूँ मैं?

दादाश्री : नहीं, उन्हें बंद नहीं करना है। अगर बंद करने जाओगे तो बंद कौन करेगा? हम तो शुद्धात्मा बन गए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर अंदर बसों का आना-जाना अच्छा नहीं लगता। ऐसा लगता है कि, 'ये बसें चली अब, बंद करो।'

दादाश्री : हाँ, वह जो अच्छा नहीं लगता, वह चंदूभाई को अच्छा नहीं लगता। आपको तो अच्छा लगता ही है न! चंदूभाई से कहना कि, 'यह सारा हिसाब है। अतः घबराना नहीं।' बसें सारी कैसी-कैसी आती हैं! नहीं?

प्रश्नकर्ता : ज़बरदस्त।

दादाश्री : ऐसा? अब हमें बीच में बसें नहीं आतीं। हमारा तो सब जा चुका, खत्म हो चुका। वह डिज़ाइन खत्म हो गई। अब जो *पूरण* किया था, वह *गलन* हो रहा है। तो ऐसी भावना होनी चाहिए कि जल्दी हो जाए तो अच्छा है ताकि हल आ जाए। आप पूछते हो कि बंद कैसे करना है? बंद करने के बाद सब बिगड़ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : नहीं। ऐसा चंदूभाई को ही लगता है लेकिन इसका हल आ जाना चाहिए। यदि हल आ जाए तो फिर शांति हो जाएगी।

दादाश्री : एक समय ऐसा आएगा, सचमुच आ जाएगा। बसें चली जाएँगी तब वापस दिखाई देने लगेगा। तब तक प्रतीति में रहेगा। जब दिखाई देता है तब *लक्ष* में आता है। जब फाइल आ जाए, बीच में से बस जा रही हो तब प्रतीति में रहता है कि है ही!

क्या पूरी फिल्म शादी की ही अच्छी लगेगी?

प्रश्नकर्ता : देखने और जानने में बहुत संघर्ष चलता है। अतः जो-जो संयोग मिलते हैं उनमें बह जाते हैं।

दादाश्री : वह जो बह जाता है, वह कौन बह जाता है? आप तो शुद्धात्मा हो। शुद्धात्मा कैसे बह सकता है? चंदूभाई नाम का *पुद्गल* बह जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह देखने–जानने में स्थिरता रहनी चाहिए न?

दादाश्री : नहीं, वह स्थिरता नहीं रहेगी। बल्कि स्थिरता रहने से तो परेशानी हो जाएगी। यदि सिनेमा की फिल्म स्थिर हो जाए तो क्या 'देखोगे' फिर? वह तो चलती ही रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : नहीं। वह तो चलती रहेगी लेकिन यही कि हम उसके साथ चलने न लगें और हम स्थिर रहें।

दादाश्री : नहीं। आपको 'देखते' रहना है। 'देखने वाला' तो हमेशा स्थिर ही होता है। 'देखने वाला' कभी बह नहीं जाता। आप 'देखते' नहीं हो इसलिए उससे उल्टा अभ्यास हो जाता है। ज्ञायकभाव में रहे तो कभी भी बह नहीं जाओगे और भावनाओं के वश में हुआ कि बहा। भावनाओं के वश में आने से तो लोग सिनेमा में भी बह जाते हैं। रोते हैं, हाँ! अरे, लेकिन जहाँ सिर्फ देखना ही था, वहाँ तू रोता क्यों है? जहाँ सिर्फ देखना ही है, वहाँ रोता है! रोता है न? और फिल्म यदि एक ही तरह की हो तो देखना अच्छा लगेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : अच्छा नहीं लगेगा, दादा।

दादाश्री : हं। फिल्म में कभी शादी होती है, कभी मारपीट होती है, कभी अपहरण होता है, तभी देखना अच्छा लगता है न! यदि पूरी फिल्म में लगातार शादी ही चलती रहे तो अच्छा नहीं लगेगा न? अत: यह पूरी फिल्म देखनी है। जिसमें ज़रा सा भी आनंद कम नहीं हो, वही अपना विज्ञान।

शक्ति तो पूर्ण है ही अंदर लेकिन अव्यक्त रूप से रही हुई है। अधूरी क्यों रहती है? क्योंकि हमें अभी भी यह सब अच्छा लगता है। फिर भी इस ज्ञान के बाद काफी कुछ कम हो गया है न? जैसे–जैसे कम होता जाएगा, वैसे–वैसे शक्तियाँ व्यक्त होती जाएँगी। 'अच्छा लगता है', तो ऐसा नहीं कि उसका तिरस्कार करना है। लेकिन उसमें खुद तन्मयाकार हो जाता है, खुद भूल जाता है, खुद की शक्ति भूल जाता है और इसमें तन्मयाकार हो जाता है, तो उसका मतलब यह कि

वह पसंद है। खाओ-पीओ लेकिन तन्मयाकार मत हो जाना। देखो, सिनेमा देखने जाते हो तब उसमें कोई अच्छी स्त्री या पुरुष हो तो क्या उससे गले मिलते हो? और जब कोई किसी को मार रहा हो तब क्या चिल्लाते हो कि, 'ए! क्यों मारता है?' 'मत मार', ऐसा कुछ कहते हो? मन में समझ जाते हैं कि देखना ही है, बोलना नहीं है।

कितने साल पहले सिनेमा देखने गए थे? लेकिन तब भी देखा तो था न? तब ऐसा कुछ नहीं कहते थे न कि 'क्यों मार रहा है?' हं, देखना ही होता है वहाँ पर! वह फिल्म ऐसा नहीं कहती कि आप हमें उठाकर लेकर जाओ साथ में। फिल्म तो कहती है कि देखकर चले जाओ लेकिन अगर आप उल्टा करते हो तो उसमें बेचारी फिल्म क्या करे? लेकिन अगर खुद गोंद चुपड़कर जाए, तब फिर क्या हो सकता है? उस गोंद (राग-द्वेष) को धोकर जाना पड़ेगा। खुद गोंद चुपड़कर जाता है इसलिए फिर जो भी हो वह छूता है और चिपकता है!

'देखने' से होते हैं हिसाब साफ

प्रश्नकर्ता : जब कोई भूल हो रही हो तब पता चलता है, हम अंदर डाँटते भी हैं कि, 'चंदूभाई, आप यह जो कर रहे हो, वह सही नहीं है'। फिर भी चंदूभाई मानता नहीं है और करके ही छोड़ता है।

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है क्योंकि 'देखने वाला' शुद्ध है। जिसे 'देखता' है, उसमें शुद्धि और अशुद्धि है लेकिन वह भी सापेक्ष दृष्टि से। बाकी 'देखने वाले' के लिए शुद्धि या अशुद्धि होती ही नहीं है। 'देखने वाले' के लिए तो सब समान ही है। यह सब अच्छा-बुरा तो लोगों के मन में है। बाकी, भगवान की दृष्टि में अच्छा-बुरा है ही नहीं। समाज में अच्छा-बुरा है। भगवान तो कहते हैं, ''देख' लिया अर्थात् मुक्त हो गए। वह भी मुक्त और यह भी मुक्त। यानी कि हुआ क्या? अज्ञान से बाँधे हुए हिसाब को यदि 'देखकर' जाने दोगे तो आप भी मुक्त और वह भी मुक्त। बिना 'देखे' बाँधे हुए हिसाब... को यदि, 'देखकर' जाने दोगे तो मुक्त!''

नहीं थकते फिल्म और प्रेक्षक

यह सब जो आता है न, यह ज्ञेय है और आप जब इसके ज्ञाता बनोगे, तब पूर्णाहुति होगी। अब ये सारी चीज़ें सिर्फ जाननी ही हैं। अंदर जो बोया था न, वह उग रहा है अब। जो उग रहा है, उसे आपको 'देखते' रहना है। और यदि तन्मयाकार हो गए तो यह मोक्षमार्ग चला जाएगा। आपके हाथ में यह मोक्ष दे दिया है। अब प्रश्न उत्पन्न नहीं होंगे। कम्प्लीट सॉल्यूशन रहेगा। ये जो प्रश्न होते हैं, ये तो अंदर से उग रहे हैं और आप उसमें प्रवेश करते हो। यदि उगता है तो उसमें आपको क्या? सामने फिल्म दिखाई देती है। फिल्म ऐसा नहीं कहती कि आप मुझ में एकाकार हो जाओ। हमें 'देखना' है और इसे 'देखोगे' तो छूट जाएगी। हम ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंदी हो गए हैं। जीवन भर यदि प्रत्येक कार्य को फिल्म की तरह 'देखा जाए' तो कोई कार्य उसे स्पर्श नहीं करेगा। फिल्म देखने वाला और फिल्म, दोनों हमेशा अलग होते हैं या एक ही होते हैं?

प्रश्नकर्ता : अलग होते हैं।

दादाश्री : जो फिल्म के अंदर है, क्या वह फिल्म को देख सकता है? नहीं। फिल्म को देखने वाला ही फिल्म देख सकता है। लेकिन जगत् फिल्म में घुसा हुआ है और आप फिल्म देखने वाले हो इसलिए फिल्म देखना कि 'भाई! यह जो जगत् चल रहा है, वह फिल्म ही दिख रही है। यह सारी फिल्म ही है न! यानी कि बात समझनी है, सीधी बात। बाकी कुछ भी नहीं है! फिल्म और फिल्म देखने वाले को, दोनों को थकान नहीं लगती। देखने वाले को थकान नहीं लगती है न! फिल्म को थकान नहीं लगती।

निकाल करना, वह है पुद्गल धर्म

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी तो फाइलों का समभाव से *निकाल* नहीं हो पाता।

दादाश्री : समभाव से *निकाल* नहीं होता, जिसने यह 'जाना'

वह है आत्मधर्म और समभाव से *निकाल* होना या नहीं होना वह है *पुद्गल* धर्म। दोनों के धर्म अलग हैं। *पुद्गल* धर्म नहीं हो पाए तो उससे आपको क्या लेना-देना? आपने 'जाना' तो सही न? 'जाना' अर्थात् वह आप अपने धर्म में हो। *पुद्गल* का धर्म हो या ना भी हो। हमें लेना-देना नहीं है। *पुद्गल* धर्म अलग, आत्मधर्म अलग। आत्मधर्म अर्थात् निरंतर 'जानते' रहना, संपूर्ण जागृति। एक परमाणु भी उड़े तो पता चल जाए, उसे कहते हैं आत्मा। पराई *पुद्गल* पीड़ा में मत पड़ना। *पुद्गल* तो क्षण भर में चढ़ जाएगा, क्षण भर में नीचे आ जाएगा। 'जानते' रहना, वही हमारा धर्म है और ऊँपर-नीचे होना, मतभेद होना, वह तो पुराना परिचय है। बढ़े तो अच्छा लगता है और घटे तो अच्छा नहीं लगता। हमारा धर्म ऐसा नहीं रहना चाहिए। वह तो पहले का परिचय है। आप कह देना कि, 'ऐसा नहीं है हमारा, यह हमारा नहीं है। वे पड़ोसी के परिणाम हैं'। दादा ने मना किया फिर भी आप खुद की बात मानो तो फिर दादा क्या कर सकते हैं?

यानी हमें इस तरीके से समभाव से *निकाल* करना है। तब फिर छुटकारा हो जाएगा। फिर चाहे वह खराब हो, ऐसा हो कि दुनिया निंदा करे फिर भी आपके लिए बाधक नहीं रहेगा, उसे 'देखना' ही है। 'देखने वाले' को दिखाई देने वाली चीज़ों से कोई संबंध नहीं है। दिखने वाली चीज़ चाहे कितनी भी खराब हो, फिर भी 'देखने वाले' को, द्रष्टा को राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता। 'देखने वाले' को कोई लेना-देना नहीं है। अंदर बुरे से बुरे, पूरा जगत् निंदा करे, ऐसे भाव हो जाएँ, डिस्चार्ज में आएँ फिर भी आप उन्हें देखते रहना, 'ओ हो हो! ऐसा कैसा चंदूभाई? आपको तो मैं लायक समझता था लेकिन आप हो नालायक', ज़रा ऐसा कहना।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। लेकिन अगर खराब भाव हों तो?

दादाश्री : खराब भाव हों, फिर भी 'देखते' रहना है। खराब वर्तन हो, वह भी 'देखते' रहो।

प्रश्नकर्ता : वाणी निकले तब भी 'देखते' रहना है?

दादाश्री : वाणी निकल जाए तब भी 'देखते' रहना। अगर वाणी निकल जाए तब भी अलग रहना। चाहे कुछ देर बाद अलग हो लेकिन वैसा होना चाहिए। कुछ देर बाद अलग हो जाएगा लेकिन स्टेपिंग से होगा। अत: दूसरे स्टेप में खत्म हो जाएगा। और उसमें जब देखते हैं तब भी अंबालाल, ये ज्ञानी पुरुष बातें कर रहे होते हैं न, तो उन्हें वह सब भी दिखाई देता है। जो-जो कर रहे होते हैं वह सब दिखाई देता है। यानी आपको भी यह सब करना है, ऐसे भाव करने हैं। अभी पहले स्टेप पर एकदम से दूर नहीं हो जाएगा यानी कि एकाध स्टेप ज़्यादा, इसलिए दो-तीन जन्म कहते हैं न!

जो बोलने वाले को 'जाने' वह आखिरी ज्ञान

'चंदूभाई' जब बातें कर रहे हों और 'आप' उन्हें 'देखते' रहो कि चंदूभाई क्या बोल रहे हैं, तब वह ज्ञान करेक्ट है, अंतिम ज्ञान। उसके बाद दो सीढ़ियाँ शेष रहेंगी, वे तो एकदम छोटी हैं। चंदूभाई जो कुछ बोलें, उसे खुद 'जाने', इतना आ गया तो बहुत हो गया।

भगवान कृष्ण ऐसा करते थे, वे 'देखते' रहते थे कि 'कृष्ण' क्या कर रहे हैं। महाभारत की लड़ाई हुई थी तो क्या 'कृष्ण भगवान ने खुदने की थी?' तो कहते हैं, ''नहीं, कृष्ण भगवान 'देख' रहे थे कि 'कृष्ण क्या कर रहे हैं?'' इतना ही 'देखने' की ज़रूरत है।

इसे कहा जाता है ज्ञाता-द्रष्टा

ज्ञाता-द्रष्टा का अर्थ क्या है? इसका सब से उच्च प्रकार का अर्थ यह है कि, खुद अंदरूनी तौर पर क्या कर रहा है? मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी क्या कर रहे हैं, इन सभी को हर तरह से जाने और देखे, बस। इसके अलावा और कुछ नहीं। और आपको किस पद तक पहुँचना है कि चंदूभाई चलते-फिरते दिखाई दें। चंदूभाई घूम रहे हों न और बाद में आप उसे बैठकर देखो तो उस घड़ी चंदूभाई दिखाई देने चाहिए। कैसे घूम रहे थे वे, आपको चंदूभाई का पूरा शरीर दिखाई देना चाहिए। बाहरी भाग दिखाई देना चाहिए, अंदरूनी देखने में देर

लगेगी। जब बाहरी हिस्सा अलग दिखाई देगा तब वीतराग होने लगोगे, फिर संपूर्ण वीतराग बन सकोगे।

अब बाहरी भाग क्या है? कि बेटा जा रहा हो और उसकी जेब से पैसे गिरने लगें तो ऐसे में पहले आप क्या करते थे? शोर मचा देते थे, हिला देते थे। 'अरे! रुक जा, पैसे गिर रहे हैं, रुक जा।' अंदर सब हिल जाता था। क्योंकि (अहंकार) जीवित था। चंदूभाई के तौर पर जीवित था इसलिए ऐसा होता था और फिर ज्ञाता-द्रष्टा बन गए तो फिर यदि पैसे गिरने लगें या जो कुछ भी होना हो, तब आप चेतावनी दे सकते हो कि, 'भाई, तेरी जेब से पैसे गिर रहे हैं'। फिर उसमें आप डिस्टर्ब नहीं होओगे बिल्कुल भी। यदि चेतावनी नहीं दोगे, तब भी हर्ज नहीं है। जैसे जीवित है, ऐसा पता नहीं चलना चाहिए।

अभी तो यह दृष्टि बढ़ती जाएगी। अभी यदि भीतर जीवित होता तो कलह करके रख देगा, अब तो जो कुछ भूल होनी हो या नुकसान होना हो तो भले हो, आपको ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। मरने के बाद फिर क्या कर सकते हैं? यदि बाद में भूलें होतीं तो? यह सब इस तरह से, उसके जैसा है। बेटी के हाथ से सारे ग्लास वेयर टूट जाएँ तो आप सिर्फ देखने वाले और जानने वाले। बस! एक अक्षर भी मत बोलना, जैसे जीवित ही न हो उस तरह से रहना।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने तो बहुत ही अल्प समय में कृपालुदेव जैसी अंतिम दशा दे दी!

दादाश्री : हाँ, तो कल्याण हो जाएगा न! वह अच्छा है। अंतिम ज्ञाता-द्रष्टा तो, जब चंदूभाई आ-जा रहे हों तो आपको यों दिखाई देना चाहिए कि 'ओहोहो, आइए चंदूभाई, ऐसी सब बातें कर रहे हों तब भी आपको अलग दिखाई देने चाहिए'। चंदूभाई दादाजी के पैरों पर तेल मालिश कर रहे हों, तब भी आपको अलग दिखाई देने चाहिए और यदि आप कहो कि, 'चंदूभाई बहुत बढ़िया मालिश की' तो वह अंतिम (बात) है!

प्रश्नकर्ता : यों आकृति से अलग दिखाई देगा या समझ से अलग दिखाई देगा?

दादाश्री : पहले समझ से अलग दिखाई देगा फिर धीरे-धीरे आकृति से दिखाई देगा। चलते-फिरते जैसे अन्य कोई जा रहा हो, वैसा दिखाई देगा। ये भाई आते-जाते हुए दिखाई दे रहे हैं तो क्या वे समझ से दिखाई दे रहे हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं, आकृति से।

दादाश्री : ऐसा दिखाई दे तो वह ज्ञाता-द्रष्टापन है अर्थात् आत्मा अलग है। उसके लिए ज़्यादा लालच मत करना। वह तो बहुत बड़ा पद है। आपको तो यह जितना दिया है, उतना दृढ़ हो जाए तो बहुत हो गया। लिमिट बाँधने जाएँगे तो यह भी रह जाएगा और वह भी रह जाएगा।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि इतना जुदापन होना चाहिए कि चंदूभाई अलग दिखाई दें, चलते-फिरते हुए, लेकिन उसमें द्रष्टा तो चंदूभाई के अंदर ही है न!

दादाश्री : तभी देखना है न! चंदूभाई के अंदर है फिर भी 'उसे' अलग दिखाई देता है। लेकिन वह तो अंतिम पद है। आपको तो, मैंने जितना बताया है, यदि उतना ही आ जाए तो बहुत हो गया। यदि उस स्टेशन तक पहुँच गए तो बाकी के सभी स्टेशन मिल जाएँगे।

[2.2]
'चंदू क्या करता है', वह 'देखते' रहो

यही है मोक्षमार्ग

इस संसार का पूरा स्वरूप ही ऐसा है कि यह साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स अर्थात् कुदरत सबकुछ करती रहती है और आपको 'जानते' रहना है, वही मोक्षमार्ग है। तब फिर क्रमिक मार्ग वाले कहेंगे, 'उसमें आत्मा का कुछ भी नहीं है?' उसमें आत्मा का आ ही जाता है। उसमें एक एविडेन्स उसका आ ही जाता है, विभाविक भाव! विभाविक आत्मा की विभाव दशा। वह उसमें एक एविडेन्स के तौर पर आ जाता है। अत: वास्तव में वह कर्ता नहीं है, वह नैमित्तिक कर्ता है। फिर अन्य संयोग मिलने पर होता है और संयोगों के दबाव से विभाव होता है। विभाव से अन्य संयोग आ मिलते हैं।

अब वह सब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स करेगा और इसे आपको 'जानते' रहना है, तब इसे केवलज्ञान कहा जाएगा। यदि हाथ कट जाए तो काटने वाली कुदरत है और आप 'जानते' रहते हो। वह सब केवलज्ञान है और जब तक *भोगवटा* (सुख या दु:ख का असर, भुगतना) है, तब तक केवलज्ञान के अंशों में फर्क (अंश अभी बाकी) है।

इस उल्लास ही उल्लास में केवलज्ञान हो जाता है। अभी केवलज्ञान तो नहीं हो सकता लेकिन उसके अंश बढ़ते हैं। खुद तो

आत्मा है ही और यदि बाहर भी उल्लास आ गया, तो बस हो गया! एक शंका तो जा चुकी है, निःशंक हो चुके हैं, फिर क्या चाहिए?

डिप्रेशन हो जाए तो डिप्रेशन को 'देखते' रहना। एलिवेट हो जाए तो एलिवेट को 'देखते' रहना। क्या होता है उसे 'देखते' रहो। एलिवेट होने के बाद डिप्रेशन आए बगैर रहेगा नहीं। उसी प्रकार डिप्रेशन आने के बाद एलिवेट हुए बगैर रहेगा नहीं। इसलिए जो भी होता है उसे 'देखते' रहना। अप एन्ड डाउन, डाउन एन्ड अप।

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे समय बीतता है, वैसे-वैसे यह ज्ञान दृढ़ होता जाएगा?

दादाश्री : जैसे-जैसे समझता जाएगा, वैसे-वैसे समाता जाएगा। हमें तो सिर्फ समझना ही है। मैंने जो ज्ञान दिया, उससे सारे आवरण टूट गए, कर्तापन छूट गया। सभी कारण खत्म हो गए। अब, उनके परिणाम बचे हैं। परिणाम किस तरह भुगतने चाहिए? उसके लिए यह समझ लो! समझने से सारा हल आ जाएगा और इतना अधिक समा जाएगा कि सिर्फ 'जानेगा' ही। कोई गाली देता रहेगा और यह 'जानता' रहेगा, बस इतना ही। नहीं रह सकता क्या ऐसा?

प्रश्नकर्ता : रह सकता है, दादाजी।

दादाश्री : गाली तो शरीर को छूती नहीं। मच्छर काट ले तो उसे भी 'जानता' है। यदि 'जानने वाला' है तो शरीर से अलग है और 'जानने वाला' नहीं रहा, उस समय शरीर में है।

खराब को खराब 'जानने' से वह चला जाएगा

प्रश्नकर्ता : अब जो फाइलें आईं, उनका समभाव से *निकाल* किया। प्रकृति की जो भी गुत्थियाँ थीं, उन सभी को हम 'देखते' रहते हैं। जैसे-जैसे उन्हें 'देखते' जाएँगे, वैसे-वैसे पूरी प्रकृति शुद्ध होती जाएगी या नहीं?

दादाश्री : होगी न! प्रकृति पूरी शुद्ध होती जाएगी। जैसे-जैसे

आप 'देखते' जाओगे न, वैसे-वैसे आपकी 'देखने' की शक्ति बढ़ती जाएगी। क्योंकि मल्टिप्लाइ होती जाती है और शुद्ध होता जाता है। 'खराब है', ऐसा 'जानेंगे' तो चला जाएगा। किसी भी खराब चीज़ को खराब जानेंगे तभी से वह जाने लगेगी। जगह खाली कर देगी। जब तक उसे अच्छा मानेंगे, तब तक बैठी रहेगी। अन्य कोई कठोर उपाय करने की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ यह ज्ञान का ही उपाय! यह जो उल्टा आता है न, उसे तो 'जाना' न आपने? तो चला ही जाएगा धीरे-धीरे। कुछ समय बाद चला ही जाएगा। उससे आपको कोई नुकसान नहीं होता। यदि नहीं 'जानोगे' तो नुकसान होगा।

कुदरत ने ऐसी कला रची है कि यह जगत् बंद हो ही नहीं सकता। भगवान को बंद करना हो तब भी नहीं हो सकता! इसलिए फिर भगवान ने धीरज रखा कि ''क्या होता है', उसे 'देखते' रहो''। जिसे छूटना है, वह ऐसा धीरज रखना। जिसे यह जगत् नहीं पुसाता, तो जो हो रहा है उसे 'देखता' रहेगा तो छूट जाएगा। 'हम' भी ऐसा ही करते हैं।

संग - असंग - सत्संग

प्रश्नकर्ता : आप जो ज्ञान देते हैं उसमें अलग तो हो जाता है लेकिन क्या उसमें मेरी कोई कमी रह गई होगी?

दादाश्री : नहीं, कोई कमी नहीं है। वृत्तियाँ कहाँ-कहाँ जाती हैं और कहाँ से आती हैं? क्या लाती हैं? और क्या ले जाती हैं? वह सब 'देखते' रहना है। फिर अभी उससे आगे ऐसी कोई झूठी आशा नहीं रखनी है। अभी इतना 'देख पाओगे' न, तो भी बहुत हो गया। भगवान ने पूछा था कि, 'वृत्तियाँ नहीं दिखाई दें तो भी राग-द्वेष नहीं होते हैं न?' तब कहा, 'नहीं'। तो 'हो गया!'

अब, 'देखना' क्या है? *पुद्गल* के उदय को ही 'देखना' है लेकिन जब उदय एकदम ज़ोरदार होता है तब धुँधला 'दिखाई देता है'। अत: 'देखना है', ऐसा समझ में ही नहीं आता, चूक जाता है।

यदि उदय हलका होगा न, तो एक ओर उदय चलता रहेगा और 'आप' उसे 'देखते' रहोगे। आप चंदूभाई को 'देखते हो', वही अंतिम ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : हमारा उपयोग निरंतर उस तरफ देखने में ही रहे, उसके लिए हमें ऐसी कौन सी क्रिया करनी चाहिए कि ज़्यादा उपयोग रह सके?

दादाश्री : इस ओर के संयोग, यानी कि सत्संग की ओर के संयोग होने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मेरे संयोग ऐसे नहीं हैं, तो क्या एकांत हो तो ज़्यादा अच्छा रहेगा?

दादाश्री : एकांत ज़्यादा हितकारी होता है न! लेकिन एकांत मिले कहाँ से? ऐसे पुण्य कहाँ से होंगे कि संयोग ही न हों? ये संयोग ही दु:खदायी हैं न!

प्रश्नकर्ता : अब, आप एकांत किसे कहते हैं?

दादाश्री : अन्य कोई संयोग इकट्ठे न हों, कोई दखल देने वाला न हो, अपना स्वतंत्र हो और फिर बाद में आप वह सब 'देखते' रहो कि चंदूभाई क्या करते हैं। उपयोग रखने पर सब दिखाई देगा।

प्रश्नकर्ता : हमें पता चलता है कि अंदर क्या आया और क्या गया तो वह...

दादाश्री : तो वही ज्ञान है। चंदूभाई यों पूरे नहीं दिखाई देंगे लेकिन अंदर क्या आया-गया वह सब दिखाई देगा, वह पहला ज्ञान। फिर धीरे-धीरे वह पूर्ण होता जाएगा। दुनिया को तो, आया-गया, ऐसा पता ही नहीं रहता। पहले वह स्थूल देखना है। ऐसा करते-करते एडवान्स होता जाएगा, सूक्ष्म में। फिर आखिर में खुद अलग ही दिखाई देगा।

प्रश्नकर्ता : वैसा नहीं दिखाई देता!

दादाश्री : वह धीरे-धीरे होगा। एकदम से नहीं होगा यह। एक घंटा भी नहीं हो सकता किसी से। जब संयोग होते हैं, तब हमें भी एक्ज़ेक्ट नहीं रहता न!

प्रश्नकर्ता : यानी कि आप भी एकांत के लिए तो कहते हैं न, कि एकांत अच्छी चीज़ है।

दादाश्री : लेकिन लोगों को हटाकर एकांत नहीं लाना है। हमें किसी को हटाकर एकांत नहीं लाना है। संयोगों का स्वभाव ही है कि अपने आप उनका वियोग हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यों देखा जाए तो कोई भी संयोगी चीज़ हमें छू नहीं सकती। यदि हमें असंग रहना हो तो सभी के बीच असंग रह सकते हैं।

दादाश्री : रह सकते हैं, खुशी से रह सकते हैं। हैं ही असंग। ऐसा है यह शुद्धात्मा। मैं असंग ही हूँ। निर्लेप ही हूँ। रोंग मान्यता टूट गई इसलिए चला गया। वह रोंग मान्यता थी। इसीलिए तो लोग कहते हैं कि, 'मैं असंग कैसे कहा जा सकता हूँ?' क्या ऐसा नहीं कहते लोग? और आपको तो खुद को समझ में आता है कि यह रोंग मान्यता टूटी।

प्रश्नकर्ता : हमारी फाइल नंबर वन के लिए एकांत काम का है या नहीं?

दादाश्री : यदि हो तो लाभदायक है। एकांत तो बहुत लाभदायक है। सभी बैठे हों न, तब हम यों आँखें बंद करके एकांत खोजते हैं। यदि आँखें खुली हों और मेरे सामने कोई देखे तो फिर एकांत नहीं रहेगा न! ऐसा अनुभव हुआ है?

जो तन्मयाकार होता है, उसे देखना

प्रश्नकर्ता : अज्ञानी का इस तरफ *लक्ष* ही नहीं है इसलिए वह नहीं 'देख' पाएगा।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। वह तो, जब अच्छा विचार आए

तब ऐसा कहता है कि 'मुझे ही आया'। तन्मयाकार ही रहता है हमेशा। जो अच्छा न लगे, अप्रिय विचार आए, तब वह दूर रहता है! 'जेल में जाऊँगा तब क्या होगा?' यदि ऐसे विचार आएँ तो जुदा रहता है, वर्ना पसंदीदा विचारों में तन्मयाकार हुए बगैर रहता ही नहीं। जबकि हमें मन के सारे 'ज्ञेय दिखाई देते हैं'। मन की सारी अवस्थाएँ 'देख' सकते हैं, चित्त की सभी अवस्थाएँ 'देख' सकते हैं, बुद्धि की अवस्थाएँ 'देख' सकते हैं। अंत:करण की अवस्थाएँ 'देख' सकते हैं। अहंकार की अवस्थाएँ 'देख' सकते हैं। अहंकार ऊपर चढ़ा है या नीचे उतरा है, वह 'देख' सकते हैं। आम व्यक्ति, जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है, वे नहीं 'देख' सकते।

प्रश्नकर्ता : कोई खराब विचार आकर तुरंत ही चला जाता है। बस, और कुछ नहीं, तो वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : ये सब तो चले ही जाएँगे। यदि कोई गाड़ी इधर से आ रही हो और उधर जा रही हो तो ऐसा भय लगता है कि मेरे पास आ गई तो क्या करूँगा? अंदर चलता ही रहता है। वह आपको 'देखते' रहना है। मन में जो भी हो, उद्वेग हो या अधोवेग हो, जो भी वेग हो उसे 'देखते' रहना है। हमें ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में रहना है। अन्य सभी चीज़ें जड़ है। चेतन जैसी दिखाई देती हैं लेकिन हैं जड़। अब, मन में जो विचार आते हैं न, उन्हें 'देखते' रहना है। 'देखते' रहोगे न, तो सब ठीक हो जाएगा। वह तो, आपको ऐसा लगता है कि उल्टा-सुल्टा हो गया। कुछ भी उल्टा-सुल्टा नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : विचार आने पर तन्मयाकार हो जाए और चित्त फोटो दिखाए तो वह तन्मयाकार दशा कहलाएगी न?

दादाश्री : वह तो डिस्चार्ज है न, उसमें हर्ज़ नहीं है। वह तो आपने 'जाना' कि चित्त यह दिखा रहा है। जानने वाला अलग ही है। जो करता है वह झंझट वाला होता है लेकिन जानने वाला अलग ही होता है न! आप अलग के अलग!

बाधक कर्तापन है, कुक्रिया नहीं

इसे तो समझकर समा लेना है। उदयकर्म के जो दोष हैं, उन दोषों को 'जानने' लगे तभी से छूटने लगेगा। वह फिर अच्छी आदत हो या बुरी आदत, उससे आपको लेना-देना नहीं है। 'जानकार' होना चाहिए। महात्माओं में बुरी आदतें भी नहीं हैं और अच्छी आदतें भी नहीं हैं। ये अच्छी आदतें व बुरी आदतें भ्रांति स्वभाव वाली है। चंदूभाई ही भ्रांति स्वभाव वाले हैं। यह जो जजमेन्ट है, वह भ्रांति के कारण है, जो यहाँ पर गलत साबित होते हैं। अत: अच्छी आदतें व बुरी आदतें दोनों को एक ओर रखवा दिया और जब हम ज्ञान देते हैं तब बुलावाते हैं न! पुण्याचार व पापाचार दोनों से जुदा, द्वंद्व से संपूर्ण जुदा यानी द्वंद्वातीत दशा है। और चाहे कितने भी बुरे से बुरे दोष दिखाई दें लेकिन यदि आप उनके ज्ञाता हो तो आपको कोई परेशानी नहीं होगी। किसी और के घर में कुछ भी हो, उससे आपको क्या? पड़ोसी के घर कोई मर जाए तो उसके लिए क्या आपको रोने की ज़रूरत है? आप वहाँ जाकर सांत्वना देते हैं कि, 'भाई, शांत हो जाओ'। उदयकर्म को भगवान महावीर भी सिर्फ जाना करते थे। जब खटमल काटते थे, तब खुद सिर्फ जाना करते थे कि शरीर पूरी रात करवटें बदल रहा है। शरीर तो सहन नहीं कर सकता। वैसे तो, अहंकारी ही सहन कर सकता है। वह कहेगा कि, 'मुझे कुछ काटे तब भी मैं तो नहीं हिलूँगा'। यानी ऐसा तय ही कर लेता है लेकिन भगवान में तो कोई अहंकार नहीं था न! बिल्कुल भी अहंकार नहीं था।

अभी यदि कोई कसाई हो न, उसे मैं ज्ञान दूँ और वह यदि ज्ञान में रहे और आत्मदृष्टि से सब 'देखता रहे', दूसरे में दखल नहीं करे, मेरी आज्ञा में रहे तो वह मोक्ष में जाएगा। कसाई की क्रिया बाधक नहीं है, 'मैं कर रहा हूँ', वह बाधक है। चाहे कुछ भी हो लेकिन यदि एक जन्म आप उसे 'देखते' ही रहो और आज्ञा में रहो तो एक जन्म के बाद मोक्ष जा पाओगे, ऐसा यह ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : जीवन बचाने के लिए इलाज करवाने के बजाय

'मैं शुद्धात्मा हूँ' करते-करते शरीर छूट जाए तो उन दोनों में से बेहतर क्या है?

दादाश्री : वह तो, क्या होता है उसे 'देखना', वह अच्छा कहलाएगा। यानी आत्मा खुद के धर्म में आ गया। मन, मन के धर्म में है; आँखें, आँखों के धर्म में; कान, कान के धर्म में हैं। (व्यवहार) आत्मा अन्य धर्मों को अपना धर्म मानता था, 'मैंने सुना, मुझे विचार आया'। आत्मा, आत्मा के धर्म में, ज्ञाता-द्रष्टा धर्म में आ गया, ज्ञायक भाव में आ गया तो हो गया, पूरा हो गया काम।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* रहे और शरीर छूट जाए तो सुखी हो जाएँगे?

दादाश्री : आपको छोड़ने की नीयत नहीं रखनी है और नहीं छोड़ने की नीयत भी नहीं रखनी है। आपको 'देखते' रहना है। जब छूटना होगा तब छूटेगा। ज्ञाता-द्रष्टा किसे कहते हैं कि आतिशबाजी फूट रही हो तो भले फूटे, उसे देखता रहता है। ज्ञाता-द्रष्टा उसे 'देखता है'। यदि खुद की धोती जल जाए तो उसे भी देखता है। 'ओहोहो! यह भी जल गई।'

आत्मज्ञान के बिना, ज्ञायक नहीं

यह चंदूभाई का शरीर, वह पूरा ज्ञेय है और आप ज्ञाता हो। ज्ञाता-द्रष्टा दोनों हो और ज्ञायक यानी सिर्फ जानना और देखना ही खुद का स्वभाव है। अन्य कोई स्वभाव नहीं है। ये चंदूभाई, दृश्य और ज्ञेय हैं। चंदूभाई के हर एक स्पेयर पार्ट्स भी दृश्य और ज्ञेय हैं। उसी तरह मन भी दृश्य और ज्ञेय है। 'मन क्या सोचता है', उसे सिर्फ जानना ही है। उसमें फिर अंदर हाथ मत डालना। हाथ डालोगे तो जल जाओगे।

अब मनुष्य ज्ञान के बिना मन को ज्ञेय नहीं बना सकता। यदि हमारा ज्ञान नहीं दिया हो तो मन के साथ एकाकार हो ही जाता है। उसके कहने से पहले ही हो जाता है और इस ज्ञान के बाद खुद अलग रह सकता है। उसे 'देखते' रहना है, बस!

यह शरीर क्या कर रहा है, वह 'जानना' चाहिए। यदि जज साहब जजमेन्ट दे रहे हों तो वह भी आपको जानते रहना चाहिए कि, 'ये जज क्या कर रहे हैं।' वह अपना ज्ञान है और जज जो कर रहे हैं, वह उनका। दोनों अपने-अपने फर्ज़ निभाते हैं। आत्मा, आत्मा का फर्ज़ निभाता है और साहब, साहब का फर्ज़ निभाते हैं। आप साहब को पहचानते हो या नहीं पहचानते? अच्छे इंसान हैं या थोड़े खराब भी हैं?

प्रश्नकर्ता : थोड़े खराब भी हैं।

दादाश्री : देखो, पहचानते हो न! 'मैं ही साहब हूँ', कहते तो क्या ऐसा निष्पक्षपाती बोल पाते?

ज्ञान लेने का फल क्या? जहाँ आग्रह है, वहाँ ज्ञान नहीं है। जहाँ ज्ञान है, वहाँ आग्रह नहीं रहता। ज्ञान यानी निराग्रही।

प्रश्नकर्ता : निराग्रही।

दादाश्री : चंदूभाई आग्रह करे, दुराग्रह करे तो वह जानना, उसी को ज्ञान कहते हैं। अगर आप खुद ही चंदूभाई बन जाओ तो फिर ज्ञान कहाँ रहा? 'मैं मंदिर में दर्शन करता हूँ' या 'मैं ऐसा करता हूँ' ऐसा सब आपको नहीं करना है। आपको तो, चंदूभाई किसके दर्शन कर रहे हैं, वह सब 'देखते' रहना है।

देखने वाला पूरी ज़िंदगी एक सरीखा

प्रश्नकर्ता : एक दृश्य, एक परिस्थिति, एक चीज़ जो बचपन में दस-बारह साल की उम्र में जो देखी होती है, उसी को बत्तीस-तैतीस साल की उम्र में, साठ-बासठ की उम्र में देखे, नब्बे साल की उम्र में देखे तब भी देखने वाला एक ही है?

दादाश्री : देखने वाला एक ही।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें देखने वाले को पूरा भेद क्यों लगता है?

दादाश्री : ऐसा है न, जैसे-जैसे अनुभव बदलते जाते हैं, वैसे-वैसे पूरा भेद बदलता जाता है। अनुभव एक ही तरह का नहीं रहता। पाँच साल की उम्र में जब उसे खिलौनों से प्रेम था तब उसे उन्हीं का अनुभव था कि इसके बगैर सुख है ही नहीं इसलिए वहीं पर देखता था। अब बीस साल का होने पर वैसा सब नहीं देखता। अर्थात् जैसे-जैसे अनुभव बदलता जाता है, वैसे-वैसे देखने वाले की दृष्टि बदलती जाती है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन उस पर से अनुभव होने के बाद फिर ऐसा कहता है कि यह बेकार है। यानी बीस साल की उम्र में जो काम का लगता था, वही चालीसवें साल में बेकार लगता है।

दादाश्री : बेकार ही लगता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आत्मा तो उस समय भी देखने वाला था, ज्ञाता-द्रष्टा था। बीसवें साल में भी ज्ञाता-द्रष्टा है। चालीसवें साल में भी वही...

दादाश्री : और जाते समय भी वह ज्ञाता-द्रष्टा ही है। उसके ज्ञान-दर्शन में अंतर नहीं है। क्योंकि खुद अपरिवर्तनीय है।

कुचारित्र का जानना, वही है चारित्र

प्रश्नकर्ता : यह सब चारित्र में आना चाहिए न?

दादाश्री : चारित्र में लाने की ज़रूरत नहीं है। कुचारित्र को जाना, उसी को चारित्र कहते हैं। अच्छे चारित्र की मस्ती चढ़े, वह है कुचारित्र। वह भयंकर जोखिमदारी है।

प्रश्नकर्ता : तो हमें क्षायक समकित का अहंकार हो जाए...

दादाश्री : ज्ञान दिया है इसलिए अहंकार तो नहीं होगा लेकिन मस्ती चढ़ती है, वह भी गलत है फिर!

प्रश्नकर्ता : तब फिर आप तो आनंद के लिए किसी प्रकार की जगह ही नहीं रहने देते।

दादाश्री : अरे! आनंद तो, खुद के स्वरूप में से आनंद लो न! आभासी आनंद क्या लेना? मस्ती रहनी चाहिए क्या? मस्ती तो, ये जो बाहर के लोग लौकिक धर्म को धर्म मानते हैं, वे लोग मन की मस्ती में, देह की मस्ती में, वाणी की मस्ती में हैं। पूरा जगत् मस्ती में डूबा हुआ है। बावा-बावी, साधु-सन्यासी सभी मस्ती में ही पड़े हैं। वह मस्ती भी पूरे दिन नहीं टिकती। थोड़ी देर ही, बाद में वापस जैसा था वैसा ही। बाद में फिर से मस्ती चढ़ती है! जबकि यहाँ पर मस्ती नहीं आनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम तो अन्य सारी मस्ती छोड़कर अब दादा की मस्ती में रहते हैं।

दादाश्री : उसे मस्ती नहीं कहते। बाकी, सुचारित्र की मस्ती रहे तो वह बल्कि नुकसान पहुँचाती है। उसकी बजाय कुचारित्र का 'जानपना' फायदेमंद है। कुचारित्र को 'जाने', वही आत्मचारित्र है।

प्रश्नकर्ता : हमने कुचारित्र को 'जाना' तो सही, लेकिन क्या पॉज़िटिव चारित्र के किसी भी प्रकार के आनंद के बगैर जीना है?

दादाश्री : जब 'जानता है' उस समय आनंद रहता ही है, और जब 'करता है' उस समय दुःख रहता है।

प्रश्नकर्ता : अब, अपने कुचारित्र को 'जाना' उस समय आनंद किस बात का रहना चाहिए? तब तो दुःख-वैराग्य होगा कि इस कुचारित्र को 'जाना'।

दादाश्री : कुचारित्र का स्वभाव ही ऐसा है कि खुद का वह जानपना खो जाता है। यदि इतनी अधिक जागृति आ जाए और कुचारित्र के समय भी ज्ञान हाज़िर रहे, 'जानपना', तो वह सब से उच्च प्रकार का चारित्र है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब टेढ़ा हुआ दिखाई दे तब दुःख तो होगा न?

दादाश्री : वह टेढ़ा नहीं है। भगवान के यहाँ टेढ़ा नहीं होता,

समाज में टेढ़ा है। समाज क्या कहता है? यह टेढ़ा और यह सीधा, यह नालायक और यह लायक, ऐसे सभी द्वंद्वों वाला है समाज। भगवान के यहाँ एक ही चीज़ है। सभी ज्ञेय ही हैं।

कर्ता बना कि लगा दोष

'फाइल नंबर वन' खाए, स्नान करे, संडास जाए, तब वहाँ यदि देर हो जाए तो शोर मचाकर रख देता है। वहाँ पर भी यदि जाने नहीं दे न, तो झगड़ा करता है। अरे! संडास जाना क्या महत्वपूर्ण है? तब कहता है, वह भी महत्वपूर्ण है। जब नहीं जाने दे तब पता चलेगा कि महत्वपूर्ण है या नहीं। वह दातुन करे, खाए, दौड़-धूप करे, वह सब आपको 'देखते' रहना है।

प्रश्नकर्ता : इतना परेशान क्यों करवाएँ? नहीं करवाएँ तो नहीं चलेगा?

दादाश्री : वह भले ही करे! वे *उपाधि* (परेशानी) वाले ही हैं, चंदूभाई तो जन्म से ही *उपाधि* वाले हैं।

प्रश्नकर्ता : उसे कहना, 'चुप, मुझे बैठे रहने दे, खबरदार यदि...

दादाश्री : नहीं, 'खबरदार' नहीं कहना है। हम सब पुलिस वाले नहीं हैं। हम तो भगवान हैं। पुलिस वाले ऐसा करते हैं, खबरदार और नाखबरदार, हम तो भगवान हैं, 'देखते' रहना है। आप अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में हो और वह कर्ता स्वभाव में। कर्ता स्वभाव वाला परेशान होता ही रहेगा। *पुद्गल* कर्ता स्वभाव वाला है।

प्रश्नकर्ता : इस *पुद्गल* को तो नहाना है, धोना है, ऐसा करना है। हमें कहाँ ऐसा करना है?

दादाश्री : आपको यह 'देखते' रहना है कि चंदूभाई क्या करते हैं। अन्य कोई धर्म नहीं। आप अपने स्वभाव में, चंदूभाई, चंदूभाई के स्वभाव में। कहना कि, 'तेरा भटकने का स्वभाव है इसलिए 'तुझे जहाँ घूमना हो वहाँ घूम'। टाइम आने पर वह लट्टू लुढ़क जाएगा। लट्टू तो घूमता ही रहेगा न? यानी यह भी लट्टू ही है।

मन ही सब करता है, आत्मा नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : मन से दोष लगता है न?

दादाश्री : नहीं! 'मैं कर रहा हूँ' ऐसा मानने से दोष लगेगा। जब तक ऐसा है कि 'मैं कर्ता हूँ, शुभ का कर्ता हूँ, अशुभ का कर्ता हूँ', तब तक दोष लगता है। तब तक कर्म बंधन होता है लेकिन अपने खुद के स्वरूप में आ जाने के बाद कर्ता-भोक्ता मिट जाता है। उसके बाद से दोष नहीं लगता, फिर *संवर* रहता है।

ऐसे खाली होती है ममता

प्रश्नकर्ता : मन-वचन-काया की ममता खत्म करनी हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उस ममता को 'देखना'। तूने होली देखी है? होली में हाथ डालने से आनंद आएगा या होली को 'देखने' से आनंद आएगा?

प्रश्नकर्ता : 'देखने' से आनंद आएगा।

दादाश्री : तो 'देखना' है आपको इसे। चंदूभाई की ममता को 'देखना'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे में यदि बुरे कर्म का उदय आ जाए तो क्या वापस पलट नहीं जाएगा?

दादाश्री : नहीं। कुछ नहीं होगा। जो भी उदय आए उसे 'देखते' रहना। चंदूभाई पागलपन करे, तब भी आपको 'देखते' रहना है। उससे आपको कोई नुकसान नहीं है। अंदर जो भरा हुआ माल है वह कभी ऐसा पागलपन करेगा। अच्छा माल भरा हो तो अच्छा भी निकलेगा।

आप शुद्धात्मा हो और बाकी कुछ नहीं करना है। मूल वस्तु प्राप्त हो गई फिर कुछ रहा ही नहीं। अब, 'चंदूभाई क्या करते हैं, चंदूभाई किसके बच्चों के साथ खेलते हैं', वह सब आपको 'देखना' है। 'किसके बच्चे? अपने बच्चे के साथ खेल रहे हो?' ऐसा सब कहना है लेकिन आपको यह सब 'देखना' है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे 'देखने' की क्रिया में नहीं रह पाते।

दादाश्री : वह तो, आपसे पूरी तरह से नहीं रहा जा सकेगा। हम निकालेंगे फिर उसका रास्ता। लेकिन सिर्फ 'देखना' ही है इसे।

प्रश्नकर्ता : यानी कि चंदूभाई से अलग तो हैं लेकिन वर्तन में अभी ऐसा दिखाई नहीं देता।

दादाश्री : वर्तन में नहीं रह पाएगा वैसा। आपको सिर्फ 'देखना' ही है। मन में बुरे विचार आएँ तो बुरे का पता चलना चाहिए और अच्छा विचार आए तो अच्छे का पता चलना चाहिए। इन सब का पता नहीं चलता आपको?

प्रश्नकर्ता : चलता है।

दादाश्री : तो वही 'देखने वाला' है। वह 'देखने वाला' आत्मा है। आपको किन-किन पर राग-द्वेष होते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं होते।

दादाश्री : तो वही आत्मा है। और वह 'देखता' ही रहता है सब, मन में बुरा विचार आए, तब भी। अच्छा विचार आए, दूसरा कुछ हो, तीसरा कुछ हो, तुरंत ही 'देखता' रहता है सब। कोई कैसी वाणी बोला, कोई खराब वाणी बोला या अच्छी बोला हो फिर भी राग-द्वेष नहीं हों, उसे कहते हैं आत्मा। यदि राग-द्वेष हों तो वह संसार है।

'देखो', क्रिमिनल या सिविल गुनाहों को

प्रश्नकर्ता : पहले का जो भ्रम हो गया है उसे निकालने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उससे लेना-देना नहीं है, चंदूभाई को क्या हो रहा है, हमें वह 'देखना' है। आप अलग और चंदूभाई अलग। फिर अगर चंदूभाई चिढ़ें तो वह भी 'देखते' रहना है और चंदूभाई फूलमाला पहना रहे हों, वह भी 'देखते' रहना है। आप ज्ञाता-द्रष्टा और चंदूभाई कर्ता।

इस तरह से रहोगे तो फिट हो जाएगा और हमेशा के लिए रहेगा। आप अलग हो गए, उसके बाद अब आप ज्ञाता-द्रष्टा धर्म में ही आ गए। चंदूभाई को अलग किया है तो अब अलग ही भाव रखना पड़ेगा।

वर्तमान में क्या करना है? तब कहता है, जो कुछ करता है, वह चंदूभाई करता है, उसमें आपको अब कोई हर्ज नहीं है। क्रिमिनल (फौजदारी) है या सिविल (दीवानी)? आपको अच्छा या बुरा, वह सब देखने की ज़रूरत नहीं है। लोग इसके विभाजन करते हैं न! बाहर तो जब तक ज्ञान नहीं है, तभी तक विभाजन करते हैं न? यह सिविल आया और यह क्रिमिनल। अब, डिफॉल्टर भी बन सकता है। आपको तो सिर्फ डिफॉल्टर (नादार) को 'जानना' है। आप ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में आ गए, शुद्ध स्वभाव में ही आ गए। अब दूसरा कुछ भी नहीं है आपको। डिफॉल्टर है या क्या है, वह देखना और जानना है। जब तक व्यवहार है तब तक हिसाब भी लगाना पड़ेगा कि ये यहाँ थोड़ी कमी है। यहाँ पर ठीक हुआ है। अभी यहाँ थोड़ा करना बाकी है। यहाँ प्रतिक्रमण करना बाकी है। जब तक व्यवहार है, तब तक वह हिसाब लगाना पड़ता है न? यही देखना है न?

देखते समय अच्छे-बुरे के पक्ष में मत पड़ना। मूल रूप से कुल मिलाकर उससे तो नुकसान ही है। उसमें कुछ कमाया नहीं है। जिसमें आपने कुछ कमाया नहीं, वह धंधा ही छोड़ देना है। अच्छे-बुरे में कुछ कमाया नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं। वह तो चंदूभाई करते रहते हैं।

दादाश्री : हं, 'आप' 'देखते' रहना।

प्रश्नकर्ता : दादा की बात सुनने के बाद भी अन्य सभी बातें करते हैं, चर्चा करते हैं।

दादाश्री : वह तो ऐसा नहीं है कि करते हो लेकिन ऐसा सब आपसे हो जाता है। उसमें आपको 'देखते' रहना है। आप 'करते' नहीं हो। आप करते हो तो बताओ।

प्रश्नकर्ता : जो सामने से चलकर आ पड़े, वह निमित्त है या व्यवहार में सामने चलकर निमित्त बनना चाहिए, शादी वगैरह में?

दादाश्री : यह व्यवहार में, शादी वगैरह में सामने से आ पड़े, तब 'आपको' कहाँ जाना है? वह तो 'चंदूभाई' को जाना है न! आपके लिए तो कोई काम रखा ही नहीं है। मैंने तो आपको कोई काम नहीं सौंपा है न!

देखते रहो, पूरण में से गलन

आप ज्ञाता-द्रष्टा बन गए तो अब चलेगा कैसे? तब कहते हैं 'व्यवस्थित' शक्ति अंदर प्रेरणा देगी। उस आधार पर चंदूभाई का चलता रहेगा। चंदूभाई गाली-गलौच करें, लड़ाई-झगड़े करें, फिर भी आपको वह 'देखते' रहना है। इतना ही अपना विज्ञान है।

जो *पूरण* किया था न, वही *गलन* हो रहा है। जो *पूरण* किया था, उसका *गलन* हुए बगैर तो रहेगा ही नहीं न! उसमें आपत्ति मत उठाना, आपको 'देखते' रहना है। जैसा *पूरण* किया होगा, उसी प्रकार का *गलन* होगा। बहुत भारी किया होगा तो भारी निकलेगा, ठंडा किया होगा तो ठंडा निकलेगा। लेकिन वह *गलन* तो होगा ही न, टंकी का भरा हुआ माल था! ऐसी भूल नहीं होनी चाहिए, वर्ना बहुत उच्च प्रकार का ज्ञान है यह, वर्ना फिर पूरा केस ही बिगड़ जाएगा।

आपने ऐसी कुछ पुरानी क्रियाएँ की होंगी, उसी का यह फल आया है। उसे 'देखते' रहना है। फिर से नया व्यापार करेंगे तो परेशानी होगी न!

मातम और बाजे दोनों एक सरीखे ज्ञेय

हमने तो अपने आपको क्या माना था? हम जो हैं, वह हैं, अंत:करण में अन्य किसी की सुनी ही नहीं। अंदर से मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार, सभी बोलते थे लेकिन किसी की नहीं सुनी, तभी स्थिर रह पाए न! ये सब तो कितना अच्छा बोलते हैं, बैन्ड बाजे बजाते हैं,

और कुछ तो मातम मनाने आते हैं। अरे! बैन्ड बाजे बजा रहे थे, और अब मातम मनाने आए हो? अरे! आप हो कौन? यदि मुझे बैन्ड बाजे अच्छे लगेंगे तभी मातम मनाने वालों से मुझे परेशानी होगी न?

यह मेरा और यह पराया, (इस प्रकार) जो स्व-पर की भेदरेखा दिखाता है, वह क्षायक समकित कहलाता है। सम्यक् दर्शन दोनों के बीच भेदरेखा नहीं दिखाता। सम्यक् दर्शन अर्थात् ''यह मैं हूँ', मुझे अब ऐसा आभास होता है।'' यानी थोड़ी-थोड़ी प्रतीति बैठती जाती है। फिर वह चली जाती है, कुछ देर बाद आती-जाती, फिर जाती-आती है जबकि इस क्षायक समकित में हमेशा के लिए प्रतीति रहती है और 'मैं यही हूँ और यह अलग है, यह मैं और यह अलग'। अब अलग के दो प्रकार हैं। घड़ी भर में तो बैंड बाजे लेकर आते हैं और बड़े-बड़े श्रृंगार करके आते हैं और घड़ी भर में मातम मनाने को तैयार हो जाते हैं। जब वे बैंड बाजे आते हैं तब खुश हो जाते हैं और जब मातम मनाने आते हैं, तब डिप्रेस हो जाते हैं। अब यों खुश होना और डिप्रेस होना, ऐसा नहीं करना है, सिर्फ उन्हें 'देखते' ही रहना है।

ये जो बाजे बजते हैं उन्हें भी सिर्फ 'देखना' है। फिर यदि बाजे बजने पर उनका स्वाद चखोगे तो मातम मनाने पर उसका भी स्वाद चखना पड़ेगा। उस समय अच्छा नहीं लगेगा। उसके बजाय अगर मातम मनाने का स्वाद नहीं चखना हो तो शुरू से (बाजों का) चखना ही नहीं, सिर्फ 'देखना'। यह चखने के लिए नहीं है। क्षायक दर्शन क्या है? जो अपना, वह अपना और जो पराया, वह पराया। पराये से लेना-देना नहीं है, हम जिन्हें अपना 'समझते हैं', वे तो ज्ञेय हैं। सिर्फ 'जानने' की ही ज़रूरत है, वे चखने की चीज़ें नहीं हैं। दोनों दिखाई ज़रूर देंगे, बाजे वाले भी और मातम मनाने वाले भी। दिखाई देते हैं न? क्योंकि *पुद्गल* एक ही तरह का नहीं होता। *पुद्गल* हमेशा विरोधाभासी और तरह-तरह का होता है।

देखने-जानने से हो जाती है निर्जरा पूर्ण

इसका आपको पता चलता है कि ऐसा हो रहा है, वैसा हो रहा

है। इतना तो पता चलता है लेकिन उसका पता नहीं चलता क्योंकि अजागृति है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह जो पता चलता है, उसे हम 'देखते' रहते हैं कि यह चंदूभाई को हो रहा है।

दादाश्री : उसे 'देखते' रहना है। आपको पता चलना चाहिए कि, 'भैया, यह क्या हो रहा है?' बस!

प्रश्नकर्ता : लेकिन आज वह जो परिणाम आया है, वह पिछले जन्म की किसी भूल का परिणाम है न?

दादाश्री : वे हिसाब तो हमारा किया-कराया है पिछले जन्म का। पूर्व कर्मों के फल हैं ये। पिछले जन्म के कर्म तो योजना के रूप में होते हैं फिर यहाँ रूपक में आते हैं। उसी का यह फल है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या उसके लिए प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है?

दादाश्री : उसके लिए प्रतिक्रमण नहीं करने होते। सिर्फ 'देखना' और 'जानना' ही है। प्रतिक्रमण तो, यदि किसी व्यक्ति के साथ झंझट हो जाए तो प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : आपको 'देखना है' कि हमने जो भूलें की थीं, यह उसका परिणाम है।

दादाश्री : भूल, उसमें तो कोई चारा ही नहीं है न! सभी भूलें ही हैं न अपनी। अतः आपको उन्हें 'देखना' और 'जानना' है, फिर उनकी *निर्जरा* होती रहेगी।

दखलंदाज़ी को भी 'जानो'

प्रश्नकर्ता : दादाजी की आज्ञा का ठीक से पालन करते हैं फिर भी संसार में दखलंदाज़ी हो जाती है, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : यदि हो जाए तो आपको उसे 'जानना' चाहिए। जानने

योग्य चीज़ ज्ञेय है। संसार में जो कुछ भी होता है, वह ज्ञेय है और आप ज्ञाता हो। वे दृश्य हैं और आप द्रष्टा हो। खुद के स्वभाव में रहना है।

प्रश्नकर्ता : हम जानते हैं कि हम शुद्धात्मा हैं लेकिन यदि हमारी फाइल यह ज्ञान नहीं जानती है और वह दखल करे तो हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : दखलंदाज़ी को 'देखते' रहना। जो भी हो उसे 'देखते' रहना है। सहन करना पड़े, उसे भी 'देखते' रहना है। आपका हिसाब है सारा। अन्य किसी व्यक्ति का दखल नहीं है।

दो लोग झगड़ें तब क्या करना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में हमें ज्ञाता-द्रष्टा भाव रखना है। अब यदि दो व्यक्ति झगड़ रहे हों और उनमें से एक व्यक्ति गलत हो, तो क्या हमें मौन रहना चाहिए? क्योंकि हम यदि उससे कहेंगे तो वह उसे सही नहीं मानेगा।

दादाश्री : मौन नहीं रहना है। क्या होता है, वह 'देखना'। मौन रहने को कहेंगे तो भी बिगड़ेगा और कुछ कहने को कहेंगे तब भी बिगड़ेगा। चंदूभाई अपने आप ही कूदेंगे, आप देखना तो सही। उस समय चंदूभाई क्या करते हैं, वह 'देखना'।

प्रश्नकर्ता : गलत हो रहा हो फिर भी यदि चंदूभाई को ऐसा लगे कि नहीं बोलना है, तो?

दादाश्री : नहीं। जिसे ऐसा लगेगा कि गलत हो रहा है वही बोलेगा। चंदूभाई क्या करते हैं, वह 'देखना'। चंदूभाई को आपको निर्देश नहीं देना है कि 'ऐसा करो या वैसा करो। आप उत्तर में जाओ या दक्षिण में'। आपको कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। वे उत्तर में जाते हैं या दक्षिण में, वह देखना! यदि उन दोनों में से किसी एक को धौल मार दे तो वह भी 'देखना'। धौल मारने में भी हर्ज नहीं है लेकिन चंदूभाई क्या करते हैं, वह 'देखो'।

प्रश्नकर्ता : बीच में हमें कोई वैसी धौल लगा जाए तो वह भी 'देखना' है?

दादाश्री : वह भी 'देखना'। लेकिन तभी, अभ्यास करते-करते होगा न! आखिर में तो वह अभ्यास करना ही पड़ेगा न? आज नहीं तो अगले जन्म में लेकिन रोज़ाना ऐसा अभ्यास तो करना पड़ेगा न? अभी से ही थोड़ा-बहुत करके रखा हो तो क्या बुरा है? अभ्यास भी कर रखा हो तो अच्छा है न? थोड़ा-बहुत, जितना भी हो पाए उतना। वहाँ चंदूभाई क्या-क्या करते हैं, वह 'देखते' रहना है। हम भी, 'ये पटेल' क्या करते हैं, वह 'देखते' रहते हैं। क्या खाते हैं? क्या पीते हैं? क्या शौक हैं? वह सब 'देखते' रहते हैं। यदि कोई शौक है तो मुझे डाँटकर बंद नहीं करवाना है, जो हो सो भले हो।

यह तो कभी कभार ऐसा इधर-उधर हो जाता है। बाकी, ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में आने के बाद यह ज्ञाता-द्रष्टा चंदूभाई का दोष दिखाता है और चंदूभाई सामने वाले का दोष दिखाते हैं।

प्रश्नकर्ता : अंदर से ऐसा लगता है कि हमें ज्ञाता-द्रष्टा रहना है, कुछ नहीं करना है और बाहर से वर्तन ऐसा हो जाता है कि सामने वाले को थप्पड़ लगा देते हैं।

दादाश्री : चंदूभाई क्या करते हैं, वह 'देखो'। बाद में आप कहना, 'चंदूभाई, ऐसा क्यों करते हो? इसके लिए प्रतिक्रमण करो', इतना कहना।

प्रश्नकर्ता : इतना कहने से समझ में आ जाएगा क्या?

दादाश्री : सब समझ जाएगा। बस, टोकना ही है। चंदूभाई अनपढ़ थोड़े ही हैं! सबकुछ जानते हैं लेकिन प्रकृतिवश ऐसा हो गया।

प्रश्नकर्ता : जब कभी ऐसा होता है, तब हर बार अंदर से ऐसा विचार आता है कि यह गलत हो रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है?

दादाश्री : गलत हो रहा है या सही, आपको उस झंझट में नहीं

पड़ना है। वह तो चंदूभाई अपने आप करेंगे। चंदूभाई क्या कर रहे हैं, वह हमें 'देखते' रहना है। डिस्चार्ज यानी जो माल भरा है वही निकल रहा है, *गलन* हो रहा है। अत: आज का ज्ञान ऐसा कहता है कि दखल नहीं करना है। पहले के आधार पर दखल हो जाता है या उसके पक्ष में चले जाते हैं। उन दोनों के बीच में घर्षण चलता रहता है। वह तो चलता ही रहेगा न! लेकिन ऐसा तो आज का आपका ज्ञान कहता है कि दखल नहीं करना है। लेकिन वह तो आत्मा का विभाग है और जो दखल हो जाता है, वह चंदूभाई ही करते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो हमें उससे इस तरह से पल्ला झाड़ देना है कि हमें उससे कोई लेना-देना नहीं है?

दादाश्री : लेना-देना नहीं है और आपको उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। कभी किसी के साथ कुछ ज़्यादा ही उलझन खड़ी करे और किसी को दु:ख हो जाए तो आपको कहना है कि, 'आप बिना बात के ऐसा क्यों कर रहे हो? अब कितने दिन बंधन में रहना है?' ज़रा ऐसा सब कह देना। फिर चिढ़ना नहीं है उस पर। उस पर चिढ़ने का क्या मतलब? प्रकृति अर्थात् पंप से दबा-दबाकर चेतन भरा था, उसमें क्या ढूँढ रहे हो? और यदि हो जाए तो उसे डाँटने से क्या फायदा होगा?

प्रश्नकर्ता : तो अंदर यह जो रहा करता है कि दखल नहीं देना है। आज का ज्ञान ऐसा दिखाता है और...

दादाश्री : 'दखल नहीं करना है', आज का ज्ञान ऐसा कहता है। ज्ञान यानी आत्मा। यह जो प्राप्त हुआ है, वह आत्मा। दखल नहीं करना, वही ज्ञान है। जो दखल हो जाता है वह प्रकृति है, वह अज्ञान है। जो दखल हो जाता है, उसे आत्मा 'देखता' है, बस। तब ज्ञाता-द्रष्टा भाव में आ जाता है वह। 'भूल हो गई', जो ऐसा जानता है न, वह आत्मा है। जो खुद की भूलों को देखे और जाने, वह आत्मा। दखल हो जाना, वह भूल है, उसे आप देखते हो तो वह भूल निकलकर चली जाएगी। भूल को 'देखे' बगैर, 'जाने' बगैर भूल जाएगी नहीं।

पता चलना चाहिए। *'दीठा नहीं निजदोष तो तरीए कोण उपाय?'* तुझे तो सभी दोष दिखाई देते हैं न?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देते हैं।

दादाश्री : सभी दिखाई देते हैं न? उसी को विज्ञान कहते हैं। कोई विज्ञान ऐसा नहीं है जो कि खुद के दोष दिखाए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष दिखाता है।

दादाश्री : सूक्ष्म से सूक्ष्म, छोटे से छोटा। अंदर ही अंदर प्रतिक्रमण करवाना भी शुरू करवा देता है।

इफेक्ट मात्र ज्ञेय है

प्रश्नकर्ता : आपने वह कहा न कि, 'चाहे कुछ भी हो उसे 'देखते' रहना'। यदि कोई हमें पिन चुभोए, तब साधारण तौर पर तो उसे थप्पड़ लगाने का ही मन करता है।

दादाश्री : आपको वह 'देखना' है। सामने वाला अगर उसे थप्पड़ लगाए तो आपको 'देखते' रहना है और अगर नहीं मारे तो वह भी 'देखना'।

प्रश्नकर्ता : बाद में पछतावा होता है, उसका क्या?

दादाश्री : वह भी सही है। वह भी आपको 'देखना' है कि पछतावा हुआ या पछतावा नहीं हुआ और मन में ऐसा लगे कि, 'फिर से मारूँगा', तो वह भी 'देखना' है। लेकिन अगर कहे, 'फिर से मारूँगा', तो कहना 'क्यों उल्टा चले, प्रतिक्रमण करो'। बाकी, वह सब इफेक्ट है। इफेक्ट को बदला नहीं जा सकता। इफेक्ट को तो 'देखते' ही रहना है। जब तक ज्ञान नहीं मिले तब तक अहंकार कर्ता है, तब तक सब बदलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : यह मुझे नहीं करना है, यह मुझे ऐसा करना है, वे सभी निश्चय क्या अहंकार के लेवल पर हैं?

दादाश्री : वे तो चंदूभाई करेंगे और आपको 'देखना' है। आप 'देखने वाले' हो। चंदूभाई क्या करते हैं, वह 'देखते' रहना है। चंदूभाई टी ओ पी एस है। हाँ, लट्टू है, उसे 'देखते' रहना है। लट्टू चढ़ता-उतरता है, और अज्ञान दशा में अज्ञानी भी टी ओ पी एस है, लट्टू है लेकिन अहंकार है इसलिए उल्टा-सीधा किए बगैर नहीं रहता। उल्टा-सीधा करता रहता है। कर्तापद है न! आपका तो वह कर्तापद खत्म हो चुका है! अहंकार और ममता दोनों निकल चुके हैं।

जो होता है, वह 'देखो'

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान से खुद को जो आनंद उत्पन्न होता है, उसके बाद ऐसा लगता है कि हम किसी को इस ओर ले आएँ ताकि उसे लाभ हो। तो ऐसा करना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : वह तो, 'देखना' चाहिए कि क्या होता है। नहीं करना है ऐसा भी नहीं है और करना है, ऐसा भी नहीं है। क्या होता है, वह 'देखना' चाहिए। क्योंकि उसके कर्म का उदय और आपके कर्म का उदय है। सब मिलता ही रहेगा। उसमें, 'करना है', ऐसा कुछ रहता ही नहीं है न! हमें 'देखते' रहना है कि क्या हो रहा है।

ऐसा है न, 'देखना-जानना' किसे कहते हैं? तो कहते हैं, ''इस जगत् को 'देखें-जानें' उसे?'' तब कहते हैं, 'नहीं, उतना तो सभी देखते और जानते हैं। लेकिन सभी जो देखते हैं और जानते हैं, वही जगत् आपको भी देखना है। और दूसरा, आपको विशेष जगत् को जानना है कि, लोग खुद मन के पर्याय नहीं देख सकते जबकि (ज्ञान वाले) अपने मन के पर्यायों को, बुद्धि के पर्यायों को देख सकते हैं। लेकिन यह 'देखना-जानना' वह कहीं सिर्फ लोगों के लिए नहीं है, आपके लिए भी वह देखना-जानना है। लोगों का देखना-जानना राग-द्वेष सहित है और आपका देखना-जानना राग-द्वेष रहित है, बस।

सिनेमा में कोई किसी को मार दे तो आपको वहाँ मारने वाले पर द्वेष नहीं होना चाहिए जबकि पहले तो परेशान हो जाते थे। अच्छा

लगे या ना भी लगे, उसमें दोनों भाव रहते हैं, राग और द्वेष, दोनों ही रहते हैं। कुछ लोगों को अच्छा नहीं भी लगता और कुछ को अच्छा लगता है लेकिन आपको रुचि-अरुचि नहीं रहती। आपको ज्ञाता-द्रष्टा ही रहना चाहिए, जहाँ जाओ वहाँ। अर्थात् प्योर 'देखना' है और प्योर 'जानना' है। और इसका ध्यान रखने में 'दादा' का दिया हुआ आत्मा चला नहीं जाएगा। आत्मा आपको हमेशा हाज़िर ही रहता है। यदि यह सब नहीं होगा तो आप देखोगे क्या? थियेटर में बैठने के बाद अगर 'द एन्ड' लिखा हुआ आ जाए तो फिर आप क्या देखोगे? आप परेशान हो जाओगे। यदि देखने की चीज़ें नहीं हैं तो 'देखने वाला' कहाँ होगा? 'देखने वाला' एब्सेन्ट! देखने की चीज़ें होती हैं तभी देखने वाला हाज़िर रहता है। अतः ये सारी फिल्में हैं, इसलिए आत्मा हाज़िर रहता है। यदि 'देखने' के लिए फिल्म ही नहीं होगी तो एब्सेन्ट हो जाएगा। लेकिन उसका अभ्यास नहीं है, आपको उसका अभ्यास रखना चाहिए। फिर जो भी काम करना हो वह करना न! सबकुछ 'देखो' कि चंदूभाई यह क्या कर रहे हैं। उस चंदूभाई को यानी कि फाइल नंबर वन को 'देखते' रहो।

[2.3]

पुद्गल को शुद्ध करो

देखते रहो अंदर के कचरे को

पुद्गल यानी अपना मकान। मैंने इस तरह का उदाहरण दिया कि मकान को आपने पुताई की, रंग-रोगन किया तो हो गया वह शुद्ध। उसी तरह दादा ने आपको समझाया कि आप शुद्धात्मा हो तो आपकी श्रद्धा बदली। अत: शुद्ध हो गए, वह बात पक्की है लेकिन अब अंदर का सब साफ करना बाकी है।

अत: अब तू अंदर का यह सारा कचरा निकाल दे। कचरा अभी दिखाई देता है या नहीं दिखाई देता? तब कहते हैं, 'हाँ, कचरा पड़ा है', तो कचरा निकाल देने के बाद, अब और क्या है? वह कहता है कि 'मैं शुद्ध हूँ'। रोज़ अँगूठा छूकर बोलता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', लेकिन अभी हो नहीं गए हो। तब अगर कोई पूछे, 'क्या बाकी है अभी उनका?' तब कहते हैं, 'इस फर्नीचर के नीचे जाले चिपके हुए हैं'। उसके बाद, 'वे सभी साफ कर दिए। अब मैं शुद्ध हूँ'। तब कहते हैं, 'नहीं, अभी ये बर्तन हैं न! वे जो थे, उन्हें यदि साफ-सुथरा कर दोगे तभी साफ कहा जाएगा, शुद्ध कहा जाएगा'। तो, 'वे भी कर दिए'। उसके बाद हमें कहना है, ''बर्तनों में अभी मिट्टी चिपकी हुई है। यह सब हो जाने के बाद आप शुद्धात्मा बन जाओगे। यानी कि 'मैं' आत्मा और 'यह' शुद्ध *पुद्गल* हो जाएँगे। अत: यदि आप शुद्ध हो जाओगे

और हम भी शुद्ध, तो हम छूट जाएँगे। अब इस बारे में मुझे आपसे कुछ कहने को नहीं है।''

प्रश्नकर्ता : ठीक है। यानी कि अंदर का ध्यान हमें ही रखना है।

दादाश्री : आपको देखते रहना है कि वास्तव में यह कितना शुद्ध हुआ और कितना बाकी है!

प्रश्नकर्ता : अब सूक्ष्मता से सारा कचरा निकाल देना है।

दादाश्री : सूक्ष्मता से कचरा नहीं निकाल रहे थे अब तक?

प्रश्नकर्ता : नहीं! नहीं निकाला होगा।

दादाश्री : 'नहीं निकाला होगा' कह रहा है। निकाला ही नहीं है। मेरे पास एक भी शब्द बिना तौले नहीं रहेगा। यह तराजू अलग तरह का है! वह कचरा आपको निकालना है या मुझे निकालना है?

प्रश्नकर्ता : आपकी कृपा से हम निकाल देंगे।

दादाश्री : लेकिन ऐसा सभी कुछ देखते ही रहना। सूक्ष्मता से सब देखने के बाद मुझे बताना कि, 'मैं शुद्ध हो गया अब'। यदि बाहरी रंग-रोगन से इतना सुख मिला तो जैसे-जैसे अंदर का शुद्ध करोगे, वैसे-वैसे क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : और ज़्यादा सुख होगा।

दादाश्री : पूर्णतः सुख, परमानंद स्थिति! समाधि में रह सकोगे।

इसलिए अब यह सब देखना बारीकी से। अगर मुझे बैठा दे तो पूरी रामायण बन जाए, ऐसा है। पूरी किताब बन जाए। यह संक्षेप में, पाँच मिनट में आपको समझा दिया।

प्रश्नकर्ता : अभी भी ऐसी सूक्ष्म दृष्टि मिल सकती है या नहीं?

दादाश्री : अभी ऐसा कहा है तो सूक्ष्म दृष्टि हो ही जाएगी

लेकिन आपने कभी ऐसा नहीं कहा कि, 'भाई, हमें अब कुछ नहीं करना है, हमारा तो सब हो गया।'

ये तो कह रहे थे कि, 'मैं शुद्ध हो गया हूँ', और अब कहते हैं, 'नहीं, शुद्ध नहीं हुआ हूँ। अब शुद्ध करना है।' पहले कैसे हो गए थे? बाहर से दिखने में शुद्ध लेकिन अंदर से कचरे वाले।

यहाँ तो खुद को भगवान बनना है। यहाँ भगवान के दास नहीं बनना है। अभी तो दासानुदास लिखते हैं लेकिन अंत में शुद्ध करते-करते भगवान बन जाओ। आपके अंदर वैसी अनंत शक्ति है।

देखते रहो निज भूलों को सदैव

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने वास्तव में जागृत कर दिया।

दादाश्री : हाँ, जागृत तो हुए लेकिन यह सब लिख लेना और हर रोज़ पढ़ना। अभी बर्तन रह गए, फलाँ रह गया।

प्रश्नकर्ता : सूक्ष्मता से देखते रहेंगे।

दादाश्री : हाँ! वह आपको साफ नहीं करना है। आपको तो ऑर्डर देना है, 'चंदूभाई वह रह गया, अब फलाँ करो। ओ चंदूभाई! वह रह गया, वह करो'। मकान को सिर्फ बाहर से पुतवा देने से नहीं चलेगा। इसलिए आपको कहना है। आपको चंदूभाई को ऑर्डर देना है कि, 'यह कैसा? बाहर से पुतवाने से, रंग-रोगन करवाने से हो गया क्या? अभी तो, इस कूड़ा-करकट को निकालो न! अब कहना, 'अरे! चंदूभाई क्या कर रहे हो?' अतः आपको चंदूभाई से इस तरह से करवाना है। जितना-जितना कहते जाओगे और जितना शुद्ध होता जाएगा, उतना आप भी शुद्ध होते जाओगे। मैं जो बताता हूँ, उस साइन्स में भूल नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल भी नहीं, दादा।

दादाश्री : फर्नीचर साफ हो जाएँगे। बदबूदार बर्तन भी साफ

हो जाएँगे। सबकुछ देखते-देखते जाएँगे तब फिर पता चलेगा। लेकिन फर्नीचर साफ होने के बाद जाकर सो जाता है और कहता है, 'अब ज़रा आराम कर लूँ' तो उससे कुछ भला नहीं होगा। इसलिए तो हम बहुत समझाते हैं, लेकिन समझते नहीं हैं न!

दिन भर आपका ध्यान सिर्फ इसी में रखना है कि चंदूभाई क्या कर रहे हैं? आप चंदूभाई से जो कुछ भी कहते हो उसके बाद 'देखना' कि चंदूभाई क्या करते हैं और यदि वे वैसा नहीं करें तो आप कहना, 'अभी ये बर्तन रह गए। अभी फलाँ रह गया'। एक खत्म करते ही तुरंत दूसरा बताना।

अत: वे चंदूभाई की भूलें आपको दिखाई दें और आप चंदूभाई से कहो कि, 'ऐसी भूलें करते हो लेकिन अब सुधार लो', तभी तो वह सुधरेगा, वर्ना नहीं सुधारेगा।

कब तक दिखाते रहेंगे दादाजी?

प्रश्नकर्ता : अब, वह कचरा यानी कौन सा कचरा?

दादाश्री : सभी का कचरा ही है। सारा कचरा ही पड़ा है। जो हमें मूल वस्तु पर, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा उपयोग नहीं रखने देता, वह सारा कचरा ही है। वह कचरा साफ करने के बाद उपयोग रहेगा। मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह थोड़ा-बहुत समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : जो शुद्ध उपयोग में नहीं रहने देतीं, वे सभी चीज़ें कचरा हैं।

दादाश्री : हाँ! यानी मैं कब तक दिखाता रहूँ? अब आपको देखना है। जो बर्तन बदबू मार रहे हैं, वे फफूंद की बदबू वाले हैं। बदबूदार बर्तनों में कोई खाता है क्या? उन्हें उतना साफ कर लेना है। एक बार पूरी तरह से शुद्ध कर दो। मैं कब तक आपको बताता रहूँ? किसी को किराए पर रखा हो तो वह ठेठ तक काम करेगा लेकिन मुझे थोड़े ही किराए पर रखा हुआ है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, दादा। हमने लिख लिया है कि घर में से सूक्ष्मता से सारा कचरा निकाल देना है।

दादाश्री : इस सूक्ष्म बात में आपका दिमाग़ नहीं चलेगा। यह बात समझ रहे हो न? जानते हो न, ऐसी सूक्ष्म बातों को? वह तो ज्ञानी का काम है न! अतः यह लिख लेने जैसा है, फिर वही आपका सब काम कर लेंगी। इस तरह बताया था ताकि भूल न जाओ। अगर लिख लोगे और रोज़ पढ़ोगे तो जागृति रहेगी कि, 'अब क्या-क्या बाकी रहा?' आपको जांच करनी है। जांच करने से पता चलेगा। अंदर से भगवान ने कहा है कि, 'बता दो सब को। फिर कब तक ज़िम्मेदारी रखोगे?'

मैं दिखाने नहीं आऊँगा। आपको ही दिखाना है। मुझे अब फिर से नहीं कहना पड़ेगा न? अब मुझे कहने न आना पड़े। आपको ही कहना है, 'चंदूभाई ऐसे करो, ऐसे करो'। यह कचरा आपको रेग्युलर नहीं रहने देता। इसलिए अगर घर में कचरा है तो 'आपको' 'इनसे' कह देना है कि 'चंदूभाई, देखो अभी भी कचरा है'। तब चंदूभाई कहेंगे, 'आपके शुद्ध होने से मुझे क्या फायदा?' तो कहना, 'इतना निश्चित है कि अगर हम शुद्ध हो गए तो आपका भी सब ठीक हो जाएगा। इसकी गारन्टी है।'

प्रश्नकर्ता : शुद्ध तो हमें चंदूभाई को ही करना है न!

दादाश्री : हं। 'आप' तो शुद्ध हो ही। आप शुद्धात्मा ही हो। अब चंदूभाई क्या कहते हैं कि 'मैं भी शुद्ध हो गया हूँ'। तब कहना, 'नहीं! बाहर से सब धुल गया है लेकिन अभी तो अंदर बहुत कचरा पड़ा हुआ है, उसे साफ कर दो तो शुद्ध हो जाओगे!' बर्तन धो दिए। वे तो जैसे-तैसे धो दिए इसलिए उन पर कहीं-कहीं मिट्टी दिखाई देती है। तब वह कहेगा 'ये तो गीले हैं'। उस वक्त कहना कि 'धो दो और अच्छी तरह से धो दो'। हमने आपको छूट दे रखी है कि खाना भाई। हाँ, इसमें से यदि हांडवा खाना चाहो तो हांडवा खाना। हांडवा खाना और जलेबी भी खाना।'

यह समझ में आया कि मैं क्या कहना चाहता हूँ? अब कचरा साफ करना है। एक काम खत्म होते ही उन्हें दूसरा दिखाना है और आप जितना अलग रहकर 'देखोगे' कि, 'इसने गर्वरस चखा', उतना ही *पुद्गल* अलग होता जाएगा। वर्ना अलग नहीं हो पाएगा। 'देखने' से आप अलग और *पुद्गल* अलग हो जाएगा।

जिसने बिगाड़ा, वही करे साफ

ज्ञानी पुरुष ने आपकी यह श्रद्धा तोड़ दी कि 'मैं चंदूभाई हूँ'। वह सब तोड़ दिया, पूरा ही! 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं इसका भाई हूँ, इसका चाचा हूँ, इसका मामा हूँ, इसका पति हूँ', कितना कुछ तोड़ दिया चारों ओर से! अब यहाँ तक पहुँचे हो कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और अब साफ करते-करते अंदर तक जाना है। तब फिर बिगाड़ किसने किया था? तब कहता है, 'पहले हमने ही किया था बिगाड़'। और बहुत साल पड़े रहने पर उन बर्तनों पर ज़ंग ही लग जाएगा न? अब भीतर में साफ करना है। खाना, पीना, सोना, सत्संग में बैठना, लेकिन अपना चित्त निरंतर शुद्धि करने में रहना चाहिए। शुद्धि करने लगे, उसी को कहते हैं उपयोग। क्या सभी रूमों को साफ करना शुरू कर दिया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, साफ करने लगे हैं। जाले-वाले बहुत हैं। अब ऐसा दिखाई देता है कि जाले कहाँ है। अंदर कहीं कोनों में, झिर्रियों में भरे पड़े हैं। अब दिखाई देते हैं।

दादाश्री : उन्हें देखने वाले आप हो और साफ करने वाले 'वे' हैं, घर के मालिक। साफ करने के बाद जब वापस वे कहें कि, 'अब मैं आराम करूँ?' तब कहना, 'नहीं, अभी तो यह बाकी है, सब खत्म हो जाने के बाद आराम करना'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, राइट।

जिससे उपयोग चूक जाते हैं, वह कचरा

प्रश्नकर्ता : कचरा यानी मन-वचन-काया-चित्त-बुद्धि-अहंकार ही न?

दादाश्री : वह अहंकार, मन, वचन, काया, सब एक ही हैं। हाँ, एक ही चीज़ के बने हुए हैं। लेकिन उसमें थोड़ा मिक्स्चर, अपना पावर घुस गया है आत्मा का। सिर्फ पावर ही। जैसे कि सेल एक ही चीज़ से बना हुआ है, उसमें बाहर का पावर घुस गया है इसलिए लाइट देता है। पावर निकल जाए तो कुछ भी नहीं है। वह तो वैसा ही है।

यानी वह तो सारे कषाय भरे हुए हैं, वे निकलते ही रहेंगे, अंदर जितने भरे हुए हैं, उतने। आपको उन्हें देखते रहना है और फिर चंदूभाई से कहना है, 'प्रतिक्रमण करो, फिर से चरणविधि करो', इतना ही और कुछ नहीं। आपको 'देखकर' *निकाल* करना है, उसे साफ करना कहते हैं। आप घर में जाओ तब वे कहेंगे, 'साहब, अब सब हो गया, अब इसका करार बना दीजिए।' तब कहना, 'नहीं, अभी तो यह बाकी है'। वह करता रहेगा और आप दिखाते रहना।

उपयोग में रहने के बाद कुछ बाकी ही नहीं रहता। फिर कोई भी कचरा साफ करने को नहीं रहता। उसी को 'साफ करना' कहते हैं। साफ हो गया हो तो उपयोग में रह सकते हैं और यदि नहीं हुआ है तो उपयोग ठीक से नहीं रह पाएगा। कुछ देर रहेगा और कुछ देर नहीं रह पाएगा।

प्रश्नकर्ता : आपने तो यह भी बताया है कि गर्वरस चख लिया लेकिन यदि उसे (अलग) देखा कि इसने गर्वरस चखा है तो ऐसा कहा जाएगा न, कि वह उससे अलग हो गया?

दादाश्री : 'चखने वाला मैं नहीं हूँ', ऐसा रहना चाहिए। 'जो चख रहा है, वह मैं नहीं हूँ' और यदि ऐसा कहे कि 'मैंने चखा' तब तो वह खुद ही 'चखने वाला' हो गया। उसके लिए गर्वरस चखता है लेकिन उसके मन में ऐसा रहता है कि, 'यह मैं ही हूँ'। अब अपना ज्ञान क्या कहता है? 'यह मैं नहीं हूँ।' इतना ही कहता है। उतना समझकर वहाँ जुदा रहना है और समभाव से *निकाल* करना है। 'यह मैं नहीं हूँ' ऐसा करके समभाव से *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : मूलतः कोई भी चीज़ जो उपयोग में नहीं रहने देती, वह सारा कचरा ही है।

दादाश्री : हाँ। जो उपयोग में नहीं रहने दे, वह कचरा। यदि रहने दे तो कचरा खत्म हो गया है। आपको तो साफ भी नहीं करना है, आपको तो 'देखना' है! या फिर जो कुछ भी आए, तो 'मेरा स्वरूप नहीं है' कहते ही अलग। दुःख आए, सुख आए, क्रोध आए, और कुछ भी आए, फिर भी ऐसी जागृति रहनी चाहिए कि, 'जो कुछ भी आ रहा है, वह मेरा स्वरूप नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : तो वे जो लेपायमान भाव हैं, वे सब ही कूड़ा-करकट हैं न?

दादाश्री : नहीं तो और क्या? जो लेपित करें, वे लेपायमान भाव हैं और जो निर्लेप रखता है, वह यह उपयोग है। वह तो दो-तीन मिनट तक रहता है। ऐसा उपयोग हमेशा नहीं रह पाता न!

दोष दिखाई दें, वह उपयोग

प्रश्नकर्ता : उपयोग में रहने से कचरा निकल जाता है न? वह भी उपयोग कहलाता है?

दादाश्री : उपयोग उसे कहते हैं कि सारा कचरा निकलता ही रहे। आप वहाँ से आने के लिए निकलते हो तो, वह पच्चीस सौ मील का कचरा है। पाँच सौ मील पार करके कहते हो, 'भाई, पाँच सौ मील तक का कचरा निकल गया'। वह पाँच सौ मील का उपयोग। ऐसे करते-करते पच्चीस सौ मील तक का कचरा भी निकल जाए तो मुक्त! सीधी-सादी बात है न? जो कचरा निकल गया उसके बाद उस कचरे को फिर से नहीं निकालना पड़ेगा। उपयोग में रहना है।

[3]
शुद्ध उपयोग

उपयोग के बारे में समझ

प्रश्नकर्ता : 'उपयोग' शब्द बहुत समय से समझ में नहीं आ रहा था।

दादाश्री : उपयोग क्या है? चोर का उपयोग पूरा दिन चोरी करने में ही रहता है। चोर होता है न, जेबकतरा, उसका उपयोग पैसे कितने बढ़े या घटे, उसमें नहीं रहता लेकिन जेब काटने में ही रहता है। अतः जिसके लिए आत्मा (व्यवहार आत्मा) का उपयोग होता है, वही उपयोग। अतः यदि ऐसा कहे कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ, ऐसा रहता है', तो वह शुद्ध उपयोग।

उपयोग को तो जागृति कहा जाता है। उपयोग तो, अभी जो लोग गणपति दादा के मेले में गए हैं न, उनका उपयोग इस समय किसमें होगा? तब कहते हैं, 'नहीं, पैसों में नहीं है, विषयों में नहीं है'। किसमें उपयोग होगा? 'इस संसार के धर्मध्यान की श्रद्धा में है।' वह भी एक श्रद्धा है। यानी शुभ उपयोग में है। अब जिसमें संसार नहीं है, वह सारी श्रद्धा सही ही हैं लेकिन सम्यक् नहीं हैं। सम्यक् तो जब अविनाशी उत्पन्न होता है, तब सम्यक् होता है। यदि उपयोग को समझ जाए तो काम हो जाएगा।

व्यवहार में आत्मा का क्या है? तब कहते हैं, 'उपयोग'। चार

प्रकार के उपयोग हैं। अशुद्ध उपयोग, अशुभ उपयोग और शुभ उपयोग, प्रकृति उससे ये तीनों ही ज़बरदस्ती करवाती है। करवाता कोई और है और खुद ऐसा मानता है कि 'मैंने किया' इसलिए खुद बंधता है अहंकार की वजह से। जो चौथे प्रकार का उपयोग है, वह शुद्ध उपयोग है, और वह स्वतंत्र है।

हम सब अब शुद्ध उपयोगी कहे जाते हैं। अभी तक शुभाशुभ उपयोगी थे। अच्छा करना वगैरह सब शुभ कहलाता है और गलत करना अशुभ कहलाता है। व्रत, जप-तप आदि करना, शास्त्रों का अध्ययन करना, वे सब शुभ उपयोग कहे जाते हैं और बाकी सब अशुभ कहे जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध उपयोग और शुभ उपयोग के बारे में समझाइए।

दादाश्री : शुभ उपयोग कब तक है? जब तक 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा है, तब तक शुभ और अशुभ, दोनों ही उपयोग रहते हैं। क्योंकि जहाँ शुभ है, वहाँ अशुभ रहता ही है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वहाँ शुद्ध उपयोग। शुद्ध उपयोग यानी क्या? जहाँ विषय से संबंधित और कषाय से संबंधित विचार नहीं हों, विषय और क्रोध-मान-माया-लोभ का स्पर्श नहीं हो, ऐसा उपयोग।

व्यवहार का काम छोड़ नहीं देना है। काम छूटे तो छोड़ दो। नहीं छूटे तो रहने दो। डबल काम आ जाए तो डबल करो लेकिन राग-द्वेष निकालने हैं। जिसमें राग-द्वेष की एक बूँद भी हो, वह आपका माल नहीं है। और हमारे ज्ञान देने के बाद, यदि आप दखल नहीं करोगे तो राग-द्वेष नहीं रहेंगे। यह ज्ञान ही ऐसा काम करता है। फिर भी कोई संसारी काम हो तो उसमें उपयोग जाएगा, संसार में उपयोग तो रखना पड़ेगा न! कई बार संसार में उपयोग दिए बिना कार्य नहीं होता। कुछ काम उपयोग के बिना भी हो सकते हैं। लेकिन कुछ कामों में उपयोग देना पड़ता है। अब, उपयोग क्या है? कोई पूछे, 'अभी आप किस चीज़ में रमणता कर रहे हो?' तब कहता है, 'अभी तो, मुझे कोर्ट का केस याद आ गया, उसके बारे में सोच रहा था', उसे

उपयोग कहते हैं। उस वक्त यहाँ नहीं होते। यह तो अक्रम है इसलिए (आप) यहाँ भी हो और वहाँ भी हो, दोनों जगह पर हो। लेकिन दोनों ओर संभालना नहीं आता। यदि बैठे-बैठे देखते रहो कि चंदूभाई क्या कर रहे हैं, तो कहा जाएगा, 'उपयोग रहा'। लेकिन उतनी शक्ति नहीं है न! यानी जितना उपयोग कहीं और जाता है, वह 'हमें' पता चल जाता है कि यह उपयोग अन्य जगह पर गया। कौन-कौन सी जगह जाता है, वह पता चलता है आपको?

प्रश्नकर्ता : हाँ, चलता है, दादा।

दादाश्री : उपयोग का अर्थ यही है कि आप किसमें बरत रहे हो? जब शुद्ध उपयोग में नहीं रहते, तब सदुपयोग में रहते हो। यानी देख लेना कि कहाँ-कहाँ बरत रहे हो। सदुपयोग अर्थात् संसारी चीज़ों में बरतता है। घर के लोग कहें कि, 'इतने गहने बनवाइए न? ऐसे गहने बनवाइए न? फलाँ ले आइए न!' उन सभी को समाधान होना चाहिए, फाइलों का *निकाल* करने के लिए ध्यान तो देना ही पड़ेगा न! लेकिन उसमें एकाग्र नहीं हो जाना है! एकाग्र हुए कि उपयोग चूके।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध और शुभ, दोनों साथ में चल सकते हैं न? आत्मा शुद्ध में और मन-वचन-काया शुभ में, ऐसा साथ में हो सकता है न?

दादाश्री : ऐसा तो शुभ में भी होता है और कभी अशुभ में भी हो सकता है। ये मन-वचन-काया दान कर रहे हों, तब यह उसे देखता है। उसमें हर्ज नहीं है। वह खुद शुद्ध ही है। क्योंकि दान, तो परिणाम है। चोरी करना या दान देना, दोनों ही परिणाम हैं और यह जो शुद्ध उपयोग है, वह उपयोग है।

उपयोग का इस तरह का स्पष्ट अर्थ कोई शास्त्रों में नहीं समझा सकता जबकि हम आपको समझाते हैं तब उपयोग का अर्थ आपकी समझ में आ जाता है। यदि आपको समझ में आ जाएगा तो उपयोग रहेगा।

उपयोग किसका गुण है?

आत्मा, आत्मा के स्वभाव में ही रहता है। वह स्वभाव नहीं बदलता। अज्ञा से जगत् उत्पन्न हुआ है और उस प्रज्ञा से मोक्ष होता है। अज्ञा से यानी बुद्धि से, प्रज्ञा से यानी ज्ञान से। अत: जो अज्ञा है, वह संसार से बाहर नहीं निकलने देती। प्रज्ञा संसार में टिकने नहीं देती, मोक्ष में ले जाती है यानी कि सारी चेतावनी प्रज्ञा की है, सचेत करना वगैरह।

प्रश्नकर्ता : उपयोग किसका गुण है?

दादाश्री : अब वह शुद्ध उपयोग प्रज्ञा का है और शुभाशुभ उपयोग अहंकार का है और वह (अहंकार) पराधीन है, स्वाधीन नहीं है। जबकि यह प्रज्ञा का है और स्वाधीन है। यह पुरुषार्थमय है और वह कर्माधीन है।

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या उपयोग को आत्मा का लक्षण माना जाएगा?

दादाश्री : नहीं। उपयोग अर्थात् उसका योग किसमें है? स्वाभाविक योग में है या विशेष भाव के योग में है? विशेष भाव के योग, वे भी उपयोग कहे जाएँगे। उपयोग अर्थात् जागृतिपूर्वक।

प्रश्नकर्ता : जागृति के संदर्भ में उपयोग किसे कहेंगे?

दादाश्री : जागृति का उपयोग संसार की ओर करना, वह दुरुपयोग कहा जाएगा और इस ओर हम आत्मा के प्रति, धर्म के प्रति करें तो वह सदुपयोग कहा जाएगा, शुभ उपयोग कहा जाएगा। और आत्म जागृति में आने के बाद शुद्ध उपयोग कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : उपयोग तो मूल आत्मा का ही है न?

दादाश्री : नहीं, उपयोग आत्मा का नहीं है। यदि आत्मा का उपयोग होता तो फिर बन गया भंडारी, सर्विसमैन बन गया। यहाँ लोग

सिखाते हैं लेकिन आत्मा वैसा नहीं है। ये बाहर जो प्रचलित वाक्य हैं, उनमें से एक भी जगह पर आत्मा नहीं है। वह आपको मान लेना है। हर कोई अपने-अपने स्टैन्डर्ड के अनुसार बोलता है, लेकिन स्टैन्डर्डाइज़्ड है। आत्मा का उपयोग भी नहीं है और कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो यह उपयोग किसका है, यह अभी भी समझ में नहीं आया।

दादाश्री : उपयोग सारा अहंकारी का है। आत्मा प्राप्त करने के बाद, आत्मदृष्टि होने के बाद, उसका उपयोग आत्मा की ओर जाता है, वह स्व-उपयोग कहलाता है और यदि वह दूसरी ओर जाए तो वह पर-उपयोग कहलाता है, बस। उपयोग अर्थात् जागृति का उपयोग किस ओर किया, वही देखना है। आत्मा उपयोग स्वरूप नहीं है।

फर्क, उपयोग और जागृति में

प्रश्नकर्ता : आत्मा का उपयोग और आत्मा की जागृति, इन दोनों में क्या डिफरेन्स है?

दादाश्री : डिफरेन्स तो यह लाइट जलती रहे और आप कोई काम नहीं करो और सोते रहो तो लाइट व्यर्थ जाएगी न? और यह जो लाइट का प्रकाश है, वह जागृति ही है लेकिन यदि उसमें पढ़ोगे तो उसे उपयोग करना कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जागृति को एक जगह पर केंद्रित करना, वही उपयोग कहलाता है?

दादाश्री : ज्ञान देते हैं इसलिए जागृति तो है ही। उससे काम लेना है। जागृति तो यों ही चली जाती है, यदि उपयोग करेंगे तो काम में आएगी। इलेक्ट्रिसिटी है ही अंदर, उसी को जागृति कहते हैं लेकिन बटन दबाने पर ही प्रकाश होगा न! यह जो बटन दबाते हैं, वह उपयोग है। वर्ना गर्मी में हाथ से पंखा घुमाना होगा। अरे, बटन दबा न! उपयोग कर न!

यथार्थ शुद्ध उपयोग

शुद्ध उपयोग यानी क्या कि खुद अपने आपको शुद्ध जानकर तू शुद्ध देख। खुद अपने आपको 'मैं शुद्ध हूँ' ऐसी प्रतीति, *लक्ष* और अनुभव से देख और दूसरों को उसी रूप से देख, उसे कहते हैं शुद्ध उपयोग।

अब कभी कोई व्यक्ति इतनी बड़ी फूलों की माला पहना जाए, तो उस समय आपको उसके प्रति भाव होता है कि बहुत अच्छा इंसान था। और फिर एक व्यक्ति आपसे वह माला लेकर तोड़कर फेंक दे तो उसके प्रति अभाव हो जाएगा, वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। एक पहनाए, एक तोड़ दे। एक सम्मान करे, एक गालियाँ दे लेकिन उसे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। जब तक फर्क पड़ता है तब तक, अभी भी जितना होना चाहिए उतना शुद्ध उपयोग नहीं हुआ है।

प्रश्नकर्ता : फर्क पड़ता ही है, दादा। असर हो जाता है।

दादाश्री : वह फर्क पड़ता है तो समझना कि अभी उतना कचरा पड़ा हुआ है। शुद्ध उपयोग अर्थात् आत्मा को नहीं भूले। यानी जितने समय तक राग-द्वेष नहीं होते, उसे शुद्ध उपयोग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यहाँ सत्संग में बैठे हुए हों और हम सभी में शुद्धात्मा देखें तो क्या वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ, उन सभी में शुद्धात्मा देखें लेकिन अगर कोई आकर थप्पड़ लगाए और उसमें शुद्धात्मा नहीं दिखाई दे तो समझना कि वह शुद्ध उपयोग नहीं है। पुलिस वाला जेल में ले जा रहा हो, उस समय पुलिस वाले का आत्मा शुद्ध ही दिखाई दे, तब ठीक है! बीवी जब गालियाँ सुना रही हो, उस समय बीवी का आत्मा शुद्ध ही दिखाई दे, तब सही है। ऐसा आत्मा दिया है। आपको जानने की ज़रूरत है। मैंने कैसा आत्मा दिया है? निवल, शुद्ध आत्मा दिया है। वह वापस कभी भी जैसा था, वैसा नहीं बनेगा। आपकी तैयारी होनी चाहिए।

खुद शुद्धात्मा तो बन गए इसलिए अब आपको ऐसा मानना है कि, 'मैं शुद्ध ही हूँ'। कभी अगर चंदूभाई के पूर्वकर्म का ऐसा कोई उदय हो, जिससे संसार के लोगों को घृणा उत्पन्न हो, फिर भी आपको, आपका जो शुद्धत्व है, उसमें कोई बदलाव नहीं आना चाहिए। मैंने आपको शुद्ध स्वरूप दिया है। फिर उदयकर्म चाहे कैसे भी भरे पड़े हों, वे निकलते रहेंगे। यदि खुद से खराब कार्य हो जाए तब यदि आपको खुद के लिए ऐसा हो कि 'मैं बिगड़ गया हूँ या अशुद्ध हो गया हूँ' तो वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। खुद से चाहे कैसा भी काम हो जाए लेकिन अब वह आपका काम नहीं है। अब तू जुदा हो गया और वह काम करने वाला जुदा। आप अशुद्ध नहीं हुए हो। साथ-साथ ऐसी जागृति रहनी चाहिए कि जो अशुद्ध है, वही अशुद्ध हुआ है।

अब यदि आप मुझसे ऐसी शिकायत करो कि कोई आपको गालियाँ दे रहा है तो मैं समझूँगा कि आप शुद्ध उपयोग में नहीं रहे। उसे शुद्ध ही देखो। वह भी शुद्ध ही है और यह जो दखल है, वह *पुद्गल* की कुश्ती है। कुश्ती कौन करता है? यह *पुद्गल,* और खुद अपने सिर पर ले लेता है। और फिर कहेगा कि 'इसने मेरा अपमान किया'। तब मैं कहूँगा कि, 'तेरा शुद्ध उपयोग बेकार गया।' शुद्ध उपयोग कब माना जाएगा? जब ऐसा देखा जाए कि सभी में शुद्ध ही है।

भगवान महावीर को चौबीसों घंटे जैसा शुद्ध उपयोग रहता था, वैसा आपको यदि पाँच मिनट, दस मिनट, पंद्रह मिनट के लिए भी रहे तो बहुत अच्छा है। भगवान क्या करते थे? जो ढेला मारे उसे शुद्ध देखते थे, धौल मारे उसे शुद्ध देखते थे, कीचड़ फेंके, उसे भी शुद्ध देखते थे, मारने वालों को शुद्ध देखते थे। यह वीतराग विज्ञान चौबीस तीर्थंकरों का, शुद्ध उपयोग का ज्ञान है! यहाँ संसार में घूमते-फिरते हुए मोक्ष दे, ऐसा है!

फर्क, शुद्ध उपयोग और ज्ञाता-द्रष्टा में

प्रश्नकर्ता : शुद्ध उपयोग, देखना व जानना और ज्ञाता-द्रष्टा, इन तीनों में क्या अंतर है?

दादाश्री : वे तीनों एक से ही हैं लेकिन शुद्ध उपयोग लंबा-चौड़ा होता है। शुद्ध उपयोग यानी आप किसी से कहो कि, 'तूने मुझे गाली क्यों दी?' तो वह आपका शुद्ध उपयोग नहीं है। आपके *लक्ष* में या ध्यान में रहे कि 'नगीन भाई ने चंदूभाई को गाली दी', ऐसा आपको रहे तो वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। यदि ऐसा कहें कि 'इन नगीन भाई ने मुझे गाली दी' तो वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। कोई भी दोषित नहीं दिखाई दे तो उसे कहेंगे शुद्ध उपयोग। कोई भी दोषित नहीं है, जगत् निर्दोष ही है।

प्रश्नकर्ता : अब ऐसा जब होता है उस समय 'देखना व जानना' का अर्थ क्या है?

दादाश्री : राग-द्वेष नहीं करना, वही 'देखना-जानना' कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : यानी 'देखना व जानना', वह उपयोग से एक स्टेप आगे है?

दादाश्री : नहीं। सब से उत्तम बात शुद्ध उपयोग की है। शुद्ध उपयोग सब से अंतिम स्टेशन है और उसका फल है, 'देखना व जानना'। शुद्ध देखता है व जानता है, उसी को शुद्ध उपयोग कहते हैं। अन्य बहुत प्रकार से शुद्ध उपयोग कहा जाता है। सामने वाला भी शुद्ध ही है, ऐसा लगना चाहिए। क्या आपको ऐसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : दोषित दिखाई देने के बाद में फिर उसके प्रतिक्रमण हो जाते हैं।

दादाश्री : ठीक है, तब भी चलेगा।

शुद्ध उपयोग किसका?

प्रश्नकर्ता : जब तक चंदूभाई जीवित हैं, तब तक उनका उपयोग तो व्यवहार में ही रहेगा। तो फिर आप जो शुद्ध उपयोग में रहने की बात करते हैं, वह कैसे होता है?

दादाश्री : वह तो प्रज्ञा द्वारा होगा न! यानी खुद शुद्ध है और

सामने वाले में भी शुद्ध है! प्रज्ञा और अज्ञा, इन दोनों में फर्क है न? उसमें अज्ञा काम करती है और यह, प्रज्ञा काम करती है, उतना ही अंतर है!

प्रश्नकर्ता : ये चंदूभाई व्यवहार में हैं?

दादाश्री : उसमें अज्ञा ही काम करती रहती है। अज्ञा और प्रज्ञा। अज्ञा यानी बुद्धि और प्रज्ञा यानी ज्ञान। प्रज्ञा जो है, वह ऐसा समझती है कि 'मैं शुद्ध हूँ' और कोई किसी को गाली दे, फिर भी उसके आत्मा को शुद्ध ही समझती है। शुद्ध जानना है। उसमें फर्क नहीं आना चाहिए, वह है शुद्ध उपयोग। शुद्ध देखना। गाय-भैंस सभी में आत्मा को शुद्ध देखना है कि वे शुद्धात्मा हैं। कोई गालियाँ सुनाए, जेब काटे फिर भी शुद्ध आत्मा, उसकी शुद्धता को देखना है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या उसे चंदूभाई का शुद्ध उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : शुद्ध उपयोग चंदूभाई का है ही नहीं, शुद्ध उपयोग प्रज्ञा का होता है। चंदूभाई का उपयोग तो अशुद्ध उपयोग है, शुभाशुभ उपयोग। अच्छा-बुरा देखता है, वह भी *निकाली* है, ग्रहणीय नहीं है। वह भी *निकाली* यानी निर्मूल हो जाएगा, अन्य कुछ नहीं उगेगा। चंदूभाई जो कर रहे हैं, उसे जाने तो भी बहुत हो गया, वह खुद का शुद्ध उपयोग। चंदूभाई इस ओर देखें और यदि उसे हम जानें कि, 'ओहो, चंदूभाई ऐसा देख रहे हैं' तो वह खुद का शुद्ध उपयोग है!

व्यवहार और उपयोग, दोनों साथ ही

प्रश्नकर्ता : रोज़मर्रा के व्यवहार की सेटिंग करते समय क्या शुद्ध उपयोग में रहा जा सकता है?

दादाश्री : 'क्या व्यवहार करते हुए शुद्ध उपयोग में रहना संभव है', ऐसा पूछने वाला या तो शुद्ध उपयोग को नहीं जानता या फिर व्यवहार को नहीं जानता।

प्रश्नकर्ता : ज़रा इनमें डिफरेन्स समझाइए।

दादाश्री : हर एक व्यवहार में क्रिया और ज्ञाता, दोनों साथ में ही रहते हैं। दोनों का व्यवहार साथ-साथ चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : क्या वे दोनों व्यवहार में साथ-साथ ही होते हैं?

दादाश्री : हैं ही, पूरा साथ ही है लेकिन इस बात की उसे जागृति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, जो व्यवहार करता है, जो क्रिया करता है, वह और ज्ञाता, जो कि देखता है, वे दोनों अलग ही हैं लेकिन साथ ही हैं।

दादाश्री : व्यवहार को क्रिया कहा जाता है और इस उपयोग को ज्ञान कहा जाता है। एक ओर देखते हो और दूसरी ओर क्रिया होती है। दोनों साथ ही चलते हैं। कभी भी अलग-अलग नहीं चलते। आत्मा हर समय हाज़िर ही रहता है। आत्मा गैरहाज़िर नहीं रहता। क्रिया गैरहाज़िर हो सकती है।

प्रश्नकर्ता : प्रत्येक क्रिया करते समय जागृति रखना, वही मुख्य चीज़ हुई न?

दादाश्री : जागृति रखनी ही नहीं होती है, वह रहती ही है। ये तो बेकार ही इधर-उधर झाँकते हैं इसलिए फिर उल्टा हो जाता है। आत्मा है, फिर वह और कहाँ चला गया? क्रिया करते समय फिर वह क्रिया कौन करता है? अहंकार जो क्रिया करता है, ज्ञाता उसे देखता है। 'कहाँ पर ठीक नहीं था और कहाँ ठीक हो गया? ऐसे कहाँ चूक गए?' आत्मा ऐसा सब देखता है। फिर उसे वह स्पष्ट हो जाता है।

किसी व्यक्ति की आँखें नहीं हैं, यानी कि अंधा है। उसमें शक्ति बहुत है, घोड़े जैसी है और किसी दूसरे व्यक्ति के दोनों पैर कट गए हैं। अगर उसे अंधे ने कंधे पर बैठाया हो तो दोनों की गाड़ी चलेगी या नहीं? वह अंधा कहेगा, 'भाई, तू ऊपर बैठ जा। तू मुझे रास्ता

दिखाना।' तब अंधा फिर किच-किच कब करता होगा? जब कोई तकलीफ आए तभी शिकायत करता है। तब लंगड़ा उसे मार्गदर्शन देता है। देखने वाला, 'आत्मा' देखता रहता है लंगड़े की तरह और अंधा (अहंकार) चलता रहता है। इस तरह का व्यवहार चलता है। उस समय आत्मा कहीं चला नहीं जाता।

जहाँ व्यवहार को ही आत्मा माना है और 'मैं ही ज्ञाता हूँ', वहाँ पर दोनों साथ चलते रहते हैं। वह अलग नहीं होता। 'मैं ही देखता हूँ और मैं ही करता हूँ', पहले ऐसी स्थिति थी न? मैंने सुना, मैंने देखा और फिर खुद को ही ज्ञाता-द्रष्टा मानता है।

जिस प्रकार उसका ज्ञातापन चला नहीं जाता, उसी प्रकार द्रष्टापन भी नहीं जाता लेकिन अनुभवपूर्वक होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अनुभवपूर्वक यानी क्या?

दादाश्री : एक बार देखा हुआ हो तो दूसरी बार दिखाई दे। ज्ञान यानी अनुभव। जितने अनुभव हो चुके हैं, उतने में वैसा रहता ही है। दर्शन यानी प्रतीति। ज्ञान यानी अनुभव।

प्रश्नकर्ता : फाइलों का *निकाल* करते समय तो उपयोग रखना पड़ता है, तो उस समय कौन सी दशा रहती है?

दादाश्री : फाइलों का *निकाल* करते समय यह जो उपयोग रखा न, वही शुद्ध उपयोग है। उस फाइल का समभाव से *निकाल* करके उसे जाने देना, ज्ञान से शुद्ध करना, वही शुद्ध उपयोग है।

कुछ लोगों को अजागृति रहती है न, इसलिए फाइलों का *निकाल* नहीं हो पाता और ऐसा मानो न, कि यदि आप पर बहुत (फाइलों का) दबाव आ जाए तो अंदर कितना *निकाल* करना बाकी रह जाएगा। एकदम से बहुत दबाव आ जाए, एट ए टाइम बहुत सी फाइलें आ जाएँ तो कुछ फाइलों का *निकाल* हो जाएगा और कुछ *निकाल* हुए बगैर चली जाएँगी। ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, होता है। ऐसा होता है!

दादाश्री : इन्हें तो, दबाव नहीं आता, तब भी (कितनी ही फाइलें) चली जाती हैं, ऐसी बात है। उपयोग रखे बगैर किया गया व्यवहार फिर से साइन करवाने आएगा। तब उपयोग रखोगे तो व्यवहार छूटेगा। कभी न कभी, देखकर ही उस व्यवहार का *निकाल* करना होगा। इसलिए हम कहते हैं न, कि जितनी फाइलें बिना देखे चली जाएँगी, वे सभी वापस आएँगी।

जो हमारी आज्ञा में रहा, वह शुद्ध उपयोग में रहा, ऐसा कहा जाएगा। जो भी फाइल आई, उसका समभाव से *निकाल* करना है। इस पर यदि कोई ध्यान नहीं दोगे तो उसे, 'समभाव से *निकाल*' नहीं कहा जाएगा और यदि ध्यान दोगे तो वह शुद्ध उपयोग है। हमारे पाँच वाक्य शुद्ध उपयोग वाले ही हैं।

कभी भी यदि ऐसे परिणाम बदलें कि 'क्या होगा' तो सब बिगड़ेगा। कुछ नहीं होगा, कुछ होना ही नहीं है। यदि हमारा उपयोग शुद्ध है तो दुनिया में कोई भी नाम देने वाला नहीं है और शुद्ध उपयोग बिगड़ा तो सब चढ़ बैठेगा।

प्रश्नकर्ता : यों तो ऐसा कहा जाता है न, कि यदि दो घड़ी के लिए भी शुद्ध उपयोग रहे तो सर्वांश केवलज्ञान हो जाता है?

दादाश्री : नहीं होता। शुद्ध उपयोग, वह केवलज्ञान ही कहलाता है, लेकिन वह अंश केवलज्ञान कहलाता है। सर्वांश केवलज्ञान नहीं कहलाता। क्योंकि पचता नहीं है इस काल में। अक्रम है न।

इसीलिए मैं कहता हूँ न, कि एक गुणस्थानक, अड़तालीस मिनट तक लगातार सब के शुद्धात्मा देखते-देखते जाएँ तो वह शुद्ध उपयोग है। यानी एक ओर गधा दिखाई देता है और दूसरी ओर शुद्धात्मा दिखाई देता है, ऐसे देखते-देखते जाएँ तो उसे शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। जब अन्य जीवों को आप शुद्धात्मा देखते हो तब आपका शुद्ध उपयोग रहता है।

जिनके, जैसा है वैसा, यथार्थ देखने के भाव हैं, जिनके भाव ज्ञानी पुरुष द्वारा दी गई दृष्टि से देखने के हैं, उन्हें शुद्ध उपयोग प्राप्त हो ही जाता है!

अब तो हमें मूल बात पर ही आ जाना है। आपने जो स्टैन्डर्ड जान लिया है, उस स्टैन्डर्ड की पुस्तकों की ज़रूरत नहीं रही न आपको? अब, आत्मा की हकीकत क्या है और आत्मा के तौर पर कैसे बरतना है, इतना ही देखना बाकी रहा।

नहीं देखता कर्ता किसी को जग में

प्रश्नकर्ता : गालियों को गालियों के स्वरूप में नहीं देखना, आप ऐसा कहना चाहते हैं क्या?

दादाश्री : कोई जब गाली देता है न, उस क्षण वह कर्ता नहीं है। उसे कर्ता देखोगे तो वह अशुभ उपयोग कहा जाएगा। जगत् में आप भी कर्ता नहीं हो और अन्य कोई भी कर्ता नहीं है। इसलिए अगर अकर्ताभाव से देखोगे तो वही शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। हमारा हर मिनट शुद्ध उपयोग रहता है। तुरंत ही, ऑन द मोमेन्ट। वर्ना फिर अशुभ हो जाएगा। तुरंत बिगड़ जाएगा। बाद में फिर खुद को ही सुधारना पड़ेगा न? शुद्ध उपयोग यानी कि 'खुद शुद्ध है, खुद कर्ता नहीं है किसी चीज़ का, खुद अक्रिय है'।

लेकिन अब दूसरों से क्या कहता है? 'आपने मेरे प्याले क्यों फोड़ दिए?' तब वह शुद्धता नहीं रही। वह खुद अपने आपको शुद्ध मानता है और शुद्ध बरतता भी है, लेकिन सामने वाले से ऐसा कहता है कि 'आपने मेरे प्याले फोड़ दिए' यानी उसे कर्ता मानता है, वह कमी है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् तब वह उपयोग में नहीं है?

दादाश्री : नहीं। उपयोग तो है लेकिन ऐसे उपयोग बिगड़ गया। शुद्ध उपयोग में नहीं है, वह अशुभ उपयोग हुआ। अतः किसी को

कर्ता नहीं मानना है तभी शुद्ध उपयोग रहेगा। हम अक्रिय और सामने वाले भी अक्रिय। 'जगत् में कोई भी कर्ता नहीं है क्योंकि सभी शुद्ध आत्मा हैं।' जब ऐसा अनुभव में आएगा, तब सर्वत्र शुद्ध उपयोग रहेगा।

'मैं कर रहा हूँ, वह कर रहा है और वे कर रहे हैं', जहाँ पर ऐसा भाव नहीं है, वहाँ शुद्ध उपयोग है, संपूर्ण। यह तो अगर ज़रा सा किसी ने गाड़ी के सामने लाल झंडी दिखाई तब, 'आप लाल झंडी क्यों दिखा रहे हो?' तो फिर वहाँ पर कमज़ोर पड़ गए। क्योंकि वह दिखा ही नहीं रहा है! कोई भी कर्ता नहीं दिखाई देना चाहिए। तभी वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा।

इसीलिए महावीर भगवान ने कहा था न, कि, 'मैं कर रहा हूँ', 'वह कर रहा है' और 'वे कर रहे हैं', यह मेरे विज्ञान में नहीं है। किसी के लिए ऐसा मानो कि 'वह किसी भी चीज़ का कर्ता है', तो वह मेरे मोक्ष विज्ञान में नहीं है। अन्य विज्ञान में है।

ऑफिस जाने पर यदि आपका शुद्ध उपयोग नहीं रहेगा तो सभी क्लर्क, क्लर्क ही दिखाई देंगे और यदि शुद्ध उपयोग होगा तो क्लर्क भी दिखाई देंगे और शुद्धात्मा भी दिखाई देंगे। इस प्रकार हर एक बात में शुद्ध उपयोग ही रखना चाहिए। उपयोग नहीं चूकना है। शुद्ध उपयोग ही समता है और वही सबकुछ है। फिर उदयकर्म चाहे कैसा भी नाच करें, उसमें हर्ज नहीं है। उदयकर्म तो उदयकर्म कहलाता है। वह व्यवस्थित के अधीन है, हमारे अधीन नहीं है। हम तो सिर्फ उसके जानकार हैं कि इस प्रकार के उदयकर्म हैं।

शुद्ध उपयोगी के लिए जगत् निर्दोष

शुद्ध उपयोग रहे तो दखल ही नहीं रहेगी किसी तरह की। ज़रा सी भी दखल नहीं, उसमें सब समा जाता है। हमारे दूसरे वाक्य शुद्ध उपयोग लाने के लिए हैं। एक-एक वाक्य दिया गया है। सभी अलग। समझेगा तो घोटाला नहीं करेगा इसलिए कहा कि जगत् निर्दोष ही है, उसमें दोषित क्या देखना? बिना वजह औरों के दोष देखते हो, तभी

न! कभी भी, दोष कब दिखाई देते हैं? आप में दोष खड़ा होते ही तुरंत दूसरों के दोष दिखाई देंगे। नियम ही है ऐसा, वर्ना दोष नहीं दिखाई देंगे। उससे फिर यह सारा उपयोग बिगड़ जाता है। बाकी, पर-उपयोग तो नहीं होता। पर-उपयोग रहने लगे तो मुंह बिगड़ जाएगा। कषाय भाव होंगे।

प्रश्नकर्ता : जगत् निर्दोष है। वह शुद्ध उपयोग है तो सही लेकिन वह तो बाहरी उपयोग हुआ न?

दादाश्री : नहीं, बाहरी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि वह बाह्य दृष्टि के लिए हुआ न?

दादाश्री : बाह्य और आंतरिक का सवाल ही नहीं रहता। क्योंकि खुद अपने आप में शुद्ध रहना और शुद्ध देखना, वही शुद्ध उपयोग है। निर्दोष देखना, उसी को शुद्ध उपयोग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जब खुद अकेला हो तब अपने आपको भी शुद्ध देखे तो वह शुद्ध उपयोग है।

दादाश्री : शुद्ध देखता है, वह तो मानता ही है लेकिन खुद के अंदर का सारा जो सूक्ष्म है, उन ज्ञेयों को देखना है।

प्रश्नकर्ता : जो है उसे देखना। सही उपयोग तो वही है न?

दादाश्री : वह सब समान ही है लेकिन आखिर में यहाँ तक पहुँचना पड़ेगा क्योंकि वह बाहर का तो सदा के लिए रहता नहीं है। एक बार डिसीज़न लेने के लिए ही है। बाहर उपयोग रखना है लेकिन शुद्ध उपयोग रखना है। अंदर कहीं कोठरियाँ नहीं हैं कि अंदर ही अंदर रखना है। भगवान महावीर भी बाहर सभी जगह उपयोग रखते थे, लेकिन शुद्ध उपयोग। जगत् का अशुद्ध है, अशुभ है, शुभ है और उनका शुद्ध था। उनका पूरा वर्तन जगत् जैसा ही, सिर्फ उपयोग में ही अंतर! उपयोग को शुद्ध करना है। शुद्ध उपयोग यानी यों बाहर देखने जाए तो शुद्धात्मा दिखाई दे। खुद का स्वरूप शुद्ध है और अन्य भी

शुद्ध दिखाई दें, वह शुद्ध उपयोग और यदि हमारी आज्ञा में रहे तो वह संपूर्ण शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : उपयोग शुद्ध नहीं रहे तो उसका क्या परिणाम आता है?

दादाश्री : उपयोग शुद्ध नहीं रहे तो उसका जो लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, दोनों चीज़ें एक साथ चलती हैं। सामने वाले के दोष भी दिखाई देते हैं और ज्ञान भी कहता है कि, उसका कोई दोष नहीं है।

दादाश्री : दोष तो बाह्य दृष्टि से दिखाई देते हैं और अंतर दृष्टि से निर्दोष दिखाई देता है। वह जो निर्दोष दिखाई देता है, वह अपना सम्यक् दर्शन है। अब यदि (दृष्टि उसे) निर्दोष नहीं दिखाए तो ऐसा कहा जाएगा कि वह व्यक्ति कमज़ोर पड़ गया। उसमें शुद्ध उपयोग नहीं है। किसी अज्ञानी से पूछकर आओ कि अंदर-बाहर जुदापन की जागृति दोनों साथ में चलती हैं क्या? साधु-आचार्यों से पूछो, 'क्या दोनों साथ चलती हैं?' तब कहेंगे, 'नहीं, एक ही चलती है'। क्योंकि दोषित ही दिखाती रहती है और आपको निर्दोष दिखाती है वह। यहीं से कहेंगे कि आपको ज्ञान हुआ है।

सेटिंग शुद्ध उपयोग की

प्रश्नकर्ता : शुद्ध उपयोग कैसे रखना है?

दादाश्री : चंदूभाई क्या कर रहे हैं, उसे देखते रहना और जानते रहना, वह शुद्ध उपयोग कहलाता है। यानी खुद की प्रकृति को देखना ही शुद्ध उपयोग है। शुद्ध उपयोग यानी निरंतर जागृत। अन्य किसी में पड़ता ही नहीं। खाते ज़रूर हैं लेकिन खाना खाने में नहीं पड़ते, किसी में नहीं पड़ते। सभी को इतना ज्ञान नहीं रह सकता लेकिन कुछ अंशों तक का रहे न, तो भी बहुत हो गया। 'चंदूभाई क्या करते हैं', अगर

आप उसे देखो न, तो भी बहुत हो गया। चंदूभाई खाने में लगे हुए हों और उसे आप देखो, तब भी आप बहुत आगे निकल गए। अपने यहाँ जिन्होंने ज्ञान लिया है, वे सभी शुद्ध उपयोग रखते हैं। और शुद्ध उपयोग क्या है? 'चंदूभाई क्या कर रहे हैं? चंदूभाई का मन क्या कर रहा है'? वह सब विस्तारपूर्वक जानना।

जैसे सिनेमा में बैठा हुआ व्यक्ति फिल्म और खुद, दोनों को विस्तार से जानता है या नहीं जानता? इतना विस्तारपूर्वक जाने, तब वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। जब द्रष्टा और दृश्य उतने दूर होंगे, तब वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा।

अब, उसमें शुद्ध उपयोग की शुरुआत कैसे होती है? यदि कोई आपको धौल मारे, उस समय आपको ऐसा दिखाई दे कि 'ओहोहो! चंदूभाई जैसे अच्छे इंसान को भी यह धौल मार रहा है!' आपको दिखाई दे, फिर भी आप मानते हो कि, 'भुगतने वाला चंदूभाई है इसलिए भूल तो उसकी खुद की ही है न?' यह सब आपको एक्ज़ेक्ट दिखाई दे और सामने वाला शुद्ध दिखाई दे, वह शुद्ध ही है। जितने शुद्ध आप हो, उतना ही शुद्ध वह भी है। भले ही उसने ज्ञान नहीं लिया लेकिन वह शुद्ध ही है। उसे यदि अशुद्ध मानोगे तो आपका उपयोग बिगड़ जाएगा। तब कहता है कि 'वह आत्मा तो शुद्ध ही है लेकिन बाहरी भाग? बाहरी भाग तो उसका खराब ही है न?' तब कहेंगे, 'नहीं, आपके लिए वह खराब नहीं है। उसके अपने लिए खराब है'। 'तब साहब, इसमें न्याय कहाँ है, बताइए। हमारे लिए क्यों खराब नहीं है? धौल मारता है, और फिर खुश होकर मारता है।' तब कहे, 'ऐसा उसके खुद के लिए खराब है लेकिन आपके लिए वह खराब नहीं है'। क्योंकि आपको समझ लेना चाहिए कि 'यह कर्म के उदयाधीन मार रहा है। किसका कर्म? जिसे धौल लगती है, उसका कर्म। तब फिर उसका क्या दोष?' बताइए! कोई तरीका तो होगा न? इस तरह निर्दोष देखा जाए, तब वह शुद्ध उपयोग है। जब आपको गालियाँ दे रहा हो, उस समय निर्दोष दिखाई दे, तब वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा।

'आपके हाथ में से वह हज़ार रुपये का बटुवा ले ले तो उसे दे देना चाहिए', ऐसा मत नहीं है। शायद कभी उस समय चंदूभाई उसे धौल लगाकर वापस ले भी ले, उसमें भी हर्ज नहीं है। लेकिन आपको यह पूरा सीन 'देखना' चाहिए। धौल मारे या फिर वह नाक दबाकर ले ले लेकिन आपको चंदूभाई को 'जानना' चाहिए कि चंदूभाई ने क्या किया और उस आदमी ने क्या किया? फिर भी उसमें अशुद्धता नहीं दिखाई देनी चाहिए, बस इतना ही। उसे कहते हैं, शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ यह 'देखना और जानना' ही रहा करे, इसी को शुद्ध उपयोग कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, वही शुद्ध उपयोग है। अंदर बुरे विचार आएँ कि 'ऐसा करो, वैसा करो', कुसंग के विचार आएँ, तो क्या-क्या आए, उन्हें आपने 'देखा और जाना' तो आपने फर्ज़ निभा दिया और तन्मयाकार हुए कि मर गए! 'देखने-जानने' का अर्थ क्या है कि तन्मयाकार न हो जाएँ।

बस की राह देखते हुए भी शुद्ध उपयोग

जिसे यह ज्ञान मिला है, उसे तो एक मिनट की भी फुरसत नहीं मिलती। मुझे एक मिनट भी फुरसत नहीं मिलती, एक सेकन्ड भी फुरसत नहीं है न! बस के लिए खड़े हों तो जब तक बस नहीं आए तब तक लोग इधर-उधर देखते रहते हैं। इधर देखते हैं, उधर देखते हैं, यों बगले झाँकते रहते हैं। आपको वहाँ खड़े रहकर इधर-उधर बगले झाँककर क्या करना है? आपके पास तो सारा ज्ञान है न! इसलिए जो भी खड़े हैं, उनमें शुद्धात्मा 'देखना' है। आते-जाते हुए लोगों में शुद्धात्मा 'देखना'। बसें जा रही हों, उनमें जो लोग बैठे हों, उनमें शुद्धात्मा 'देखना'। ऐसे करते-करते अपनी बस आ जाएगी। यानी सभी में शुद्धात्मा देखेंगे और हम अपने शुद्धात्मा का ध्यान करते रहेंगे तो अपना टाइम व्यर्थ नहीं जाएगा। जबकि लोग तो बगले झाँकते रहते हैं। इधर देखते हैं, उधर देखते हैं और फिर अंदर ही अंदर बेचैन होते

रहते हैं। बस नहीं आए तो बेचैनी होती है। लेकिन आप अपना उपयोग क्यों बिगाड़ो? यदि शुद्धात्मा देखते रहोगे तो कितना आनंद होगा! अब हथियार प्राप्त हुआ है तो उपयोग करना चाहिए न! वर्ना हथियार पर ज़ंग लग जाएगा!

प्रश्नकर्ता : यह शुद्ध उपयोग की जो बात है कि रास्ते में रिलेटिव-रियल देखते-देखते जाएँ, तो फिर वह अगर ज़्यादा देर चले तो उससे भी ऊब जाते हैं, फिर और कुछ माँगता है।

दादाश्री : ऊब जाते हो फिर भी आपको उसे जानना पड़ेगा न! उसे जानोगे तो ऊब खत्म हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। ऊब जाते हैं, उसे जानते हैं लेकिन इस शुद्ध उपयोग में रहने के बावजूद भी ऊब जाते हैं तो एक्चुअली (वास्तव में) ऐसा क्यों होता है?

दादाश्री : यह शुद्ध उपयोग वास्तविक शुद्ध उपयोग नहीं है। उसमें मन मिला हुआ रहता है, वर्ना ऊब ही कैसे सकते हैं? शुद्ध उपयोग में कैसे ऊब सकते हैं? जहाँ शुद्ध ही देखना है, वहाँ! शुद्ध उपयोग का तरीका बदलने की ज़रूरत है फिर।

प्रश्नकर्ता : इस उपयोग में रहने से आनंद उत्पन्न होना चाहिए। उस आनंद से ऊबेंगे नहीं।

दादाश्री : शुद्ध उपयोग उसे कहते हैं कि जिससे आनंद हो। जिससे ऊब जाएँ, वह शुद्ध उपयोग नहीं है। वहाँ रोक देना चाहिए, (कुछ) भूल होने लगी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपने कहा कि उसमें मन एकाकार हो जाता है इसलिए ऊब जाते हैं, तो शुद्ध उपयोग में रहते समय मन उसमें एकाकार हो जाए तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मन को देखते रहना है। मन को आप जानते हो कि मन अभी कौन सी स्थिति में है!

ज्ञान के पश्चात् जागृति की थ्री शिफ्ट

आपको तो मनुष्यपन का लाभ उठाना है क्योंकि ऐसा विज्ञान पाने के बाद कोई उपयोग नहीं चूकता। और यह तो एक शिफ्ट का नहीं, थ्री शिफ्ट का कारखाना है। इस ज्ञान के मिलने के बाद क्या एक शिफ्ट हो सकती है?

प्रश्नकर्ता : नहीं। वह तो ऐसा लगता है जैसे नींद खो कर रतजगा मोल ले लिया हो।

दादाश्री : नींद क्या है? आत्मा को बोरे में डालकर ऊपर से बाँध देना, वह। अज्ञानी को ऐसी छूट है कि आत्मा को बोरे में डालकर सो जाए। लेकिन यह ज्ञान पाने के बाद, थ्री शिफ्ट (तीन पालियाँ) करनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो क्या दादा, हमें ऐसी छूट है?

दादाश्री : तो क्या सिर्फ मुझ अकेले को ही छूट है ऐसी सब? यदि आपको वह शाश्वत सुख, अलौकिक सुख चाहिए, तो वह शुद्ध उपयोग का फल है।

तू उपयोग रखता है न? इन सभी को बहुत पसंदीदा भोजन मिले तब उस समय सभी का उसमें उपयोग रहता है या नहीं? फिर, क्या पैसे गिनने में उपयोग नहीं रहता तेरा? वह उपयोग कहलाता है। जागृति का एक ही जगह पर स्थिर हो जाना, वही उपयोग है। हर कहीं बिखर नहीं जाता।

प्रश्नकर्ता : उसे तो आपने बाहर का उपयोग कहा न! तो अंतिम दशा वाला ज्ञानी का वह उपयोग तो कुछ अलग ही बताया था न आपने?

दादाश्री : यदि बाहर का उपयोग रहे तब भी बहुत उत्तम कहा जाएगा। तभी वह ज्ञान उपयोग आएगा। यदि बाहर का उपयोग ही नहीं रहता फिर वह ज्ञान वाला उपयोग कैसे आ पाएगा?

प्रश्नकर्ता : दादा, वह जो बाहर का उपयोग है, वह किस प्रकार से... यानी कि, उदारहण के तौर पर सुबह से जो सारी प्रकियाएँ शुरू हो जाती हैं, देह की, वाणी की, मन की, तब उनसे अलग रहकर देखने और जानने की क्रिया और खुद यह स्वरूप है, इस प्रकार से जागृति को एकाग्र रखना, क्या वही उपयोग है?

दादाश्री : उसे तो ज्ञान कहेंगे। यदि तू खाना बनाते समय इधर-उधर झाँके, तो क्या तुरंत ही कोई तुझे नहीं कहेगा कि, 'ठीक से ध्यान रख, वर्ना खाना बिगाड़ देगा।' ठीक से ध्यान रखने को ही उपयोग कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो वह खाना बनाते हुए पूरा उपयोग रखना पड़ता है न? खाना बनाते हुए?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : तो अपना यह शुद्ध उपयोग है और यदि खाना बनाने में उपयोग जाए तो उपयोग खाना बनाने में इस्तेमाल हुआ, ऐसा कहा जाएगा न?

दादाश्री : अवश्य।

प्रश्नकर्ता : यानी वही कि उसका इस्तेमाल होना चाहिए या नहीं? वास्तव में उपयोग रखे बिना खाना बन ही नहीं सकता। यदि ऐसा ही है तो फिर वहाँ उपयोग किस तरह से रखें?

दादाश्री : खाना बनाने में उपयोग रखने का अर्थ डायरेक्ट ऐसा नहीं है। वह तो, खाना बनाने में उपयोग यानी क्या? पहले यह जानना चाहिए कि खाना कौन बना रहा है? बनाने वाला कौन है, वह जानना चाहिए। खुद कौन है, वह जानना चाहिए और खाना बनाने वाला क्या ध्यान रख रहा है, वह देखना चाहिए। वह सभी कुछ एट ए टाइम रहे तो, वही शुद्ध उपयोग है।

प्रश्नकर्ता : यानी खाना बनाने की क्रिया या भोजन बनाने का

पूरा व्यवहार बाधक नहीं है, लेकिन यदि यह जागृति नहीं रहे तो वह बाधक है।

दादाश्री : हाँ, वही बाधक है न!

प्रश्नकर्ता : वह सब होना तो व्यवस्थित के ताबे में हुआ न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : दादा, जब हम आरती करते हैं, उस समय आँखें बंद होने पर भी ऐसा दिखाई दे कि आपकी आरती उतर रही है या सीमंधर स्वामी का दिखाई दे या फिर एक-एक अक्षर पढ़ रहे हों, ऐसा दिखाई दे तो वह कैसा उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : ऐसा सब तो अज्ञानी भी करते हैं। आरती करने जाए न, तो आँखें मूँदने पर सब दिखाई देता है, दीया कर रहा हो, वह भी। उपयोग में तो यह जो बताया है, उस अनुसार होना चाहिए। कर्ता अलग और ज्ञाता अलग। कर्ता अपने स्वभाव में है या नहीं, या फिर कर्ता अजागृति में है, वह भी देखना है। चंदूभाई अपना उपयोग रखे और उस पर आत्मा अपना उपयोग रखे। दोनों साथ में होगा, तब कहा जाएगा कि उपयोग रहा।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो मशीनरी में उपयोग रखना पड़ता है या पैसे गिनने में उपयोग रखना पड़ता है या खाना बनाने में उपयोग रखना पड़ता है तो इन सभी उपयोग में... यानी अंदर कैसा रहना चाहिए कि यह खत्म हो जाए तो अच्छा, यह नहीं होना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : नहीं। ऐसा सब नहीं। उपयोग रखने में तो कुछ भी बाधक नहीं है। मशीन के पुर्ज़े लगाते समय उपयोग रह नहीं पाता न। बाकी, उपयोग रखने वाले को तो कुछ भी बाधक नहीं है। 'ऐसा होना चाहिए और ऐसा नहीं होना चाहिए', वह तो जागृति है, वह उपयोग नहीं है।

यदि आत्मा, आत्मा का काम करता रहे और चंदूभाई, चंदूभाई

का काम करते रहें, चंदूभाई का मन, मन का काम करता रहे, सब अपने-अपने धर्म निभाएँ, तो वही उपयोग है।

इस तरह चूक जाते हैं उपयोग, पढ़ते समय

यह चित्रलेखा मैगेज़ीन यहाँ कहाँ से?

प्रश्नकर्ता : इसमें मैं कोई अच्छी कहानी पढ़ रहा होऊँ तो उस समय मुझे कैसा ध्यान रखना चाहिए?

दादाश्री : पढ़ने में ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो वह उपयोग नहीं कहलाएगा न?

दादाश्री : हाँ, उतना चूक गए, उतना फिर से करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : तो क्या इसका मतलब यह है कि पढ़ना ही नहीं चाहिए?

दादाश्री : 'पढ़ना नहीं चाहिए', क्या वह सत्ता अपने हाथ में है?

प्रश्नकर्ता : तो दादा, वह तो पढ़ ही लेते हैं, उसमें मज़ा आता है...

दादाश्री : नहीं, लेकिन पढ़ते समय यदि कभी ऐसे पढ़ते जाएँ और एक ओर जागृति भी रखते जाएँ कि यह गलत हो रहा है, ऐसा नहीं होना चाहिए। पढ़ते जाओ, लेकिन मन में ऐसा रहना चाहिए कि ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, जब आप पढ़ते हैं तब आप कैसे पढ़ते हैं?

दादाश्री : मेरा तो सब ऐसा ही रहता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए लेकिन फिर भी ऐसा पढ़ रहा हूँ।

शास्त्र पढ़ते समय उपयोग

सिर्फ शास्त्र ही पढ़ते रहोगे तो फिर शास्त्र बन जाओगे आप।

जो भी करोगे उसी रूप हो जाओगे। फिर पुस्तक बन जाओगे। आत्मा बने हो न, तो वापस पुस्तक बन जाओगे!

हाँ, जैसा चिंतन करता है वैसा ही बन जाता है। तो आपको क्या करना है? जो हो रहा है, उसे देखते रहना है, लेकिन वह कैसे? ज्ञानपन के दरवाज़े पर खड़े रहना है। जिसे हम लोग प्रज्ञा कहते हैं। प्रज्ञा यानी क्या? ज्ञानपन का दरवाज़ा, वह इस तरह अलग दिखाती है कि यह होम (स्व) है और यह फॉरेन (पर)। फॉरेन में जाते ही वह हम से कहती है, 'फॉरेन गए।' तब फिर आप लौटकर प्रतिक्रमण कर लो कि 'अब नहीं।' तो अंत में वापस तो लौट ही जाते हो। 'फॉरेन चले' इस तरह चेतावनी देती है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : देती है।

दादाश्री : हाँ। तो बस। वह आपको चेतावनी दे और आप वापस लौट आओ, ऐसा करते-करते ही इसका हल आएगा। जो उपयोग 'पर' में चला जाता है, उसे वापस 'स्व' में डाल देती है। ऐसा करना है। बाकी सिर्फ एक के पीछे नहीं पड़ना है!

यदि अपना ज्ञान, ज्ञानपन के दरवाज़े पर खड़ा हुआ हो न, तो वहाँ वह ज्ञान सारा काम करता ही रहता है। अन्य उपयोग में जाते ही सावधान करता है जबकि अपने यहाँ तो ज्ञानी पुरुष के पास तो दूसरे किसी उपयोग में जाता ही नहीं है। चंदूभाई, चंदूभाई का कार्य करे और आप अपना कार्य करो, दोनों कार्य करते रहते हैं। यहाँ तो अपने आप अलग ही रहता है। अन्य किसी उपयोग में जाता ही नहीं। आपको शुद्ध उपयोग रखना नहीं पड़ता। यहाँ पर शुद्ध उपयोग रहता ही है। ज्ञानी पुरुष के पास सत्संग का फल है। शुद्ध उपयोग में ही रहता है, दखल ही नहीं होने देता!

उपयोग में रहने के लिए बाड़

प्रश्नकर्ता : अपने महात्मा जैसे-जैसे ज्ञान का उपयोग करते जाते हैं, वैसे-वैसे उनकी ज्ञान की अवस्था बढ़ती जाती है, या फिर

ज्ञान प्राप्ति के बाद उपयोग नहीं रखने पर भी आपकी कृपा से ज्ञान में पूर्णता आती ही है?

दादाश्री : उपयोग में ही रहना चाहिए। उपयोग संसार में रहे और अपना ज्ञान बढ़ता रहे, ऐसा नहीं हो सकता। संसार *निकाली* चीज़ है। *निकाली* चीज़ में उपयोग नहीं रहना चाहिए। जो कुछ भी हो, उसे देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, तो वास्तव में उपयोग कैसे रखना चाहिए, वह समझाइए?

दादाश्री : पाँच आज्ञा ही वास्तव में उपयोग है। सभी में आप शुद्धात्मा देखो। 'यह फाइल है', ऐसा देखोगे, तभी कहा जाएगा कि शुद्धात्मा देखा या फिर शुद्धात्मा देखोगे तब भी फाइल हो जाएगा। यानी कि ये पाँच आज्ञाएँ ही उपयोग है। इससे फिर अंदर ज्ञान का उपयोग और भी ज़्यादा बढ़ता जाएगा। वास्तविक उपयोग बढ़ता जाएगा, यह बाड़ है उपयोग में रहने के लिए। उपयोग रखे बिना ज्ञान कभी भी बढ़ ही नहीं सकता। उपयोग यानी... अब तक उपयोग संसार में था, आत्मा संसार में बरतता था, जबकि वह आत्मा अब आत्मा में बरतता है, वही उपयोग है। आत्मा, आत्मा में कैसे बरतेगा? तब कहते हैं, बच्चा दूध गिरा रहा हो तो उसे देखता रहे। वहाँ जाकर रोकता ज़रूर है। तब आपको चंदूभाई से कहना है कि बेटे को रोको लेकिन कषाय मत करना। इमोशनल नहीं होना है।

विशेष स्पष्टता शुद्ध उपयोग की

प्रश्नकर्ता : यहाँ आपके सानिध्य में बैठकर मन में शक्तियाँ माँगें कि, 'दादा, मुझे निरंतर पाँच आज्ञा पालन करने की शक्ति दीजिए', तो क्या उसे शुद्ध उपयोग कह सकते हैं?

दादाश्री : शुद्ध उपयोग के नज़दीक का कह सकते हैं। वह शुद्ध उपयोग का सही साधन कहा जाएगा। शुद्ध उपयोग तो शुद्ध ही है न! तू कौन सी शक्तियाँ माँगता है? शुद्ध उपयोग का साधन कहलाता

है वह। इस साधन से आप शुद्ध उपयोग की ओर जा सकते हो। शुद्ध उपयोग तो निरा शुद्ध ही होता है। कुछ माँगना भी नहीं होता न! त्याग करना या छोड़ना भी नहीं है। कोई दखलंदाज़ी नहीं रहती, सिर्फ शुद्ध उपयोग ही। पूरे संसार में शुभाशुभ उपयोग है और यह शुद्ध उपयोग है।

प्रश्नकर्ता : दादा, स्व-परिणाम और पर-परिणाम को जुदा करना, क्या वह उपयोग कहलाएगा, एक्ज़ेक्टली?

दादाश्री : खुद के होम डिपार्टमेन्ट के दरवाज़े पर खड़े रहकर, होम या फॉरेन का जो कुछ भी आए तो, यदि होम का आए तो अंदर, फॉरेन का आए तो अंदर नहीं, ऐसा रखो।

प्रश्नकर्ता : तो वह एक्ज़ेक्ट उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : वह जो है न, शुरुआत का एक्ज़ेक्ट उपयोग है, वह स्थूल उपयोग है।

प्रश्नकर्ता : वह भी स्थूल में आता है!

दादाश्री : सूक्ष्म का तो आपको पता भी नहीं चल सकता। सूक्ष्म यदि आपको समझाऊँ तब भी समझ में नहीं आएगा। क्योंकि वह ऐसा नहीं है कि शब्दों से समझा जा सके। वह तो, जब आपको खुद को अनुभव होगा, वास्तव में तभी समझ में आएगा। आपको बहुत जानने की ज़रूरत भी नहीं है। आपके लिए तो वह स्थूल तक आ जाए तब भी बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : स्थूल का परिणाम फिर सूक्ष्म की ओर जाएगा?

दादाश्री : वही सूक्ष्म की ओर है न! यहीं पर साफ करना है। इतना साफ कर दिया तो सूक्ष्म तो अपने आप ही आएगा। हमें करने नहीं जाना पड़ेगा। वह तो अपने आप ही आएगा। यह तो ऐसा है कि इसका पारायण नहीं हुआ है इसलिए वह नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : इस अभ्यास से आ सकता है न, उपयोग?

दादाश्री : मनुष्य को अभ्यास तो चाहिए न? अभ्यास यानी जागृति में खुद तैयार रहना।

प्रश्नकर्ता : वह क्या बताया?

दादाश्री : जागृति यों ही चली जाती है। गलत हुआ, गलत हो रहा है लेकिन कुछ अभ्यास नहीं करता। जागृति दिखाती ही रहती है न, कि गलत हो रहा है। तुझे जागृति कुछ दिखाती है?

प्रश्नकर्ता : दिखाती है ऐसा सब।

दादाश्री : दिन भर? जागृति कितनी बढ़ गई! दुनिया खोजती है लेकिन ऐसी जागृति नहीं रह सकती। निरंतर वह जागृति रहे, वैसी जागृति दी है मैंने आपको। उस जागृति का उपयोग करना है। ज़रा पहले की आदत पड़ी हुई है न! फिसलन वाली जगह पर फिसलने की आदत पड़ी हुई है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही बात है।

दादाश्री : तो वहीं पर ज़रा जागृति रखी कि यह फिसलन वाली जगह है और फिसल सकते हैं, और फिर भी उदय में आया है, तो हमें कहना है कि ''चंदूभाई तू फिसल रहा है और 'मैं देख रहा हूँ''। इसमें हर्ज है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : लेकिन यह तो फिसल ही जाता है, वह खुद भी चंदूभाई के साथ फिसल जाता है। अतः वहाँ पर उपयोग रखना है। जिस प्रकार कुएँ पर खड़ा आदमी, अपनी वाइफ को याद करेगा, बच्चों को याद करेगा या कुएँ को याद करेगा? यदि कुएँ पर बैठना पड़े तो सावधान रहेगा न?

या फिर समुद्र के बीच कोई दो फुट का रास्ता बनाया हुआ हो, जिसके दोनों ओर रेलिंग न हो, और उस पर से जाना पड़े, तो क्या उस समय वाइफ याद आएगी, लक्ष्मी याद आएगी या बंगला याद आएगा?

प्रश्नकर्ता : कोई भी याद नहीं आएगा।

दादाश्री : हं, उसी को उपयोग कहते हैं। दादा ने सिद्धांतपूर्वक एक अवतारी मोक्षमार्ग दिया है, तो फिर उस सिद्धांत को हमें पकड़े रखना चाहिए। उपयोग उसी में रखना चाहिए और वह मरण तो यदि वहाँ समुद्र में गिर जाए तो एक ही जन्म का मरण होगा, जबकि यहाँ लाखों जन्मों का मरण हो जाता है। भीतर तो चंदूभाई से कहना चाहिए कि 'सीधे रहो'।

उपयोग चूकने के स्थान...

प्रश्नकर्ता : उपयोग चूकने की मुख्य जगह कौन-कौन सी हैं?

दादाश्री : हमें अंदर से, बाहर से जहाँ से मिठास आती है न, वहाँ उपयोग चूक जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : राग वाली जगह पर?

दादाश्री : बाहर से मिठास आती है न, यदि कुछ बातें चल रही हों और आपको अच्छी लगें तो फिर उपयोग चूक जाते हो, या फिर बहुत उमस हो और एकदम से हवा चले, तब भी उपयोग चूक जाते हो। अंदर हो फिर भी बाहर आ जाता है, 'वाह! बहुत अच्छी हवा चल रही है।' वह बाहर का सुख भोगा न! सच्चा जागृत मनुष्य वहाँ उपयोग नहीं चूकता! बाहर यदि बातें चल रही हों और आपको उसमें मिठास आने लगे तो फिर वहाँ उपयोग चूक जाता है। मिठास नहीं आए तो उपयोग में रहता है। बाहर मिठास लेने जैसा है भी क्या? सारे कंकड़ ही हिलाने हैं। मूर्ख लोगों के सौदे जैसा है यह। मूर्ख लोग आमने-सामने सौदे करें, तो उससे उसे क्या फायदा? यानी ऐसा है यह सब!

प्रश्नकर्ता : यदि राग के परमाणु ज़्यादा चार्ज हुए हों तो उपयोग चूक जाते हैं न?

दादाश्री : ऐसा कुछ भी नहीं है। अपनी रुचि हो तो चूक जाते

हैं। रुचि नहीं हो और अपनी रुचि आत्मा में हो तो उपयोग चूकने का कोई कारण ही नहीं है। हवा चलने पर यदि तसल्ली हो तो उपयोग चूक गया। हवा चले तो हर्ज नहीं है लेकिन उस वक्त तसल्ली नहीं हो और बाद में कोई स्वादिष्ट चीज़ आए और उसमें टेस्ट आए तो उपयोग चूक जाओगे। हम ये सारी बातें आपको बता रहे हैं ताकि आपको कभी याद आए तब फिर उपयोग रह पाए। वैसी जागृति रहनी मुश्किल है न! यदि परेशान हो और हवा का झोंका आए तब, राहत हुई कि शुद्ध उपयोग चूक गए।

गाढ़ अनुभूति के बाद उपयोग सहज

प्रश्नकर्ता : एक बात निकली थी कि अज्ञान का जितना प्रबल अनुभव हुआ है, उतना ही प्रबल अनुभव ज्ञान का होना चाहिए।

दादाश्री : ज्ञान का गाढ़ अनुभव हो जाने पर फिर उपयोग नहीं रखना पड़ता, यों ही रहा करता है! जब तक गाढ़ अनुभव नहीं हो जाए, तब तक उपयोग रखना पड़ता है! उपयोग को पुरुषार्थ कहा जाता है और पुरुषार्थ पूर्णता तक कब पहुँचेगा? जब गाढ़ तक पहुँचेगा, तब पुरुषार्थ पूर्ण हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : तो जब अज्ञानता का अनुभव होता है, तब वह उपयोग रखना ज़रूरी है?

दादाश्री : उपयोग तो तभी रखना है न!

प्रश्नकर्ता : ताकि खुद उस अनुभव के असर में नहीं फँसे।

दादाश्री : खुद अपना उपयोग रखे न, तो फिर अज्ञानता के अनुभव के असर में नहीं फँसेगा। वह खुद का टाइम कहलाता है, समयसार कहलाता है। वह समय सारविहीन नहीं हो जाता। वर्ना समयसार नहीं कहलाएगा, पर-समय कहलाएगा। जितना आत्मा का उपयोग रहा, वह पूरा समयसार। जितने समय का उपयोग 'स्व' के लिए हुआ, वह पूरा समयसार, जितने समय का उपयोग 'पर' के लिए हुआ, वह पूरा पर-समय।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान का अनुभव किसे होता है और ज्ञान का अनुभव किसे होता है?

दादाश्री : अज्ञानता का अनुभव बुद्धि को होता है और अहंकार को होता है जबकि ज्ञान का अनुभव प्रज्ञा को होता है।

स्व-समय, पर-समय और शुद्ध उपयोग

प्रश्नकर्ता : स्व-समय वह, यह शुद्ध उपयोग ही है न?

दादाश्री : स्व-समय, वह शुद्ध उपयोग है। सर्वप्रथम स्व-समय की शुरुआत होती है। शुद्ध उपयोग आने से पहले स्व-समय में आता है क्योंकि वह समय आपने सिर्फ आत्मा के लिए ही बिताया है। अभी आत्मा प्राप्त हुआ नहीं है। आत्मा के लिए ही बिताया है इसलिए समयसार है। वह समयसार के रूप में आया जबकि शुद्ध उपयोग में तो समयसार रहता ही है। वह तो दीये जैसी स्पष्ट बात है। यह तो ऐसा है, सभी को शुद्ध उपयोग नहीं रहता, इसलिए बाहर के लोग भी समयसार कर सकते हैं, उतनी कमाई तो वे कर सकते हैं। बाहर के लोगों को हक़ है समयसार कमाने का। समयसार क्यों कहा है? क्योंकि जिस समय का सार के रूप में उपयोग हुआ अर्थात् आत्मा हेतु के लिए उपयोग हुआ, वह सारा समयसार और जितना जगत् हेतु के लिए उपयोग, वह सारा असार, पर-समय। समयसार नीचे के पद में आता है। क्योंकि अन्य सभी लोगों में शुद्ध उपयोग हो ही नहीं सकता न! तब पूछते हैं, समयसार कमाया जा सकता है या नहीं? तब कहते हैं, समयसार कमाया जा सकता है। यों कुछ भी करके दिनोंदिन उसके पास पूँजी बढ़ती जाती है। इस तरह विस्तार से समझेंगे न, तो आपको समझ में आ जाएगा।

...उनका ज्ञान, ध्यान मनोहारी

पूरा जगत् पर-उपयोग के प्रवाह में ही बह रहा है। उपयोग शुद्ध रहे तो समता रहती है। विषम परिस्थिति में भी समता रहती है। चारों ओर से राजा की सेना चढ़ाई कर दे, बम गिर रहे हों, चाहे

कितनी भी मुसीबतें आ जाएँ फिर भी समता नहीं जाती। सभी योग समत्वयोग करने के लिए हैं। यदि समत्वयोग नहीं हुआ हो तो जंगल में जाकर विलाप कर न! जी भर कर रोने दे!! जब ऐसा उपयोग रहे तो समता रहेगी ही। इसलिए वह वाक्य बोले कि 'शुद्ध उपयोग और समताधारी। ज्ञान, ध्यान मनोहारी।' उनका ज्ञान कैसा होता है? मन का हरण करे, ऐसा होता है। ध्यान कैसा होता है? मन का हरण करे, ऐसा होता है। '*कर्म कलंक कु दूर निवारी, जीव वरे शिव-नारी*' पार्वती नहीं, वह शिव-नारी नहीं है। लेकिन शिव-नारी अर्थात् मोक्ष। मोक्ष को चुनते हैं, ऐसा कहा है।

भीख पूजे जाने की

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो पूजे जाने की भीख है, वह कैसे जाएगी? उसके सामने किस तरह से एडजस्टमेन्ट लेना है? उसमें उपयोग किस तरह रखना है?

दादाश्री : वह तो, जब आप अपमान की आदत डाल दोगे, तब।

प्रश्नकर्ता : प्राप्त करनी है अयाचक दशा जबकि अंदर तो हर एक बात की भीख पड़ी हुई है।

दादाश्री : अयाचकपन को तो जाने दो न, लेकिन यदि भीख चली जाए तब भी बहुत हो गया। यह भीख तो, अब यदि आप किसी के कम्पाउन्ड में से होकर जा रहे हों और वह व्यक्ति गाली देने लगे तो रोज़ वहाँ से होकर जाना चाहिए, रोज़ गालियाँ खानी चाहिए लेकिन उपयोगपूर्वक सहन करना चाहिए। वर्ना, खुद को आदत पड़ जाएगी और ढीठ हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक सहन करना अर्थात् क्या?

दादाश्री : अगर कोई आपकी बहन को उठाकर ले जाए, तो उस उठाने वाले पर क्या आपको प्रेम आएगा? क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : द्वेष होगा।

दादाश्री : तो वह नींद में होता है या उपयोगपूर्वक? हंड्रेड परसेन्ट उपयोगपूर्वक, एकदम उपयोगपूर्वक।

फिर जब चोरी करने जाता है, तब वहाँ उपयोगपूर्वक जागृति रखता है या सोता है?

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक रहता है।

दादाश्री : अतः उपयोग को समझ जाओ। यहाँ पर तो उपयोग वाले ही काम आते हैं। जब कोई अपमान करे तब यदि ऐसा पता चले कि मुंह बिगड़ गया है, तो फायदा या नुकसान नहीं होता। नो लॉस, नो प्रॉफिट और यदि बाहर मुंह बिगड़ जाए तो नुकसान हो जाता है। नुकसान किसे होता है? *पुद्गल* को, आत्मा को नहीं और यदि बाहर मुंह नहीं बिगड़े, क्लियर रहे तो इसका मतलब आत्मा का आनंद रहा। आत्मा का फायदा होगा न!

प्रश्नकर्ता : यदि मुंह बिगड़ जाए तो *पुद्गल* को क्या नुकसान होता है?

दादाश्री : *पुद्गल* को तो नुकसान हो ही गया न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि वह जागृतिपूर्वक रहे तो उनका मुंह नहीं बिगड़ेगा।

दादाश्री : कितनों को तो, अपमान होने पर आज यदि उनका मुंह बिगड़ जाए, तो उसे खुद को पता चल जाता है। बाद में जब मैं पूछता हूँ कि, 'तुझे खुद को पता चला?' तब कहता है, 'हाँ! पता चला।' लेकिन ठीक कैसे करे? उसके बावजूद भी उसे ठीक कर देना है। अंत में सहज ही करना है। वैसा सहज तो, जब बहुत समय से सुनते हुए आए, तब सहज होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : कोई गालियाँ दे तो वापस उसके कम्पाउन्ड में से होकर जाना चाहिए लेकिन क्यों जाना चाहिए?

दादाश्री : यदि आप पैसे देकर किसी को रखोगे तो वह गालियाँ

नहीं देगा। और पैसे देकर सुनने से असर नहीं होगा। उससे कुछ नहीं होगा। वह तो यदि कोई कुदरती रूप से गालियाँ दे न, तो उत्तम शक्ति आएगी न! अत: यदि उस तरह की शक्ति की कमी हो तो आपको प्राप्त करने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : अभी आपने अपमान के सामने उपयोग रखना बताया, वह हमें समझ में आया लेकिन मान में जो उपयोग रखना चाहिए उस पर थोड़ा प्रकाश डालिए।

दादाश्री : मान दें, तब तो उपयोगपूर्वक, अर्थात् क्या कि 'ये किसे मान दे रहा है', वह समझना चाहिए। 'मुझे नहीं, ये तो मेरे पड़ोसी को मान दे रहा है, *पुद्गल* को दे रहा है।

प्रश्नकर्ता : जब कोई मान देता है तब मीठा लगता है न हमें! वह मिठाई की तरह मार देता है हमें!

दादाश्री : '*पुद्गल* का है', ऐसा कहोगे तो आप पर असर नहीं होगा न! लेना-देना नहीं है न आपको। मान-अपमान तो वह *पुद्गल* को दे रहा है, आपको नहीं। उसे कहते हैं जागृतिपूर्वक, उपयोगपूर्वक। चंदूभाई को मान दे तो उससे आपको क्या लेना-देना? कोई मान या अपमान करे तो इसे (*पुद्गल* को) सौंप देना, तो वह हितकारी होगा वर्ना हितकारी नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : अब, ऐसा मानना कि हमें मान दे रहे हैं, उसकी जगह पर अगर हम ऐसा रखें कि ये दादाजी को मान दे रहे हैं, आत्मा को मान दे रहे हैं, तो?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। वे चंदूभाई को दे रहे हैं ऐसा जानना चाहिए। दादा को लेना-देना ही क्या है? दादा को मान की ज़रूरत ही नहीं है न! आत्मा को मान की ज़रूरत ही नहीं है। यह सब टेली होना (तालमेल बैठना) चाहिए। उससे सहमत होना चाहिए, उसे कहते हैं तालमेल। तालमेल सहमति से ही होता है। हमें पता भी चलता है कि यह भूल हो रही है।

जगत् को जो अच्छा लगता है, वही आपको देगा। आपको उसकी आदत नहीं हो जानी चाहिए। मान दे तब भी नहीं, अपमान करे तब भी नहीं। अपमान करने के लिए यदि किसी को किराये पर रखोगे तो क्या उसमें मज़ा आएगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं, उसमें मज़ा नहीं आएगा।

दादाश्री : यदि नाटक में गालियाँ दे तो क्या उसका असर होगा? 'तू नालायक है, तू ऐसा है, तू चोर है, बदमाश है' कोई ऐसा कहे तो असर होगा? नहीं होगा। क्योंकि सेटिंग की हुई है।

बेकार की बातों में शुद्ध उपयोग चूक जाते हैं

प्रश्नकर्ता : यदि हम किसी मंदिर में दर्शन करने जाएँ और कोई अंदर जाने से मना कर दे। वह तो मना कर देता है। हम तो पाँच सौ रुपये खर्च करके वहाँ गए थे, और तब वह कहता है कि 'मंदिर में नहीं जा सकते' तो दिमाग़ खराब हो जाता है...

दादाश्री : हाँ। लेकिन क्या आपको शुद्ध उपयोग चूकना चाहिए? यदि छोटा बच्चा मना करे तब भी आप स्वीकार कर लो, तो फिर शुद्ध उपयोग रह सकता है। आपको क्या नुकसान होता है? जो नफा हो रहा है, उसे देखो!

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन ऐसे मना करता है जैसे वह मालिक हो वहाँ का...

दादाश्री : मालिक-नामालिक से हमें कोई एतराज़ नहीं है। करोड़ों जन्मों के बाद प्राप्त हुआ शुद्ध उपयोग, क्या उसे ऐसी बातों में खो देना चाहिए? भगवान तो, यदि कोई उनकी बेटी को उठा ले जाए, तब भी वे शुद्ध उपयोग न चूकें और आपको तो छोटी-छोटी बातों में, यह कोई ऐसी बात तो नहीं है न, कि बेटी उठा ले गया!

प्रश्नकर्ता : खुद कितना शुद्धात्मा में रहता है, उसे टेस्ट करने के लिए ये सभी निमित्त उपकारी ही कहे जाएँगे न?

दादाश्री : शुद्धात्मा में तो रहता है लेकिन शुद्ध उपयोग में कैसे रहेगा? शुद्ध उपयोग क्या है? जब दोषित व्यक्ति निर्दोष दिखाई दे, तो वही शुद्ध उपयोग है। कोई अपनी बेटी को उठा कर ले जा रहा हो, जब ऐसा अपराधी भी निर्दोष दिखाई दे, तो वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा। क्योंकि वास्तव में, रियली स्पिकिंग कोई किसी की बेटी भी नहीं है और कोई किसी का बाप भी नहीं है। यह सब तो भ्रांति है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यदि यह सब भ्रांति है तो वह कौन है मंदिर में जाने से मना करने वाला? और हम कौन हैं जाने वाले?

दादाश्री : वह बेचारा भ्रांति वश मना करता है और आपको भ्रांति वश गुस्सा आता है। बिना भ्रांति वाला व्यक्ति मना ही नहीं करेगा! मेरी उपस्थिति में एक बार सभी को किसी मंदिर में से वापस जाने को कहा तो सभी समता में रहे। वे सारे पचास लोग क्या यों स्थिर नहीं रहे थे? उस समय शुद्ध उपयोग रहा था। उसका दोष नहीं दिखाई दिया, तो काम हो गया न!

पैसे में कितना पक्का उपयोग?

प्रश्नकर्ता : महावीर भगवान ने तो गौतम स्वामी से कहा था, '*समयम् गोयम् मा पमायये*', यानी एक समय के लिए भी प्रमाद मत करना। इतना अधिक जोखिम है?

दादाश्री : जोखिम है न! पराये में हस्तक्षेप करके उसमें आपने क्या कमाया? आपकी कमाई तो बंद हो गई न! खुद के व्यापार में ही सतर्क रहना है। लोभी हमेशा अपने निजी व्यापार में बहुत सतर्क रहता है, उसी तरह शुद्ध उपयोग का लोभ रखना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : खुद के उपयोग का?

दादाश्री : हाँ, लोभी अपने व्यापार में बहुत सतर्क रहता है, वह मैंने देखा है। यहाँ बैठा हुआ हो, फिर भी समय होने पर कुछ

भी करके बहला-फुसलाकर निकल जाता है। बहुत पक्का होता है। मुझे भी बुरा नहीं लगता न! ऊपर से ऐसा कहता है कि, 'साहब, दिन भर कमर बहुत दर्द करती है', यों तरह-तरह का बोलता है और व्यापार पर चला जाता है। हम समझते हैं कि घर पर सोने गया होगा। उसके लोभ का रक्षण करने के लिए कुछ भी कर सकता है, वह। उसी तरह इसके लोभ के लिए कुछ भी किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : उपयोग की वह एक्ज़ेक्टनेस पकड़ में कैसे आ सकती है?

दादाश्री : जब मशीनरी रिपेयर करने जाना पड़े, तब तुझे मशीनरी के पार्ट्स याद आते हैं, उसका सब याद आता है। तो यों अंदर उपयोग चलता रहता है, जब उसका उपयोग उसमें से दूसरी जगह चला जाता है तब वह (मशीनरी वाला) उपयोग पूरा बिगड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे तो, बिगड़े हुए उपयोग में भी बिगड़ा। मशीनरी का काम बिगड़ा हुआ उपयोग कहा जाता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। यह तो उदाहरण दे रहा हूँ। सिमिली दे रहा हूँ कि इसका यह जो उपयोग रखता है, उस मशीनरी में उसका उपयोग निरंतर चलता रहता है। उसमें से यदि वापस बाहर निकल जाए तो आपको पता चलता है, उससे बल्कि सब उलझ जाता है। या फिर जब बैंक के पैसे गिनते समय बेटा सामने आ जाए तो वह चिढ़ जाता है कि, 'यह साला...' तब वह गिनते-गिनते भूल जाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, भूल जाता है, गिनने में भूल हो जाती है।

दादाश्री : भूल हो जाती है। इसलिए उस पर चिढ़ता रहता है। जब वह सामने से नहीं हटता तब वह उपयोग चूक जाता है, वह उसे अच्छा नहीं लगता। लेकिन पैसों के बारे में उपयोग नहीं चूकते। इतने समझदार हैं वे। यों सारा जगत् सिर्फ पैसों के बारे में शूरवीर है। उसमें उपयोग नहीं चूकते। अन्य सभी बातों में उपयोग चूक जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : पैसे गिनते समय यदि गिनने में भूल नहीं होती, इसका मतलब कि उपयोग है। उसी तरह होम डिपार्टमेन्ट के बारे में कैसा है?

दादाश्री : निरा उपयोग चूके न! अतः यह आर्किटेक्ट की जो डिज़ाइन होती है न, उस डिज़ाइन पर लकीरें खींचने जैसा लगता है अंदर। तुरंत ही पता चल जाता है कि उपयोग चूक गया, दुःख होता है।

प्रश्नकर्ता : वह तो परिणाम बताया कि उपयोग चूके, इसलिए ऐसा परिणाम आता है।

दादाश्री : हं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन खुद को कैसे पता चलेगा कि एक्ज़ेक्ट उपयोग रहा? उस प्रकार का इसमें क्या है?

दादाश्री : चित्त इधर-उधर नहीं हो, वह देखना है। हमारा चित्त तो जैसे बीन के सामने साँप बैठा रहता है, वैसे ही बैठा रहता है। वैसा रहना चाहिए। फिर उपयोग नहीं हटेगा।

जब संयोगों का दबाव आता है तब उपयोग को धकेल देता है। न जाने कहाँ चला जाता है फिर। तब फिर मन में ऐसा भी होता है कि अरे! यहाँ उपयोग चूक गए। उपयोग चूक जाता है, उसे भी फिर जानने वाला जानता है।

प्रश्नकर्ता : जानने वाला जानता है इसलिए फिर से वह संधान किया जा सकता है न?

दादाश्री : हं, वापस फिर से जॉइन्ट कर लेता है। उदयाधीन नाव मार्ग बदल देती है, लेकिन वापस फिर वह निर्धारित रास्ते पर ही ले जाता है। ऐसा कुछ होता है न? उदयाधीन बदल जाती है। यदि हवा इस ओर की हो न, तो दिशा बदल जाती है!

पढ़ते समय भी शुद्ध उपयोग

प्रश्नकर्ता : पढ़ते समय किसी चंचल नामक व्यक्ति और शांता नामक व्यक्ति का उल्लेख आए तो उस समय आप क्या पढ़ते हैं?

दादाश्री : हाँ, उस समय उनके शुद्धात्मा आदि सब हमारी जागृति में रहता है। चंचल अर्थात् हमारी दृष्टि उसके शुद्धात्मा पर ही होती है। जब कोई आपका नाम ले तो हमारी दृष्टि चंदूभाई के शुद्धात्मा पर रहती है। हमें उतनी अजागृति नहीं रहती, जागृति रहती है लेकिन उपयोग इसमें और जागृति, ये दोनों एक साथ रहते हैं। लेकिन वह शुद्ध उपयोग नहीं कहलाता। उपयोग अन्य कहीं पर न रहे, वही शुद्ध उपयोग है। अन्य कहीं उपयोग न रहे और जागृति रहे तो वह शुद्ध उपयोग है।

प्रश्नकर्ता : उस स्टेज तक पहुँचने में तो बहुत देर लगेगी न?

दादाश्री : अतः हमारा ऐसा कुछ बाकी है न! ज़रा सा बाकी है, बहुत कम। वह तो नहीं के बराबर है। आपको करना ही क्या है? आपको यहाँ कुछ स्पर्श ही नहीं करता न! स्पर्श करे उसे झंझट!

शुद्ध उपयोग, बोलते समय भी

हम यह जो बोल रहे हैं, वह उपयोगपूर्वक है। यह रिकॉर्ड बोलती है तब उस पर हमारा उपयोग रहता है कि क्या-क्या भूल है और क्या नहीं? स्याद्वाद में क्या भूल हुई उसे हम देखते रहते हैं बारीकी से और ये जो बोल रहे हैं, वह रिकॉर्ड है। लोगों में भी रिकॉर्ड ही बोलती है, लेकिन वे मन में ऐसा मानते हैं कि, 'मैं बोला'। हम निरंतर शुद्धात्मा के उपयोग में रहते हैं, आपसे बात करते-करते भी।

प्रश्नकर्ता : दो *लक्ष* रहते हैं?

दादाश्री : नहीं, दो *लक्ष* नहीं रहते। *लक्ष* एक ही रहता है। बातें करते हैं, उसमें मुझे कुछ नहीं करना होता। हम तो यही देखते

रहते हैं कि बातों में क्या हो रहा है। हम एक घड़ी भी, एक मिनट भी उपयोग से बाहर नहीं रहते। आत्मा का उपयोग रहता ही है।

जब पैरों में तेल लगाते हैं उस समय हम अपने आत्मा के उपयोग में होते हैं। क्योंकि हमें क्या? तेल लगाने वाले लगाते हैं।

महात्माओं का शुद्ध उपयोग

शुद्ध उपयोग, वह स्वतंत्र कहा जाएगा, वह खुद की स्वतंत्रता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, तो फिर आपने जिन्हें यह ज्ञान दिया है, उन महात्माओं की भी वही दशा रहती है?

दादाश्री : वही दशा रहती है। लेकिन महात्माओं के पास जमा किया हुआ सामान बहुत है न, उसका *निकाल* तो करना पड़ेगा न? तभी होगा न! मेरे पास जमा किया हुआ सामान नहीं है इसलिए चल रहा है। जमा किए हुए सामान को छोड़ ही देना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : वह रिलेटिव में ठीक है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन रिलेटिव के जमा किए हुए सामान का *निकाल* करने में उपयोग चूक जाते हैं। उस हद तक सारा चूक जाते हैं। अब उपयोग यानी क्या कि आप व्यापार के काम में लगे हुए हों, उपयोगपूर्वक व्यापार के विचार में ही हों और उस समय यदि कोई ललचाने वाला व्यक्ति आ मिले, ऐसा जो आपके मन को ललचा दे, तो वहाँ आपका उपयोग बदल जाता है! इच्छानुसार उपयोग नहीं रह पाता। उसी तरह यह आत्मा का शुद्ध उपयोग निरंतर नहीं रह पाता। ऐसा कुछ कर्म का उदय आ जाए तो फिर हट जाता है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी के अलावा किसी में भी यह निरंतर नहीं रह सकता।

दादाश्री : नहीं, पर आप भी ज्ञानी ही हो। लेकिन जब तक यह माल भरा हुआ है तब तक आपकी लिमिट है, अनलिमिटेड नहीं

है। आप ज्ञानी ही हो, आपको ज्ञानी मानना तो है, लेकिन कहना नहीं है कि 'ज्ञानी हूँ मैं'। वर्ना पूछने आएँगे और रोज़ दस लोग आकर आपके पास बैठेंगे। इसका मतलब क्या, उसका मतलब क्या, तो फिर परेशानी हो जाएगी! और अगर मैं कहूँ कि, 'ज्ञानी हूँ', तो मुझे कोई दिक्कत नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : उसमें उपयोग कैसे चूक जाते हैं?

दादाश्री : ऐसा धीरे-धीरे निरंतर होता रहेगा। रोड पर जो गाड़ियाँ आती-जाती हैं, उनके कारण आप चूक जाते हो और जब उनका हिसाब खत्म हो जाएगा, तब फिर से सामने का दिखाई देने लगेगा। तब तक कहा जाएगा कि 'उपयोग नहीं रहा', लेकिन फिर भी उपयोग है। क्योंकि उपयोग नहीं रहा, उसे भी जानता है इसलिए उपयोग है। यानी फिर वह भी उपयोग है।

यानी ऐसा शुद्ध उपयोग, यह जो हम बताते हैं, ऐसा शुद्ध उपयोग तीर्थंकरों के अलावा अन्य किसी का भी नहीं था और आपका वैसा होने को है। यह उपयोग किस कारण से नहीं रहता, वह भी आप जानते हो। उपयोग नहीं रहता, वह भी आप जानते हो न! वह भी उपयोग है आपका।

शुद्ध उपयोग, निरंतर रहना चाहिए। जितना रहा उतना सही। बाकी, थोड़ा-बहुत कम हो सकता है क्योंकि फाइल का *निकाल* तो करना होता है न! लेकिन वह शुद्ध उपयोग निरंतर रहना चाहिए। यह मार्ग ही शुद्ध उपयोग का है न! जिस मार्ग पर कर्म नहीं बंधते, वह मार्ग शुद्ध उपयोग वाला कहलाता है। जिसमें कर्म बंधन हो वह शुभ उपयोग वाला मार्ग कहलाता है।

शुद्ध उपयोग में रहने की सेटिंग

बस में बैठकर कहीं जाते हो तब बस में क्या करते हो? क्या देखते रहते हो?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा देखना याद आता है लेकिन साथ-साथ ऐसा भी रहता है कि बस कैसे चला रहा है, कैसी बस है। ऐसा सब देखते हैं।

दादाश्री : यह क्लीनर ऐसा कैसा है? देखो, ये लोग ऐसे धक्का मार रहे हैं, लोगों को ऐसा कर रहे हैं। जैसे सभी का सुपरवाइज़र न बना रखा हो आपको! हम क्या करते होंगे?

हम तो उपयोग में ही रहते हैं, अन्य कोई झंझट ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : आप उपयोग में कैसे रहते हैं?

दादाश्री : बाह्य रमणता रहती ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी अंदर की स्व-रमणता कैसी होती है?

दादाश्री : वह तो वास्तविक ही होती है न! उसमें कहने जैसा कुछ है ही नहीं न! स्व-रमणता नहीं रहती, लेकिन अगर ऐसा *लक्ष* रहे कि स्व-रमणता करनी है, तब भी वह सेकन्डरी स्टेप है।

पूरे दिन आप उपयोग सेट करके रखो। अगर यहाँ से आपको कहें न कि 'आप जाओ' और आप दस मिनट बाहर बैठते हो तब भी आपको अपनी वह जागृति जहाँ थी वहीं से वापस सेट कर लेनी है। वहाँ से वापस शुरू हो जाएगी, वर्ना बेकार ही इधर-उधर झाँकते रहोगे। यदि गाड़ी में बैठता है तो गाड़ी में व्यर्थ इधर-उधर झाँकता रहता है!

प्रश्नकर्ता : दिन भर ऐसा रहता तो है कि उपयोग में रहना है लेकिन उस ओर रह नहीं पाते हैं।

दादाश्री : वह बात अलग है कि रह नहीं पाते लेकिन उतना भी अच्छा कहा जाएगा न, कि *लक्ष* में रहता है! 'मैं क्यों आया हूँ', यदि ऐसा होने लगा तो तैयारी हो गई न। ट्रेन में बैठो तो ट्रेन के डिब्बे में जितने भी पैसन्जर हों, उनके शुद्धात्मा देखते रहो। वह निरा उपयोग

ही कहा जाएगा। आज्ञा में रहना उपयोग कहा जाता है। ऐसी जगह पर बैठना या खड़े रहना है ताकि हमें सभी पैसन्जर दिखाई दें। एक बार देख लिया तो फिर से सभी के शुद्धात्मा देखना। बार-बार ऐसा करते-करते एक घंटा बीत जाएगा। फिर उतरने का समय हो जाएगा। वह समय उपयोगपूर्वक बीता।

दादा की विधियाँ और शुद्ध उपयोग

विचार आपको पकड़ते नहीं हैं न! विचारों की ग्रंथियाँ बड़ी होंगी तो वे आपको पकड़ लेंगी। कुछ देर बाद आप भले ही छूट जाओ लेकिन पकड़ तो लेती हैं। हम में वे ग्रंथियाँ खत्म हो चुकी हैं इसलिए हमें कभी भी कोई पकड़ नहीं सकता। यदि पकड़े तो आपके मन में ऐसा लगेगा कि आज दादाजी ज़रा मूड में नहीं हैं। ऐसा लगेगा। दादाजी मूड में नहीं हों तो फिर वे ज्ञानी ही नहीं हो सकते।

हमें विधियाँ करनी होती हैं न! कभी मन फुरसत में हो तब अंदर विधि करना शुरू कर देते हैं, उस समय ज़रा सा ऐसा लग सकता है कि 'दादा, किसी काम में लगे हैं। 'मूड में नहीं हैं', ऐसा तो कभी किसी को लगा ही नहीं, किसी काम में लगे होंगे'। इतना कार्य हम चला लेते हैं। हमें विधि करनी बाकी रह गई हों, दोपहर में सभी आ जाएँ और हुई ही नहीं हों तब ऐसे में फुरसत मिलते ही तुरंत वह भी कर लेते हैं। वह भी शुद्ध उपयोग रूप से ही।

प्रश्नकर्ता : आपको थोड़ा पॉज़ (अवकाश) मिलता है, अभी ये बहन जी अंदर आईं, हमारी बातचीत चल रही थी, वह खत्म हो गई मान लीजिए कट गई तो इस बीच जो 'दो मिनट' मिलते हैं, उसके बाद नई बात शुरू होती है तो उन दो मिनटों में आपका क्या रहता है? तुरंत ही कुछ...

दादाश्री : मैं 'अपने' उपयोग में रहता हूँ।

प्रश्नकर्ता : वह क्या है?

दादाश्री : उपयोग में, हमारे अंदर विधियाँ भी चलती रहती हैं।

ये बातें चलती हैं, विधियाँ चलती हैं, दूसरा चलता है, तीसरा चलता है। फिर विधि कहाँ रुक गईं, वह भी पता रहता है, और आपसे बातें करता हूँ। बातें खत्म होने पर फिर से विधि होने लगती है, फिर वापस आपसे बातें करता हूँ।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि इस तरह एक-दो मिनट मिले न...

दादाश्री : एक मिनट, एक सेकन्ड मिले तब भी, वह ध्यान में रहता ही है। झोंका नहीं आता हमें। आप ऐसा मत मानना कि मैं कहीं भी झोंका खा लेता हूँ।

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा तो है ही नहीं! इन दोनों कामों के बीच में जो समय का अवकाश मिलता है तब आपकी क्या सेटिंग रहती है?

दादाश्री : वह तो मैं ढूँढ ही रहा होता हूँ कि ज़रा एक मिनट ज़्यादा मिले तो अच्छा, बाकी का पूरा कर लूँ।

प्रश्नकर्ता : तो हम महात्माओं को कैसी सेटिंग करनी चाहिए?

दादाश्री : आपको तो अंदर यह तरीका सेट कर लेना है। चंदूभाई को झिड़क सकते हो। झिड़कते रहना है दिन भर। इस तरह से कि अंदर डिप्रेशन नहीं आए। उसके प्रति निर्दयी नहीं होना है, और दया भी नहीं रखनी है। ये तो दया रखते हैं। कहते हैं, 'अरे! सो जा भाई।' पूरी रात लकड़ी की तरह सो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अन्य कौन सी विधियों की सेटिंग की जा सकती है?

दादाश्री : हाँ, की जा सकती है। विधि यानी कुछ इस प्रकार का कार्य करना है जिससे संसार को लेना-देना न हो, आत्मा को लेना-देना न हो, बीच का ऐसा कार्य यानी फ्री ज़ोन।

प्रश्नकर्ता : अभी आपने कहा कि फुरसत के समय चंदूभाई को झिड़कना, तो वह काम आत्मा से संबंधित कहा जाएगा?

दादाश्री : उससे तो आत्मा को लेना-देना है।

प्रश्नकर्ता : जो सांसारिक प्रवृति होती है, उसे संसार से लेना-देना होता है।

दादाश्री : हं।

प्रश्नकर्ता : तो अब उस फ्री ज़ोन में क्या करने को कहा गया है?

दादाश्री : फ्री ज़ोन में तो फिर, न तो यहाँ के और न वहाँ के।

प्रश्नकर्ता : यह जो नमस्कार विधि करते हैं, त्रिमंत्र बोलते हैं तो फिर क्या वह आत्मपक्षीय हुआ?

दादाश्री : वह जो विधि करते हैं न, वह आत्मा के लिए भी नहीं है और इस तरफ देह के लिए भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तब क्या होता है उस समय?

दादाश्री : वह आप जागृति रखने के लिए करते हो। झपकी न आ जाए, इसलिए करते हो। वह उपयोग रहित फल कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो उस उपयोग का फल आत्मपक्ष में जाएगा?

दादाश्री : वह कहीं शुद्ध उपयोग नहीं कहलाता। वह उपयोग तो सिर्फ जागृति ही है। इतना ही कि दीये को प्रज्वलित रखना है। यानी कि न उस तरफ का माना जाएगा, न इस तरफ का।

प्रश्नकर्ता : और जब झिड़कते हैं, तब?

दादाश्री : झिड़कते समय तो तू निःसंदेह इस ओर ही आ गया न!

प्रश्नकर्ता : मतलब आत्मपक्षीय?

दादाश्री : हं, हम ऐसी विधि करते हैं, दो-तीन घंटे, दिन भर में। वर्ना हम चौबीस घंटे कैसे बिताएँ, किसमें बिताएँ?

प्रश्नकर्ता : आपकी जो विधियाँ होती हैं फ्री ज़ोन वाली, जो

आत्मपक्षीय भी नहीं हों और संसारपक्षीय भी नहीं, ऐसी कोई विधि होती है?

दादाश्री : ये नौ कलमें और नमस्कार विधि। ये सारी विधियाँ जो हम रोज़ करते हैं, वही बताई हैं सब को। हम रोज़ वे बोलते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : वे आत्मपक्षीय हैं या नहीं?

दादाश्री : आत्मा को क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : तो फिर क्या वे संसार व्यवहार की शुद्धि करती है, ऐसा कहा जाएगा?

दादाश्री : संसार व्यवहार से क्या लेना-देना?

प्रश्नकर्ता : तो क्या फायदा होता है?

दादाश्री : आत्मा से या संसार से लेना-देना नहीं है। वह कहेगा, हमें भी कोई लेना-देना नहीं है। तो क्या होगा? न्यूट्रल (तटस्थ) हो गया। यह संसार को न्यूट्रल करने का रास्ता है। हमारे बाहर के सारे लफड़े छूट जाएँगे, संबंध छूट जाएँगे। अंदर का संबंध बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है, बाहर का छोड़ने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जब विधि में एकाकार होते हैं, तब क्या संसार संबंध छूट जाता है?

दादाश्री : बंद हो जाता है। वही हेतु है। उसमें ज़्यादा समय बीते तो उतना आपका संसार व्यवहार छूट जाएगा। फिर भी वह संसारपक्षीय भी नहीं कहा जाएगा और आत्मापक्षीय भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम विधि में जो बोलते हैं, जैसे कि नौ कलमें, तो संसार में जो भी उल्टा-सीधा हुआ हो, उसके प्रतिपक्षीय भाव हैं न सारे कि 'अवर्णवाद न हो, कठोर भाषा न हो'।

दादाश्री : ऐसा है न, जब संसार को हटाते हैं, तब ऐसा नहीं

कहा जाएगा कि उसमें सांसारिक भाव हैं। संसार को धकेलते हैं और आत्मा प्राप्त करते हैं, ऐसा नहीं है। संसार को हटाने पर आत्मा ही बन जाओगे। आप हो ही आत्मा। अतः दोनों ही ओर का एक भी भाव नहीं। नॉट रियल, नॉट रिलेटिव।

प्रश्नकर्ता : अब यह जो सिद्धस्तुति बोलते हैं, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'अनंत ज्ञान वाला हूँ', वह सब किसमें आता है?

दादाश्री : हाँ। आत्मपक्ष में आता है। लेकिन वह सब तो उन विधियों के साथ नहीं बोलना चाहिए। फुरसत में जो विधियाँ बोली जाती हैं उनमें तो ये नौ कलमें, नमस्कार विधि वगैरह आते हैं। चरणविधि नहीं की जाती, चरणविधि तो आप दिन में पढ़ना। अन्य विधियों में तो आपको नींद भी आ जाए तो चलेगा। नींद खुलते ही जागृत होने पर वापस वह विधि शुरू कर दोगे तब भी चलेगा लेकिन चरणविधि में नहीं चलेगा, चरणविधि में नहीं चलेगा, वह टुकड़ों में नहीं की जा सकती।

प्रश्नकर्ता : तो चरणविधि कब करनी चाहिए?

दादाश्री : वह तो दिन में कभी भी, जागृत स्थिति में। उस समय आप ऐसा कहना, 'चंदूभाई, चरणविधि करो'।

और वह आत्मपक्ष हेतु के लिए है, लेकिन ये अन्य सारी विधियाँ तो, नमस्कार विधि, नौ कलमें, वे किसी भी पक्ष की नहीं हैं। वह तो कहता है, 'छूटे इन सभी से, आउट ऑफ संसार, ऐसा हूँ मैं'। तो क्या आत्मा हो? तो कहते हैं 'आत्मा तो था ही, उसमें मुझे क्या पूछना है? लेकिन मैं इस संसार से छूट रहा हूँ'।

प्रश्नकर्ता : यदि विधि में नहीं रहे होते तो संसार के...

दादाश्री : तब तो अन्य कहीं घुस जाते। संसार में तो हो ही, संसार से बाहर नहीं निकल सकते। यानी मैंने यह सब से बड़ा उपाय किया था और कितने ही समय से हमारा यह चला आ रहा है, ज्ञान होने के पहले से ही ऐसा है।

हमारे अंदर तुरंत विधि शुरू हो जाती है। हाँ, जब भी हम 'यों' भीतर वाले को नमस्कार करते हैं तब विधि शुरू हो जाती है, 'अंदर' क्या है? कुछ होगा, तब न!

प्रश्नकर्ता : अंदर तो चौदह लोक के नाथ हैं न!

दादाश्री : हाँ, लेकिन हमारी विधि चलती रहती है, तेरे साथ बातें करते हैं, उस वक्त भी चल रहा होता है सब। इसलिए फिर बातें करने में ज़्यादा समय नहीं बिताते। हम किसी न किसी विधि में रहते हैं। बातें तो मोस्ट नेसेसिटी होने पर ही करते हैं, उस समय फिर विधियाँ बंद रखते हैं और काम निपटाते हैं।

प्रश्नकर्ता : दोनों में मुख्य क्या कहा जाएगा?

दादाश्री : मुख्य एक भी नहीं। जिस वक्त जो हुआ वही सही।

विधि करते समय भी ज्ञाता-द्रष्टापन

प्रश्नकर्ता : अब, जब विधि चल रही हो तब उसके भी ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं न?

दादाश्री : हाँ, वह भी है न! हमारी विधि ज्ञाता-द्रष्टा रहित नहीं होती। उपयोगपूर्वक अर्थात् भूलचूक हो जाए तो उसका पता चलता ही है। अंदर किसी का फोटो हो न, तो वह फोटो भी, एक्ज़ेक्ट चेहरा दिखाई देता है। 'नमो अरिहंताणं' बोलते हैं तब अरिहंत दिखाई देते हैं हमें।

प्रश्नकर्ता : खाली बैठे 'मैं शुद्धात्मा हूँ' या फिर चरणविधि पढ़ता रहता हूँ, तो क्या उसे उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ। चरणविधि इस हद तक ज़ुबानी कर लेनी चाहिए कि बस यों बैठे-बैठे ही पढ़ो तो यों आँखें बंद करके बिना किताब के एक-एक शब्द पढ़ा जा सके, उस जैसा उत्तम अन्य कोई ज्ञाता-ज्ञेय है ही नहीं! वह शुद्ध उपयोग कहलाता है! चरणविधि मौखिक बोलना और साथ-साथ उसे पढ़ना, वह सब शुद्ध उपयोग है।

प्रश्नकर्ता : यह जानने को मिला कि उसे पढ़ना बहुत ही अच्छी बात है।

दादाश्री : हाँ। वह ज्ञेय है और हम ज्ञाता हैं। हम यों ही, यहाँ पूरे दिन बैठे रहते हैं तब बोलो किसमें उपयोग रखें? यहाँ पर कभी तो ग्राहकी भी नहीं होती। जब बिल्कुल भी ग्राहकी न हो तब? ग्राहकी हो तब ग्राहकी में और ग्राहकी न हो तब उपयोग किसमें रखें? तब हमारे बहुत तरह के उपयोग रहते हैं। वे सभी शुद्ध उपयोग हैं।

क्योंकि हमारे पास शुभ तो है नहीं, शुभ तो आपके पास भी नहीं है। आप सभी तो शुद्ध उपयोग वाले हो लेकिन आपको शुद्ध उपयोग का व्यापार करना पूरा नहीं आता। इसलिए कितने ही ग्राहक यों ही वापस चले जाते हैं। आपको फायदा भी नहीं मिलता और ग्राहक को वापस जाना पड़ता है। जबकि हमें ग्राहक सबकुछ देकर जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपका उपयोग विशेष रूप से किसमें रहता है?

दादाश्री : हमारा तो वह सारा शुद्ध उपयोग ही रहता है। कुछ और न हो तो सेट कर देते हैं ऐसा कुछ। और ज़रा सा खाली समय मिले कि सेट कर देते हैं। ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध बंद होने लगे और ज्ञेय दिखाई देने बंद हो जाएँ तो आत्मा को यों ही नहीं छोड़ सकते। क्योंकि फिर ज्ञायक को तो शाश्वत प्रकाश कहा जाता है। उसमें ज्ञेय झलकना ही चाहिए। जब तक ज्ञेय नहीं झलके, तब तक शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। इसलिए इस तरह का हम कहीं भी (उपयोग) रख देते हैं, एकदम से रख देते हैं। घंटे-डेढ़ घंटे तक चलता है और फिर ये सभी लोग पूछते हैं, 'आप क्या कर रहे हैं?' तब हम बताते हैं कि, 'हम विधि कर रहे हैं'। इस तरह की हमारी रोज़ की दो से ढाई घंटे की विधियाँ रहती हैं। वह विधि रात को बारह बजे तक करनी ही पड़ती है। दिन में भी विधि करनी ही चाहिए।

भीड़ में विधि न हो पाए, बहुत ज़्यादा ग्राहकी हो तो रात को

बारह-एक बजे होती है। क्योंकि ग्राहकी तो आज हो और कल न भी हो, तो अपनी विधि चूक जाएँगे। अत: वह हिसाब तो अवश्य सेट करके ही रखना है।

अज्ञानियों की भी हेल्प करेंगी ये विधियाँ

प्रश्नकर्ता : यदि किसी ने ज्ञान नहीं लिया हो और वह भी पूरा दिन इन नौ कलमों, त्रिमंत्र वगैरह में रहा करे तो उसका संसार भी कम हो जाता है?

दादाश्री : उसे तो दूसरी प्रकार से फायदा होता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि उसे पुण्य का लाभ मिलता है?

दादाश्री : नहीं, पुण्य का लाभ नहीं। उसका अहंकार शुद्ध होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो ये विधियाँ उसे शुद्ध होने में हेल्प करती हैं? अज्ञानी को?

दादाश्री : हाँ, वे तो शुद्ध ही करती हैं न, उसे!

प्रश्नकर्ता : वर्ना यदि संसार में रहा तो ऐसा कहा जाएगा कि क्रोध-मान-माया-लोभ रहे और इन विधियों में रहा तो फिर उसे क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं कहा जाएगा।

दादाश्री : अहंकार शुद्ध करती हैं न, कषाय कम करती हैं न!

जहाँ सेट किया हुआ हो वहाँ नहीं रहता मिकेनिकल

प्रश्नकर्ता : हम सरप्लस टाइम में ये सारी विधियाँ करते हैं, तब हमारा यों मिकेनिकल जैसा हो जाता है, यों कोई उपयोग नहीं रहता।

दादाश्री : यदि मिकेनिकल हो तब तो फिर वे विधियाँ ही नहीं कही जाएँगी न!

प्रश्नकर्ता : वे मिकेनिकल न हो जाएँ, उसके लिए कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : यदि आपसे वैसा मिकेनिकल हो जाए, तब भी आपको उसे मिकेनिकल नहीं कहना चाहिए, हो जाए फिर भी। वर्ना फिर मिकेनिकल ही हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हमें क्या कहना चाहिए?

दादाश्री : आपको ऐसा समझ जाना चाहिए कि यहाँ पर कमी है, तो वह कमी खत्म हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : और वह कैसी होनी चाहिए?

दादाश्री : पूर्ण जागृतिपूर्वक दिखाई देना चाहिए। यह मैं कहता हूँ न लोगों से कि रात को ध्यान करके सो जाना। तो लोगों के मन में ऐसा होता है कि, 'एक्ज़ेक्ट चेहरा नहीं दिखाई दे रहा। एक्ज़ेक्ट चेहरा नहीं दिखाई दे रहा', वैसा होना चाहिए। लेकिन उसे मिकेनिकल नहीं कहा जा सकता। उसका प्रयत्न है। मिकेनिकल तो, जब अपनी तरफ से प्रयत्न न हो, उसे मिकेनिकल कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : सरप्लस टाइम में ये जो विधियाँ शुरू होती हैं, वे भी, सेटिंग की हो तभी होती है न? इसलिए उसे मिकेनिकल तो मान ही नहीं सकते न!

दादाश्री : हाँ, यानी सेटिंग की हुई है न! यदि आप वह सेटिंग नहीं करोगे तो फिर हो ही कैसे पाएगा? सेटिंग करने से वह जागृतिपूर्वक होगा, तब फिर उसे मिकेनिकल नहीं कहा जाएगा। उनमें से दस प्रतिशत भी जागृतिपूर्वक हो पाती हैं न?

प्रश्नकर्ता : होती हैं।

दादाश्री : तो फिर नब्बे प्रतिशत अजागृति को मिकेनिकल नहीं कहा जाएगा। मिकेनिकल तो अपने आप ही होता रहता है। जगत् के

लोग जो सारे काम करते रहते हैं न, वह सब मिकेनिकल कहलाते हैं। जिनमें भाव नाममात्र को भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जब यह विधि हो रही होती है तब उसे ऐसा मानकर चला जाए कि मिकेनिकल नहीं है तो...

दादाश्री : मिकेनिकल हो ही नहीं सकती, मिकेनिकल कैसे हो सकती है? मिकेनिकल तो किसे कहते हैं कि उसमें हमारी कोई भी दखलंदाज़ी न हो। ये सब फॉरेन वाले जो जीवन जीते हैं, वह सारी मिकेनिकल लाइफ है। उसमें उनकी खुद की दखलंदाज़ी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह विधि जो मिकेनिकल होती है, उसकी बात...

दादाश्री : मिकेनिकल नहीं कह सकते। मिकेनिकल नहीं कह सकते। मिकेनिकल कहना तो बहुत बड़ा जोखिम है।

प्रश्नकर्ता : वास्तव में वह मिकेनिकल नहीं है।

दादाश्री : मिकेनिकल शब्द होना ही नहीं चाहिए न!

प्रश्नकर्ता : यानी कि एक ओर विधि चलती है और ध्यान दूसरी ओर रहता है। एक ओर अंदर विधि चल रही होती है लेकिन ध्यान यों चारों ओर भटक रहा होता है और ऐसा सब होता है।

दादाश्री : लेकिन वह अंदर खटकता है न?

प्रश्नकर्ता : खटकता है।

दादाश्री : यदि वह खटकता है तो मिकेनिकल नहीं कहा जाएगा। नहीं खटके तब मिकेनिकल कहा जाएगा। वह भी एक्ज़ेक्ट मिकेनिकल नहीं कहा जाएगा। हेतु नहीं है न, उस तरह से मिकेनिकल का! मिकेनिकल तो अलग चीज़ है।

सामायिक-प्रतिक्रमण रखते हैं शुद्ध उपयोग में

प्रश्नकर्ता : यह जो सरप्लस टाइम में इस प्रकार से एक

सामायिक करनी है कि चंदूभाई सुबह से क्या कर रहा था, वह सब देखना है तो फिर इस तरह से हमने यह देखा तो वह किसमें जाएगा? उसमें फिर वे सारे दोष भी दिखाई देते हैं, उन दोषों को देखने की प्रक्रिया, प्रतिक्रमण करने की प्रक्रिया...

दादाश्री : हाँ, वह सब आत्मा में आता है।

प्रश्नकर्ता : वह शुद्ध उपयोग कहा जाएगा?

दादाश्री : हाँ। आत्मा पक्ष में आता है इसलिए फिर वह शुद्ध उपयोग है। शुद्ध उपयोग और आत्मा में रहना, इन दोनों में फर्क इतना ही है कि शुद्ध उपयोग उपयोगपूर्वक है। शुद्ध उपयोग अर्थात् सामने वाला व्यक्ति धौल लगाए, तब भी आपका वह नहीं जाना चाहिए कि 'वह शुद्धात्मा है'।

प्रश्नकर्ता : और आत्मा में रहने का अर्थ क्या है?

दादाश्री : आत्मा में रहना अर्थात् हमने अभी यह जो बात की, उसे आत्मा में रहना कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कि आँखें बंद करके अंदर सभी दोषों को देखते हैं, वह सब?

दादाश्री : वह सब आत्मा में रहना कहा जाएगा। जबकि वह उपयोग कहा जाएगा। वह अंतिम उपयोग है। धौल लगाने वाला कौन है, किसे मार रहा है, मैं कौन हूँ, यह सब क्या है?, ऐसा सब ध्यान रहे, वह शुद्ध उपयोग। 'मारने वाले का दोष है या किसका दोष है? कौन मार रहा है, किसे मार रहा है?', वह सब तुझे जानना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : उसे अंतिम उपयोग कहा गया है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा उपयोग बरते, उस समय ऐसा ही कहा जाएगा न, कि आत्मा में रहा?

दादाश्री : वह बात ही अलग है न! उसकी तो बात ही अलग है।

इन भाई का रिवाज़ बहुत अच्छा है, कुछ आया कि, 'मेरा नहीं है', ऐसा करके अलग।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय ऐसी जागृति भी रखनी पड़ेगी न, कि 'मैं कौन हूँ'?

दादाश्री : वह जागृति रहती ही है। 'मेरा नहीं है' कहने वाला उस समय इस जागृति में रहता है। 'मेरा नहीं है' ऐसा कहते हो तब भी वह जागृति है क्योंकि आपको तो 'क्या तेरा है और क्या तेरा नहीं है', वह जागृति दी है।

कार में शुद्ध उपयोग की सेटिंग

यदि कोई व्यक्ति बारह घंटे तक हमारी आज्ञा के अनुसार रहे तो उसका क्या फल मिलेगा?

प्रश्नकर्ता : एकदम समाधि रहेगी।

दादाश्री : वह बात ही अलग है! कितना सरल है, ईज़ी है लेकिन रहते हो क्या? यदि नहीं रहते हो तो बहुत बड़ी कमी कही जाएगी! महात्मा को सब जगह शुद्ध उपयोग में ही रहना चाहिए। जितना काम हो उतना काम करने के बाद फिर शुद्ध उपयोग! दो घंटे उपयोग में रहने से उस समय क्या फायदा होता है?

प्रश्नकर्ता : भगवान महावीर जैसी दशा रहती है।

दादाश्री : अब इतना सरल कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है, फिर भी लोग सरलता का लाभ नहीं लेते। फिर क्या हो सकता है? कितना सरल है? आप मेरे साथ गाड़ी में बैठे थे, उस समय यदि बातचीत नहीं करते तो नहीं चलता क्या? यों सब जगह शुद्ध उपयोग से दर्शन करते हुए जाते हैं लेकिन ऐसा दृढ़ निश्चय नहीं है। ऐसा कुछ भी नहीं है न! तो घर जाकर गांठ बाँधना चाहिए और इस तरह कभी उपयोग

बाहर जाए तो प्रतिक्रमण करना चाहिए। वर्ना ऐसी स्थिति हो सकती है? यह तो ऐसी स्थिति है कि काम निकाल ले। उपयोग बाहर गया कि प्रतिक्रमण कर ले।

अपने यहाँ पर कुछ पूछने जैसा रखा ही नहीं है। उसे सिर्फ आज्ञा पालन ही करना है। यदि वह खुद करेगा तो कर्म बंधन होगा। हमारी आज्ञा है इसलिए उसे कर्तापद का कर्म नहीं बंधेगा क्योंकि आज्ञापूर्वक कर रहा है।

कभी यदि कोई खुद ड्राइविंग कर रहा हो तो लोगों में शुद्धात्मा नहीं देख पाता। रियल-रिलेटिव नहीं देख पाता। उस समय तो उसे खुद को (ड्राइविंग में) ध्यान ही रखना चाहिए लेकिन गाड़ी में बैठे हुए लोगों को उपयोग में रहना चाहिए न!

प्रश्नकर्ता : मैं गाड़ी चलाते हुए भी देख पाता हूँ।

दादाश्री : ना। उस समय कुछ कच्चा रह जाता है। बाकी, वास्तव में देखा जा सकता है। अरे! कितने ड्राइवरों ने मुझे ऐसा बताया है कि, 'दादा! मैं तो देखता रहता हूँ। आगे गड्ढा आए, फलाना आए और यह फाइल नं. एक ड्राइविंग करती रहती है।' ड्राइवर अच्छी तरह शुद्ध उपयोग में रहते हैं।

अब आएगा मोक्ष सामने

शुद्ध उपयोग रहना चाहिए, बस! जितना हो सके उतना, एज़ फॉर एज़ पॉसिबल। उसके लिए फिर रात को चिंता नहीं करनी है, सो जाना है आराम से। मेरा कहना ऐसा है कि रातों को जागने की कोई ज़रूरत नहीं है लेकिन हम पुरुष बने हैं इसलिए ज़रा ज़्यादा पुरुषार्थ रखना है। ऐसा निश्चय-निर्णय होना चाहिए कि, 'मुझे अब शुद्ध उपयोग रखना ही है'। फिर अगर नहीं रह पाए तो वह सब *निकाली* है। और हमें कोई हड़बड़ाहट करने की ज़रूरत नहीं है, बदहवास नहीं होना है, मोक्ष सामने से आएगा। हमें वहाँ पर जाने की ज़रूरत नहीं

है। गाड़ी में बैठे हुए इंसान के पास स्टेशन अपने आप ही आएगा, बड़ौदा। तू अपनी जगह पर ही बैठा रहना।

प्रश्नकर्ता : गाड़ी में बैठ ही गए हैं न अब तो हम!

दादाश्री : हाँ, इसीलिए तो कह रहा हूँ न! मेरा कहना यह है कि वह आ ही जाएगा। इन आज्ञाओं का पालन करना है और कुछ नहीं, हमें मोक्ष की चिंता करने की ज़रूरत ही नहीं है। आज्ञा की यह टिकट ऐसी है कि वहीं पर ले जाएगी।

प्रश्नकर्ता : आज्ञा समझनी हैं, दादा।

दादाश्री : हाँ, वह सब समझना तो है ही न! समझने की ही तो ज़रूरत है। समझे ही हैं न, कई लोग समझ गए हैं। लेकिन कुछ लोगों में कमी है समझने की।

नहीं भूलना चाहिए एक क्षण भी आत्मा को

पच्चीस साल की लड़की के पास बच्चा हो सकता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हो ही सकता है।

दादाश्री : तो फिर क्या वह बच्चे की तरफ से ध्यान हटाती है?

प्रश्नकर्ता : नहीं हटाती।

दादाश्री : नहाने जाए तब अलग तो रखना पड़ता है, लेकिन ध्यान नहीं हटाती। उसके ध्यान में रहता ही है कि, 'वह रो रहा होगा, उसे ठंड लग रही होगी या क्या हो रहा होगा? क्या कर रहा होगा? वह ऐसा कर रहा होगा'। इसी तरह आत्मा पर से ध्यान नहीं हटाना है। क्योंकि इस दुनिया में अगर कोई किसी पर से ध्यान नहीं हटाता तो वह है स्त्री, जो अपने बच्चे को अकेला नहीं छोड़ती। नहाते समय, खाते समय भी भूलती नहीं है, 'अरे! बच्चा रोया, उसे ऐसा हुआ, वह दूर चला गया, वह गिरने लगा है'।

प्रश्नकर्ता : यानी कि देखना है कि प्रकृति क्या-क्या करती है?

दादाश्री : उसे देखना तो है ही, लेकिन ज़्यादातर तो खुद प्रकृतिमय ही रहता है। दिन भर प्रकृतिमय ही रहता है। अतः उस समय क्या करना होगा? जिस तरह बच्चे का ध्यान रखते हैं, उसी तरह आत्मा का ध्यान रखना पड़ेगा। उसी तरह आत्मा पर से ध्यान नहीं हटाना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह तो, यदि वह अपने पति को सौंपकर जाए, तब भी उसे नहीं भूलती।

दादाश्री : तब भी कहती है, 'यह बेवकूफ है। इसका कोई ठिकाना नहीं है!'

प्रश्नकर्ता : उसकी जान वहाँ बच्चे में ही रहती है।

दादाश्री : ऐसा रहना चाहिए। हमने एक क्षण भी आत्मा पर से ध्यान नहीं हटाने दिया है। यह ज्ञान होने से पहले अंतिम दो-पाँच सालों में ध्यान नहीं हटने दिया। इसीलिए मैंने माँ का उदाहरण दिया कि क्या वह अकेला छोड़ती है? पूछकर देखना किसी माँ से कि क्या वह भूल जाती है? वर्ना यदि आप खुद माँ हो तो कैसे रखोगे? उसकी जांच करोगे तब आपको पता चलेगा कि भूलती नहीं है!

प्रश्नकर्ता : वह तो किसी भी माता की चेष्टाओं को देखने से तुरंत ही पता चल जाता है।

दादाश्री : उसी प्रकार से आत्मा को भी भूलना नहीं है। तो इसमें मुश्किल क्या है? स्त्री के तो कितने ही बच्चे होते हैं। वह उन्हें कभी भी नहीं भूलती फिर भी इसके लिए उसे कोई बड़ा इनाम नहीं मिलता जबकि इसमें तो बड़ा इनाम मिलेगा। इसमें तो मोक्ष रूपी फल मिलेगा इसलिए एक जन्म के लिए आत्मा को नहीं भूलेंगे।

प्रश्नकता : दादाजी, यह जो माँ बच्चे का ध्यान रखती है तो उसकी सुरक्षा का ध्यान रखती है कि कहीं लग न जाए, कहीं जल न जाए, कहीं कुछ गलत न कर बैठे, तो आत्मा से संबंधित ऐसा क्या ध्यान रखना है हमें?

दादाश्री : वह ऐसा न हो जाए, ऐसा न हो जाए, इस तरह से भी बच्चे का ध्यान रखती है न, उसी तरह आत्मा का ध्यान रखना है। आत्मा जल जाए ऐसा तो है नहीं। आत्मा का ध्यान अर्थात् आत्मा की वैसी जागृति रहनी चाहिए, चूकना नहीं चाहिए किसी भी प्रयोग में।

प्रश्नकर्ता : दादा, उसमें तो माँ के *लक्ष* में रहता है, बच्चे की बात तो अलग है लेकिन यहाँ पर हम सब को ऐसा *लक्ष* (जागृति) नहीं रहता कि आत्मा का कहाँ चूक जाते हैं? कहाँ पर हम आत्मा का ध्यान नहीं रखते? कहाँ पर स्लिप हो जाते हैं? तो वह बताइए तो ध्यान रहेगा।

दादाश्री : जिस तरह से बच्चे को रखते हैं, उसी तरह से इसे रखने की ज़रूरत है। भूलना नहीं चाहिए लेकिन वैसा क्यों हो जाता है? आपको दूसरी चीज़ों का स्वाद चखने की आदत पड़ी हुई है इसलिए। यह चाहिए और वह चाहिए। सभी भौतिक इच्छाएँ। किसी भी प्रकार की इच्छा होनी ही नहीं चाहिए न? ये सारी इच्छाएँ बंद हो जाएँ, जो आए वह ठीक है, ऐसे करके रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् जब अन्य कहीं पर तन्मयाकार हो जाते हैं, तब ऐसा कहा जाएगा कि आत्मा को भुला दिया?

दादाश्री : भूल ही गए हैं न, नहीं तो और क्या? लेकिन अन्य इच्छाएँ होनी ही नहीं चाहिए न! जो प्राप्त हो जाए उसे भोगो। मेरा कहना यह है कि यहाँ बैठे-बैठे आइस्क्रीम खाओ न, मैं कहाँ मना करता हूँ। लेकिन फिर दूसरी और तीसरी माँगते रहो तो वह गलत है। लेकिन तेरे हाथ में आया हुआ फिर छोड़ता नहीं है न तू, और यदि आत्मा *लक्ष* में रहे तो ऐसी दस डिश खाओ न! लेकिन आत्मा *लक्ष* में नहीं रहता और फिर डिश खाते हो, तो वह कैसे पुसाएगा?

प्रश्नकर्ता : दादा, इसकी कीमत समझ में नहीं आई, क्या इसलिए ध्यान नहीं रहता? अभी ध्यान क्यों नहीं रहता है?

दादाश्री : यदि कीमत समझ में आ जाए तो फिर आपने जहाँ

पर हीरा रखा हुआ हो, आपका चित्त वहीं पर रहेगा न। एक अरब का हीरा, यदि इधर-उधर हो जाए तो फिर वापस देखने आता है अगर पाँच सौ रुपये का हो तो! उसकी कीमत आपको समझ में आई है लेकिन ये पहले की आदतें जाती नहीं हैं! पौद्गलिक आदतें हैं न!

फाइल को नहाना-धोना पड़ता है, या फिर नौकरी नहीं करनी पड़ती क्या? नौकरी करते समय भी आत्मा को भूलना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा *लक्ष* में रहना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, वह नहीं चूकना चाहिए। आप यह जो नौकरियाँ करते हो न, तो यह भान नहीं चूकना चाहिए कि हम आत्मा ही हैं। भूल नहीं जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हम जब दादा के पास से चले जाते हैं, तब दादा से दूर हो जाते हैं लेकिन हम उन्हें भूल नहीं जाते।

दादाश्री : हाँ, वह तो आप सब को अपने आप ही कुदरती रूप से रहता है, भूल नहीं जाते। इतना याद रहता है। उसे, 'रहता है', कहा जाएगा। जबकि वह रखना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : दादा प्रत्यक्ष हैं इसलिए याद रहते हैं। लेकिन ज्ञान देने के बाद में यह भी याद रहना चाहिए न, कि 'मैं आत्मा हूँ?'

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह तो *लक्ष* में है ही। यदि, नगीन भाई है तो वह अपने आपको जानता ही है कि, 'मैं नगीन भाई तो हूँ'। 'नगीन भाई हूँ', ऐसा कुछ याद रखने की ज़रूरत नहीं पड़ती। उसे क्या याद करना? है ही।

प्रश्नकर्ता : तो फिर इसे भूलने का प्रश्न ही नहीं आएगा न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन हमने जो नहीं हैं उसी को अभी तक,

'है' माना है और जो है, उसे 'नहीं है' ऐसा माना है तो इतना बदल जाने की वजह से हमें उसे याद रखना है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उसका अर्थ यह हुआ कि वह जो पुराना अध्यास है वह वापस बीच में आता है?

दादाश्री : वही तो बीच में आता है न! उसी की वजह से भूल जाते हैं और फिर यह मल्टिप्लिकेशन वाला है। एक दिन यदि संभालकर रखोगे तो दो दिन की शक्ति उत्पन्न हो जाएगी। दो दिन तक रखोगे तो चार दिन की शक्ति उत्पन्न हो जाएगी और अगर उसे संभालोगे नहीं, तो लीक ही होता रहेगा न पूरा!

शुद्ध उपयोग, एक्ज़ेक्टनेस में...

यह तो क्या कहता है? 'मुझे अच्छा उपयोग रहता है।' यानी उपयोग को हल्की कक्षा का कर दिया है न?

प्रश्नकर्ता : दादा, कन्टिन्युअस नहीं।

दादाश्री : नहीं, वह कन्टिन्युअस तो नहीं लेकिन एक मिनट भी नहीं रहता। उपयोग तो चीज़ ही अलग है। इसे तो ध्यान रहना कहेंगे। जिसके हाथ में उपयोग आ गया, उसे तो आत्मज्ञानी कहा जाएगा। यह तो, हम ऐसा कहते हैं कि आप अपनी कक्षा का उपयोग रखो। उससे भी जागृति रहेगी न खुद को।

तेरा उपयोग रहा था? उसे उपयोग नहीं कह सकते न! वह तो आप अपनी कक्षा में ऐसा मानते हो। तेरी कक्षा अलग, इसकी कक्षा अलग। सभी की कक्षा अलग-अलग है लेकिन यदि उस कक्षा का रहे तब भी अच्छा है लेकिन बहुत ऐसा नहीं समझ लेना है कि अब वास्तव में मुझे उपयोग रहता है। वर्ना फिर उपयोग में आगे बढ़ ही नहीं पाओगे।

तूने बताया कि, 'कल मुझे दिन भर अच्छा उपयोग रहा'। तू

बताता है लेकिन मैं नहीं सुनूँगा। मैं जानता हूँ कि तू किसे उपयोग कहता है? किसे कहता है?

प्रश्नकर्ता : जागृति रहती है, दादा का ध्यान रहता है, दादा ने जो बातें बताई, वे याद रहती हैं, उसे उपयोग कहते हैं।

दादाश्री : हाँ, वही मैं कह रहा हूँ, वह तो इसलिए कि धारण किया। धारण करने की शक्ति उत्पन्न हुई। उसे उपयोग मत मान लेना। वह तो हर किसी को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उपयोग रहता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ। जो दरअसल उपयोग है, वह तो फिर अलग है!

दादाश्री : उसे समझ में आ गया होगा कि मैं क्या कहना चाह रहा हूँ?

प्रश्नकर्ता : ऐसा समझ में आया होगा कि मैं जो मानता हूँ उसमें भूल है। उपयोग अलग चीज़ है।

दादाश्री : यह तो वह धारण की हुई वस्तु *लक्ष* में आई। एक बार में धारण करने की शक्ति ही नहीं है न आप में! धारण करने की शक्ति अर्थात् जितना भी मैं बताऊँ उतना सब धारण हो जाए, और फिर वह जाए नहीं, इधर-उधर न हो। उपयोग को सभी अपनी-अपनी भाषा में समझ बैठे हैं। वह मूल उपयोग नहीं है न! वह भी मैं चलने देता हूँ। उसका भी ऐसा विवरण नहीं करता लेकिन जब इसने ऐसा कहना शुरू किया कि, 'अब तो मुझे उपयोग रहा', तब मुझे लगा कि अब तो हो चुका, यह उपयोग का उल्टा अर्थ समझने लगा है।

दादाजी के कहे हुए शब्दों का *लक्ष* रखना, वह सब तो जागृति है। वह जागृति बढ़ती जाती है लेकिन उसे उपयोग नहीं कह सकते। कल जागृति अच्छी रही, ऐसा कह सकते हैं लेकिन उसे मूल वस्तु, अर्थात् उपयोग नहीं कहा जा सकता।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अभी तक उपयोग मूल जगह पर नहीं आया है?

दादाश्री : मूल जगह पर 'वस्तु' का प्राप्त होना मुश्किल है। बस यह तो *लक्ष* ही बैठा है। उसका अनुभव हुए बिना तो उपयोग कैसे उत्पन्न हो सकता है? 'यह मैं हूँ', उसका प्रमाण (अनुभव प्रमाण आत्मा), उसके अनंत प्रदेशों सहित ज़रा सा भी बदल नहीं जाना चाहिए। अभी तक तो अंदर कभी-कभी मान्यता में भी भूल हो जाती है। 'आत्मा यह है या वह है?' अंदर थोड़ी-बहुत भूलचूक हो जाती है। मिक्सअप हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : और फिर जब तक अंदर असर हो जाता है, तब तक भूल है ही न?

दादाश्री : हाँ। वह मूल वस्तु अलग है। मूल वस्तु अनंत प्रदेशों सहित बिल्कुल शुद्ध व क्लियर है और उसी अनुसार रहती है। वास्तव में उसके बाद उपयोग रह पाता है, शुद्ध उपयोग। उस हद तक का जो शुद्ध उपयोग है उसे ज़रा आंशिक रूप से वह देख सकता है जो यहाँ पर आया है, और आसपास के सर्कल में आया हुआ व्यक्ति देख सकता है। वह सब जागृति कहलाती है लेकिन बिल्कुल शुद्ध उपयोग नहीं कहा जा सकता। शुद्ध उपयोग तो बहुत बड़ी बात है। फिर भी उसे उपयोग कह सकते हैं। शुद्ध उपयोग तो, दृष्टि किस आधार पर है, उस जागृति के हिसाब से कहते हैं हम, चलने देते हैं लेकिन लोग ऐसा एक्सेप्ट नहीं करेंगे। हम तो एन्करेजमेन्ट (प्रोत्साहित) के लिए चलने देते हैं। लेकिन उसने ऐसा कहा इसलिए फिर हमने एन्करेजमेन्ट नहीं दिया। मैंने सोचा, 'इससे तो उल्टा हो जाएगा'।

उसे धारण रहा उतना तो अच्छा रहा। धारण ही नहीं रह पाता न! हमने जो बताया है, उसकी भी जागृति नहीं रहती है न, फिर। बाद में फिर से विस्मृत हो जाती है। तुझे कितनी जागृति रहती है हमारी कही हुई बात की? हमारा वचनबल है लेकिन तेरी जागृति कितनी है?

किसी को एन्करेज करने के हेतु से कहते हैं लेकिन उसका अर्थ यह नहीं है कि वहीं पर बैठा रहे और फिर उसका पूर्ण हो जाए!

उसे तो एन्करेजमेन्ट के लिए भी उपयोग नहीं कहा जा सकता। यह उपयोग है ही नहीं न! अभी तो उसकी धारण शक्ति भी, जितना बताएँ उतना धारण रह सके, वह शक्ति भी अभी खिली नहीं है। यदि ऐसे यहाँ पड़ा रहेगा तो उसकी शक्ति थोड़ी-थोड़ी खिलती जाएगी। यहाँ पड़ा रहेगा तो वह खिलेगी। लेकिन उसे उपयोग नहीं कहा जा सकता। जागृति कह सकते हैं उसे। इसे वह जागृति अच्छी रहती है। फिर भी यदि यहाँ पड़ा रहेगा तो कभी न कभी लाभ होगा।

ऐसी सारी जागृति रहती है न! यों देखते ही पूरा विवरण बता दे, तब तक वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा न! उसे जागृति कहा जाएगा।

भक्ति किसकी? जड़ की या चेतन की?

प्रश्नकर्ता : अब यह जो जागृति है, व्यवहार में वह जागृति पूरी ही आवृत हो जाती है। कोई ऐसा अवसर आ जाए उस वक्त, जिसे तन्मयाकार परिणाम कहते हैं न, वैसा हो जाता है।

दादाश्री : मशीन का काम करने में तो आत्मा ही चला जाता है। क्योंकि उसे मशीनरी की भक्ति कहा जाएगा। मशीनरी हमेशा भक्ति माँगती है, तन्मयाकार भक्ति। वर्ना मशीनरी का एक नट भी फिट नहीं हो सकता। इसलिए बचपन से ही हम मशीनरी को छूते भी नहीं थे। साइकिल में पंक्चर हो जाता तो वह भी मैं बाहर से ठीक करवा लेता था। यदि मेरा ध्यान उसमें जाता तो मेरा सबकुछ बिगड़ जाता। नट भी नहीं घुमाता था। ऐसा कह देता था कि मुझे आता ही नहीं है। पैसे देकर करवा लेते थे हम। एक तरफ मशीनरी रिपेयर करता है, तो उस समय एक घंटे में क्या होता है? आत्मा फिर उसी में रहता है न। नहीं? क्योंकि उसे भक्ति कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मेरा कैसा रहता है कि पूरे समय आपकी ही सेवा में रहती हूँ इसलिए आत्मा याद ही नहीं आता, आज्ञा याद ही नहीं आती...

दादाश्री : नहीं। आपको याद न रहे तो उसमें कोई दिक्कत नहीं है। दादाजी की यह सेवा तो, यह तो ग़ज़ब की चीज़ कही जाती है। उसे आत्मा याद रखने की ज़रूरत ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उस समय फिर दादा ही याद रहते हैं।

दादाश्री : लेकिन भक्ति किसकी होती है, वह देखने की ज़रूरत है। आत्मा याद रहे या न रहे, उसका तो मैंने *लक्ष* दिया है, इसलिए आपको कभी न कभी *लक्ष* (जागृति) आकर रहेगा, लेकिन यह देखना है कि भक्ति किसकी है। जिनकी भक्ति करोगे न, उन्हीं जैसे बनते जाओगे।

प्रश्नकर्ता : तब तो बहुत ही उच्च प्रकार का है, दादा।

दादाश्री : हाँ, बहुत उच्च प्रकार का है इसीलिए तो कहता हूँ न इन सभी से कि 'भाई, आपको यह बहुत उच्च प्रकार का मिल गया है। आपके पुण्य जागे हैं'। किसी का ही पुण्य जागता है न? मैं ऐसा इंसान नहीं हूँ कि किसी से सेवा लूँ। मैं इतना कच्चा इंसान नहीं हूँ कि सेवा लूँ। बिल्कुल भी नहीं। पैर टूट गया और इन नीरू बहन को सेवा देनी पड़ी। वर्ना मैं तो देता ही नहीं। मैंने ज़िंदगी में किसी से भी सेवा नहीं ली है।

और तू तो मशीन की भक्ति करता है। जिसकी भक्ति करेगा उसी जैसा बन जाएगा। श्रुतज्ञान की भक्ति से एकदम जागृति आई और प्रकाश हो गया। इस मशीन की भक्ति से प्रकाश वापस रुक जाएगा। यह देखना है कि भक्ति किसकी कर रहा है। आत्मा का स्वभाव है कि जिसकी भक्ति करता है न, वैसा ही बन जाता है। इसीलिए कहा न, कि 'नीरू बहन का बहुत ही बड़ा पुण्य जागृत हुआ है'। जब लोगों से ऐसा कहता हूँ तो क्यों कहता हूँ? वर्ना तो कहूँगा ही नहीं न लोगों से!

प्रश्नकर्ता : दादा, आज मुझे उस पुण्य के बारे में और अधिक समझ में आया।

दादाश्री : तुझे ऐसा समझ में आता है कि जोखिम किसमें है और किसमें नहीं? किसकी भक्ति की जिससे कि यह प्रकाश हो गया? आत्मा जैसा चिंतन करता है वैसा ही बन जाता है। आत्मा का मूल लक्षण यह है कि, वह जैसा चिंतन करता है, जिसकी भक्ति करता है वैसा ही बन जाता है। इसीलिए सभी से कहता हूँ न, कि ज्ञानी के पास पड़े रहना। लेकिन जाने क्यों देते हैं? फाइलें हैं, इसलिए उनका *निकाल* तो करना ही पड़ेगा!

और 'इन्हें' यदि अन्य कोई जागृति नहीं रहती न, फिर भी मैं ध्यान नहीं देता हूँ। इसका क्या कारण है? कि वास्तविक कारण का तो सेवन हो रहा है। ज्ञानी की ऐसी भक्ति व सेवा मिलती नहीं है न! यह कारण ही नहीं मिलता।

आत्मा का मुख्य गुण है कि आसपास में जैसा सर्कल देखा कि वैसा ही बन जाता है। जिसकी भक्ति करता है उसी जैसा बन जाता है। यदि रस-रोटी की भक्ति करेगा तो रस-रोटी जैसा बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उस समय अगले जन्म के लिए नया चार्ज होता है?

दादाश्री : नया चार्ज नहीं होता। उस पर आवरण आ जाता है। नया चार्ज तो, यदि तू कर्ता बनेगा तभी होगा वर्ना सिर्फ आवरण आ जाता है। यह आवरण चढ़ा देता है, उससे फिर दिखाई देना बंद हो जाता है और जितना निरावृत हुआ, वह तो श्रुतज्ञान की भक्ति से हुआ। इतने सालों श्रुतज्ञान की भक्ति की इसलिए निरावृत हुआ। फिर फ्लैश मारता (कौंधता) है!

मशीनरी तो खुद ही मशीनरी भक्ति माँगती है। सिविल (इंजीनियरिंग) में मशीनरी नहीं है। सिविल में तो सोचना पड़ता है न यह सब, उसमें ज़्यादा तो देखना और जानना रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें भी थोड़ा-बहुत तो आता है न दादा।

दादाश्री : आता तो है ही सब, नुकसानदायक है सभी कुछ।

जहाँ भी संसारी भाव आया, वह सारा ही नुकसानदायक है। कर्ताभाव से कर्म बंधन होता है। तू जब मशीनरी रिपेयर करता है, उस समय कर्ताभाव उत्पन्न नहीं होता इसलिए उससे कर्म बंधन नहीं होगा लेकिन इससे आवरण आता है। घोर अंधेरा कर देता है एक बार तो। जब ऐसा सब होता है तब सारे प्रयोग बंद हो जाते हैं। कैसे कोई काम हो पाएगा? अन्य कोई काम हो ही कैसे पाएगा? और यह जो प्रकाश हो गया है उस पर आवरण ही आ जाता है। फिर भी यदि करना ही पड़े तो मशीनरी नहीं होनी चाहिए, बाकी कुछ भी होगा तो चलेगा। वह तो आवश्यक रूप से करना पड़ता है। हिसाब तो सेट हो चुका है, तो क्या हो सकता है?

देखा श्रुतज्ञान का कैसा फल मिला है?

प्रश्नकर्ता : बहुत सुंदर!

दादाश्री : अंदर साफ है, अन्य कोई बहुत इच्छाएँ नहीं हैं और श्रुतज्ञान आ मिला।

प्रश्नकर्ता : वही तो मुख्य कारण है न दादा। सारे संयोग मिल गए।

दादाश्री : लेकिन व्यवहार विषम है न! वह मिकेनिकल हो रहा था तभी से समझ गया था कि इसका व्यवहार अच्छा नहीं कहा जाएगा। खुश भी होता है कि मैंने कितनी अच्छी तरह मशीन फिट कर ली। अर्थात् अंदर छिपा-छिपा कर्ताभाव रहता है। मशीन फिट करने के बाद इंसान खुश नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है न, दादा।

दादाश्री : और यदि वह नहीं चले तो फिर से निराश हो जाता है। इस प्रकार से अभी भी गर्वरस है न। यानी कि ये सारी सूक्ष्म बातें इसके *लक्ष* में नहीं आतीं। इसका तो दिन-रात सत्संग में पड़ा रहे तब काम चलेगा। अक्रम ज्ञान अर्थात् इसका आराधन सही तरीके से होना

चाहिए। फिर भी यह जागृति, उसकी यह जो स्वरूप जागृति है उस हिसाब से तो इसे उपयोग कहा जाएगा। हम उपयोग कहते हैं उसे। अब यह जो मशीनरी का काम आया है इस काम के साथ ही यदि उपयोग रहे तो वह काम निकाल देगा। लेकिन मशीनरी का स्वभाव ही ऐसा है कि वह उपयोग रहने ही नहीं देती। क्योंकि शुरुआत जड़ भक्ति से हुई न!

प्रश्नकर्ता : खाना खाते समय भी जड़ भक्ति ही रहती है न?

दादाश्री : नहीं। वह तो, उपयोग रखने वाले कुछ लोगों का उपयोग बहुत अच्छा रहता है। लेकिन सामान्यतया खाना खाते समय स्थिति चंचल हो जाती है, इसलिए जल्दी से उपयोग नहीं रह पाता।

मशीनरी रिपेयर करने में दो-तीन घंटे लग जाएँ तो क्या होता है? पूरी जागृति खत्म हो जाती है। अब यदि मशीनरी की भक्ति मिट जाए तो वह रिपेयर नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : भक्ति तो करनी ही पड़ती है न उस समय।

दादाश्री : उसकी भक्ति मिटते ही रिपेयरिंग बंद हो जाएगी। इसलिए हम पैसे गिनने की तरफ ध्यान ही नहीं देते हैं। यह आपको जो बताया है उस पर से ऐसा समझ जाना है न! पैसे गिनने में यदि दो घंटे लग जाएँ तो मेरे सारे उपयोग पर पानी फिर जाएगा। इस शरीर का ध्यान नहीं रखा है मैंने, दो-तीन मिनट से ज़्यादा। डॉक्टर कहते हैं कि आप ध्यान रखोगे तो जल्दी ठीक हो जाएगा। मैंने कहा, 'ध्यान रखूँगा तो मेरा क्या होगा?' यदि इस जगह दुःखे और मैं ध्यान केन्द्रित करूँ तो जल्दी ठीक हो जाएगा, तुरंत ठीक हो जाएगा। ध्यान केन्द्रित करने पर उपयोग वहाँ पर चला जाता है इसलिए ठीक हो ही जाता है। सामने से बैलेन्स लिया जाता है न! तुरंत ले लेता है न! और अज्ञानी को भी जब दुःखता है तो उसका ध्यान वहीं पर रहता है न, इसलिए ठीक हो जाता है। दवाई वगैरह सब निमित्त हैं। अज्ञानी का ध्यान वहाँ से हटता ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उपयोग खर्च हो जाने के परिणाम क्या हैं? और उपयोग संभाले रखने के क्या परिणाम हैं?

दादाश्री : जहाँ उपयोग ही नहीं है वहाँ उसके खत्म होने का सवाल ही कहाँ है? उपयोग तो ये जो मशीनरी रिपेयर करने वाले हैं न, उन्हें उपयोग रहता है लेकिन उन्हें अहंकारी उपयोग रहता है। और तेरा, आत्मा पर आवरण लाकर उपयोग रहेगा। उनका अहंकार खपेगा और तेरा अहंकार यह आवरण लाकर खपेगा। खपना तो दोनों का एक सरीखा ही है न!

बीच रास्ते उलझे झाड़-झंखाड़ में

प्रश्नकर्ता : जीवन में भिन्न-भिन्न अवसरों पर उपयोग टूटने के भय स्थान कौन-कौन से हैं? वहाँ टूटने से कैसे रोका जा सकता है? क्योंकि उपयोग टूटने की बहुत जगहें हैं।

दादाश्री : नहीं, यह छटकता भी नहीं है। यदि छटक जाता तो दु:ख आने पर वापस लौट आता। और पर-उपयोग भी नहीं हो जाता है। स्व-उपयोग के आसपास के झाड़-झंखाड़ में घूमता रहता है। पर-उपयोग तो अंदर दु:ख पैदा करता है, वैसा तो नहीं होता। स्व-उपयोग के झाड़-झंखाड़ में ज़रा घुस जाती है, वे सारी पिछली दखलें हैं। अगली-पिछली दखलंदाज़ियाँ, उनमें निरा गाढ़ापन है।

पर-उपयोग में रहने पर धक्का लगता है। स्व-उपयोग में नहीं रहता और पर-उपयोग में जाता नहीं, इस तरह वह बीच में उलझा रहता है।

प्रश्नकर्ता : बीच में अर्थात् कैसी दशा है वह?

दादाश्री : संतोषकारक हो नहीं पाता और इस तरह लटक-लटक कर जा नहीं सकता। बीच की दशा। सिर्फ उलझनें ही उलझनें। यानी कि उपयोग इसी में बिगड़ता रहता है।

टी.वी. के मोह से जन्मों में बढ़त

प्रश्नकर्ता : यदि हम दिन में दो-तीन घंटे टेलीविज़न देखें तो उसे क्या कहा जाएगा दादा?

दादाश्री : टेलीविज़न तो देखना ही नहीं चाहिए। वह देखने से उपयोग बस वहीं पर रहता है। दो उपयोग नहीं रह सकते आपको। देखने में कभी भी दो उपयोग नहीं रह सकते। सुनने में दो उपयोग रह सकते हैं, कान बंद किए जा सकते हैं। टेलीविज़न तो देखना ही नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : इन्डियन मूवी भी नहीं देखनी चाहिए?

दादाश्री : कुछ भी नहीं देखना चाहिए। टी.वी. तो आँखों की शक्ति तोड़ देता है। और जहाँ पर आँखें आकर्षित होती हैं वहीं पर पूरा शरीर खिंच जाता है, इसलिए अन्य कहीं पर उपयोग नहीं रह सकता।

जिसे मोक्ष की जल्दी नहीं है, उसे टी.वी. देखने में हर्ज नहीं है, अभी पचास-सौ जन्म लेने के बाद जाना हो तो भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : टी.वी. देखना और आपने जो सब कहा है कि 'देखो और जानो' और फिर अपने आप खत्म हो जाएगा, तो वह सही है या इसे छोड़ देना सही है?

दादाश्री : टी.वी. वगैरह नहीं होना चाहिए इसमें। टी.वी. देखने से बच्चों की आँखें खराब होती हैं और यदि देखते हैं तो उन्हें ज़रा *ठपका* (उलाहना) देना। *ठपका* यानी कहना कि 'चंदूभाई आप इस तरह टाइम क्यों बिगाड़ रहे हो?'

प्रश्नकर्ता : इन बच्चों की नॉलेज के लिए, वह 'वाइल्ड लाइफ' का आता है, नेचर से संबंधित आता है, न्यूज़ आती है, उसके लिए...

दादाश्री : वह ठीक है। बच्चे देखेंगे, आप दिखाना भी सही। फिर उठकर आप अपने काम में लग जाना। उन्हें उसमें लगाकर।

जहाँ मोक्ष की जल्दी नहीं हो, वहाँ हर्ज नहीं है!

प्रश्नकर्ता : ताश खेलने, रमी खेलने और टी.वी. देखने से कौन सा कर्म बंधन होता है?

दादाश्री : अरे, अज्ञान कर्म और कौन सा कर्म? दर्शन मोहनीय।

प्रश्नकर्ता : दर्शन मोहनीय कर्म का बंधन होता है? आवरण आता रहता है?

दादाश्री : ज्ञान आवृत हो जाता है। ज्ञान पूरा चला जाता है और दर्शन मोहनीय आ जाता है। उसी से तो खड़ा हुआ है यह जगत्।

दादा के साथ निरंतर रह सकता है, उपयोग वाला ही

इसलिए हम कहते हैं कि हमारे साथ तो, जो निरंतर उपयोग वाला है, वही रह सकता है। जिसे उपयोग ही नहीं रहता, वह कैसे रहेगा हमारे साथ? जो उपयोग वाला होता है, उसे हमारे साथ अच्छा लगता है। वर्ना जो कभी, सप्ताह में एकाध दिन आता है न, वह बहुत लाभ उठाता है। क्योंकि उल्लास व्याप्त हो जाता है न! सात दिन का भूखा व्यक्ति भोजन करने बैठे तब उसे कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : दादा के साथ रहने में जो ठंडक बरतती है, उसके कारण उपयोग चूक जाते हैं?

दादाश्री : यहाँ पर ठंडक रहती है न, इसलिए उपयोग नहीं रह पाता न!

प्रश्नकर्ता : ठंडक तो, उपयोग में रहने पर ही रहेगी या नहीं?

दादाश्री : नहीं। ऐसा नहीं है कि वह उपयोग में रहे तभी रहेगी लेकिन ज्ञानी पुरूष के सानिध्य से ऐसी ठंडक रहती ही है।

प्रश्नकर्ता : ठंडक रहने की वजह से क्या उसकी जागृति मंद हो जाती है?

दादाश्री : नहीं तो और क्या होगा? ज़रा भी प्रगति नहीं करता। जो एवर जागृत हो, वह यदि हमारे साथ रहे तो हर्ज नहीं है। वर्ना बहुत दिनों बाद फायदा होगा। बाहर का अन्य कुछ ग्रहण करना बंद हो जाता है न! बाहर की अड़चनें बंद हो जाती हैं और यहाँ पर धीरे-धीरे घिसता जाता है। यदि साथ रहने को मिल जाए तो अच्छा ही है, बाहर का तो नहीं बिगड़ेगा न! अन्य दुरुपयोग भी बंद रहता है न? इन ज्ञानी पुरुष की उपस्थिति में उसका जितना धुल जाए, यों ही बिना उपयोग के जितना धुल जाए, वही सही और कभी तो उसका रिज़ल्ट आएगा न?

प्रश्नकर्ता : (दादाश्री की) उपस्थिति में तो धुल ही जाएगा न?

दादाश्री : कभी न कभी रिज़ल्ट आएगा। जब कचरा एकदम कम हो जाएगा न, इक्यावन प्रतिशत, तो उसके बाद खुद की शक्ति से इसकी लगाम हाथ में आ जाएगी। बाद में फिर तेज़ी से होने लगेगा।

प्रश्नकर्ता : बिना उपयोग के धुलने में और उपयोगपूर्वक धुलने में क्या अंतर है?

दादाश्री : बहुत अंतर है। उपयोगपूर्वक धुलने पर संपूर्ण शुद्ध हो जाता है जबकि बिना उपयोग वाले को फिर से धोना पड़ेगा। उसे धोना आसान होगा लेकिन वह कैसा होगा? यों ही साबुन वाले पानी में डालकर खंगाल देना होगा। कोई परेशानी नहीं होगी, स्वच्छ हो चुका था न!

यह है स्थूल स्वरूप में शुद्ध उपयोग

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या उपयोगपूर्वक धुलने पर उसे सहज कहा जाएगा?

दादाश्री : सहज नहीं। उपयोग संपूर्ण जागृतिपूर्वक होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वास्तव में जो उपयोग रहना चाहिए, वह कैसा होता है?

दादाश्री : वह तो बहुत अलग चीज़ है। यह जो स्थूल (उपयोग) रहता है, उतना भी अच्छा है। लोगों को स्थूल उपयोग भी कहाँ है?

प्रश्नकर्ता : स्थूल उपयोग यानी यह कि खुद की प्रकृति को, मन-वचन-काया को देखते रहना?

दादाश्री : हमारे शब्दों पर से लिया हुआ है वह उपयोग, आज्ञा से। आज्ञा से रहता है, वह। शुद्ध उपयोग तो बहुत अलग तरह का होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, वह उपयोग तो सिर्फ ज्ञानी पुरुष को ही रह सकता है न?

दादाश्री : और किसे रह सकता है? आसान चीज़ नहीं है यह। स्थूल ही नहीं रहता है न, लोगों को! स्थूल का ही ठिकाना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह जो शुद्धात्मा के दर्शन करते हैं, उसे स्थूल उपयोग ही माना जाएगा?

दादाश्री : वर्ना और क्या कहा जाएगा? वह तो आज्ञापूर्वक है न!

प्रश्नकर्ता : यानी कि अवलंबन है, दादा?

दादाश्री : वह अवलंबन नहीं है, शब्द ही है यह तो। और क्या है आपको? शब्द का फल मिलता है। बाकी, उससे आत्मा को क्या लेना-देना? उससे क्या आत्मा को देखा-जाना? लेकिन उसका फल मिलता है इसलिए आनंद होता है। उससे आपको आत्मा है, ऐसा विश्वास हो जाता है कि 'भाई, प्रतीति है ही, अवश्य है'।

स्थूल उपयोग तो बहुत अच्छा है। इसका तो तेरे जैसे बहुत कम लोग पालन कर पाते हैं। शुद्ध उपयोग स्थूल कहा जाता है।

तब भी वह शुद्ध उपयोग है

उपयोग शुद्ध रहना चाहिए कि 'यह शुद्ध है, मैं शुद्ध हूँ। कोई

कर्ता नहीं है।' 'मैं नहीं करता हूँ,' ऐसा शुद्ध उपयोग रहना चाहिए। यदि किसी और के लिए मानें कि 'यह कर रहा है', तब भी परेशानी है।

जिन्हें अक्रम विज्ञान प्राप्त हुआ है, उनको चौबीसों घंटे *निर्जरा* होती रहती है। बड़ौदा से आप गाड़ी में बैठे, तब से *निर्जरा* शुरू हुई। उस *निर्जरा* में आप अन्य कोई भी काम कर सकते हो। जैसे कि गाड़ी में बैठा हुआ व्यक्ति चाहे कुछ भी पढ़े, नाश्ता करे, फिर भी गाड़ी तो अहमदाबाद जा ही रही है।

प्रश्नकर्ता : उसी तरह *निर्जरा* में चाहे कोई भी काम कर सकते हैं?

दादाश्री : हाँ। उसी तरह इसमें व्यवहार चलता रहेगा और आपको ज्ञाता-द्रष्टा के तौर पर रहना है कि 'चंदूभाई का मन क्या कर रहा है, बुद्धि क्या कर रही है'। शुद्ध उपयोग में रहने पर वीतराग रह सकता है।

प्रश्नकर्ता : वह जब शुद्ध उपयोग में रहता है, तब फिर मन में कभी कुछ विचार भी आ जाते हैं।

दादाश्री : उसमें कोई हर्ज नहीं है। वे भले ही आएँ और जाएँ, अगर कभी अंदर चढ़ बैठे हों तब भी हर्ज नहीं है लेकिन आपको शुद्ध उपयोग नहीं चूकना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें जो विचार आते हैं, उन्हें फिर सिर्फ देखना ही है न! उनमें तद्रूप होने पर फिर परेशानी हो जाती है।

दादाश्री : नहीं। शायद कभी न भी देख पाओ। देखते समय तो उपयोग है ही लेकिन शायद कभी देखना न भी हो पाए। ज़रा तद्रूप हो जाता है लेकिन उससे कुछ बिगड़ता नहीं है। वह तो यदि पूर्वकर्म बहुत तगड़ा हो न, तो उसे खुद को पलटी भी खिला देता है लेकिन उससे कुछ नया कर्म बंधन नहीं होता।

सामायिक के समय उपयोग

प्रश्नकर्ता : हम जो कोई भी सामायिक करते हैं, हमें जो कोई भी विचार आते हैं, उन्हें देखा तो उसका क्या परिणाम आता है?

दादाश्री : उससे शुद्ध उपयोग रहता है। विचारों को देखना, वही हमारा ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव है। खुद के स्वभाव में आने को ही शुद्ध उपयोग कहते हैं। यानी कि सामायिक में यदि आप विचारों को देखते हो तो फिर आप शुद्ध उपयोग में हो ही।

प्रश्नकर्ता : दादा, सामायिक के समय कैसा उपयोग रहता है?

दादाश्री : सामायिक के समय भी उपयोग जागृति अच्छी रहती है। और नहीं तो क्या? हम उसे उपयोग ही कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : वास्तव में तो वह उपयोग है ही नहीं न, दादा?

दादाश्री : वास्तव में तो वह उपयोग नहीं कहलाता। शुद्ध उपयोग तो बहुत अलग चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपको कैसा उपयोग रहता है?

दादाश्री : वह उपयोग तो अलग ही तरह का है। वह तो आत्मचारित्र कहलाता है! आपको तो वह नहीं रह सकता, लेकिन ऐसा मानो कि एक हद तक की कक्षा का, आपकी कक्षा का तो रह सकता है न!

प्रश्नकर्ता : वह क्या होता है? ज़रा बताइए न!

दादाश्री : आत्मा दरअसल स्वरूप में रहता है।

प्रश्नकर्ता : यह कहता है, 'मुझे ऐसा रहा इस घटना में'। तो आपको कैसा रहता है?

दादाश्री : बहुत उच्च प्रकार का। उसका (हम पर) असर ही नहीं होता न! ज़रा सा भी असर नहीं होता, पृथक्करण होता रहता है।

यह खाने वाला कौन है? ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं होता न। पूरी एक्ज़ेक्टनेस रहती है।

वह व्यक्ति वहाँ पर बैठा हो, तू यहाँ बैठा हुआ हो। एक बार उन्हें देख लेने के बाद फिर आपको ऐसा पता रहता है न, कि वे वहाँ पर बैठे हुए हैं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पता चल ही जाता है।

दादाश्री : फिर बार-बार वह पता लगाने नहीं जाता कि वह व्यक्ति वहाँ पर बैठा है या नहीं? कौन बैठा है, कौन नहीं?

प्रश्नकर्ता : ऐसे पता नहीं लगाना पड़ता।

दादाश्री : यानी 'मैं' अपनी सीट पर, वह अपनी सीट पर। यह अंबालाल अपनी सीट पर, सभी अपनी-अपनी सीट पर ही रहते हैं। इधर-उधर नहीं। एक्ज़ेक्टनेस रहती है। आप में वह मशीनरी चल पड़ी है। यानी कि जागृति ऐसा सब दिखाती है कि खाने वाला कौन? फलाना कौन? ऐसा कौन? वैसा कौन? उससे आगे तो फिर एक्ज़ेक्टनेस चाहिए न? ऐसे तो कोई विचार आने ही नहीं चाहिए। ऐसे चंचल परिणाम नहीं रहने चाहिए।

अलग है सदा, गाने वाला, सुनने वाला और जानने वाला

तू गाता ज़रूर है लेकिन सुनता नहीं है न? सुनना नहीं चाहिए क्या? खुद गाए और खुद ही एक-एक शब्द सुने, तब कहा जाएगा कि अक्रम विज्ञान में आया। गाने वाला अलग, सुनने वाला अलग और जानने वाला अलग। 'जानने वाला' जाने कि इसने अभी तक हर एक शब्द ठीक से, इतने शब्द नहीं सुने हैं। आप तो सिर्फ गाते ही रहते हो, आटा मोटा रह जाए तो उससे सिर्फ *हांडवा* (गुजराती व्यंजन) ही बन सकता है।

ऐसा करो न, आज पद गाओ। आज सभी लोग वह अभ्यास करो। आँखें मूँदकर 'नमो अरिहंताणं', ऐसे एक-एक अक्षर पढ़ा जा

सके और 'नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं...' पढ़ते हुए, 'नमो भगवते वासुदेवाय, नमः शिवाय, जय सच्चिदानंद' उतना पढ़ो और फिर उसमें जो भूल हुई हो, अगली बार में वह निकाल देना। आज ऐसा करो, देखना, आत्मा हाज़िर हो जाएगा। उस समय, पढ़ने वाला आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : पढ़ने वाला आत्मा है।

दादाश्री : हाँ, पढ़ने वाला। एक-एक पद बोलकर देखो न! आँखें मूँदकर ऐसे 'नमो भगवते वासुदेवाय' दिखाई देता है या नहीं ठीक से? फिर सभी अक्षर दिखाई देंगे। दिखाई देते हैं?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देते हैं, दादा।

दादाश्री : अंदर प्रवेश कर लिया है इसीलिए तो यह शुद्धात्मा का उपयोग कहलाता है। यह ध्यान नहीं कहलाता। एक घंटे तक ऐसा सेट करके फिर एक घंटे तक पढ़ते रहो तो बहुत हो गया। वह तो सब से बड़ा उपयोग है। हम जो करते हैं, वही आपको दिखा देते हैं। हम जो कुछ भी करते थे, वह सब दिखा देते हैं। हैन्डल तो घुमाना ही पड़ेगा न!

आप अभी जो ज्ञाता-द्रष्टा रहते हो न, वह तो कैसा है कि वह स्थूल भाग में रहते हो। अब सूक्ष्म में जाना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : उँगलियाँ लिखती हैं, आँखे पढ़ती हैं और आप दिखाई देते हैं, ऐसा होता है।

दादाश्री : वह तो फिर अतिरिक्त है लेकिन मैं नहीं दिखाई दूँ और वह पढ़ सको तो भी बहुत हो गया। साफ, प्योर पढ़ा जाना चाहिए। प्योर शब्द, बड़ी मात्रा, छोटी मात्रा, कम्प्लीट। दादा को देखने के तो और भी रास्ते हैं। लेकिन पढ़ते समय उसमें ऐसी मिलावट नहीं करनी चाहिए। यह सब देखना। छोटी मात्रा, बड़ी मात्रा, छोटा, एक-एक शब्द। तू जो भी बोलता है, क्या तू वह सब पढ़ सकता है? तो उसे उपयोगपूर्वक बोलना कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान के बाद नवकार (मंत्र) बोलना हो तो कैसे बोलना चाहिए?

दादाश्री : नवकार 'आपको' नहीं बोलना है। आपको जानना है कि कौन बोल रहा है और यदि ठीक से नहीं बोले तो आईने में देखकर चंदूभाई से कहना चाहिए। बाकी, नवकार मंत्र बोलने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन उस समय आत्मा रूप रहना चाहिए।

अंत में वह लाएगा शुद्ध उपयोग

आपके ऐसे उदय आएँगे। एक-एक दिन के उपवास करना, एक ही बार भोजन करना, ऐसे उदय आएँगे। लेकिन वह सब उदय के अनुसार करना है। आपको खींच-तान करके कुछ नहीं करना है।

उदय आए तो उपवास करना। फिर पूरा दिन शुद्धात्मा का उपयोग रखना। भगवान ने कहा है कि शुद्ध उपयोगपूर्वक यदि एक ही उपवास हो सके तब भी कल्याण हो जाएगा और उपयोग रहित उपवास को भगवान ने *ढोरलांघण* (मालिक की गफलत की वजह से मवेशी का भूखा रहना) कहा है।

ज़्यादा खा लेने पर क्या होता है? ऐसा ही हो जाता है। नहीं? तुझे भी ऐसा होता है, खीर ज़्यादा खाने पर?

प्रश्नकर्ता : उपयोग ठीक से नहीं रह पाता। एक बार आपने कहा था कि खाते समय बातें करने से तो उपयोगपूर्वक खा ही नहीं सकते।

दादाश्री : कैसे खा पाओगे? भोजन उपयोगपूर्वक होना चाहिए कि उसमें क्या-क्या है?

प्रश्नकर्ता : आपने तब ऐसा कहा था कि, ''आप कहते हो कि, 'हमें उपयोग है' लेकिन उसे उपयोग नहीं कहा जाएगा। वह तो आपका *लक्ष* (जागृति) कहा जाएगा। उपयोग तो बहुत उच्च चीज़ है, जो हमें रहता है।''

दादाश्री : उपयोग बहुत उच्च चीज़ है। इसे तो *लक्ष* कहेंगे। *लक्ष* अर्थात् जागृति। अर्थात् यह ऐसी चीज़ है जो उपयोग को लाएगी, जो शुद्ध उपयोग को लाएगी। अतः जागृति तो है लेकिन यह शुद्ध उपयोग लाती है। उपयोग तो कब कहा जाएगा कि जब नहाना हो, तब बदन पर यों हाथ से मलना पड़ता है व ऐसा सब होता है तब वहाँ उपयोग नहीं रहता। लेकिन हमें तो जब नीरू बहन नहलाती हैं, उस समय भी उपयोग रहता है। वे जब पैर धुलवाती हैं तब मैं उपयोग में रह सकता हूँ। जबकि जगत् के लोग क्या करते हैं? हवा आए तो उसमें मस्त हो जाते हैं, बस इसी तरह उपयोग चूक जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन नीरू बहन जब दादाजी को नहलाती हैं, उस समय नीरू बहन जो कुछ कर रही होती हैं, नहला रही होती हैं, तब उस पर उनका अपना भी उपयोग रहता है न?

दादाश्री : उनका तो अच्छा उपयोग रहता है। वह तो उनके लिए बहुत लाभकारी है। उनका उपयोग तो अच्छा ही रहता है न! उसमें पृथक्करण नहीं हो फिर भी, मेरा क्या कहना है कि यों ही अच्छा रहता है। उपयोग रहता है न!

ऐसा है न, शुद्ध उपयोग के लिए उन लोगों ने खोज की कि 'भाई, इन मूर्तियों को नहलाओ-धुलाओ'। क्या आपके यहाँ ब्राह्मण नहीं धोते? वह शुभ उपयोग है और जब वास्तविक मूर्ति को धोया जाए, सच्ची जीवित मूर्तियों को नहलाया जाए, तब वह शुद्ध उपयोग कहलाता है। जबकि मूर्तियों को नहलाना शुभ उपयोग कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा! जब दादा की वाणी लिखते हैं, तब उसमें उपयोग जैसा कुछ रहता है क्या?

दादाश्री : उपयोग ही कहलाएगा न! वह शुद्ध उपयोग की बिगिनिंग हुई, शुद्ध उपयोग नहीं कहलाता। वह ऐसा उपयोग है जो शुद्ध उपयोग में ले आएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी यह उपयोग शुद्ध उपयोग लाएगा।

दादाश्री : हाँ, लाएगा। जैसे कि कॉलेज में प्रवेश किया, तो अंत में वह प्रोफेसर बनेगा। अतः बहुत अच्छा है, दादा की वाणी लिखना तो सर्वोत्तम चीज़ है। तेरे अंदर छप जाएगी। वह सारा छपा हुआ ज्ञान फिर जाएगा नहीं। वह तो जब ज़रूरत होगी, तब हाज़िर हो जाएगा। अभी तू याद करने जाएगा तो उसमें से कुछ भी याद नहीं आएगा, ज़रूरत पड़ने पर हाज़िर हो जाएगा कि दादा ने ऐसा कहा है।

ऐसे चूक जाते हैं उपयोग, खाते समय

प्रश्नकर्ता : आप तो निरंतर समाधि में रहते हैं न? उपयोग में ही रहते हैं न, आप?

दादाश्री : उपयोग का फल है समाधि। अतः समाधि में रहने की ज़रूरत नहीं है, उपयोग में ही रहो। समाधि लगाने की ज़रूरत नहीं है। उपयोग में रहोगे तो उसका फल ही समाधि है। समाधि तो फल है।

प्रश्नकर्ता : हाँ। अब आप उपयोग में थे, आपको सिंघाड़े खाने की इच्छा हुई, वह भी उपयोग में रहकर ही न?

दादाश्री : नहीं, तब तो उपयोग बंद हो गया था।

प्रश्नकर्ता : तो उस समय वहाँ सिंघाड़े खाने की इच्छा उपयोग में रहकर नहीं हुई थी?

दादाश्री : नहीं, नहीं। उपयोग तो बंद हो गया था।

प्रश्नकर्ता : उपयोग बंद हो गया, ऐसा कैसे हो सकता है? दादा का उपयोग तो चलता ही रहता है न?

दादाश्री : दो उपयोग नहीं रह सकते। एट ए टाइम दो उपयोग नहीं रह सकते। कई मौकों पर रहता है और कई मौकों पर नहीं रह पाता लेकिन सिंघाड़े वाली घटना में तो मुझे उपयोग नहीं रहा था।

प्रश्नकर्ता : यानी इसका अर्थ यह हुआ कि जब भी ऐसी इच्छाएँ होती हैं तब उपयोग बंद हो जाता है?

दादाश्री : नहीं। ऐसा भी नहीं है। इच्छा अलग है और उपयोग अलग है। कई बार उपयोग बंद ही नहीं होता, इच्छा हो फिर भी। अंदर का फोर्स कैसा है, उस पर आधारित है।

प्रश्नकर्ता : आप खाना खा रहे होते हैं, तब कुछ चीज़ें सामने रखी हुई हों और भीतर ऐसा हो कि 'यह मुझे खाना है, यह नहीं खाना है' तो...

दादाश्री : वे अपने उपयोग में रहकर खा सकते हैं। लेकिन जब बहुत प्रिय चीज़ आए तब उपयोग चूक जाते हैं। जब सिंघाड़े खाने का तय किया तब भाई (ए.एम.पटेल) उपयोग चूक गए थे।

प्रश्नकर्ता : यानी बहुत प्रिय है, वैसी बात हुई न!

दादाश्री : नहीं, प्रिय नहीं, लेकिन साधारण रूप से प्रिय है, तभी तो उठे न, वे। वर्ना भूख नहीं थी। यदि भूख होती तब तो हम समझते कि भाई, भूख के कारण उठे थे। तभी तो उपयोग रहा कहलाएगा। यह तो ऑर्डिनरी था।

प्रश्नकर्ता : खाना खाते हुए किसी से बातें भी करें...

दादाश्री : उस समय उपयोग नहीं रहता, कैसे रह पाएगा उपयोग?

यों रह सकता है उपयोग खाते समय...

उपयोग का अर्थ क्या है? कौन खा रहा है? खाने वाला किस तरह से खा रहा है? कौन सी चीज़ गपागप खा जाता है? किसमें वह अधिक स्वाद लेता है? कौन-कौन सी चीज़ नहीं खाता है और कौन सी खाता है? उसका एक्ज़ेक्टली कैसा स्वाद आता है? वह खुद फिर इस प्रकार से उपयोग रखता है। उपयोगपूर्वक खाना है। मैंने किसी का ऐसा नहीं देखा है कि किसी ने उपयोगपूर्वक खाया हो। गपागप, जैसे कि मशीन चल रही हो। खाना-पीना सब उपयोगपूर्वक होना चाहिए। नहीं हो पाए तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन ऐसी जागृति आ जाए तो

काम का है। हम तो भूल सुधारने के लिए मना करते हैं। फिर से भूल न हो, ज़रा ऐसी जागृति रखना। फिर भी आपसे वापस भूल हो ही जाएगी। फिर भी वापस जागृति रखना कि, 'जैसा दादा ने कहा है वैसा हो नहीं रहा है'। तब भी वह जागृति मानी जाएगी। यह तो पूरा तन्मयाकार। हम तो कभी भी भोजन करते समय बात ही नहीं करते हैं। बातें करने से सारा उपयोग चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : हमारा वह बातों में चला जाता है।

दादाश्री : हाँ! लेकिन इसी तरह से उपयोग उल्टी जगह चला जाता है इन लोगों का। आपको पता चला न, उपयोगपूर्वक क्यों नहीं खा पाते?

उपयोग अर्थात्, हम कौन? खाने वाला कौन? खाने वाले को किसमें इन्टरेस्ट है? अगर खाने वाले को स्वाद नहीं आ रहा हो तो हमें कहना है कि 'भाई! यह अच्छा है।' वह सब जानना पड़ेगा, जागृतिपूर्वक। लेकिन इतना याद रहे, उसके लिए हम आपसे कहते हैं कि कुछ याद आए तब भी बहुत हो गया। 'जैसा दादा बताते हैं वैसा हो नहीं पाता', इतना कहोगे तो भी बहुत हो गया। वैसा उपयोग भी नहीं रहता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन यदि कोई परिचित आए हुए हों और वे खाते समय बात करें तो फिर बात करनी ही पड़ती है।

दादाश्री : अगर वे बात करने जाएँ तो कहना, 'बाद में करना न, आराम से'।

प्रश्नकर्ता : सब लोग जब आमने-सामने बैठे हुए हों, सामने वाला बात करता ही रहे तो हमें भी बात करनी ही पड़ती है।

दादाश्री : आप उनसे कहना कि, 'पहले खाना खा लो, जल्दी क्या है, फिर हम आराम से बातें करते हैं।' खाना खाते समय कभी भी जागृति रही है? लेकिन फिर ऐसे जागृति नहीं रह सकती। जिसकी

शुरुआत ही टेढ़ी हो, उसे फिर जागृति नहीं आ पाती। फिर उपयोग स्थिर नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वैसा उपयोग तो हर एक क्रिया में रहना ही चाहिए न, यह शुद्ध उपयोग!

दादाश्री : मेरा कहना है कि कुछ क्रियाओं में तो रहना ही चाहिए। खाने में, ऐसी जो मोटी-मोटी क्रियाएँ हैं, उनमें तो रहना ही चाहिए। उपयोग नहीं रह पाता। चित्त कमज़ोर हो गए हैं! सभी जगह नहीं रखा जा सकता लेकिन खना खाते समय तो उपयोग रहना ही चाहिए। फिर बोलते समय उपयोगपूर्वक ही बोलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : खाना खाते समय बोलने गए इसलिए उपयोग चूक गए। अब यदि ऐसी समझ नहीं हो तो इसी ध्यान में रहते हैं कि हम ज्ञान में ठीक से रह पा रहे हैं, जागृति में रह पा रहे हैं। लेकिन बीच की ऐसी सारी भूलों का पता नहीं चलता।

दादाश्री : बहुत सारी भूलें हैं। ऐसी तो कितनी ही भूलें होती रहेंगी। जागृति तो तुझे जागृति देती है, लेकिन अन्य कितनी ही भूलें हैं न! इसीलिए हम बातचीत करते रहते हैं। भूल का पता चलेगा तो फिर जागृति वहाँ पर जाएगी। जब तक पता नहीं चलता, तब तक तो यों अँधेर ही चलता है। इसीलिए टोकते रहते हैं न! उससे शायद आपको अपनी भूलों का पता चल जाए और आप सावधान रह सको।

उपयोग पर उपयोग

पहला उपयोग यानी कि जो शुद्ध उपयोग है, वह है। उपयोग अर्थात् खुद अपने आपको शुद्ध देखना, औरों को शुद्ध देखना व आज्ञा में रहना, वह सारा शुद्ध उपयोग कहलाता है। और यदि उस शुद्ध उपयोग पर भी उपयोग रखा जाए कि कैसा शुद्ध उपयोग बरत रहा है तो वह केवलज्ञान कहलाता है और पहला वाला, शुद्ध उपयोग कहलाता है। उपयोग में उपयोग रहे तो वह केवलज्ञान है।

शुद्ध उपयोग ज्ञान स्वरूप कहलाता है और उपयोग में उपयोग रहे तो वह विज्ञान स्वरूप कहलाता है, केवलज्ञान स्वरूप कहलाता है। शुद्ध उपयोग की जो जागृति है, उस पर भी जागृति रहे तो वह केवलज्ञान की जागृति है, अंतिम जागृति है। 'ज्ञानी' की जागृति, शुद्ध उपयोग कहलाती है और उससे आगे की जागृति, वह केवलज्ञान का उपयोग कहलाता है। हमें जागृति पर जागृति रहती है लेकिन जैसी तीर्थंकरों को रहती है, उतनी नहीं रहती।

तीर्थंकरों द्वारा बताए गए शुद्ध उपयोग की राह पर...

भगवान महावीर शुद्ध उपयोग में रहते थे। निरंतर चौबीसों घंटे। अपने महात्माओं को जो शुद्ध उपयोग रहता है, वह कैसा है, जैसे कुछ देर के लिए अंदर धूप चमके, उस तरह से कुछ देर के लिए आता है, फिर वापस चला जाता है। कुछ देर के लिए आता है और चला जाता है। और दुनिया के लोगों ने तो शुद्ध उपयोग के बारे में सुना भी नहीं है और देखा भी नहीं है। यह तो, अपने यहाँ पर जितने लोगों को ज्ञान दिया है न, उन्हें शुद्ध उपयोग रहता है। बाकी अन्य लोगों को तो, चाहे साधु-आचार्य हों फिर भी शुद्ध उपयोग देखा ही नहीं है। शुद्ध उपयोग तो आत्म प्राप्ति के बाद ही रह सकता है। यह तो सिर्फ ज्ञानी पुरुष को ही रह सकता है। क्रमिक मार्ग में अंत में जब संपूर्ण ज्ञान हो जाता है, उस दिन से शुद्ध उपयोग रहता है। वर्ना उन ज्ञानियों को भी थोड़े-बहुत समय के लिए ही शुद्ध उपयोग रहता है, वर्ना नहीं रहता। क्योंकि शुद्ध उपयोग के लिए आत्मा को संपूर्ण रूप से जानने की ज़रूरत है। आत्मा को संपूर्ण रूप से जान लिया, ऐसा कब कहा जाएगा? अहंकार जाने पर जब संपूर्ण आत्मा बन जाता है तब ऐसा कहा जाता है कि आत्मा को जान लिया। जितना अहंकार है, उतना ही आत्मा को नहीं जाना है। अहंकार तो क्रमिक मार्ग के ज्ञानियों में भी रहता है। यह भगवान महावीर का, चौबीस तीर्थंकरों का शुद्ध उपयोग है। एक बार समझ लेने के बाद फिर से समझने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

निरंतर शुद्ध उपयोग, वही है केवलज्ञान

मैंने जो ज्ञान दिया है, वह आप में दर्शन के रूप में परिणामित हुआ है। अब जैसे-जैसे हमारे साथ बैठोगे, वैसे-वैसे ज्ञान के अंश बढ़ते जाएँगे और वैसे-वैसे शुद्ध उपयोग उत्पन्न होगा। जितना शुद्ध उपयोग उत्पन्न हुआ, उतना ही ज्ञान है। जब संपूर्ण रूप से निरंतर शुद्ध उपयोग बरतता है तो उसे केवलज्ञान कहा जाता है। संपूर्ण शुद्ध उपयोग को केवलज्ञान कहा गया है, 360 डिग्री वाला। और जिसे शुद्धात्मा का *लक्ष* है तो उसे दस-पंद्रह प्रतिशत तक का केवलज्ञान तो कहा जाएगा। शुद्ध उपयोग से उसमें केवलज्ञान के बीज बोए गए। अंश केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे सर्वांश होने में टाइम लगेगा, हर किसी के पुरुषार्थ के अनुसार। यदि हमारी आज्ञा में रहे तो उसे संपूर्ण शुद्ध उपयोग कहा जाता है। अब, आज्ञाएँ कुछ मुश्किल नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या केवलज्ञानी के सभी प्रदेशों के आवरण निकल जाते हैं?

दादाश्री : सभी, सभी खुल जाते हैं! लेकिन वे बेकार का नहीं देखते, वर्ना उपयोग बिगड़ेगा न! अतः वे सभी जगह शुद्ध ही देखते हैं।

[4]
अनुभव - लक्ष - प्रतीति

पाई है निरंतर प्रतीति

आपको आत्मा का *लक्ष* कितने समय तक रहता है?

प्रश्नकर्ता : रहा ही करता है।

दादाश्री : निरंतर रहता है। अत: जिसने मेरे साथ अधिक परिचय रखा है न, उसे निरंतर ऐसा रहता है। क्योंकि यह आत्मा का अनुभव ज्ञान है। आत्मा का जो *लक्ष* बैठ चुका है, वह निरंतर रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऑफिस में जब काम कर रहे होते हैं, तब निरंतर नहीं रहता।

दादाश्री : काम में रहते हैं तब नहीं रहता, इसका अर्थ यह है कि उस क्षण *लक्ष* में नहीं रहता लेकिन प्रतीति में रहता है न!

प्रश्नकर्ता : मौका आने पर ज्ञान हाज़िर नहीं रहता लेकिन फिर बाद में हाज़िर हो जाता है तो हमें क्या समझना है? हमारी समझ में कमी है, पुरुषार्थ में कमी है या जागृति का अभाव है?

दादाश्री : इसमें जागृति का अभाव, पुरुषार्थ की कमी या समझदारी की कमी नहीं है। सिर्फ इतना है कि उस समय ज्ञान हाज़िर नहीं रहा। अभी यदि किसी के साथ लेन-देन का हिसाब कर रहा हो तो उस समय *लक्ष* नहीं रहता कभी भी। उस समय क्या रहता है?

प्रश्नकर्ता : उस समय कम्प्लीट ध्यान उस लेन-देन में ही रहता है।

दादाश्री : उस समय *लक्ष* नहीं रहता इसलिए आपको ऐसा लगता है कि अंदर एकाकार हो गया लेकिन प्रतीति नहीं जाती। प्रतीति निरंतर रहती ही है!

प्रश्नकर्ता : तो बाद में जब वह कामकाज खत्म हो जाएगा, तब क्या फिर से मूल स्वरूप में आ जाएँगे?

दादाश्री : निरंतर प्रतीति का तार है इसीलिए मूल स्वरूप में आ पाते हैं, वर्ना नहीं आ पाते। यह जो निरंतर तार है, वह निरंतर प्रतीति अर्थात् क्षायक समकित कहा जाता है। तो इस निरंतर प्रतीति को लेकर, काम का झंझट खत्म होते ही वापस 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बन जाता है, वही *लक्ष* है। उसके बाद *लक्ष* में आया जा सकता है। और *लक्ष* में आने के बाद यदि कभी एकांत मिल जाए तो अनुभव भी हो सकता है। अनुभव रस चखने पर खुद का जो आत्म स्वभाव है, उसका अनुभव बरतता है, *लक्ष* बरतता है, प्रतीति बरतती है। इन तीन सीढ़ियों से नीचे नहीं उतरता है। निरंतर प्रतीति वाला है यह। क्रमिक मार्ग में तो प्रतीति क्षयोपशम होती रहती है। घड़ी भर में प्रतीति रहती है और घड़ी भर में गायब हो जाती है। घड़ी भर में उपशम हो जाती है और घड़ी भर में क्षय हो जाती है जबकि इसे तो निरंतर क्षायक प्रतीति कहा जाएगा। चौबीसों घंटे प्रतीति नहीं जाती। निरंतर! ज़िंदगी भर 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी प्रतीति जाती नहीं है। और पहले चौबीसों घंटे, 'मैं चंदूभाई हूँ', वह प्रतीति नहीं जाती थी। क्या पहले आपको चौबीसों घंटे, 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसी प्रतीति रहती थी?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पहले ऐसा ही था।

दादाश्री : निरंतर, चौबीसों घंटे? कुछ देर के लिए 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा याद आता था?

प्रश्नकर्ता : नहीं-नहीं। 'जनरल मैनेजर हूँ और यह हूँ और वह हूँ' ऐसा सब रहता था।

दादाश्री : वह प्रतीति अर्थात् रोंग बिलीफ, उसी को मिथ्यात्व कहा है जबकि यह जो प्रतीति है, वह राइट बिलीफ है, इसे सम्यक् दर्शन कहते हैं। देखो, यह सम्यक् दर्शन उत्पन्न हुआ है और वह भी क्षायक!

प्रश्नकर्ता : यों तो अंदर से ऐसा है कि 'अलग हूँ'। यों अच्छी तरह से समझ आता है लेकिन अभी भी कई बार ऐसा लगता है कि अंदर सब मिक्स हो (मिल) जाता है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। यदि आपसे पूछा जाए कि 'आप चंदूभाई हो या शुद्धात्मा', तो क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा। उसमें तो विकल्प है ही नहीं।

दादाश्री : तो फिर वही कहना है। फिर 'आपको वैसा रहता है या नहीं रहता', वह नहीं देखना है। ऐसा कुछ देखना ही नहीं है। इतना ही देखना है कि आपकी प्रतीति में क्या है।

प्रश्नकर्ता : प्रतीति में तो, दादा के मिलने के बाद से सब पक्का हो गया है।

दादाश्री : बस, इतना ही देखना है। बाकी कुछ भी नहीं देखना है। निरंतर प्रतीति का तार है और इसीलिए *लक्ष* सेट हो गया है, नहीं तो *लक्ष* रहता ही नहीं। *लक्ष* आता ही नहीं न! और जब किसी से बातें करते हो, तब *लक्ष* चूक जाते हो लेकिन बातें खत्म होने के बाद वापस *लक्ष* आ जाता है।

वह निरंतर प्रतीति का तार, क्षायक समकित, क्षायक सम्यक् दर्शन, वह सिद्ध भगवंतों के आठ गुणों में से एक गुण है। यानी कि यहाँ पर एक बटा आठ सिद्ध दशा उत्पन्न हो जाती है।

हमें प्रतीति हो जानी चाहिए। 'हम कौन हैं', ऐसी प्रतीति हो जाए तो फिर छुटकारा हो ही जाएगा। प्रतीति अर्थात् वीज़ा मिल गया मोक्ष का और फिर जब टिकट मिल जाएगी तब हल आ जाएगा।

टिकट नहीं हो तो भी झंझट है और वीज़ा नहीं हो तो भी झंझट है। दोनों ही मिल जाएँगे, उसके बाद जब भी तारीख दी जाएगी तब चले जाओगे। उस तारीख को निबेड़ा नहीं आए तो दूसरी कोई तारीख सेट कर लो। लेकिन ये दोनों मिल जाएँगे तो अपना काम हो जाएगा।

जो जान लिया उसकी रहती है प्रतीति

'ते ज्ञाने करीने जाण्युं रे, तेनी वर्ते छे शुद्ध प्रतीति।'

- श्रीमद् राजचंद्र।

आपने ज्ञान से जो जाना है, उसकी आपको प्रतीति बरतेगी। भगवान ने उसे दर्शन कहा है और आपको यह प्रतीति बरतती है। मैं कहूँ कि इतनी-इतनी पाँच-सात-दस चीज़ें लिखवा रहा हूँ और इनसे आपके दस्त ठीक हो जाएँगे। इसका मतलब यह कि मैंने आपको ज्ञान दिया। किसका? दस्त ठीक होने का। जिस प्रकार से यह मोक्ष का ज्ञान है उसी प्रकार दस्त ठीक होने का भी एक ज्ञान है न? अब जब आप उस दवाई का चूर्ण लेते हो और पेट दर्द कम हो जाता है तो आपको प्रतीति होती जाती है कि दवाई अच्छी है। मुझे रास आई। इसी प्रकार आत्मा में प्रतीति होती जाएगी। जैसे-जैसे अनुभव होगा, वैसे-वैसे प्रतीति होती जाएगी और प्रतीति पक्की होने के बाद में ही काम होगा, वर्ना नहीं होगा। प्रतीति पक्की हो जानी चाहिए। आपको तो बहुत पक्की प्रतीति हो गई है।

ऐसी प्रतीति हो गई है इस जगह पर। अब आपको प्रतीति होने के बाद फिर उल्टी बातें आईं। दस्त ठीक होने लगे, ऐसी प्रतीति होने के बाद वापस अंदर खून टपकने लगा। यानी कि प्रतीति हो जाने के बाद में उल्टा-सुल्टा होने पर भी फिर स्थान नहीं छोड़ता। जो स्थान प्राप्त हुआ है उसे नहीं छोड़ता। अब आपको यह प्रतीति हो गई है। अपनी मूल जगह पर आ जाती है प्रतीति। अब यदि कोई उल्टा कहने वाला आ जाए, उल्टा सिखाने वाला आ जाए तो प्रतीति पर यों ज़रा दबाव आएगा तो ऐसे-ऐसे टेढ़ी हो जाएगी लेकिन स्थान नहीं छोड़ेगी।

नहीं भूल सकते अनुभव कभी

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा समझ में आया है लेकिन उसका निरंतर भान नहीं रहता।

दादाश्री : भान क्या चीज़ है वह आपको समझाता हूँ। जैसे कि कोई व्यक्ति सिगरेट पी रहा हो, तब उसका बेटा उसमें इस तरह हाथ लगाने जाता है। अब इस बच्चे का यह रोग कब जाएगा? कोई सिगरेट पी रहा हो तब वह इस तरह उसे छूने की कोशिश कर रहा हो, तब फिर एक दिन यों उसका हाथ पकड़कर ज़रा सिगरेट छुआ देते हैं। कुछ देर रहने दिया जाए तो वह खूब जल जाता है। इसके बाद ज़िंदगी भर वह इस अनुभव को नहीं भूलेगा। जलती हुई सिगरेट का ज़रा लाल-लाल दिखाई दिया कि भागेगा, लाल दिखाई दिया कि भागेगा, उसे कहते हैं अनुभव। उसी तरह से हमने आपको आत्मा का अनुभव करवा दिया है। तब जाकर आपको शुद्धात्मा रहता है, यों ही तो कभी रहता होगा?

हम तो जलाए बगैर करवा देते हैं आत्मा का अनुभव। इस दुनिया में चीज़ों का अनुभव भी जलकर करना पड़ता है लेकिन यह आत्मा का अनुभव तो परमानंद है। इसमें जलना-करना नहीं है। हमारे साथ बैठते ही आनंद उत्पन्न होने लगता है। निरंतर शुद्धात्मा का भान रहता ही है। इससे ज़्यादा और क्या चाहिए?

यह ज्ञान आपको निरंतर हाज़िर रहता है। आप कोर्ट में हों तब भी आपको यह भान रहा करता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। पाप भस्मीभूत हुए बिना कभी भी भान नहीं रह सकता। यह तो ऐसा है कि अगर आपको एक शब्द बताया हो तो अगले दिन याद नहीं रहता जबकि इसे तो याद नहीं रखना पड़ता।

फर्क, श्रद्धा और प्रतीति में

प्रश्नकर्ता : हम ऐसा कहते हैं न, कि श्रद्धा होना, उसे प्रतीति कहा जाता है? प्रतीति का मतलब क्या है? श्रद्धा?

दादाश्री : श्रद्धा वगैरह वह सब स्टेज कहलाती है और प्रतीति अर्थात् एक्ज़ेक्ट आ गया। प्रतीति अर्थात् पूरी मान्यता, सौ प्रतिशत बदल गई और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह बात पक्की हो गई। और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह श्रद्धा बैठती है लेकिन फिर चली जाती है लेकिन प्रतीति नहीं जाती। श्रद्धा बदल जाती है, प्रतीति नहीं बदलती।

प्रतीति अर्थात् हम यदि लकड़ी को यहाँ गाड़ दें और उस पर बहुत दबाव आए तो वह इस तरह टेढ़ी हो जाएगी लेकिन स्थान नहीं छोड़ेगी। चाहे कितना भी कर्मों का उदय आए, खराब उदय आए लेकिन (प्रतीति) स्थान नहीं छोड़ेगी। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह चला नहीं जाएगा।

और गाढ़ प्रतीति का मतलब क्या है? थोड़ी-बहुत टेढ़ी होती है, ज़्यादा नहीं होती, चाहे कितना भी दबाव आए फिर भी। टेढ़ी होने पर लोग कहेंगे कि, 'यह गई, गई, गई' लेकिन नहीं। जो स्थान नहीं छोड़ती, वह है गाढ़ प्रतीति।

अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति। प्रतीति नींव है। उस नींव के डलने के बाद में फिर *लक्ष* उत्पन्न होता है, उसके बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ', निरंतर ऐसा *लक्ष* रहा ही करता है और जब फुरसत में बैठे हुए हों और कुछ देर के लिए ज्ञाता-द्रष्टा रहें तो वह अनुभव है। अब ज्ञाता-द्रष्टा अर्थात् बाहर का नहीं देखना है। इस प्रकृति को ही देखते रहना है कि यह प्रकृति क्या पागलपन कर रही है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् चंदूभाई को ही देखते रहना है।

दादाश्री : उसी को देखते रहना है। यह देखना है कि क्या-क्या अक्लमंदी कर रहा है, क्या-क्या पागलपन कर रहा है, वह देखना है। पागलपन करे तो हमें उस पर चिढ़ना नहीं है और अक्लमंदी करे तो उस पर राग नहीं रखना है। हमें तो वीतराग रहना है। पागलपन करे तो वह कर रहा है, हमें क्या? पुराने संबंध प्रकृति से अलग हो गए। आप प्रकृति के लिए कब तक ज़िम्मेदार थे? तभी

तक, जब तक यह प्रतीति नहीं हुई थी कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। उसके बाद हम उसके लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं।

प्रतीति मात्र आत्मा के लिए

यहाँ पर ज्ञान देने के बाद अगले दिन से आपको आत्मा की प्रतीति बैठ जाती है। प्रतीति नहीं बैठ जाती क्या अगले दिन?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बैठ जाती है।

दादाश्री : फिर उससे ज़्यादा और क्या चाहिए? इस दुनिया में कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिससे कि अगले दिन आत्मा की प्रतीति बैठ जाए।

प्रश्नकर्ता : दादा, किसी को तो सिर्फ पुस्तकें पढ़ने से भी प्रतीति हो जाती है न?

दादाश्री : नहीं, उसे प्रतीति नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : दादा की आप्तवाणी और आप्तसूत्र ऐसे हैं कि दादा से नहीं मिले हों फिर भी उनमें प्रतीति जैसा लगता है।

दादाश्री : वह प्रतीति तो बुद्धि की प्रतीति है, उसे मूल प्रतीति नहीं कह सकते। वह काम ही नहीं आएगी। वह कब बदल जाए कहा नहीं जा सकता। वह तो, अभी सर्टिफिकेट देगा और फिर दो घंटे बाद में वापस दूसरा सर्टिफिकेट दे देगा। प्रतीति अर्थात् जो कभी बदले नहीं, उसे प्रतीति कहते हैं। आपको यह प्रतीति हुई है। प्रतीति उसे कहते हैं कि जो अब जगह नहीं छोड़े। बाद में यदि फिर बहुत मार पड़े तो ऐसे हो जाएगी, ऐसे हो जाएगी लेकिन जगह नहीं छोड़ेगी।

आपको वही प्रतीति दी हुई है। चाहे संसार का कितना भी दबाव आए, भयंकर दबाव आए, सामने फाँसी लगने वाली हो तब भी प्रतीति नहीं जाएगी। सनातन वस्तु है प्रतीति। वह कोई ऐसी श्रद्धा और विश्वास जैसी चीज़ नहीं है, श्रद्धा तो उठ भी सकती है कल सुबह। प्रतीति नहीं जाती। विश्वास तो हट सकता है लेकिन प्रतीति नहीं हटती!

प्रति+इति, इति शब्द आत्मा पर लागू होता है। जिस प्रकार नेति कहते हैं न, न+इति, न+इति उसी तरह से इति शब्द आत्मा पर लागू होता है, प्रतीति। आत्मा के अलावा वर्ल्ड में अन्य कहीं भी प्रतीति शब्द का उपयोग नहीं कर सकते और प्रतीति कभी भी जाती नहीं है। कोई मार डाले फिर भी नहीं जाती। वे ऐसा कहते ज़रूर है कि 'आप पर बिल्कुल भी श्रद्धा नहीं है, ऐसा है, वैसा है।' उल्टा-सीधा बोलते हैं, फिर भी जो प्रतीति सेट हो चुकी है, वह जाती नहीं है। क्षायक प्रतीति है। कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है यह। जैसी कृष्ण भगवान ने प्राप्त की थी, वैसी क्षायक प्रतीति है। यह एक बार हुई तो हुई। तो फिर उसका मुझसे कुछ ही घंटों का संग क्यों नहीं टूट जाता? परिचय तो बहुत लंबा नहीं हुआ है वह प्रतीति का प्रताप है। मेरे साथ टेढ़ा चल सकता है, वह तो जब उस बेचारे के कर्म का उदय ऐसा हो, तब। वह मैं समझता हूँ लेकिन उसकी प्रतीति नहीं जाती।

प्रश्नकर्ता : यानी एकदम दृढ़ विश्वास आ जाए तो वह प्रतीति है?

दादाश्री : विश्वास अर्थात् प्रॉमिस। प्रॉमिस भंग होने में कितनी देर लगती है? यह तो प्रतीति है! और आपको कौन सी प्रतीति में ला दिया है? प्रतीति में भी नहीं, आपको गाढ़ प्रतीति में ला दिया है। तीर्थंकर अवगाढ़ प्रतीति में थे।

हमें अवगाढ़ प्रतीति है। भले ही तीर्थंकर नहीं हैं फिर भी हमें अवगाढ़ प्रतीति है। आपको गाढ़ में रखा है। और क्रमिक मार्ग में शब्द से प्रतीति रहती है, इस अक्रम मार्ग में अनुभव से है। उसके बाद लक्षण उत्पन्न होते हैं। क्षमा के लक्षण दिखाई देते हैं, नम्रता के लक्षण दिखाई देते हैं, सरलता के लक्षण दिखाई देते हैं, संतोष के लक्षण दिखाई देते हैं। सभी लक्षण दिखाई देते हैं। प्रतीति हो गई, उसके लक्षण क्या हैं? तो कहते हैं, ऐसे सारे लक्षण दिखाई देते हैं। अभी यदि कोई आपको खराब गालियाँ दे जाए तो आप उस पर गुस्सा हो जाते हो लेकिन फिर अंत में उसे क्षमा कर देते हो। जैसे चंदूभाई आप पहले थे, अभी वैसे नहीं हो न?

प्रश्नकर्ता : उसमें बहुत अंतर है।

दादाश्री : तो यह प्रतीति होने की वजह से है। और फिर नम्रता, वह भी आपको दिखाई देती होगी कि पहले नम्र नहीं था, अकडू था और अकडू में से अकड़ कम कैसे हो गई! सरलता तो मानो कि थी ही लेकिन उसे दिशा देने वाला कोई अच्छा इंसान होना चाहिए। फिर, संतोष नहीं था, तो वह संतोष भी उत्पन्न हुआ! कुछ तो उत्पन्न हुआ न! यदि ऐसा कहें कि व्यवस्थित के ताबे में है तो उसे संतोष कहते हैं और जहाँ पर, 'मैं कर्ता हूँ', वहाँ असंतोष है।

अद्भुत प्राप्ति एक घंटे में

इसलिए मैंने इन वकील से कहा कि एक घंटे में आपने क्या प्राप्त कर लिया? क्या रहस्य है इसके पीछे? तब उस वकील ने कहा, 'दोनों अलग हो गए।' मैंने कहा, 'आत्मा और देह दोनों अलग हो गए, वह आपने देखा। जबकि ये लोग तो अभी भी प्रतीति ढूँढ रहे हैं, थोड़ी-बहुत प्रतीति मिल जाए न, तो भी बहुत हो गया। 'मैं अलग हूँ', ऐसी प्रतीति हो जाए तो बहुत उपकारी है। और आपको तो ऐसा अनुभव हो गया कि अलग हो गया!

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान के प्रति खुद की तरफ से ज़रा सा भी रिस्पॉन्स न हो, तब भी अंदर से प्रतीति नहीं जाती। यह बहुत बड़ा आश्चर्य है।

दादाश्री : नहीं जाती। यह तो सब से बड़ा आश्चर्य है। ऐसा आश्चर्य तो वर्ल्ड में कहीं भी न मिले और दो ही घंटों में आत्मा प्राप्त हो जाता है। वर्ना क्या इन नौकरी करने वाले लोगों को आत्मा प्राप्त हो सकता था?

ज्ञानी निरंतर अनुभव पद में

जिसे हम यह ज्ञान देते हैं, वह तीन सीढ़ियों से चौथी सीढ़ी तक नहीं उतरता। किसी के साथ चाहे कैसी भी मारमारी हो जाए।

मारमारी कर रहा हो, तब भी हम समझ जाते हैं कि, 'भाई, अपना ज्ञान चला नहीं जाएगा। यदि कोई कहे, 'ये आपके फलाना भाई झगड़ा कर रहे हैं।' झगड़ा करने के बाद वापस जागृत हो जाएगा। वह जब झगड़ा कर रहा है तब झगड़ा करने वाले के *लक्ष* में भी यह रहता है कि, 'गलत हो रहा है', ऐसा है अपना ज्ञान। खुद को ऐसा महसूस करवाता है कि वापस यह गुनहगारी कहाँ से आ गई? इसलिए मुझे डाँटना नहीं पड़ता न, वर्ना तो सब को डाँट-डाँटकर मेरा तेल निकल जाता। मेरा दिया हुआ ज्ञान ऐसा है कि जब महात्मा लड़ाई-झगड़ा कर रहा होगा, तब भी हम समझते हैं कि प्रतीति चली नहीं जाएगी। प्रतीति का तार निरंतर है पूरा अंत तक, पूरी लाइफ के लिए। तो फिर कहाँ चला जाएगा वह? यदि प्रतीति से नीचे जाए तो फिर से मिथ्यात्व आ जाएगा, लेकिन यह ऐसा है कि प्रतीति से नीचे नहीं जा सकता।

इसे तो पूरी तरह से समझ लेना है, एक जन्म! जब ज्ञानी की यह सभा होती है, तब यह सारा विवरण समझ लेना है। हिसाब सीखना हो तब चाहे कितना भी मुश्किल हो फिर भी छः महीने, बारह महीने, दो साल, पाँच साल में सीख जाता है। उसी प्रकार इसमें भी आसान कर दिया है, बिल्कुल आसान। ऐसा कर दिया है कि आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा लेकिन फिर अब क्या हो सकता है? जिसे वह लाभ लेना भी नहीं आता, उसका क्या करें? इसके बावजूद भी नुकसान नहीं होगा।

महात्माओं की स्टेज क्षायक समकित

प्रश्नकर्ता : दादा, तो फिर इन लोगों को कौन सी श्रेणी में मानें? अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति इन तीनों में मानना है क्या?

दादाश्री : इन तीनों से नीचे नहीं जा सकता, वही अपना अक्रम विज्ञान है। और श्रीमद् राजचंद्र ने इसे क्या कहा है? परमार्थ समकित कहा है। अर्थात् क्षायक समकित कहा है।

कृपालुदेव ने आत्मसिद्धि में कहा है, कि '*वर्ते निज स्वभावनुं,*

अनुभव, लक्ष अने प्रतीत।' तो आपको खुद के आत्मस्वभाव की प्रतीति रहती है और यह भी *लक्ष* में रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और अनुभव सावधान करे, ऐसा भी रहता है। इन तीनों शब्द वाला बरतता है। '*वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकित*।' पहले जो वृत्तियाँ बाहर भटकना चाहती थीं, जो वृत्तियाँ अनादिकाल से बाहर जा रही थीं, 'ऐसा करूँ और वैसा करूँ'। आपकी उम्र के अन्य लोगों की वृत्तियाँ कहाँ जाती हैं? ठेठ फोर्ट में जाकर, 'यह करें या वह करें, कुछ रुपये हाथ में आए हैं तो कुछ करें, फलाना धंधा करूँ या फलाना करूँ', ऐसा सब बंद हो गया है और वृत्तियाँ वापस खुद के स्वभाव में लौटने लगी हैं। वे वृत्तियाँ अब बाहर नहीं जाएँगी। सब वापस लौटने लगी हैं। बल्कि जो बाहर गई होंगी न, वे वापस आने लगी हैं। आपकी वापस आ रही हैं या नहीं? यदि वापस नहीं आएँगी तो आपको छटपटाहट होगी। यदि चिंता होने लगे तो समझना कि वापस नहीं आ रही हैं।

इसमें तो, चित्त वृत्तियाँ वापस लौटने लगती हैं। जो भटकने के लिए बाहर जाती थीं, अब वे नहीं भटकेंगी। वे सारी चित्त वृत्तियाँ वापस लौटने लगी हैं। जैसे कि शाम होने पर सभी गाय-भैंसे वापस आ जाती हैं, उसी प्रकार से ये वापस आने लगी हैं। वे सुबह जाती हैं और शाम को वापस आती हैं। उसी प्रकार से अज्ञानता से चित्त वृत्तियाँ भटक रही थीं और फिर ज्ञान से भटकना बंद हो जाती हैं। संसार की विस्मृति जैसा अन्य कोई मोक्ष नहीं है। समय मिलते ही वृत्तियाँ बाहर जाने का प्रयत्न करती हैं। स्त्री की ओर जाती हैं, पुरुष की ओर जाती हैं, यहाँ जाती हैं, वहाँ जाती हैं। भटकती ही रहती हैं। और अब समय मिलने पर भी नहीं जातीं और अगर चली गई हों तो वापस आ जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : इसलिए फिर जो वृत्तियाँ आत्मा में होती हैं, वे फिर बाहर निकलती ही नहीं?

दादाश्री : नहीं। बाहर निकलती हैं और अंदर आ जाती हैं, बाहर निकलती हैं और अंदर आ जाती हैं, ऐसा होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वापस अंदर आ जाती हैं।

दादाश्री : बाहर बिल्कुल भी नहीं निकलें, वैसा तीर्थंकरों को रहता है लेकिन हम वहाँ तक पहुँच सकते हैं जहाँ पर अंदर-बाहर दोनों ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : दादा ने यह जो ज्ञान दिया है, उसके आधार पर वृत्तियाँ चाहे कितनी भी बाहर जाएँ, फिर भी वापस खिंचकर आ जाती हैं न?

दादाश्री : वे तो आती हैं और वापस बाहर चली जाती हैं, वे वापस आ जाती हैं लेकिन यहीं के यहीं, इतने में ही रहती हैं, अपनी बाउन्ड्री में ही रहती हैं। यदि बाहर व्यापार में चली गई हों, तो वे वापस आ जाती हैं।

यह जागृति रहे और दूसरा कुछ भी नहीं। जागृति और दादाजी का मुखारविंद याद आ जाए तो कहा जाएगा कि उस समय वापस आत्मा में आ गए, याद आया कि वापस घुसा अपने घर में!

वे वृत्तियाँ बाहर क्या करने जाती हैं? वे बाहर भटक रही थीं तो वे सुख के लिए बाहर भटक रही थीं। वे हर कहीं भटक-भटककर सुख ढूँढती हैं। सारी वृत्तियाँ सुख ढूँढती हैं। कहीं भी उन्हें सुख नहीं मिला, लेकिन यहाँ पर तो साफ, नकद मिलता है, फिर बाहर क्यों भटकें?

हर एक चीज़ का नियम ऐसा है कि पहले हमें प्रतीति होती है कि 'यह करेक्ट है'। वर्तन में नहीं आता। प्रतीति होने के बहुत समय बाद वर्तन में आता है। यह जो पढ़ते हैं तो पढ़ने में भी पहले प्रतीति होती है उसके बाद धीरे-धीरे अनुभव होते जाते हैं और फिर वर्तन में आता जाता है। मोक्ष अर्थात् सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र। पूरा संसार मिथ्या ज्ञान, दर्शन व चारित्र है।

ज्ञान के बाद, इस तरह रहती है लक्ष और प्रतीति...

हम जब ज्ञान देते हैं न, तब कितने ही कर्म भस्मीभूत हो जाते

हैं। जो कर्म, स्वरूप के लिए अंतराय रूपी होते हैं, *लक्ष* के लिए अंतराय रूपी होते हैं, वे सभी भस्मीभूत हो जाते हैं। *लक्ष* के अंतराय टूट जाते हैं और उसे शुद्धात्मा का *लक्ष* प्राप्त हो जाता है। यह *लक्ष* एक प्रकार का अनुभव है।

अब प्रतीति तो रहती ही है लेकिन फिर जितनी जागृति हो उतना *लक्ष* रहता है। लेकिन फिर *लक्ष* कितना रहता है? जागृति के अनुसार रहता है। वह उपादान के आधार पर है। वह *लक्ष* यानी क्या? तो कहते हैं, 'जब आप चेक लिखते हो उस क्षण *लक्ष* नहीं रहता। चाहे कुछ भी लिखने का काम करो, उस समय *लक्ष* नहीं रहता।' तो भगवान उसे गुनहगार नहीं कहते हैं। लेकिन जब वह काम खत्म हो जाए, जब नो वर्क (काम न हो), उस समय *लक्ष* रहे, इज़ इट पॉसिबल (क्या यह संभव है)?

प्रश्नकर्ता : हाँ, रहता है। यहाँ उपादान का अर्थ योग्यता है न?

दादाश्री : हाँ। उपादान अर्थात् जितना-जितना इस मिथ्यात्व दशा में धारणा करते रहे हो और जो कुछ भी किया हो, वह मेहनत बेकार तो जाएगी नहीं। नुकसान भी पहुँचाती है और फायदा भी करती है न! उपादान तो उत्पन्न होता है न! तो वही योग्यता है। किसी की योग्यता अधिक होती है तब *लक्ष* अधिक रहता है। यदि योग्यता कम हो तब भी प्रतीति तो जाती ही नहीं।

लक्ष तो, हर काम करता रहता है लेकिन वह काम खत्म हुआ कि *लक्ष* आ ही जाता है। समय मिलते ही *लक्ष* में यही रहता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* रहता है। *लक्ष* तो क्रमिक मार्ग में है। आपने यहाँ तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसे ऐसा ध्यान में रहता है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका *लक्ष* रहता है।

दादाश्री : क्रमिक मार्ग में *लक्ष* रहता है और अपने यहाँ पर ख्याल रहता है।

प्रश्नकर्ता : ख्याल और *लक्ष* में क्या अंतर है, वह समझाइए।

दादाश्री : *लक्ष* कहीं पर कीलों से बाँधा हुआ होता है और ख्याल एनी व्हेयर (कहीं भी) हो सकता है। क्योंकि क्रमिक मार्ग में क्षयोपशम आत्मा प्राप्ति होने के कारण क्षण भर में *लक्ष* चला जाता है। *लक्ष* में अर्थात् जो एक ही जगह पर रहे। क्षायक आत्मा प्राप्त किया है तो ख्याल रहता है। *लक्ष* नहीं, परंतु ख्याल। अब, क्या शुद्धात्मा आपको ख्याल में रहता है? 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा?

प्रश्नकर्ता : टुकड़े-टुकड़े ख्याल रहता है।

दादाश्री : हाँ, टुकड़े-टुकड़े। काम पूरा हो जाता है तब ख्याल आ जाता है न! जब कोर्ट में काम करते हो, उस समय आपको ख्याल में रहता है न?

प्रश्नकर्ता : मैं जब बोल रहा होता हूँ तब *लक्ष* नहीं रहता लेकिन जब सुन रहा होता हूँ तब *लक्ष* रहता है।

दादाश्री : कई लोगों को तो बोलते समय भी ख्याल रहा करता है। हर काम करते समय ख्याल में रहता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। ऐसा ख्याल रहना कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और वही शुक्लध्यान है। अन्य किसी को ऐसा ध्यान नहीं रहता न, कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

जब ध्यान रहता है उस समय वापस थोड़ा अनुभव चखता ही रहता है। अनुभव का स्वाद आता ही रहता है। जैसे-जैसे अधिक से अधिक यह ख्याल में रहेगा, वैसे-वैसे और भी अधिक अनुभव उत्पन्न होगा और ख्याल में रहा करेगा। निरंतर आत्मा का अनुभव तो है ही। जितने समय तक प्रतीति उतने समय तक अनुभव। अनुभव के बिना तो यह प्रतीति बैठती ही नहीं न!

ज्ञानी नहीं करते हैं रटन

जिस समय *लक्ष* नहीं रहता, उस समय प्रतीति तो निरंतर रहती ही है। प्रतीति है इसीलिए फिर से *लक्ष* आ जाता है, वर्ना *लक्ष* आए

ही नहीं। एक बार खो जाए तो फिर याद करना पड़ता है। यह तो अपने आप ही आकर खड़ा रहता है। रात को कभी जब जाग जाते हो, तब ऐसा याद आ जाता है न, कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'? हाँ। अत: वह पूरी तरह से हो ही चुका है। अब आपको समझने की ज़रूरत है, यह साइन्स है। अत: हर एक शब्द को समझने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं आत्मा हूँ', अगर अधिक से अधिक यही रटन रहा करे तो अच्छा है न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। रटन तो इस संसार दशा में, साधक दशा में करने की ज़रूरत है। यहाँ पर तो वह परमात्मा बन गया है। हमने यह ज्ञान दिया, उसके बाद खुद परमात्मा बन गया है लेकिन प्रतीति से! अब प्रतीति बैठ गई है। विश्वास हो गया है कि 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ' परंतु 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ।' ऐसी प्रतीति हो गई है और *लक्ष* बैठ गया है। *लक्ष* अर्थात् निरंतर ध्यान में ही रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। यानी कि अब सारी जागृति उत्पन्न हो गई है। अब क्या ज़रूरत है? अत: बोलना या फिर रटन-वटन जैसा तो यहाँ पर करना ही नहीं है। यह तो एक आश्चर्य है कि यहाँ पर रटन नहीं करना है, ज्ञानी रटन नहीं करते हैं न! रटन तो शब्द रूपी है।

रटन करने से सहजता खत्म

समकिती जीव में क्या होता है? 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भान हो जाता है जबकि अन्य लोगों का कोई ठिकाना नहीं रहता। उन्हें कभी थोड़ा-बहुत ध्यान आ जाता है कि 'मैं आत्मा हूँ', लेकिन समकिती को तो अपने आप ही आ जाता है। स्मरण करना पड़े और अपने आप आ जाए, उसमें तो बहुत अंतर है। स्मरण करें तो वह विस्मृत भी हो जाता है। जो विस्मृत हो गया हो, उसका स्मरण करना पड़ता है। अत: ये सब आगे बढ़ने के रास्ते हैं। अत: आपको रटन नहीं करना है। रटन करोगे न, तो वह मूलभूत सहज बंद हो जाएगा। सहज अंदर आ रहा... सहज रूप से आएगा, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' *लक्ष* रहा ही करेगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', उसका *लक्ष* हमेशा रहा ही करता है, चौबीसों घंटे।

दादाश्री : वह अपने *लक्ष* में रहा ही करता है, *लक्ष* में रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा नहीं बोलना है?

दादाश्री : बोलना हो तो बोलो। नहीं बोलना हो तो उसकी कोई ज़रूरत नहीं है। वह निरंतर चौबीसों घंटे *लक्ष* में ही रहेगा। रोज़ रात को 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते-बोलते सो जाना। और इन पाँच आज्ञा का पालन करना। बहुत हो गया। यहीं से मुक्ति हो जाएगी। सर्व दुःखों का अभाव हो जाएगा, अब सांसारिक दुःख स्पर्श नहीं करेंगे।

सहज भाव से रहे, वही सही है

प्रश्नकर्ता : सहज भाव से आत्मा की दशा के लिए ध्यान में बैठना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : उसी को सहज भाव कहा जाता है। कोई भी प्रयत्न किए बिना नींद में से जागते ही आपको 'मैं शुद्धात्मा हूँ' अपने आप आ जाता है न?

प्रश्नकर्ता : आ जाता है।

दादाश्री : उसे कहते हैं सहज और बाकी सब असहज कहलाता है। यह सहज है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' अपने आप ही आ जाता है जबकि वहाँ पर 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' का स्मरण देते हैं, वह याद आए और न भी आए। उसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। जबकि यह तो अपने आप ही आ जाता है, यह सहज कहलाता है। तो आपको सहज हो चुका है। आपका सहजात्मस्वरूप हो चुका है। आपका आत्मा सहज हो चुका है, अब शरीर को सहज करना है। वह आज्ञा से सहज हो सकता है। दोनों सहज हो जाएँ तो उसी को कहते हैं मोक्ष।

बरते शुक्लध्यान रे!

'मैं शुद्धात्मा हूँ', निरंतर उसका *लक्ष* रहता है?

प्रश्नकर्ता : निरंतर रहता है, दादा।

दादाश्री : वह आत्मध्यान कहलाता है, वह शुक्लध्यान कहलाता है। बोलो! शुक्लध्यान प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है। वर्ना एक क्षण भर भी आत्मा याद नहीं रह सकता। एक अनजान व्यक्ति था न, वह शुद्धात्मा जानकर आया। उसके बाद अगले दिन, वह मन में याद करने लगा कि वह शब्द क्या था, वह शब्द क्या था? पंद्रह मिनट तक याद नहीं आया। यह याददाश्त की बात नहीं है। यह तो साक्षात्कार है और अभेदता है।

अलख का लक्ष

इस संसार का *लक्ष* (जागृति) बैठ जाता है लेकिन खुद के स्वरूप का *लक्ष* कभी भी नहीं बैठता। ऐसे जो अलख निरंजन हैं, वे ज्ञानी पुरुष वह *लक्ष* दे देते हैं। उसके बाद छुटकारा होता है। वर्ना छुटकारा नहीं हो सकता। और संसार का *लक्ष* तो आसानी से हर बात में रहता है। यदि हम ऐसा बताएँ कि ये आपके पार्टनर हैं तो अगले दिन ही *लक्ष* आ जाता है कि, 'ये मेरे पार्टनर आए'। उसमें कोई चूक नहीं करता। दिन में पैर टूट जाए तो रात को उठते समय तुरंत ही लाठी याद आ जाती है। अरे भाई, एक दिन में तुझे यह कैसे याद आ गया कि यह पैर टूट गया है? तो कहता है, 'नहीं, उसका *लक्ष* बैठ गया है।' रात को कहता है, 'मेरी लाठी लाओ'। 'अरे! कौन सी लाठी कह रहे हो?' तब कहता है, 'मेरा पैर टूट गया है न!' 'तो भाई, एक ही दिन में भूल नहीं पाता?' नहीं भूल पाता, उसी को कहते हैं, *लक्ष* बैठना।

इसलिए अब काम हो गया। 'दादा, दादा' करते रहो। 'शुद्धात्मा, शुद्धात्मा' करते रहो। दादा ही शुद्धात्मा हैं। हम भी दादा भगवान को

नमस्कार करते रहते हैं। वे दादा भगवान चौदह लोकों के नाथ हैं, प्रकट हो चुके हैं!

अनुभव, *लक्ष* और प्रतीति, क्या तीनों ही निरंतर रहते हैं? एक सेकन्ड भी चूके बगैर, निरंतर शुद्धात्मा का *लक्ष* रहता ही है। फिर वहाँ पर और क्या बाकी बचा? जब निरंतर ही *लक्ष* रहा करे, फिर कर्म बंधन कैसे हो सकता है?

'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* रहता है। 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा *लक्ष* नहीं रहता लेकिन फिर उसे (चंदूलाल हूँ, ऐसा) भूलता भी नहीं है। यदि कोई पूछे कि 'आप चंदूलाल हो?' तो क्या वह भूल गए हो? तब कहता है, 'नहीं, मैं नहीं भूला हूँ'। जिस प्रकार नाटक में जो भर्तृहरि होता है, वह भर्तृहरि का रोल निभाता है, उसी प्रकार यह चंदूलाल का रोल निभाता है। और भर्तृहरि अंदर ही अंदर तो जानता है कि मैं लक्ष्मीचंद हूँ। और ये अंदर जानते हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

नहीं भूलता, 'मैं प्रधानमंत्री' हूँ

कोई व्यक्ति जेल से छूट कर प्रधानमंत्री बन जाए तो प्रधानमंत्री बनने के बाद वह रात-दिन यह नहीं भूलता कि 'मैं प्रधानमंत्री हूँ'। नहीं भूलता न? वह भूलता नहीं है और अपना काम भी नहीं चूकता। कोई प्रश्न पूछे तो वह यही समझकर जवाब देता है कि मैं प्रधानमंत्री हूँ। अतः हम शुद्धात्मा हो चुके हैं तो हमें, 'शुद्धात्मा हूँ', ऐसा समझकर ही जवाब देना है। आप जो रूप हुए हो, उसी रूप की बात है यह। समझ जाओ। बाहर कर्मों के उदय का दबाव आए, वह अलग चीज़ है। वैसा दबाव तो प्रधानमंत्री पर भी आता है। कर्म के उदय से कोई पत्थर फेंकता है, कोई गालियाँ देता है। ऐसे सारे कर्म के उदय तो उनके भी हैं न, लेकिन वे प्रधानमंत्री के रूप में अपना फर्ज़ निभाते हैं। उसी तरह हमें शुद्धात्मा का फर्ज़ निभाना पड़ेगा। इसकी वजह से खुद भूल नहीं जाता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ'। ऐसे कहीं भूलने से काम चलेगा क्या? सब *लक्ष* में रहता ही है न!

क्रमिक मार्ग में कितना प्रयत्न करने पर आत्मा के *लक्ष* का पता चलता है। वह *लक्ष* तो आता ही नहीं है। वह खुद *लक्ष* में रखता है। जिस प्रकार का अपना व्यापार होता है न, व्यापार की बात *लक्ष* में रखनी पड़ती है न? उसी प्रकार आत्मा को *लक्ष* में रखते हैं, ऐसा है आत्मा। तो उसे प्रतीति बैठने पर ही इस प्रकार से *लक्ष* में रह सकेगा, उन्हें गुणों पर प्रतीति बैठती है। अपना तो यह आत्मानुभव कहलाता है। क्योंकि सहजता को ही अनुभव कहा जाता है, जो अपने आप प्राप्त होता है। प्रयत्न करने पड़ें तो वह अनुभव नहीं है। क्रमिक में उन्हें प्रतीति वगैरह सब करना पड़ता है। प्रतीति के लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

आपका आत्मा अनुभव भी आपकी दृष्टि से सही है, गलत नहीं है लेकिन अंश अनुभव है। और अक्रम से आपको सहज प्राप्त हो गया है न, तो आपको उससे लाभ हो जाता है लेकिन जैसे-जैसे और भी प्रगति करोगे वैसे-वैसे अनुभव बढ़ता जाएगा। जैसे-जैसे जागृति उत्पन्न होगी उसके बाद पूरी बात समझनी पड़ेगी। परिचय में रहकर यह पूरा ज्ञान समझ लेना है।

संपूर्ण अनुभव क्यों नहीं होता?

आज प्रतीति के रूप में क्यों रहा हुआ है? संपूर्ण अनुभव क्यों नहीं हुआ? संपूर्ण प्रतीति, संपूर्ण ज्ञान और संपूर्ण अनुभव तीनों ही रहने चाहिए। तो कहते हैं, 'नहीं, वैसा संपूर्ण अनुभव नहीं रह पाता, संपूर्ण ज्ञान भी नहीं रह पाता, प्रतीति संपूर्ण रहती है। क्योंकि आपको फाइलों का *निकाल* करना है! आप हो शुद्धात्मा लेकिन आपकी यह दशा अंतरात्म दशा है'। तो पूछते हैं, 'ऐसा क्यों?' तो कहते हैं, 'फाइलों का *निकाल* बाकी है।' जब फाइलों का पूरा *निकाल* हो जाएगा, तब आपकी फुल गवर्नमेन्ट। फाइलों की वजह से यह सब रुका हुआ है।

'*वर्धमान समकित थई, टाले मिथ्याभास*' यानी कि आपको जो क्षायक समकित हुआ है, वह भी वर्धमान होता रहेगा। प्रतीति पूर्ण होने

पर अनुभव होगा। जैसे-जैसे वह अनुभव बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे ऐसा लगेगा कि यह मिथ्याभास है। अर्थात् वकालत का जो काम, आप पूजा की तरह करते थे, वही काम बल्कि मिथ्या लगेगा। आप बेटे के बाप बने, बेटियों के बाप बने, वह सब मिथ्या लगता है न! आभास मात्र। सिर्फ मिथ्या ही नहीं, मिथ्या आभास!

प्रश्नकर्ता : तो दादा, जब कोई चीज़ मिथ्या दिखाई देती है तब फिर वह अपने आप ही आसानी से छूटने लगती है?

दादाश्री : छूट ही गया है। जो मिथ्या दिखाई दिया, वह छूट ही गया।

यथार्थ अनुभव का प्रमाण

प्रश्नकर्ता : यथार्थ जान लिया, ऐसा कब कहा जा सकता है?

दादाश्री : अनुभव होने के बाद ही कहा जाएगा कि यथार्थ जाना।

प्रश्नकर्ता : इसका क्या प्रमाण है दादा कि वह अनुभव यथार्थ ही है?

दादाश्री : अपने यहाँ पर जब ज्ञान देते हैं न, तब अनुभव टच हो जाता है इसलिए प्रतीति हो जाती है। लेकिन यह संपूर्ण अनुभव नहीं कहा जाएगा। दुनिया का नियम ऐसा है कि हर एक चीज़ की पहले प्रतीति होती है। आप कुछ भी समझाओ कि 'भाई, इस तरह की कसरत करने से आपका शरीर वगैरह सब अच्छा हो जाएगा'। वह सुनते ही, वह अच्छी बात सुनता है ठीक से तो उसे प्रतीति हो जाती है। और प्रतीति होने के बाद खुद उस क्रिया की शुरुआत कर देता है। और शुरुआत करने के बाद उसे अनुभव होता है। उसके बाद कहा जाएगा कि 'जान लिया'। उसके बाद वह दूसरों को समझा सकता है। प्रतीति हुई हो और समझाए तो उसमें कुछ दम नहीं होता। अत: यह प्रतीति होने के बाद में जब आपको अनुभव होगा उसके बाद वह जो दर्शन था, उसका सारा ज्ञान होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हम अनुभव की कक्षा के बारे में कैसे जान सकते हैं?

दादाश्री : जितनी बातों में हम पर दुनिया का असर न हो, उतनी अनुभव की कक्षा पूर्ण हो गई। और जितनी बातों में जहाँ-जहाँ पर असर होता है, वह कक्षा अभी बाकी है।

प्रश्नकर्ता : दादा, जब असर नहीं होता तो क्या वास्तव में वह आत्मा जानने के कारण है या अन्य किसी कारण से उदासीन भाव जागृत होने से वैसा होता है?

दादाश्री : आत्मा जानने की वजह से थोड़ा-बहुत ऐसा समझ में फिट हो जाता है। उसके बाद जब थोड़ा अनुभव होता है न, तब फिर कुछ भाग बंद हो जाता है और जितने भाग में अनुभव कच्चा है, वह भाग अभी भी कुछ कच्चा रह जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्या इसका कोई थर्मामीटर है कि आगे बढ़ रहे हैं या नहीं? ऐसा जानने के लिए?

दादाश्री : वह थर्मामीटर तो आत्मा ही है। वह बता देता है कि 'अभी ठीक नहीं है। यहाँ तक का अनुभव ठीक है'। आत्मा थर्मामीटर की तरह काम करता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : प्रतीति प्लस आज्ञा, उससे अनुभव की दशा आती है न?

दादाश्री : हम जिस बारे में आज्ञा देते हैं, उस हद तक का अनुभव में आएगा। हर बात में आज्ञा अनुभव में नहीं आ सकती न!

प्रश्नकर्ता : 'हर बात में आज्ञा अनुभव में नहीं आ सकती', वह किस दृष्टि से?

दादाश्री : वह तो जो आज्ञा दी हो, वह एक कॉर्नर की रहती है। उस कॉर्नर का फिट हो जाता है। दूसरी जगह पर फिट नहीं होती न!

कोई मारे, लूट ले, फिर भी राग-द्वेष नहीं हो, वह उसका थर्मामीटर है। थर्मामीटर होना चाहिए न! रोने में भी हर्ज नहीं है। लेकिन राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। यदि किसी को मारे और वह रोए, तो ऐसा इसलिए कि देह कोमल है, इसलिए रोता है और यदि देह मज़बूत हो तो वह हँसेगा, वह नहीं देखना है। अपने राग-द्वेष चले गए हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : तो दादा, इसका अर्थ ऐसा हुआ न कि कोई हमें गालियाँ दे तब अपना मुंह बिगड़ जाता है लेकिन अंदर उसके प्रति राग-द्वेष नहीं होते।

दादाश्री : इसका मतलब यह है कि अभी कमी है। फिर बाद में तो मुंह भी नहीं बिगड़ेगा। अभी मुंह बिगड़ जाता है तो उसमें हर्ज नहीं है। रोने लगे तब भी हर्ज नहीं है। यदि मार सहन नहीं हो रही हो और वह रो पड़े तब भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मुंह बिगड़ जाता है वह कमज़ोरी है?

दादाश्री : कमज़ोरी ही है न! नहीं तो और क्या है?

शुद्धात्मा रूपी कब हो सकते हैं?

एक व्यक्ति मुझसे पूछ रहा था, ''दादा, मुझे दिन भर ऐसा भान रहता है कि 'शुद्धात्मा हूँ' लेकिन मैं अभी भी उस रूप नहीं हो पाता हूँ।''

अरे! उस रूप होने को कहाँ कोशिश कर रहा है! अभी तो तुझे प्रतीति बैठी है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। प्रतीति बैठने से क्या होता है कि अंदर जो बीज थे, वे सब जल गए। अब फिर से नए सिरे से उगने लायक नहीं रहे लेकिन अब पिछले बीजों का निबेड़ा तो आना चाहिए न! तो फिर पिछले बीज में से फल देकर जाएँगे। जितने फल देकर चले जाएँगे उतना अनुभव ज्ञान प्रकट होगा। उसके बाद प्रतीति से आगे बढ़ता है। अनुभव ज्ञान कब प्रकट होता है? जब उसके पास

ऐसा अनुभव ज्ञान हो कि कड़वे-मीठे फल आने पर उनमें समता रहे। जितना वीतराग रहता है, उतना अनुभव ज्ञान होता है और वैसे-वैसे ज्ञान प्रकट होता जाता है। अनुभव ज्ञान प्रकट होने के बाद वर्तन में आएगा तब तू पूर्ण रूप से शुद्धात्मा बन जाएगा। जब यह भरा हुआ माल निकल जाएगा, तब वर्तन में आएगा। यों ही कभी आता होगा? हमें हँसना है और आटा भी फाँकना है, तो क्या दोनों साथ में हो सकता है? या तो हँस लो या आटा फाँक लो।

लक्षण आत्मानुभव के

प्रश्नकर्ता : एक बार यदि आत्मा का अनुभव स्थिर हो जाए, उसके बाद कुछ भी बाकी नहीं रहता।

दादाश्री : हाँ, स्थिर ही हो जाता है, तब फिर दिन भर स्थिर ही रहेगा। सिर्फ एक ही घंटे नहीं, दिन भर, निरंतर स्थिर रहेगा।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा की अनुभूति कैसे हो सकती है?

दादाश्री : अभी एक भाई ऐसा पूछने आए थे, आपकी तरह। मुझसे कहने लगे, 'आत्मा का जैसा अनुभव होना चाहिए, अभी तक वैसा हो नहीं रहा है'। तब मैंने कहा, 'अंदर सावधान करने वाला सावधान करता है तुझे?' तब कहने लगा, 'वह तो दिन भर सावधान करता है।' तब मैंने कहा, 'ज्ञान लेने से पहले सावधान करता था क्या?' तो कहा, 'नहीं, तब तो कोई सावधान नहीं करता था'। तब मैंने कहा कि 'वह चेतन ही सावधान करता है।' तो दिन भर आत्मा का अनुभव देख तो रहे हो। अरे! दिन भर आत्मा का अनुभव रहता है। सावधान करने वाला सावधान करता है या नहीं करता? चेतन ही सावधान करता है वह। पहले चेतन नहीं था और कोई बाप भी सावधान नहीं करता था। सावधान करता है न, चेतन? क्या कहता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, सावधान करता है।

दादाश्री : अब! यही वह अनुभव है। चेतन सावधान करता

है, क्या वह पहले सावधान करता था? पहले कोई सावधान नहीं करता था न! यही अनुभव है!

प्रश्नकर्ता : उस अनुभूति के लिए कौन सी प्रवृत्ति करनी चाहिए?

दादाश्री : पाँच आज्ञा का पालन करो तो सारी जोखिमदारी हमारी, आपको मोक्ष ले जाना है एक जन्म में।

चैतन्य विज्ञान है, वह अंदर सावधान करता है। दिन भर सावधान करता रहता है हमें! आप ज़रा लापरवाह हो जाओ तब भी वह सावधान करता है। क्या आपके साथ कभी ऐसा हुआ है? आपके लापरवाह होने पर वह सावधान करे?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तब भी सावधान करता है।

दादाश्री : हाँ। तो वह कौन है? तो वही आत्मा का अनुभव है। दिन भर निरंतर आत्मा का अनुभव रहे, ऐसा यह अक्रम विज्ञान है। वर्ना जगत् ने आत्मा का जो अनुभव देखा है, वह कैसा है? परछाई जैसा। परछाई देखने को चीज़ देखना नहीं कहते। परछाईं को देखा है लेकिन अब, चीज़ नहीं देखी है! आभास, बस! अब वह आभास मात्र है जबकि यह तो फैक्ट (यथार्थ) वस्तु है।

निरंतर सावधान करने वाला कौन है?

जो दिया है वही आत्मा वास्तविक आत्मा है या फिर कुछ और है?

प्रश्नकर्ता : करेक्ट चीज़ दी है वह।

दादाश्री : वह तो साथ-साथ रहता है, उसमें यह वाला है या वह वाला, वह कैसे पता चलेगा? सभी आत्मा साथ-साथ ही हैं, उनमें से कौन सा आत्मा सही है?

अगर वास्तविक आत्मा नहीं होता तो अंदर से चेतावनी बंद हो जाती। दुनिया में भी लोग आत्मा कहते हैं लेकिन उन्हें कोई भी चेतावनी

नहीं देता। इसलिए फिर वे उलझन में पड़ जाते हैं कि यह क्या है? उस समय क्या अंदर से, सामने से रिस्पॉन्स (प्रतिभाव) नहीं आना चाहिए? आपको अंदर उसका रिस्पॉन्स पता चलता है न? वह रिस्पॉन्स देता है न? रिस्पॉन्स नहीं देगा तो फिर हम किसके वहाँ जाकर घंटी बजाएँगे? बजाते ही रहो न घंटी! घंटी सुनाई देगी और आवाज़ सुनाई देगी। चंदूभाई जैसा था वैसे का वैसा ही रहेगा। मूल रूप से यह परिवर्तन हुआ है। और यदि रिस्पॉन्स देगा तभी उसके साथ काम हो पाएगा न। वर्ना आप अगर मुझे रिस्पॉन्स नहीं दोगे तो मैं आपके साथ कितने समय तक 'चंदूभाई, चंदूभाई' करता रहूँगा? आपके कंधे पर हाथ रखता रहूँ, क्या उसमें स्वाद आएगा मुझे? और यदि आप रिस्पॉन्स दोगे कि 'मुझे क्यों छुआ?' तो मैं समझूँगा कि 'रिस्पॉन्स दे रहे हैं।'

प्रश्नकर्ता : सावधान करने वाला और सावधान होने वाला, ये दोनों एक नहीं हैं?

दादाश्री : एक ही हैं न! लेकिन अभी वह सिर्फ सावधान होने वाला ही है। जब सावधान करने वाला जागेगा तब एक हो पाएँगे। जागृत होने के बाद में फिर वह उसे चेतावनी देगा, 'ऐसे नहीं, इधर आ, इधर आ'। सावधान करने वाला सावधान होने वाले से कहेगा, 'ऐसा नहीं, ऐसे वापस आ जाओ'। खुद की वृत्तियों रूपी यह जो चेतन है, उसे वापस बुलाता है।

प्रश्नकर्ता : सावधान कौन होता है?

दादाश्री : वे जो वृत्तियाँ हैं न, वे। जो एकाकार हो जाता है, वह।

प्रश्नकर्ता : तो एकाकार कौन हो जाता है? किसके साथ?

दादाश्री : वह खुद अपने आप के साथ ही एक हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो सावधान होने वाला, सावधान करने वाले के साथ एक हो जाता है?

दादाश्री : हाँ, सावधान करने वाले के साथ सावधान होने वाला एक हो जाता है। और सावधान होने वाला कब से बना, जब से उसने खुद ने उसे रिस्पॉन्स दिया, तभी से वह सावधान होने वाला बन गया। तब तक सावधान होने वाला था ही नहीं। कोई किसी की बात ही नहीं सुनता था।

प्रश्नकर्ता : रिस्पॉन्स का मतलब क्या है?

दादाश्री : रिस्पॉन्स अर्थात् यह इसने कहा कि 'ऐसे', तो फिर दूसरा कहता है, 'यह ठीक है, राइट'। उस तरफ घूमते ही उसे राइट बिलीफ हो गई। पहले रोंग बिलीफ हो गई थी, अब राइट बिलीफ हो गई।

प्रश्नकर्ता : तो सावधान करने वाले को आपके माध्यम से राइट बिलीफ प्राप्त होती है?

दादाश्री : ऐसा है न, मूल रूप से उसे यह रोंग बिलीफ है, तो राइट बिलीफ कौन सी है? तो जब हम उसे यह बताते हैं तो उसे राइट बिलीफ बैठ जाती है, दृष्टि बदल जाती है। जैसे कि यदि मैं आपको इस तरफ घुमा दूँ तो फिर आपकी दृष्टि बदल जाएगी न! फिर आप कहोगे कि 'पहले तो यह नहीं था, यह तो पूरा समुद्र दिखाई दे रहा है।' उसके बाद रिस्पॉन्स आता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ.., अर्थात् घुमाने वाला निमित्त होना चाहिए।

दादाश्री : वह तो निमित्त ही है, निमित्त!

प्रश्नकर्ता : वह कौन? ज्ञानी पुरुष होने चाहिए?

दादाश्री : हाँ, और कौन? वह तो जो जानता है, वही निमित्त बन सकता है। जो जानता है, वही बताएगा न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर इसमें 'मूल आत्मा' कहाँ पर है?

दादाश्री : है न! मूल आत्मा तो वहीं पर है। मूल आत्मा तो

इसमें से कोई भी कार्य नहीं करता। मूल आत्मा में से अलग हुई जो शक्ति है, प्रज्ञाशक्ति, वही यह सारा काम करती है। जब वह काम खत्म हो जाएगा, तब वह शक्ति वापस उसमें तन्मयाकार हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : तो इसमें सावधान करने वाला कौन है?

दादाश्री : वह जो है, वह यह प्रज्ञाशक्ति है लेकिन आप उसे आत्मा कहो न! उसे आत्मा ही कहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सावधान होने वाला कौन है?

दादाश्री : अंदर यह जो अलग हो गया था न, वे वृत्तियाँ, बिलीफ! बिलीफ अलग हो गई थी।

प्रश्नकर्ता : क्या उस सावधान होने वाले के अस्तित्व को *पुद्गल* कहा जा सकता है?

दादाश्री : *पुद्गल* नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो ये वृत्तियाँ *पुद्गल* रूपी नहीं हैं?

दादाश्री : वह बिलीफ है। उस बिलीफ की वजह से *पुद्गल* बनता है।

उस सावधान करने वाले के पास और कोई चारा ही नहीं है न! वह तो यही काम लेकर बैठा है। अतः उसका फर्ज है कि, 'अब इसे मोक्ष में ले जाना है।' ये जो रोंग बिलीफ हैं, वे हट गईं। इसलिए फिर अब उसे सावधान करना ही पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : अब, जब वह अनुभव वर्तन में आएगा तब सावधान करने वाला और सावधान होने वाला एक हो जाएँगे?

दादाश्री : हो ही जाएँगे वे तो अपने आप। वर्तन में आया, उसी को कहते हैं, पूर्ण हुआ। वे वर्तन सहित हैं और ये वर्तन रहित हैं।

प्रश्नकर्ता : जब तक वर्तन रहित हैं, तभी तक सावधान करने वाला और सावधान होने वाला अलग है?

दादाश्री : हाँ।

ज्ञाता-द्रष्टापद को सावधान करने वाला

प्रश्नकर्ता : जहाँ पर ज्ञाता-द्रष्टापन है, वहाँ पर फिर सावधान करने की बात ही कहाँ रही?

दादाश्री : लेकिन जब ज्ञाता-द्रष्टापन नहीं रहता तब सावधान करता है न कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : हाँ। तो वह कौन सी स्टेज कहलाती है? सावधान करने की जो स्टेज है, वह कौन सी स्टेज कहलाती है?

दादाश्री : उदयकर्म के अधीन धक्का लगता है और फिर से छूट जाता है। उस समय कहता है न, 'सावधान'! उसके बाद फिर वापस वहाँ पर ले आता है। सावधान करने वाला है न, पर यदि 'सावधान', ऐसा नहीं कहेगा तो कमी रह जाएगी।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। लेकिन इसे मूल स्टेज नहीं कहा जाएगा न?

दादाश्री : मूल की बात कहाँ रही, यदि सावधान करने वाला नहीं होगा तो कमज़ोर रह जाएँगे। मूल स्टेज आने के बाद में कुछ करने को ही नहीं रहता न!

ज्ञाता-द्रष्टा में जितना रहा जा सके उतना रहते हैं। दूसरी अड़चनों की वजह से नहीं रह पाते। फिर भी सावधान होकर वापस वहाँ पर आ जाते हैं। दूसरे अंतराय हैं न! बाकी, ज्ञाता-द्रष्टा रहने के बाद अंतराय नहीं रहते। उनके लिए तो कुछ बाकी ही नहीं रहता न! जिसे अंतराय है, उसे सावधान होना है।

प्रश्नकर्ता : यह जो सावधान करने की स्टेज है न, वह लॉन्ग

टाइम तक चलती है। मूल वस्तु अलग है, उसके बावजूद भी ऐसा चलता ही रहता है।

दादाश्री : वह चलता रहेगा। वह चलता ही रहता है। उसी में हमें ज़्यादा ज़ोर लगाना है न! जो उल्टा है उसे सीधा करना है न!

प्रश्नकर्ता : अब इसमें उसे खुद को अपने आप में तन्मयाकार होना है लेकिन उसके सभी दरवाज़े बंद हो जाते हैं। खुद का जो ज्ञान जानना है, वह टोटली क्लोज़ हो जाता है। आगे की स्टेज में नहीं जा पाते।

दादाश्री : ऐसा है, अन्य कोई प्रतीति नहीं बैठ सकती, वही पूर्णाहुति है। प्रतीति की पूर्णाहुति करनी है। अन्य कोई भी पूर्णाहुति नहीं करनी है। इन आचार-वाचार की पूर्णाहुति नहीं करनी है। और अन्य कोई प्रतीति नहीं बैठ सकती! इसलिए भले ही अंदर माथापच्ची करता रहे, उसे भी देखते रहना है। बुद्धि को नहीं घुसने देना है, वर्ना बुद्धि इंसान को चैन से नहीं रहने देती।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि तो बहुत परेशान करती है।

दादाश्री : हाँ, वह प्रतीति के दरवाज़ों को बंद कर देती है। प्रतीति के दरवाज़े बंद करवा देती है। वर्ना अब अन्य कोई प्रतीति बैठ पाए, ऐसा है ही नहीं। फिर उससे अधिक और क्या चाहिए?

आत्मा की आराधना तो निरंतर अनुभव करने की चीज़ है। आत्मा का अनुभव तो निरंतर रहता ही है। अंदर जो सावधान करता है, वही आत्मा है। सावधान करता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : पहले कोई सावधान नहीं करता था, वह अज्ञान था। अब अंदर सावधान करता है, 'ऐ! ऐसे, ऐसे'। सावधान करता है न?

प्रश्नकर्ता : उसमें एक यह लोभ रहता है कि उसे प्रत्यक्ष देखना है।

दादाश्री : हें? वह अक्ष से देखने वाली चीज़ नहीं है। अक्ष अर्थात् आँखों से। वह ऐसी चीज़ नहीं है कि आँखों से दिखाई दे? उसे अनुभव कर पाओगे। शक्कर को यदि आपके मुंह में रखूँगा तो आप कहोगे कि अब समझ में आ गया। बस, अंत में समझ लेने की ज़रूरत है।

प्रतीति हो जाए तो उसी को कहते हैं, 'देखा'। यों आखों से नहीं परंतु प्रतीति हो जाती है, उसके बाद *लक्ष* बैठता है, उसी को कहते हैं जान लिया। और फिर वीतरागता रहती है, उसी को कहते हैं अनुभव। अत: पहले दिन से ही प्रतीति बैठ जाती है, उस क्षण भी आत्मा को तो देख ही लिया होता है।

टेकाज्ञान के बिना नहीं है पूर्णाहुति

प्रश्नकर्ता : प्रतीति रहती है, उसके बाद अनुभव होने में किस चीज़ की कमी रह जाती है?

दादाश्री : उस दशा तक पहुँचने लिए ज़रूरत का जो ज्ञान है, उसकी कमी है। ज़रूरत अर्थात् *टेकाज्ञान,* ये सारी बातें जो मैं बता रहा हूँ न, वह सारा *टेकाज्ञान* कहलाता है। उसके आधार पर आपको सारा अनुभव प्राप्त होगा।

प्रश्नकर्ता : तो इस *टेकाज्ञान* में ज्ञानकला और बोधकला, दोनों चीज़ें आ जाती है।

दादाश्री : *टेकाज्ञान* तो, हमने शब्द दिया है। बाकी, *टेकाज्ञान* जैसा कुछ है नहीं लेकिन वह आपको हेल्प करेगा। अनुभव होने में इसी ज्ञान की कमी है।

प्रश्नकर्ता : तो दर्शन पूर्णता वाला है लेकिन बीच में इस *टेकाज्ञान* की ज़रूरत है।

दादाश्री : *टेकाज्ञान* नहीं है इसीलिए यह अनुभव उसे फिट नहीं होता है। उसने ऐसा सुना होता कि 'जो हुआ वही करेक्ट', दादा कह

रहे थे तो जब उसके साथ ऐसा कुछ होता है तो उसे *टेकाज्ञान* काम में आता है तो उससे अनुभव होता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह वाक्य *टेकाज्ञान* कहा जाएगा?

दादाश्री : *टेकाज्ञान* नाम तो हमने रखा है। बाकी, उसका मूल है 'वह ज्ञान'। यदि वह (ज्ञान) रहेगा तो अनुभव होगा। इसीलिए हम ऐसी सारी बातें करते हैं न!

प्रश्नकर्ता : अब उसके पास दर्शन में क्या था उस समय?

दादाश्री : दर्शन तो अभी है ही। दर्शन की पूर्ण जागृति है।

प्रश्नकर्ता : आज दर्शन में उसके पास कोई विवरण है?

दादाश्री : दर्शन में उसके खुद के पास जागृति वाला दर्शन है और वह प्रतीति है। दर्शन अर्थात् प्रतीति। फिर अन्य कुछ भी नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह प्रतीति?

दादाश्री : वह सारा ही। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', यह क्या है? वह क्या है? उसे ऐसी सारी प्रतीति है लेकिन *टेकाज्ञान* के बिना उसे अनुभव नहीं होगा। 'भुगते उसकी भूल' सुना और फिर जब भुगतना पड़ता है तब उसे अनुभव हो जाता है कि भूल तो अपनी ही है। वास्तव में बात सही है। लेकिन यदि ऐसी बात सुनी ही नहीं हो तो? फिट नहीं होगी। उस क्षण बुद्धि ज़ोर लगाएगी कि 'अब, इसे कैसे न्याय कह सकते हैं? अतः यदि हम से *टेकाज्ञान* सुना होगा तो वह बहुत हेल्प करेगा। वह तो यदि साथ में बैठा रहेगा तो सुनेगा। यह 'भुगते उसकी भूल' बात तो यदि अज्ञानी लोग पकड़ लें तो उनकी भी गाड़ी चल पड़ेगी। फिर उसे अनुभव होता है कि 'नहीं, बात सही है।' उसे भी अनुभव होता है। वे सारे व्यवहार में अनुभवी कहे जाते हैं और इसमें आत्मा के अनुभवी। 'भुगते उसकी भूल' अर्थात् उससे अगर कोई गलती हो जाए तो उसे तुरंत ही ये शब्द याद आ जाते हैं इसलिए फिर तुरंत ही हिसाब निकालता है कि, 'ओहोहो! मेरे हाथों

में क्या था? लगता है यह तो कोई हिसाब ही था', तो फिर उसे अनुभव ज्ञान हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अत: आत्मा की जागृति तो है लेकिन आत्मा के अनुभव के लिए *टेकाज्ञान* की ज़रूरत है।

दादाश्री : 'मैं आत्मा हूँ' वह अनुभव तो हो ही चुका है न! देहाध्यास का अनुभव टूट गया और यह आ गया।

प्रश्नकर्ता : यह प्रतीति के रूप में आया है न?

दादाश्री : चाहे कैसे भी, लेकिन है न अनुभव! अब आगे का अनुभव तो ज्ञान प्रकट होने के लिए है। एक बार अनुभव हो जाएगा तब फिर हमेशा के लिए ज्ञान प्रकट हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो इस प्रकार से क्या हर बात के लिए नए ज्ञान की ज़रूरत पड़ेगी? हर अलग-अलग बात के लिए?

दादाश्री : हाँ, वह तो चाहिए ही न! सब की ज़रूरत तो पड़ेगी न लेकिन? जितने प्रकार के ज्ञान हैं, उतने ही प्रकार के सारे पर्याय हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने वह जो कहा था न, कि हर एक उलझन के पीछे अज्ञान रहता है। तो उन उलझनों के सॉल्यूशन के लिए किसी ज्ञान की ज़रूरत रहेगी ही न। हर बार अलग-अलग अर्थात् वह इस ज्ञान के प्रकट होने की बात है न?

दादाश्री : हाँ। अनुभव प्रमाण आत्मा (अनुभव में आया हुआ आत्मा)। अब जैसे-जैसे आपका अनुभव बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे आपका आत्मा प्रकट होता जाएगा। आत्मा कितना प्रकट हुआ? तो कहते हैं, अनुभव प्रमाण!

अनुभव किसे होता है?

प्रश्नकर्ता : आत्मानुभव किसे होता है? इसमें अनुभव करने वाला कौन है?

दादाश्री : उसे 'खुद' को ही होता है। अज्ञान से यह जो भ्रांति हो गई थी, वह चली जाती है और अस्तित्वपना वापस ठिकाने पर आ जाता है। 'जिसे' ऐसा भान था कि 'मैं चंदूभाई हूँ', मैं उसका वह भान छुड़वा देता हूँ और उसे यह भान हो जाता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। जो सूक्ष्मतम अहंकार है, जिसका फोटो नहीं लिया जा सकता, जो आकाश जैसा है, उसे यह अनुभव होता है। अतः उसका अनुभव करने वाला अहंकार ही है। उसके बाद अहंकार विलय हो जाता है और फिर 'प्रज्ञा' उत्पन्न होती है। 'अज्ञा' की सत्ता चली जाती है।

प्रश्नकर्ता : अनुभव प्राप्त करने वाला और अनुभव को देखने वाला, ये दोनों अलग हैं या एक ही हैं?

दादाश्री : दोनों एक ही हैं। जिसने देखा वह एक है और जिसने प्राप्ति की वह एक, दोनों एक ही हैं। अहंकार को यदि अनुभव नहीं हुआ होता तो वह कहता कि, 'मुझे अनुभव नहीं हुआ है' और अनुभव हो जाने पर वह प्रज्ञा को सत्ता सौंप देता है कि, 'यह आपकी गद्दी'। जिसने अनुभव प्राप्त किया और जिसने अनुभव को देखा, वे दोनों एक ही हैं!

ज्ञान-दर्शन, वही परम ज्योति

थ्योरिटिकल को अनुभव नहीं कहते हैं, उसे तो समझ कहते हैं और प्रैक्टिकल को अनुभव कहते हैं। समझ पूर्ण और अनुभव भी पूर्ण, उसी को कहते हैं, ज्योति। वही ज्योति है, वही ज्ञान है, वही परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो, जब आपके साथ रहेंगे तभी समझ में आएगा न?

दादाश्री : जैसे-जैसे परिचय बढ़ता जाएगा न, वैसे-वैसे प्रकाश बढ़ता जाएगा। और साथ में रहकर जो परिचय बढ़ा, उसी को अनुभव कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, श्रद्धा और परिचय में फर्क है क्या?

दादाश्री : परिचय से श्रद्धा आती है लेकिन श्रद्धा आने के बाद में भी जैसे-जैसे परिचय बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे फिर अनुभव होता जाता है। अधिक परिचय से जो श्रद्धा आती है उसके बाद फिर परिचय क्या काम करता है? तो कहते हैं, अनुभव होते जाते हैं। अत: परिचय में रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, परिचय में न रह पाएँ तो पुस्तकें कितनी हेल्प करती हैं?

दादाश्री : हर तरह की हेल्प करेंगी। यहाँ की हर एक चीज़ दादा की है, वे शब्द दादा के हैं, आशय दादा का है इसलिए हर तरह से हेल्प करेंगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन साक्षात् परिचय और इसमें फर्क है न?

दादाश्री : इस तरह अंतर मानने जाएँ तो सभी में अंतर है। अत: आपको तो, जिस समय जो आ जाए वही करना है। दादा नहीं हों, तब क्या करोगे? दादा की जो पुस्तकें हैं, वे पढ़नी चाहिए। पुस्तक में दादा ही हैं न! नहीं तो आँखें मींचते ही तुरंत दादा दिखाई देंगे!

[5]
चारित्र मोह

परिभाषा दर्शन मोह की

प्रश्नकर्ता : दर्शन मोह किसे कहते हैं?

दादाश्री : दर्शन मोह तो उसे कहते हैं कि, जो सच नहीं है उसे भी सच मनवाता है। जगत् क्या कहता है, जो 'नहीं है', उसी को 'है', ऐसा मनवाता है। लेकिन भाई, 'नहीं है', ऐसा कैसे कह सकते हैं, दिखाई देता है न, खुले आम? लेकिन वास्तव में आप चंदूभाई नहीं हो, वास्तव में आप नहीं हो फिर भी आपसे मनवाते हैं कि 'नहीं, आप चंदूभाई ही हो', वह दर्शन मोह है। फिर, आप खुद यह शरीर नहीं हो फिर भी, ऐसा कहते हैं 'यह शरीर ही मैं हूँ।'

प्रश्नकर्ता : उसका मालिकीपन रखते हैं।

दादाश्री : जहाँ पर 'मैं हूँ' आया तो वहाँ पर मालिकी है ही। इसी को कहते हैं दर्शन मोह। 'मैं हूँ' छूट जाए तो मालिकीपन छूट जाएगा। यह दर्शन मोह छूट जाएगा तभी इंसान इस जगत् से छूट सकता है, वर्ना कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। जो हम से मिलते हैं, हम उनसे कहते हैं कि 'आप चंदूभाई नहीं हो'। तब कहते हैं, 'मैं ही चंदूभाई हूँ। आप ऐसा कैसा कह रहे हैं?' 'अरे भाई, नहीं हो आप चंदूभाई। चंदूभाई तो आपका नाम है।' तब उसे शंका होती है, 'बात तो सही है। नाम तो मेरा चंदूभाई ही है तो फिर मैं कौन हूँ?' उसके

बाद फिर दादा उसे दिखाते हैं। तब पहला दर्शन मोह छूट जाता है। जो अँधेपन की पट्टियाँ बाँधकर घूम रहा था, वही अब देखने लगता है। दर्शन मोह टूटा। उसके बाद दिखने लगा। जबकि लोग कहते हैं, 'क्यों इतना सब पहना हुआ है आपने? इतना मोह?' आपको यह पता नहीं चलेगा कि यह मोह है लेकिन यह चारित्र मोह है। यानी पहले जो मोह भाव किए थे, उसी का यह फल आया है। यह इफेक्ट है, नॉट कॉज़। कॉज़ेज़ बंद हो चुके हैं। जिसके कॉज़ बंद हो चुके हैं, उसका मोक्ष हो गया।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन दर्शन मोह कैसे छूट सकता है?

दादाश्री : और कोई रास्ता नहीं है, जब ज्ञानी पुरुष छुड़वा देते हैं, तब। दर्शन मोह का अर्थ क्या है? यों जो सब देख रहा था उसके बजाय पीछे की तरफ देखने लगता है। उस दृष्टि को बदल देते हैं, ज्ञानी पुरुष। अपने आप नहीं बदल सकती। यह सांसारिक दृष्टि है और पीछे आत्मदृष्टि है। वे दृष्टि को आत्मा की ओर कर देते हैं। उसके बाद उसे समझ में आ जाता है कि 'मैं यह हूँ'।

परिभाषा चारित्र मोह की

और चारित्र मोह का अर्थ क्या है? दर्शन मोह की वजह से जो-जो बीज डाले हुए हैं, खेत में बो कर आए हैं, तो अब वह दर्शन मोह चला गया फिर भी उन बीजों की फसल काटना बाकी रहा। अब वह अच्छा नहीं लगता, 'अरे, इसमें सुख नहीं था! यह सब कहाँ से आ गया?' उसे कहते हैं चारित्र मोह।

खेत में बीज डालना, वही दर्शन मोह है और पौधे उगने से लेकर फल आने तक का सारा ही चारित्र मोह है। यह पूरा जगत् दर्शन मोह से ही फँसा हुआ है। दर्शन मोह जाने पर क्षायक समकित होता है लेकिन चारित्र मोह रह जाता है।

क्षायक समकित की परिभाषा

शास्त्र कहते हैं कि अभी इस काल में क्षायक समकित नहीं हो

सकता। तो फिर क्या दर्शन मोह जा सकता है? किस हद तक? तो कहते हैं, जब चार अनंतानुबंधी और एक मिथ्यात्व मोहनीय और एक मिश्र मोहनीय और सातवाँ सम्यक्त्व मोहनीय खत्म हो जाते हैं, तब क्षायक समकित होता है। इस काल में सम्यक्त्व मोहनीय खत्म नहीं हो सकता।

इसीलिए कृपालुदेव से लोगों ने कहा था न, कि 'आप कहते हैं कि आपको क्षायक समकित हुआ है लेकिन हम यह नहीं मान सकते'। तब कृपालुदेव ने कहा था, 'भले ही वे न मानें, वह उनका तरीका है लेकिन हम तो मानते ही हैं'। और अपना तो ओपन टु स्काई है। अपना तो यह केवलज्ञान है। लेकिन जो पचा नहीं है, ऐसा केवलज्ञान है और क्षायक समकित पच गया है। इसकी तो बात ही क्या! इस पर से तो बहुत बड़ा इतिहास लिखा जाएगा! सब से बड़ा ज़बरदस्त आश्चर्य माना जाएगा!

प्रश्नकर्ता : इस अक्रम मार्ग में, ज्ञानी के ज्ञान से दर्शन मोह निकल जाता है, ऐसा कई लोगों को अनुभव होता है।

दादाश्री : जब हम ज्ञान देते हैं, तब दर्शन मोह सर्वांश रूप से खत्म हो जाता है। सर्वांश दर्शन मोह खत्म हो जाए, तो उसी को क्षायक समकित कहते हैं। उसके बाद प्योर चारित्र मोहनीय बचता है। उपशम समकित हुआ होता, तो मैं आपको प्योर नहीं कह सकता था। तब इम्प्योर कहना पड़ता। यहाँ पर तो क्षायक समकित है, भावकर्म बिल्कुल खत्म हो गया है न!

जो बाकी बचा, वह है चारित्र मोह

शास्त्रों में कहा गया है न, 'जो आत्मा के द्रव्य, गुण और पर्यायों को जानेगा, निश्चय से उसके मोह का नाश होगा।' तो आपने द्रव्य, गुण और पर्याय को जान लिया इसलिए निश्चय से तो आपका मोह खत्म हो गया है। व्यवहार मोह अर्थात् चारित्र मोह बाकी बचा है। पहले की तुलना में मोह कम हुआ है, ऐसा पता चलता है? अब

पहले जैसा गाढ़ मोह नहीं है न? कुछ भी नहीं छोड़ना है। छोड़ना और नहीं छोड़ना दोनों एक समान हैं। पहले तो छोड़ने वाली चीज़ याद आती ही रहती थी।

चारित्र मोहनीय को समझने में पूरी ही भूल हुई है। सिर्फ कृपालुदेव ही समझ सके हैं। बाकी सब जगह समझने में ही भूल है। अब यदि एक इतना समझने में ही भूल हो जाए तो आगे क्या होगा? मेल नहीं बैठेगा किसी भी बात का!

इसलिए कृपालुदेव ने लिखा,

'कर्म मोहनीय भेद बे, दर्शन-चारित्र नाम, हणे बोध-वीतरागता।'

ज्ञानी पुरुष के बोध से दर्शन मोहनीय का हनन हो जाता है और वीतरागता से चारित्र मोहनीय चला जाता है। चारित्र मोहनीय रहता है लेकिन वीतरागता रहती है इसीलिए उसका असर नहीं होता। वीतरागता उसका नाश कर देती है।

यह जो जायफल होता है न, ऊपर से उसका खोल निकालने के बाद में वह जायफल कहा जाता है। वर्ना यों ही उसे मुंह में डाला जाए तो? अत: जब तक मोह का यह पूरा खोल है, तब तक चारित्र मोह नहीं कहा जा सकता। दर्शन मोह का खोल निकालने के बाद में जो बाकी बचा, वह चारित्र मोह है। अब दर्शन मोह का खोल जिसने निकाल दिया, उसे क्षायक सम्यक्त्व हो गया। लेकिन वह खोल तो निकालना पड़ेगा। यों ही अगर उसे चारित्र मोह कहेंगे तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है! जब तक दर्शन मोह नहीं जाता तब तक कौन सा मोह है? पक्का मोह।

वास्तव में हकीकत क्या है? तो कहते हैं, यह सारा मोह है। ये पच्चीस प्रकार के मोह हैं और फिर यह मिथ्यात्व मोह, मिश्र मोह, सम्यक्त्व मोह, उनमें से कुछ भाग, उसका जो खोल है न, उसके ऊपर का कवर यानी दर्शन मोह, उसके खत्म हो जाने के बाद में जो बचता है, वह है चारित्र मोह।

निकालना है मोह को तो जड़-मूल से ही

यदि दर्शन मोह नहीं गया है तो उसे चारित्र मोह नहीं कहा जा सकता, वह तो मोह ही कहा जाएगा। चाहे किसी में कम हो या ज़्यादा हो। और चाहे मोह कितना भी कम कर दिया जाए, लेकिन सिर्फ इतना सा, बहुत ही कम बचा होगा फिर भी उस पर यदि ज़रा सा भी पानी छिड़का जाए तो इतना बड़ा हो जाएगा। मोह को बढ़ने में देर ही कितनी? अग्नि-जाल जैसा है। तेज़ी से घेर लेता है चारों तरफ से। इसलिए यदि कोई कहे कि 'मैंने मोह कम कर लिया है', तो 'अरे, कम नहीं करना है, जड़-मूल से निकाल दे।' तो आपका मोह तो हमने जड़-मूल से निकाल दिया है। तो फिर यह क्या आ रहा है, अभी जो मोह हो रहा है, वह क्या है? तो कहते हैं, 'ये तो जो पहले के मोह किए हैं, वे चिट्ठी ले-लेकर आ रहे हैं कि 'भाई, आपने हमारे सामने इतनी शर्तें रखी थीं। अब तो उनका पालन करना ही पड़ेगा न? मोह निकाल दिया उसका। पहले जो मोह किए थे, आज वे सभी पुराने हिसाब चुकाने के कागज़ात लेकर आ रहे हैं कि आपने पेमेन्ट करने का लिखकर दिया है न! वे, ये फाइलें हैं, उनका समाधान करो, *निकाल* करो।

नहीं कह सकते चारित्र मोह, क्षायक समकित के बिना

दर्शन मोह चले जाने के बाद में चारित्र मोह को समझाया जा सकता है। दर्शन मोह की उपस्थिति में चारित्र मोह को किस प्रकार से समझाया जा सकता है? वहाँ पर यदि आप साधु-महाराज के पास जाओ न, तो वे कहेंगे कि, 'चारित्र मोहनीय का बहुत ज़ोर है', लेकिन इस तरह कोई भी चारित्र मोह नहीं कह सकता। चारित्र मोह तो, क्षायक समकित होने के बाद में जो मोह बचा, सरप्लस रहा, वह चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : उसके पहले का नहीं?

दादाश्री : उससे पहले वह मोह कहा जाता है। मोह से भी

अधिक, महामोहनीय! काफी सारे महामोहनीय हों, उसके बाद में मोहनीय आता है। ये सभी मंदिर बनवाने, समाज सेवा करनी, वह सारा मोह है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह उच्च प्रकार का मोह कहा जाएगा न?

दादाश्री : उच्च प्रकार का नहीं, शुभ मोह कहा जाएगा। वह मोह ही कहा जाएगा। मोह अर्थात् मूर्च्छा। उसमें से मूर्च्छा निकली और इसमें आ गई। घर में, स्त्री में थी, वहाँ से निकली और इसमें आ गई। मूर्च्छा से बाहर नहीं निकला है।

प्रश्नकर्ता : जो *निर्जरा* होती है, वह चारित्र मोह है?

दादाश्री : नहीं, *निर्जरा* तो सभी प्रकार के मोह की होनी है। *निर्जरा* तो, कर्म मात्र की *निर्जरा* होनी है लेकिन दर्शन मोह जाने के बाद में चारित्र मोह बचता है।

उसका यदि उदाहरण लेना हो तो किस प्रकार से समझाया जा सकता है? तो कहते हैं कि आप यहाँ मुंबई से अहमदाबाद जाने के लिए निकले हो और आप कोटा के स्टेशन पर किसी से मिले और वह कहे कि 'आपको कहाँ जाना है?' तब आप कहते हो, अहमदाबाद। तो वह कहता है 'कहाँ से आ रहे हो?' तो कहते हैं, 'मुंबई से आए हैं'। तब वह कहता है कि 'यह अहमदाबाद का रास्ता नहीं है'। तब आप पूछते हो कि 'भई, कौन सा रास्ता है?' तब वह बताता है, 'यहाँ से वापस जाकर बड़ौदा स्टेशन पर उतर जाना और बड़ौदा से ट्रेन बदलना, अहमदाबाद के लिए, लोगों से पूछते-पूछते आप अहमदाबाद पहुँच जाओगे।' तब आप वहाँ से जो वापस मुड़े, उस समय मिथ्यात्व मोह खत्म हो गया और सम्यक्त्व शुरू हुआ, अर्थात् सच्ची समझ प्राप्त हुई।

आप जहाँ से वापस मुड़े, वह चारित्र मोह है। जितना उल्टे चले उतना वापस लौटे, वह चारित्र मोह। जितना उल्टे चले उतना वापस लौटना ही पड़ेगा न?

तीर्थंकर में जन्म से ही चारित्र मोह

आप में तो यह ज्ञान मिलने के बाद में चारित्र मोह उत्पन्न होता है लेकिन भगवान में तो जन्म से ही चारित्र मोहनीय थी। उनकी शादी हुई, वह भी चारित्र मोह; बेटी हुई, वह भी चारित्र मोह। बाद में यह सब त्याग दिया, कपड़े-वपड़े, वह भी चारित्र मोह। अंत तक सारा चारित्र मोह था।

प्रश्नकर्ता : दादा, तो फिर चारित्र मोह तो ठेठ तीर्थंकर होने तक भी रहेगा ही न?

दादाश्री : अंत तक चारित्र मोह ही है। चारित्र मोह खत्म हो जाने पर केवलज्ञान होता है। डिस्चार्ज मोह को तीर्थंकरों ने चारित्र मोह कहा है।

दर्शन मोहनीय अर्थात् चार्ज परिणाम। चार्ज परिणाम बंद हो जाएँ तो कर्म चार्ज होने बंद हो जाते हैं। तो कहते हैं कि पिछले जन्म में चार्ज होने के बाद जो अभी तक थे, उनका क्या होगा? तो वह चारित्र मोहनीय है। चारित्र मोहनीय अर्थात् डिस्चार्ज परिणाम।

समकित के बाद वाले कर्म...

कर्म तो होते ही रहेंगे। इच्छा न हो फिर भी होते रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : आड़े आकर गले में अटक जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, गले में अटक जाते हैं। कर्म का नियम ही ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब दादा, वह सब चारित्र मोह ही है न?

दादाश्री : वह सब चारित्र मोह है लेकिन ज्ञान मिलने के बाद में ही वह चारित्र मोह है। यदि ज्ञान नहीं मिला है तो उसे मोह ही कहा जाएगा। जिसे ज्ञान मिल जाता है उसके दर्शन मोह का नाश हो जाता है और तब सिर्फ चारित्र मोह बचता है। दर्शन मोह से कर्म

चार्ज होते हैं जबकि चारित्र मोह से चार्ज नहीं होते। चारित्र मोह *निकाली* है। फल देकर जाते हैं, कड़वे-मीठे दोनों ही।

प्रश्नकर्ता : तो जैसा चार्ज हुआ होता है, वैसा ही फल देते हैं?

दादाश्री : हाँ, कड़वा हो तो कड़वा फल देते हैं और मीठा हो तो मीठा फल देता है।

अहोहो! तीर्थंकरों द्वारा किए गए स्पष्टीकरण

अन्य लोगों को विचारों में सेट करना भी नहीं आता न। लेकिन भगवान तो समझदार होंगे न? बिल्कुल पागल तो नहीं होंगे न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ज़रा भी नहीं।

दादाश्री : देखो न, कैसा नाम रखा है, चारित्र मोह! यह मोह किस प्रकार का और वह मोह किस प्रकार का? तो कहते हैं, यह चारित्र मोह है। यह चारित्र मोह शब्द किसलिए ताकि लोग कहें कि 'भाई, अब ऐसा क्यों कर रहे हो? यह किस प्रकार का मोह है?' तो कहते हैं कि 'भाई, वह प्रकार अलग है। महावीर भगवान द्वारा बताया गया यह प्रकार अलग है। जिस मोह में से बीज नहीं डलता, वह निर्बीज (बीज रहित) मोह है'। जगत् के लोग कहते हैं कि यह किस प्रकार का मोह है! उन लोगों को पता नहीं चलता, हम जानते हैं कि यह चारित्र मोह है। जो मोह निर्बीज है अर्थात् सिका हुआ बीज है। उगने लायक नहीं रहा वैसा मोह है यह।

लोगों को चारित्र मोह समझ में नहीं आएगा इसीलिए मैंने डिस्चार्ज मोह कहा है। ये जो लोग हैं न, चारित्र मोह को नहीं समझते। सभी लोग चारित्र मोह बोलते तो हैं लेकिन थोड़ा सा समझते हैं, चारित्र मोह के कुछ भाग को, बाकी पूरा नहीं समझते। लोग क्या कहते हैं कि 'यह भी मोह ही है न! ये अभी कपड़े पहनते हैं, फर्स्ट क्लास टाई बाँधी है, घड़ी पहनी है, तो क्या यह मोह नहीं है?' तब ज्ञानी पुरुष क्या बताते हैं? मोह तो है लेकिन यह चारित्र मोह है। क्योंकि

दर्शन मोह चला गया है इसलिए इसे चारित्र मोह कहा है। वर्ना वह मोह ही कहलाता, सिर्फ मोह ही!

चारित्र मोह को थोड़ा-बहुत समझे हैं। उसी को हमने डिस्चार्ज मोह कहा है। डिस्चार्ज शब्द आया कि तुरंत उसे समझ में आ जाता है कि यह जाने के लिए आया है।

कितना अच्छा स्पष्ट किया है। यह मोह किस तरह का है? तो कहते हैं, चारित्र मोह। पूरा ही जगत् दर्शन मोहनीय की वजह से लटका हुआ है। चारित्र मोह से कोई लेना-देना नहीं है। चारित्र मोह वाले को *उपाधि* (दु:ख) हो फिर भी अंदर समाधि रहती है और चाहे जितना भी चारित्र का पालन करे फिर भी यदि दर्शन मोहनीय है तो समाधि नहीं रहेगी। चारित्र का चाहे कितना भी पालन किया हो, बाह्य चारित्र, लेकिन जब तक दर्शन मोहनीय नहीं चला जाता तब तक समाधि तो क्या लेकिन शांति भी नहीं रहेगी। और चारित्र मोह चाहे कैसा भी हो लेकिन यदि दर्शन मोहनीय चला गया है तो समाधि रहेगी। फिर भगवान ने बताया है कि यदि चारित्र मोह में लटका हुआ होगा तो चलेगा लेकिन दर्शन मोह में लटका हुआ नहीं चलेगा। दर्शन मोह वाला तो दिशामूढ़ है। चारित्र मोह वाला उसी रास्ते पर ज़रा इधर-उधर होता रहता है बस इतना ही लेकिन दर्शन मोह वाला तो दिशामूढ़ ही है। कौन सी दिशा में जाएगा उसका ठिकाना ही नहीं है! दर्शन मोह की ही झंझट है। दर्शन मोह से जगत् कभी भी निवृत्त हुआ ही नहीं है। अब दर्शन मोहनीय जा चुका है। अब क्या हर्ज है? मैं तो आत्मा बन गया। तो कहते हैं, 'नहीं, अभी तो चारित्र मोहनीय बचा है न? पिछले जन्म के परिणाम बचे हैं न?'

प्रश्नकर्ता : चारित्र मोह में सिर्फ कषाय ही आते हैं न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। पहले के ज्ञान का जो परिणाम है, वह चारित्र मोह में है। अन्य कुछ भी नहीं है!

अक्रम मार्ग में चारित्र मोह

मोह के दो प्रकार हैं : दर्शन मोह और चारित्र मोह। दर्शन मोह यानी कि देखते ही उसे मोह उत्पन्न होता है। सिर्फ देखने से ही, सुनने से ही मोह उत्पन्न हो जाता है। दूसरा है चारित्र मोह, वह क्या है? आपको देखते ही मोह नहीं होता लेकिन वह आपकी अनिच्छापूर्वक है, इच्छा नहीं होती फिर भी मोह होता रहेगा। अपनी इच्छा न हो फिर भी मोह होता है। वह सब चारित्र मोहनीय कहलाता है। इच्छा न हो फिर भी क्रोध होता है, इच्छा न हो फिर भी लोभ होता है, इच्छा न हो फिर भी कपट हो जाता है, इच्छा न हो फिर भी अहंकार हो जाता है। क्या आपके साथ ऐसा होता है, आपकी इच्छा के बिना? नापसंद हो फिर भी जो होता है, उसे कहते हैं चारित्र मोहनीय। हम जिसे डिस्चार्ज कहते हैं, वह सारा चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् ज्ञान लेने के बाद में जो भी मोह होता है, वह चारित्र मोह ही कहलाएगा न?

दादाश्री : हाँ, वह सारा चारित्र मोह ही कहलाएगा। उगता हुआ मोह खत्म हो गया और अस्त होता हुआ मोह बाकी बचा।

चारित्र मोह अर्थात् मान लो इस भाई को झूठ बोलने की आदत है। अब ज्ञान लेने के बाद में क्या होता है कि वह झूठ बोल लेता है लेकिन उसे पता चलता है कि यह गलती हुई, इसे कहते हैं चारित्र मोह। वह जो गलत बोला, वह किस मोह की वजह से? तो कहते हैं, चारित्र मोह की वजह से। यह आपको जो ज्ञान दिया है न, अब आप शुद्धात्मा बन गए तो अब बाकी क्या बचा? तो कहते हैं, चारित्र मोह। उसका *निकाल* कर दो समभाव से अर्थात् संयमपूर्वक। बस, अन्य कुछ भी नहीं।

चारित्र मोहनीय बचा है। उसे भी आप देखते हो तो आपका सम्यक् चारित्र है।

यह चारित्र मोहनीय तो किसे है? यहाँ पर अपने अक्रम मार्ग

में चारित्र मोहनीय है, लेकिन वहाँ पर क्रमिक मार्ग में चारित्र मोहनीय में भी कर्तापन रहा हुआ है। क्रमिक मार्ग में अंत तक कर्ता, एक जन्म बाकी रहे तब तक कर्ता। वहाँ अहंकार को शुद्ध करना है। अहंकार शुद्ध करते-करते जाना है। अत: जितना चारित्र मोहनीय उतना ही अहंकार भी रहता है। अत: उन्हें चारित्र मोहनीय को हटाना पड़ता है। आपको चारित्र मोहनीय को हटाना नहीं है। आप तो चारित्र मोहनीय को देखते हो इसलिए आप सम्यक् चारित्र में आ गए। उन्हें डिस्चार्ज भी करना पड़ता है। भयंकर आफत का स्थान है, वह सारा।

यह कहा न, करोड़ों जन्मों में भी जो नहीं हो सकता, ऐसा यहाँ पर एक घंटे में हो जाता है। इसलिए काम निकाल लेना। बार-बार यह ताल नहीं मिलेगा। एक मिनट के लिए भी फिर दादा से संयोग नहीं मिलेगा। बाकी सबकुछ मिलेगा।

अब क्रमिक मार्ग में वे लोग भी कहते हैं कि हमारा चारित्र मोह है। मैंने समझाया कि, 'ऐसा नहीं कहना चाहिए'। तब वे कहते हैं, 'हम त्यागी लोग हैं।' लेकिन त्यागी हो फिर भी मोह तो पक्का है। आपको त्याग करने का मोह है और इन सांसारियों को ग्रहण करने का मोह है। लेकिन ये दोनों मोह ही हैं न! अब, आत्मा त्याग भी नहीं करता है और ग्रहण भी नहीं करता। अत: यह सारा मोह है। अब बाहर चारित्र मोह की बातें चलती हैं लेकिन चारित्र मोह क्या है, वह किसी ने देखा ही नहीं होता है!

प्रश्नकर्ता : अनुभव नहीं है, उसका।

दादाश्री : देखा ही नहीं होगा तो अनुभव कहाँ से लाएँगे? अब सभी लोग वास्तविक मोह को चारित्र मोह कहते हैं। चारित्र मोह दिखाया न आपको? अभी तक देखा नहीं था। जब तक कर्तापन बंद नहीं हो जाता, तब तक किसी को चारित्र मोह दिखाई नहीं दे सकता। वे लोग व्यवहार में ऐसा कहते हैं, लौकिक भाषा में कि 'अब हमारा यह चारित्र मोह है। ऐसा है, वैसा है', वह सब भौतिक है। कर्म करना

बंद कर देगा तब सिर्फ चारित्र मोह रहेगा। अब चार्ज बंद हो गया है और सिर्फ डिस्चार्ज ही बचा है।

उस चारित्र मोह के बारे में तो किसी ने मुझे सही जवाब नहीं दिया और खोज करते हुए मुझे बहुत टाइम लगा कि भगवान चारित्र मोह द्वारा क्या कहना चाहते हैं? वह कौन से प्रकार का मोह है? बाद में मुझे अनुभव से पता चला कि यह तो वर्तन मोह है! नालायक वर्तन, वह नालायक मोह है और लायक वर्तन, वह लायक मोह है। वह सारा, एक प्रकार का मोह है। तो पूछते हैं, 'लेकिन क्या यह मोह, मोह नहीं माना जाएगा?' तो कहते हैं, 'नहीं। यह प्रगमित है।'

जब तक दूध और दही दोनों अलग हैं, तब तक उन दोनों का कोई भी लेना-देना नहीं है। दूध में दही डालने के बाद तुरंत दही नहीं मिल जाता। लेकिन सुबह तक प्रगमित हो जाता है अर्थात् दही बन चुका होता है। तो यह प्रगमित मोह है। खोज-बीन करने पर इसका पता चलेगा न? वर्ना क्या ये सारी बातें कुछ आसान हैं?

महात्माओं का चारित्र मोह

चीज़ एक ही है, दो चीज़ें नहीं हैं। जगत् के लोगों के लिए मोहनीय है और हमारे लिए चारित्र मोहनीय है, फर्क इतना ही है। चारित्र मोह अर्थात् मैंने आपको जो ज्ञान दिया है न, तो वह आपको दृष्टि दी है कि यह सारी दृष्टि उल्टी है। एक के बाद एक जन्म बंधते जाएँगे और अपना कल्याण नहीं होगा। अब दृष्टि आत्म सम्मुख हो गई है। अब उस उल्टी दृष्टि को निकाल दिया है। वह जो उल्टी दृष्टि निकल गई है अर्थात् दर्शन मोह निकल गया है। मोह के दो भाग हैं, मोह के दो बच्चे हैं, एक उल्टी दृष्टि और एक वर्तन। तो अब सिर्फ आपका वर्तन ही बचा है। उल्टी दृष्टि चली गई है। नया वर्तन अब उत्पन्न नहीं होगा। वह जो पुराना वर्तन है, वह चारित्र मोह है। व्यवस्थित जितना भी *निकाल* करेगा, वह सारा ही चारित्र मोह है, सही-गलत सारा ही! अच्छे से अच्छा काम हो जाए या उल्टे से उल्टा काम हो

जाए, तब भी आपका यह भान नहीं टूटना चाहिए कि आप शुद्धात्मा हो। क्योंकि 'मुझे तो दादा ने शुद्धात्मा पद दिया है', तो अब यह जो सारा व्यवस्थित है, उस चारित्र मोह का *निकाल* करना है। वह मोह चला जाएगा तो मोक्ष हो जाएगा।

चारित्र मोह किसे कहता हूँ कि अब, आपने यह ज्ञान लिया है और आप अच्छे कपड़े पहनते हो या तेल डालकर बाल बनाते हो, तो क्या लोग कहेंगे नहीं कि 'चंदूभाई, दादा से ज्ञान लेकर आए हो, फिर बाल क्यों बनाते हो?' तो यह बाल बनाना, वह मोह तो है ही न? उसके लिए हम 'मना' नहीं कर सकते न? और वे जो कहते हैं, वह गलत भी नहीं है न? यह मोह तो है ही न? लेकिन यह चारित्र मोह है। चारित्र मोह अर्थात् इफेक्टिव मोह! मोह नहीं। कॉज़ बंद कर दिए। इफेक्ट तो रहेगा ही न फिर? यह इफेक्टिव मोह अर्थात् उसका हल आ जाएगा। फिर नए कॉज़ नहीं बनेंगे तो छुटकारा हो जाएगा। चारित्र मोह अपना आज का मोह नहीं है। पहले जो किया है, उसका फल आया है यह। इन सभी महात्माओं में चारित्र मोह है। अब लोग क्या ढूढ़ने जाते हैं? 'बड़े आए शुद्धात्मा बनने वाले और फिर पैसे गिनने में तो बहुत तेज़ हैं।' 'तो भाई, तेज़ नहीं हों तो क्या फेंक दें पैसे?' व्यवहार में पागल दिखाई देगा। नहीं? व्यवहार में समझदारी से रहना चाहिए।

अब ये जो मेरे कपड़े हैं, मान लो मैं जा रहा होऊँ और कोई निकाल दे तो कोई हर्ज नहीं है और अगर हैं तो भी हर्ज नहीं है, लेकिन है चारित्र मोह। यह मेरा मोह नहीं है। यह इफेक्टिव मोह रहा हुआ है तो उससे लोगों को ऐसा लगता है कि इन सब में कोई भी बदलाव नहीं आया जबकि मैं जानता हूँ कि आपको डाँटने जैसा नहीं है। मैं कभी आपको किसी को डाँटता हूँ यहाँ? मैं समझता हूँ कि डाँटने जैसा नहीं है। चाबी मेरे पास है। आप जो कुछ भी करते हो, उसकी चाबी मेरे पास है। जब तक मेरी आज्ञा का पालन करोगे तभी तक। यदि आज्ञा का पालन नहीं करोगे तो मेरे पास चाबी नहीं है।

जो आज्ञा पालन करता है, उसके लिए दो-तीन जन्मों के बाद में या एक जन्म के बाद में मोक्ष है। इस गारन्टी से कह रहे हैं। और यहीं पर मोक्ष हो चुका है। जो हमारी आज्ञा पालन करता है, उसे कोई चिंता नहीं होती। क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते।

इन लोगों को जो क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं, आप सभी को जो होते हैं, वह 'इफेक्ट' है, 'कॉज़' नहीं है। इसलिए हम क्या कहते हैं कि क्रोध-मान-माया-लोभ भी नहीं हैं। क्योंकि यदि 'कॉज़' हो तभी क्रोध-मान-माया-लोभ माने जाएँगे।

मोह ग्रंथि खत्म हो गई इसलिए हमने कहा है, क्षायक समकित। अब चारित्र मोह बचा है। ये जो कर्म जम चुके हैं, फल देने के लिए तैयार हो चुके हैं इसीलिए तो हमें खाना-पीना मिल जाता है न, वर्ना यह भी नहीं होता, तो फिर कल उठकर अगर चारित्र मोह ले लिया जाए तो क्या खाएँगे-पीएँगे? यह सारा चारित्र मोह है! खाते हैं, पीते हैं, दातुन करते हैं, दिन भर चारित्र मोह ही काम में आता रहता है। यह चारित्र मोह कहलाता है।

वर्तन मोह अर्थात् चारित्र मोह। अर्थात् क्या? वे जो मोह वाले परमाणु थे, उन्हें आप शुद्ध करके भेज देते हो! इसलिए फिर वह क्षीणमोह बन जाता है। जितना चारित्र मोह गया उतना ही क्षीणमोह की तरफ आगे बढ़ा। क्षीणमोह की तरफ बढ़ता जाता है। 'गाड़ी कहाँ जा रही है?' 'क्षीणमोह के स्टेशन पर।' 'निकली कहाँ से थी?' तो कहते हैं, जीतमोह जिन नामक स्टेशन से निकली थी यह गाड़ी। अब उस मोह को जीतने लगा है। वही क्षीणमोह स्टेशन तक पहुँचा देगा। तब भगवान बन चुके होंगे! मोह ही क्षय हो जाएगा! हमेशा के लिए बारहवाँ गुणस्थानक! महावीर भगवान की क्षीणमोह जिन दशा!

शुद्धात्मा होने के बाद में फिर उसे *लक्ष* रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ'। तब यदि कोई पूछे कि 'मैं चंदूलाल नहीं हूँ?' तो कहेंगे कि 'चंदूलाल हूँ लेकिन व्यवहार से'। व्यवहार चलाने के लिए ही, यानी कि पच्चीस प्रकार के चार्ज मोह चले गए। उसके बाद चारित्र मोह

बचा। क्षीणमोह में भी चारित्र मोह ही बचता है। इस प्रकार क्षीणमोह कहलाता है। बारहवें गुणस्थानक में भी अंदर चारित्र मोह रहता है। केवलज्ञान के बिना चारित्र मोह खत्म नहीं हो सकता।

बोए हुए बीजों में से आया है यह फल

चारित्र मोह का मतलब समझ में आया न? कोई दान दे रहा हो और उसे कहा जाए कि 'आप बेवकूफी वाला उल्टा काम कर रहे हो?' तो वह कहेगा, 'तो फिर छोड़ो यह!' वहाँ पर यदि वह ऐसा कहे कि 'मैं सही कर रहा हूँ' तो वह चारित्र मोह है। एक व्यक्ति बच्चे को डाँट रहा हो और कोई कहे कि 'बिना बात के क्यों डाँट रहे हो?' तो वह कहता है कि 'नहीं, डाँटने लायक ही है।' तो वह चारित्र मोह!

प्रश्नकर्ता : खुराक दे देते हैं, पुष्टि दे देते हैं, ऐसा?

दादाश्री : वह खुराक नहीं है, वह एक प्रकार का मोह है। 'आठ घंटे की नींद तो चाहिए ही', वह चारित्र मोह है। मन में कुछ ऐसा नहीं होना चाहिए, कोई डिसिज़न ही नहीं होना चाहिए। जिस समय कोई उठाए, वह ठीक है। इसका समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना लेकिन जितना लाभ हो जाए, उतना ही सही। यह तो, इसे पूरी तरह से निकाल ही नहीं सकते न! हम समझते हैं कि अभी दो-तीन जन्म बाकी बचे हैं इसलिए यदि समझ ले न, तो यह सारा चारित्र मोह है। ये सारी क्रियाएँ हो रही हैं। 'मैं चंदूभाई हूँ' चला गया अर्थात् दर्शन मोह गया। तो चार्ज मोह बंद हो गया। अब डिस्चार्ज मोह बाकी बचा है। जितना डिस्चार्ज मोह, मोह के बिना निकल जाएगा, अंदर उतनी ही समाधि रहेगी!

प्रश्नकर्ता : यह जो पुराना माल फूट रहा है वह एक्सेप्ट नहीं होता।

दादाश्री : लेकिन क्या हो सकता है? भरा था, तभी न। अभी प्याज़ अच्छे नहीं लगते लेकिन अच्छे लगते थे तभी तो भरकर ले आए

न! इसलिए... अभी नापसंद है इसलिए भगवान ने इसे चारित्र मोह ही कहा है। तो अब इसे भोगना ही होगा! यह भरा हुआ माल निकले बिना रहेगा नहीं। फिर भी अंदर किच-किच होती रहती है, 'यह नहीं। यह गलत हो रहा है।' शरीर तो फल देगा न!

प्रश्नकर्ता : कई चीज़ें ऐसी होती हैं कि जो हमें अच्छी नहीं लगतीं। हम बोल देते हैं, मुंह से निकल जाता है लेकिन बाद में ऐसा लगता है कि ऐसा नहीं बोला होता तो अच्छा था, लेकिन बोल देते हैं!

दादाश्री : हाँ। वह भी चारित्र मोह है। इसलिए हम डाँटते नहीं हैं न, चारित्र मोह है इसलिए उसे डाँटते नहीं हैं। उसका यह मोह वास्तव में मोह नहीं है।

अब त्रियोगी क्रियाएँ हैं चारित्र मोह

प्रश्नकर्ता : यह जो चारित्र मोह है तो वह मन-वचन-काया के तीनों के अलग-अलग डिविज़न वाला होता है? मन का चारित्र मोह, वाणी का चारित्र मोह, देह का चारित्र मोह?

दादाश्री : जितने भी भाग होते हैं, उतने सभी भागों का चारित्र मोह रहता है। जिस-जिस का जो भी वर्तन है, वह सारा चारित्र मोह के कारण ही है। जहाँ पर मोह है वहीं पर चंचलता उत्पन्न होती है, वर्ना चंचलता उत्पन्न नहीं होती। अतः घूमने गए, खाना खाने गए, वह भी चारित्र मोह।

प्रश्नकर्ता : इस मन-वचन-काया के योग की कोई भी क्रिया।

दादाश्री : सभी चारित्र मोह हैं। हाँ, लेकिन आत्मज्ञान होने के बाद!

प्रश्नकर्ता : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा होने के बाद।

दादाश्री : हाँ। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'यह सब मेरा नहीं है'। सिर्फ यह चारित्र मोह बचा है। और चारित्र मोह कहीं आपको, शुद्धात्मा

को नहीं है। संपूर्ण रूप से नाश हो चुका है। लेकिन इस चंदूभाई में चारित्र मोह रहा हुआ है। आपको समझना है, व्यवहार में यह चारित्र मोह रहा हुआ है। चंदूभाई किसी पर ज़रा गुस्सा हो जाएँ तो वह भी चारित्र मोह है। किफायत क्यों करते हैं? लोभ की वजह से। तो वह भी चारित्र मोह है। दोष होते हैं, वह भी चारित्र मोह है और लोभ होता है, वह भी चारित्र मोह है। यह सारा लोभ ही माना जाएगा। दोष और किफायत दोनों लोभ ही माने जाते हैं। इसे दोषपन का लोभ है और इसे किफायत का लोभ है।

किसी बहन जी ने कुछ अच्छा पहना हो तो उस पर कोई टीका-टिप्पणी करने जैसा नहीं है। वह तो चारित्र मोह ही है। अब अभी इन्हें खुद को भी अंदर ही अंदर यह अच्छा नहीं लगता फिर भी पहनना पड़ता है कोई चारा ही नहीं है क्योंकि चारित्र मोह है। पुराना हिसाब है तो वह खत्म तो करना ही पड़ेगा न! पहनने में हर्ज नहीं है। यह तो चारित्र मोह ही है न! लेकिन यदि अंदर का सुधर जाए तो कुछ सादा पहनने जैसा होगा तब भी चलेगा।

डिस्चार्ज मोह का कर समभाव से निकाल

आत्मा और देह दोनों को अलग कर दे, ऐसा यह विज्ञान दिया है मैंने। अत: तेरी जो दृष्टि टेढ़ी थी वह सीधी हो गई। और जब तक टेढ़ी दृष्टि थी तब तक तुझे मोह था और तब तक कर्म बंधन हो रहे थे। तो कहता है कि 'साहब, मोह तो अभी भी है मुझ में। अभी तो अच्छे कपड़े पहनते हैं, घड़ी चाहिए, चश्मा चाहिए, ऐसा सब चाहिए, तेल चाहिए, इत्र चाहिए।' तो कहते हैं, 'वह चारित्र मोह है, डिस्चार्ज मोह!' चारित्र मोह है, इसलिए उसे अब मन में ऐसा नहीं होता कि बार-बार ऐसा प्राप्त हो। जो आया उसका *निकाल* कर दे। खारा आया तो कम खा। अच्छा आया तो आराम से खा लेकिन *निकाल* कर दे। समभाव से *निकाल* करता है न? बस तो फिर, उस जैसा कुछ है ही क्या फिर?

प्रश्नकर्ता : इन कपड़ों से अभी चारित्र मोहनीय का क्षय हो रहा है या वृद्धि हो रही है?

दादाश्री : यह तो खत्म ही होता जा रहा है, क्षय हो रहा है। चारित्र मोह अर्थात् *निकाली* मोह। उसे अपने आप ही जाने देना है। जितना शरीर के लिए आवश्यक है, उसे चारित्र मोह नहीं कहा जाता। आवश्यक अर्थात् पानी-भोजन वगैरह। उसे मोह नहीं कहा जाता। लेकिन यह जो चाय है वह सुबह-सुबह याद आती है कि चाय नहीं आई। जो बंधन रूप लगे, उसे भारी चारित्र मोह कहा जाएगा।

इस प्रकार से, वह चार्ज होता हुआ मोह बंद हो गया है। अब डिस्चार्ज मोह बचा है। जब उसकी मुद्दत पूरी हो जाएगी तब वह खत्म हो जाएगा। जिसने यह ज्ञान नहीं लिया है, उसमें दोनों प्रकार के मोह होते हैं। चार्ज और डिस्चार्ज। पच्चीस प्रकार के चार्ज मोह हैं और पच्चीस प्रकार के डिस्चार्ज मोह। अपने साधु-आचार्यों को भी, उन्होंने बीवी-बच्चे त्याग दिए हैं लेकिन फिर भी पच्चीस प्रकार के चार्ज मोह हैं और डिस्चार्ज मोह भी पच्चीस प्रकार के हैं।

अपना यह विज्ञान सिर्फ इतना ही है! इतना सारा मोह! आप कितने मोह में रहते हो? कोई पुराने परिचित आकर यदि आपकी थाली के सारे मोह को देखें न, आपके कपड़ों के मोह को देखें, आपके फ्लैट के मोह को देखें तो कहेंगे 'अरे! मोक्ष की बात क्यों कर रहे हो?' और ऐसे में, इस वीतराग विज्ञान ने, अक्रम विज्ञान ने आपको पार उतार दिया है, वह भी आश्चर्य ही है न! पूरे शरीर को 'फाइल' कहते हैं।

उनके ज्ञान में यह शरीर फाइल के रूप में रहता है। तो धन्य है न! उस ज्ञान को भी धन्य है कि शरीर को फाइल कहा जाता है! इतने सारे मोह में रहने के बावजूद भी शरीर को फाइल कहते हैं! बोलो, फिर वहाँ पर मोह टिका रह सकता है क्या? कैसा विज्ञान है! इसीलिए मैंने कहा है न, कि 'इतना *निकाल* कर देना।' जैसा भी हो वैसा खाना-पीना, हम उसके लिए मना नहीं करते हैं। आम-वाम खाना, रस निकालकर खाना। लेकिन, 'इसमें सुख है', ऐसा मत मानना। यह मेरी चीज़ नहीं है! ज़बरदस्ती खाना पड़ रहा है। खुद की तो कोई खुराक ही नहीं है न!

तू किताब लिखता है, वह भी चारित्र मोह है। क्योंकि यदि कोई ले ले तो मोह होगा, तुझे अच्छा नहीं लगेगा वह मोह। ये लोग सत्संग सुनते हैं, वह भी चारित्र मोह है। इसमें मोह है न, किसी भी प्रकार का, यहाँ आते हैं वह भी चारित्र मोह है। यह क्रिया करने में हर्ज नहीं है। लेकिन इस क्रिया में जो मोह है, उस में हर्ज है। क्रिया में हर्ज नहीं है। आप चबा-चबाकर खाते हो तो उसमें हर्ज नहीं है और बिना चबाए खाते हो तो उसमें भी हर्ज नहीं है। कड़वी दवाई झटपट निगल जाते हो तो उसमें हर्ज नहीं है और धीरे-धीरे पीते हो तो उसमें भी हर्ज नहीं है। लेकिन उस पर मोह है। वह कहेगा, 'चाहे कैसी भी कड़वी दवाई हो फिर भी मैं धीरे-धीरे, गट-गट करके पीता हूँ', तो उसे भी चारित्र मोह कहा जाएगा और यदि कोई कहे कि 'मैं यह कड़वा नहीं पी सकता' तो वह भी चारित्र मोह है। एक प्रकार का मोह है, वह चारित्र मोह।

चारित्र मोह शुद्ध होता है तप से

प्रश्नकर्ता : प्रश्न पूछना भी चारित्र मोह है न?

दादाश्री : नहीं तो और कौन सा मोह? निर्मोही तो पूछेगा ही नहीं। निर्मोही किसलिए पूछेगा? जिसे चारित्र मोह है वह पूछेगा। लेकिन यदि नहीं पूछेंगे तो चारित्र मोह का *निकाल* नहीं होगा। इसलिए पूछ लेना चाहिए। पूछने से हल आ जाता है उसका। अंदर जो भरा हुआ माल था, वह निकल गया। इसलिए हम रोज़ सभी से कहते हैं न, कि पूछो, कुछ भी पूछो। पूछ-पूछकर निकाल दो।

प्रश्नकर्ता : यात्रा करके आए, वह सारा चारित्र मोह है न?

दादाश्री : नहीं तो और क्या? ज्ञान लेने से पहले जो यात्राएँ की थी, वह आपका मोह था। 'मैं चंदूभाई हूँ' और 'यह यात्रा कर रहा हूँ'। अब आप शुद्धात्मा हो गए हो और यात्रा करते हो, इसलिए यह चारित्र मोह है। अब यात्राएँ क्यों करनी हैं? तो कहते हैं कि यह जो माल भरा है, उसका निबेड़ा तो लाना होगा न। थोक में जो माल भरा है, उसे बेचना तो पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : पढ़ने का शौक है तो वह चारित्र मोह है इसलिए पूरा करना पड़ेगा। बाकी, इस ज्ञान के बाद में पढ़ने की कोई ज़रूरत नहीं रही है अब।

दादाश्री : हाँ। वह सारा, पढ़ने का चारित्र मोह है। किसी को नहीं पढ़ने का होता है, किसी को पेपर पढ़ने का होता है। किसी को दो लुटेरों की बातें, सी.आई.डी. की बातें पढ़ने का (चारित्र मोह) होता है, ये सारी, जो क्रियाएँ बाकी बची हैं, वह सारा ही चारित्र मोह है। अच्छी या बुरी, वे नाम तो समाज ने दिए हैं, ऐसा बुद्धि से होता है। भगवान के यहाँ ऐसा अच्छा-बुरा कुछ है ही नहीं। सब एक ही चीज़ है, चारित्र मोह। दान देते हो तो वह भी चारित्र मोह है और यदि दान लेते हो तो वह भी चारित्र मोह है। चाय फीकी आए और उसे निभा लिया तो वह चारित्र मोह है और अगर चिढ़ गया तो वह भी चारित्र मोह है। क्योंकि उसमें आत्मा नहीं है न! आत्मा इन सब से अलग है।

प्रश्नकर्ता : जो निभा लिया, उसे आपने तप कहा है।

दादाश्री : हाँ, तप किया। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप। यदि चिढ़ गया तो वह तप नहीं कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उस वक्त, उसने चारित्र मोह को ज्ञान से शुद्ध किया, ऐसा हुआ न, दादाजी?

दादाश्री : हाँ। शुद्ध किया जबकि जो चिढ़ जाता है उसे शुद्ध करना पड़ेगा। जिसने शुद्ध किया उसके दोनों काम हो गए जबकि इसे ऐसा होने के बाद में वापस शुद्ध करना होगा। और यदि नहीं होगा तो फिर हिसाब वापस साथ में जाएगा।

जिन बातों में आत्मा नहीं है, आत्मा से संबंधित नहीं हैं, उन बातों को चारित्र मोह कहा जाता है। ऐसी बातें करने वाले को भी चारित्र मोह है और सुनने वाले को भी चारित्र मोह है! चारित्र मोह आपकी समझ में आया न? कुविचार, सुविचार वगैरह सभी चारित्र मोह हैं।

रोज़ चारित्र मोह कहता था न? यदि सिर्फ इतना ही, 'चारित्र मोह' याद रहे न, तो भी बहुत हो गया। लोग तो कहते हैं न, कि किस प्रकार के मोह हैं कि ये कपड़े पहनकर घूमते हो, इस्त्री वाले क्यों पहनते हो? लोग ऐसा नहीं कहेंगे क्या? जैसा देखेंगे वैसा कहेंगे और आपको जानना पड़ेगा कि यह भी मोह तो है ही न, लेकिन किस प्रकार का मोह है, वह जानना चाहिए। चारित्र मोह अर्थात् लोगों को अपने वर्तन में मोह दिखाई देता है! 'इतनी जल्दी में क्यों दौड़ रहा है', कहते हैं। मोह है न लेकिन? तो कहते हैं, 'उस आदमी से तू पैसे माँगता है और उसने पैसे नहीं दिए और चला गया तब तेरे व्यवहार में बदलाव क्यों आया? तो कहते हैं, 'चारित्र मोह है।'

खपाओ चारित्र मोह को जागृतिपूर्वक

ज्ञान देने के बाद में जिसे मोह माना जाता है न... लोग क्या कहते हैं, 'ओहोहो! चंदूभाई कितना मोही है, सिनेमा में आनंद, पतंग में आनंद, फलाना, वह सब मोह है।' हम उसे मोह नहीं कहते हैं। हम जानते हैं कि यह चारित्र मोह है और उसका *निकाल* हो जाएगा। उस पर जागृति रखनी चाहिए। चारित्र मोह नहीं रुकेगा लेकिन जागृति रखनी चाहिए न! कितना रुक पाएगा? जितना हम रोकने की इच्छा करेंगे, उतना रुक सकेगा। फिर भी यदि नहीं रुक पाए, चाहे वैसा हो जाए लेकिन उस पर जागृति रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न, 'जागृति रखनी है', तो वह क्या है?

दादाश्री : पतंग उड़ाते हैं, फिर भी मन में रहा करे कि 'यह गलत कर रहा हूँ, ऐसा नहीं होना चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसा कि राज़ी खुशी से नहीं करना चाहिए?

दादाश्री : चंदूभाई राज़ी खुशी से करें फिर भी हमें अंदर ऐसी जागृति रहनी चाहिए कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'।

प्रश्नकर्ता : 'यह जो कुछ कर रहा है, मैं उसे जानता हूँ', उसे जागृति कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, जागृति कहते हैं। जागृति तो, चंदूभाई ने क्या-क्या किया, उसे हमें फिर से लिखना हो तो वह इतिहास लिख पाएँ।

है थर्मामीटर अंदर ही

अंदर आत्मा थर्मामीटर जैसा है। बुखार चढ़ा है या उतरा है, सब पता चलता है। किस तरफ की नीयत हो, वह पता नहीं चलता?

प्रश्नकर्ता : पता चलता है। अंदर जो सारी गांठें फूटती हैं, उनका पता चलता है।

दादाश्री : गांठें फूटती हैं, वह नहीं। गांठें चाहे फूटें, गांठें फूटना तो डिस्चार्ज है लेकिन अंदर कैसी इच्छाएँ रहती हैं? ऐसा सब चाहिए। अभी भी ऐसी भीख रहती है। चीज़ें हों, उसमें हर्ज नहीं है, भीख हो तो हर्ज है। अंदर भीख रहती है? भीख का तो तुरंत पता चल जाता है।

प्रश्नकर्ता : चारित्र मोह और भीख, इन दोनों में ज़रा भेद समझ में नहीं आता।

दादाश्री : चारित्र मोह *निकाली* है, डिस्चार्ज है और भीख, वह तो अंदर सारा (मोह) उत्पन्न करती है। भीख के लिए हमेशा उपयोग रहता है। पूरा उपयोग भीख में ही चला जाता है जबकि चारित्र मोह में उपयोग जागृति रहती है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न, कि कुछ प्रकार का चारित्र मोह ऐसा होता है कि जो ज्ञान को भी उड़ा देता है। वह किस प्रकार का है?

दादाश्री : हाँ। यदि वैसा चारित्र मोह हो, तब तो बिल्कुल विस्फोट करवा देगा। पूरे ज्ञान को खत्म कर देगा, धक्का मारकर! तो इसमें विषय के प्रकार वाला ही है, अन्य कुछ भी नहीं है। ये जितने भी कषाय उत्पन्न होते हैं न, वे सब विषय में से ही उत्पन्न हुए हैं।

अक्रम विज्ञान की गारन्टी

प्रश्नकर्ता : आत्मा प्राप्त होने पर *पुद्गल* में मृदुता-ऋजुता गुण उत्पन्न होते हैं। अब ज्ञान लिया है फिर भी उनका बरताव ऐसा रहता है कि हमें ऐसा लगता है कि इतनी कठोरता क्यों है? कोई उनसे पूछे तो कहते हैं कि, 'भरा हुआ माल निकल रहा है। यह चारित्र मोह निकल रहा है इसलिए ऐसा होता है।' तो उस समय मृदुता-ऋजुता की बात कहाँ चली जाती है?

दादाश्री : मृदुता-ऋजुता रहती ही है इसमें।

प्रश्नकर्ता : हाँ। वह किस प्रकार से है, वह समझ में नहीं आता। वह समझाइए ज़रा।

दादाश्री : आचरण कठोर होता है लेकिन अंदर मृदुता-ऋजुता रहती है, उसकी हम गारन्टी देते हैं। ऐसा है यह अक्रम विज्ञान।

एक्स्क्यूज़ लेता है, वह भी चारित्र मोह है

प्रश्नकर्ता : यह तो मेरा चारित्र मोह है, मेरा डिस्चार्ज है ऐसा करके वह एक्स्क्यूज़ (माफी) नहीं लेता? खुद का गलत बचाव नहीं करता?

दादाश्री : वह ऐसा जो करता है, वह भी चारित्र मोह है लेकिन यदि खुद की रीत-रस्म बदल दे और दिए हुए ज्ञान को खोद डाले तो फिर इस मार्ग पर नहीं कहा जाएगा। अपने ज्ञान को ही खोद दे और पाँच आज्ञा में नहीं रहता हो, पचास प्रतिशत भी पाँच आज्ञा में नहीं रहे, तो सब खत्म ही हो जाएगा। यदि पचास प्रतिशत रहे तब भी बहुत हो गया। फिर यदि कुछ उल्टा-सुल्टा हो जाए न, तो वह भी चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : तो उसे भी चारित्र मोह कहा जाएगा?

दादाश्री : खुशी से कह ही सकते हैं। बहुत अच्छी तरह से

चारित्र मोह कह सकते हैं। लेकिन किसी और को मत बताना। लोगों से मत करना यह बात। आप मुझे कहना। लोग आपको डिस्करेज कर देंगे और यह जो स्थिर हुए हैं उसे भी अस्थिर कर देंगे। यदि मुझसे पूछोगे तो मैं बता दूँगा कि, 'भाई, यह क्या है!'

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह बात तो सत्य ही है न! यह चारित्र मोह में ही आता है न? और किसमें आएगा?

दादाश्री : डिस्चार्ज ही है वहाँ। लेकिन बीच में दखल ही नहीं है न, आपका! आपका दखल हो तो आप ज़िम्मेदार हो। यह क्या हो रहा है? इट हैपन्स, हो रहा है। यह चारित्र मोह अर्थात् इट हैपन्स। आपका दखल नहीं है, किसी भी प्रकार का इसमें। 'ऐसा करो या वैसा करो' ऐसा दखल नहीं है। अपने आप ही जब सभी संयोग मिलते हैं तब कार्य होता है। आपका दखल नहीं है। आपकी इसमें चलेगी ही नहीं न! आपका तो, पूरा कर्तापद ही खत्म हो गया है। फिर उसके लिए आप कैसे ज़िम्मेदार हो? इसलिए किसी को भी परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। कभी यदि अगर मन में बहुत उलझन हो जाए तो मुझसे पूछ लेना।

'समभाव से निकाल' करने पर मुक्ति चारित्र मोह से

अद्भुत मार्ग है यह। इसलिए हमें अपना काम निकाल लेने जैसा है, झटपट इसके पीछे पड़कर। अभी अन्य जो सारी इच्छाएँ होती हैं न, उन्हें जैसे-तैसे करके कम कर देना है क्योंकि वह सारा चारित्र मोह है। इच्छाएँ, वास्तव में मोह नहीं हैं, चारित्र मोह हैं। भगवान को भी चारित्र मोह था। घर छोड़ा, तब से लेकर केवलज्ञान होने तक जो भी मोह रहा, वह सारा चारित्र मोह था। आप यदि *वेढ़मी* (मीठा पराठा) और जलेबी खाते हो तो मैं आपको डाँटने नहीं आऊँगा। मैं जानता हूँ कि यह इनका चारित्र मोह है और आप उसका *निकाल* कर रहे हो। वह फिर से नहीं आए, उस प्रकार से उसका समभाव से *निकाल* कर देना है। अभी जो आया है, वह व्यवस्थित है और जो नहीं आया,

वह भी व्यवस्थित है। *वेढ़मी* कच्ची आए तो वह भी व्यवस्थित है और अच्छी आए, वह भी व्यवस्थित। सबकुछ व्यवस्थित है न?

तो वहाँ हम उस चारित्र मोह का समभाव से *निकाल* कर देते हैं, उसी को कहते हैं मुक्ति। अन्य कुछ भी नहीं है। इतना आसान मोक्षमार्ग कभी सुना भी नहीं गया होगा। इतना आसान और सरल मार्ग है यह। त्याग नहीं करना है, कोई झंझट नहीं, दखल नहीं, गड़बड़ नहीं।

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा समझाया कि सत्संग में जाना भी मोह है लेकिन वह चारित्र मोह है तो क्या यह मोह भी अन्य मोह की तरह जाना चाहिए?

दादाश्री : यह मोह किस प्रकार से जा रहा है वह देखते रहना है। चंदूभाई खा रहे हों, पी रहे हों, किच-किच कर रहे हों तो वह सारा मोह है, आपको उसे देखते रहना है तो वह मोह चला जाएगा। यदि दखल करते हो कि 'ऐसा खारा क्यों बनाया है' तो वापस मोह को ज़रा गाढ़ किया। दखल नहीं करना है। 'देखते' ही रहना है। यह मोह तो है लेकिन देखने से ही जाएगा, देखने से ही नष्ट होगा। चारित्र मोह और अर्थात् डिस्चार्ज मोह। डिस्चार्ज मोह अर्थात् अपने हाथ में सत्ता नहीं है। अपने आप ही चला जाएगा, यदि आप वीतराग रहोगे तो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आखिर में चारित्र मोह तो जाना ही चाहिए न?

दादाश्री : वह जा रहा है। चारित्र मोह जा रहा है। ये जो फाइलें हैं, वे चारित्र मोह वाली ही हैं। फाइलों का *निकाल* हो जाएगा तो फुल गवर्नमेन्ट हो जाएगा। अत: यह चला जाना चाहिए ऐसा नहीं है, निकालना नहीं है, जा ही रहा है।

दादा का चारित्र, चारित्र मोह रहित

चारित्र मोह क्या है, वह बताने के लिए ही तो हम दस-दस दिन आपके साथ में रहते हैं। यदि कोई कहे कि 'दादा, ट्यूब नहीं है' तो दादा कहेंगे, 'चलेगा'। कहे 'दादा, ब्रश नहीं है' तो दादा कहेंगे,

'चलेगा'। 'दादा, सिर्फ जीभी (जीभ साफ करने का) ही है' तो दादा कहेंगे, 'चलेगा'।

प्रश्नकर्ता : चारित्र मोह कैसे जाएगा?

दादाश्री : उसे समझने से ही जाएगा। यदि समझेंगे तो उस पर उपयोग रख सकेंगे, तब वह जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कम्प्लीट निराग्रहता?

दादाश्री : नहीं। चारित्र मोह अलग चीज़ है। निराग्रहता अलग है। वह अलग शब्द है और इसे चारित्र मोह से समझेंगे न, तो इसमें मोह है। आग्रह अलग चीज़ है। आग्रह अहंकार का विभाग है, जबकि यह मोह है जो कि प्रत्यक्ष पहचाना जा सकता है। जो प्रत्यक्ष पहचाना जा सकता है, उस पर मूर्च्छा है।

'दादा, गर्म पानी ज़्यादा है, ठंडा कम है' तो दादा कहेंगे 'चलेगा'। 'दादा, गर्म कम है और ठंडा ज़्यादा है' तो दादा कहेंगे 'चलेगा'। 'दादा, सिर्फ ठंडा पानी ही है' तो दादा कहेंगे, 'चलेगा'। इसीलिए हम दस दिन तक सभी महात्माओं के साथ रहते हैं कि ज्ञानी पुरुष का दस दिन का चारित्र देखो। चारित्र मोहनीय रहित, चारित्र देखो। इसीलिए तो रहते हैं लेकिन जो नहीं समझे उसका क्या हो सकता है!

हमारी थाली में रोटी रखने के बाद कोई कहे कि 'दादा, एक ही रोटी है, आप चावल खा लीजिए' और रोटी उठाकर ले जाए तो हम कहेंगे, 'कोई हर्ज नहीं है, चलेगा' और अगर चावल उठाकर ले जाए और कहे कि सिर्फ रोटी ही है तो हम कहेंगे, 'अच्छा, चलेगा'। इस तरह से, 'चलेगा', कब बोला जा सकता है? जब उसके प्रति मूर्च्छा टूट चुकी हो, तब बोला जा सकता है। आग्रह तो एक भी नहीं चलेगा वहाँ पर जब चावल के प्रति मूर्च्छा टूट चुकी हो तब...

करेले की सब्ज़ी परोसी हो तब फिर आते ही पहले मन खुश हो जाता है और यदि सब्ज़ी वापस ले जाए तो मन में चिढ़ मचती

है, तो उसे चारित्र मोह कहा जाएगा। करेले की सब्ज़ी परोसकर वापस ले जाए तो हम कहेंगे 'चलेगा'। जबकि किसी को तो अगर फिर से लाया जाए तो 'यह भी नहीं चाहिए मुझे'। 'नहीं चाहिए' वह चारित्र मोह है। और मोह की वजह से ऐसी वाणी निकलती है। यदि मोह नहीं हो तो कोई हर्ज नहीं है, जैसा करें वही ठीक, और ज्ञाता-द्रष्टा भाव ही रहता है।

आप में चारित्र मोह रहा हुआ है। वह ऐसा नहीं है कि फिर से संसार बीज डाल सके लेकिन जब तक वह है तब तक समाधि सुख उत्पन्न नहीं हो सकता।

मैं यह कोट-टोपी पहनता हूँ उससे भी गुनाह लगता है क्या? कोई यदि कहे कि 'ये ज्ञानी पुरुष हैं, संपूर्ण ज्ञानी हैं'। जब कोई ऐसा कहे तब कोई कहेगा, 'वह कबूल करता हूँ। लेकिन ये तो कोट-टोपी पहनते हैं।' तो इस दुनिया में मोह के बिना कोई भी चीज़ नहीं की जा सकती लेकिन यह चारित्र मोह है। इससे बीज नहीं डलता। लेकिन देखने में मोह दिखाई देता है। हम कबूल करते हैं न, 'यह हमारा चारित्र मोह है।' यदि हम इन्हें कहें कि 'आइए' तो वह भी चारित्र मोह है। 'आइए न, यहाँ आइए न, बैठिए न।'

लोग नहीं कहेंगे क्या कि ये आपके ज्ञानी तो अँगूठी पहनते हैं तो क्या कोई मोह के बिना अँगूठी पहन सकता है? तब यदि कोई मुझसे पूछे तो मुझे कहना पड़ेगा, 'मोह तो है ही साहब। उसके लिए मैं मना नहीं कर सकता।' मोह न हो तो कौन ऐसे गहना पहनेगा? कोई पहनेगा क्या? मोह न हो तो कौन बाल बनाएगा? दाढ़ी कौन बनाएगा? मूछ कौन मुंडवाएगा? मोह के बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता न! कुछ तो मोह है। लेकिन यह चारित्र मोह है।

जहाँ सब कहें, हमें वहीं बैठ जाना चाहिए और यदि सब मना करें और कहें, 'वहाँ पर बैठिए', तो वहाँ बैठ जाएँगे। उठाने के लिए भी क्या आठ-आठ लोग की ज़रूरत पड़ेगी? सरल बन जाना है। हम इस गद्दी पर बैठे हैं, वह भी चारित्र मोह है।

चारित्र मोह का अर्थ समझे आप? आज इस पर मोह नहीं है, किसी भी तरह का। कोई ले ले फिर भी कोई बात नहीं। कोई यह कोट ले ले न, तब भी कुछ नहीं। लेकिन वास्तव में है तो सही। पहनते तो हैं और फिर धोने के लिए भी डालते हैं। 'साहब, धोने को क्यों डाला? आपको क्या परेशानी थी?' तो कहते हैं कि 'नहीं, लोगों में बुरा दिखाई देगा' और लोग कहेंगे, 'देखो तो सही, कपड़े साफ-सुथरे नहीं रखते!' तो वह लोगों के दुःख का कारण बन जाएगा। अपना चारित्र मोह लोगों के दुःख का कारण बन जाएगा, ऐसा है यह। अत: चारित्र मोह हो तो हर्ज नहीं है।

ये सारी अवस्थाएँ हैं, उसमें कुछ ऐसा है कि इससे हम को बीज नहीं डलेंगे लेकिन यह चारित्र मोह है, वह बात सौ प्रतिशत है, मना नहीं कर सकता कोई। ऐसा चारित्र मोह तो ज्ञानी में ही होता है। अन्य किसी में ऐसा चारित्र मोह नहीं हो सकता। बाकी, क्रमिक मार्ग में तो सब को गाढ़ मोह रहता है, अवगाढ़ मोह रहता है।

लोग मुझसे क्या कहते हैं कि 'यदि आप पूर्ण हैं तो यह मोह क्यों है? बाल क्यों बनाते हैं?' तो लोगों को व्यवहार से समझाने के लिए, मुझे जवाब देना पड़ता है कि यह मेरा चारित्र मोह है। निश्चय से मैं करेक्ट हूँ, कम्प्लीट हूँ लेकिन व्यवहार में मुझे समझाना पड़ेगा। इन सभी में चारित्र मोह है ही। मुझे भी चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : आप में चारित्र मोह है, वह किस प्रकार से?

दादाश्री : यह सब जानते हैं कि दादा देह के मालिक नहीं हैं। लेकिन यदि कोई मुझसे पूछे कि 'आप अभी देह के मालिक नहीं हैं?' तो मुझे कहना पड़ेगा कि 'हाँ, मालिक हूँ'। वर्ना, उसका कोई प्रमाण उसे समझ में नहीं आएगा तो बेचारा उलझन में पड़ जाएगा। यह सब चारित्र मोह कहलाता है। और यह जो अँगूठी पहनी है, वह भी चारित्र मोह कहलाता है। ये जो कपड़े पहने हैं न? चारित्र मोह कब जाएगा, जब केवलज्ञान हो जाएगा, तब। तब तक यह रहेगा।

जब तक चारित्र मोह है तब तक मुक्ति नहीं हो सकती। चारित्र मोह खत्म होने के बाद में केवलज्ञान होगा। अतः कुछ समय तक यह रहेगा और फिर मुक्ति हो जाएगी। महावीर स्वामी में केवलज्ञान होने तक चारित्र मोह था।

प्रश्नकर्ता : क्या सारा चारित्र मोह खत्म होने के बाद में केवलज्ञान होता है?

दादाश्री : हाँ, उसके बाद में ही केवलज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद में साधु वेश में आ जाते हैं?

दादाश्री : उसके बाद वेश ही नहीं रहता। फिर तो उसे दिगंबरी भी नहीं कहा जा सकता। वह चीज़ तो श्वेतांबर-दिगंबर से भी परे है। वह तो वेश ही अलग प्रकार का होता है। वह तो वेश भी नहीं है। जहाँ पर शरीर की कोई भी क्रिया हो, वह सारा चारित्र मोह ही है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि यदि कोई व्याख्यान दे रहा हो तो वह भी उसका चारित्र मोह ही कहा जाएगा न?

दादाश्री : सारा ही। सिर्फ व्याख्यान देते हैं, उतना ही नहीं लेकिन व्याख्यान सुनना भी चारित्र मोह है। मैं उपदेश देता हूँ, वह भी चारित्र मोह है। मैं अभी आपको यह जो ज्ञान देता हूँ, वह भी चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : तो हमारा कौन सा मोह है? हम सुन रहे हैं, वह?

दादाश्री : वह भी चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : आप जो विधि करवाते हैं, क्या वह भी चारित्र मोह है?

दादाश्री : हाँ, सब चारित्र मोह है और आप विधि करते हो, वह भी चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : आपका जो भाव है कि हम सब धीरे-धीरे मुक्ति

प्राप्त करें तो वह क्या कहा जाएगा? वह आपका मोह कहा जाएगा? राग कहा जाएगा?

दादाश्री : ऐसा है न, इसे चारित्र मोह कहा जाएगा। मोह तो है ही न! मोह के बिना अठहत्तर साल की उम्र में कौन यहाँ पर आएगा, कुर्सी पर बैठकर?

प्रश्नकर्ता : दादा का चारित्र मोह।

दादाश्री : आपका भी चारित्र मोह है और मेरा भी चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : आप जो कहते हैं, वह सही है। आप में भी चारित्र मोह है और हम में भी चारित्र मोह है लेकिन उसमें अंतर पड़ जाता है न?

दादाश्री : अंतर तो पड़ेगा ही न! आपको तो बैंक में बीस हज़ार गिनने जाना है, फिर ज़रा ओबेरॉय होटल में नाश्ता करने जाना है। मुझे ऐसा कुछ है? वह बोझ वाला चारित्र मोह, निरा बोझ ही! हमारे चारित्र मोह में बोझ नहीं है, वह हल्का है! बाकी मोह तो रहता ही है। मोह के बिना कौन पीड़ा मोल लेगा? किसी भी चीज़ को मोह कह सकते हैं लेकिन कौन सा मोह? चारित्र मोह। जिस मोह में से फिर नया मोह उत्पन्न नहीं होता और जिस मोह की *संवरपूर्वक निर्जरा* (नए कर्म बीज डलें बिना कर्मफल पूरा हो जाना) हो जाती है। आपका भी ऐसा ही है लेकिन आपको बोझा रहता है, बोझा रहा करता है। बीस हज़ार रुपये वापस जमा कराने और लेने और अगर कोई बीस हज़ार उधार माँगे तो परेशानी।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने उसे जो चारित्र मोह कहा... लेकिन क्या वह ज्ञानियों का करुणाभाव नहीं कहा जाएगा?

दादाश्री : करुणाभाव ही है वह। लेकिन एक प्रकार का मोह कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : करुणाभाव में भी वह चारित्र मोह है।

दादाश्री : मोह रहित तो कोई है ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : दादा, तीर्थंकरों में यह जो कल्याण की भावना रहती है, वह भी तीर्थंकरों का चारित्र मोह है या नहीं?

दादाश्री : वह सारा चारित्र मोह है। केवलज्ञान होने से पहले। बारहवें गुणस्थानक तक चारित्र मोह रहता है और चारित्र मोह खत्म होते ही केवलज्ञान हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : फिर उनमें कोई भाव नहीं रहता...

दादाश्री : नहीं। उसके बाद देशना। जो सामने आकर खड़ा रहे न, इस तरह 'जय-जय' करे, अब अगर यदि वह नर्क में जाने वाला हो, फिर भी भगवान उसे ऐसा नहीं बताते कि, 'तेरा ऐसा हो जाएगा।' क्योंकि वह खटपट नहीं करते हैं। एक पर राग और दूसरे पर द्वेष, ऐसा नहीं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या दादाजी की आज्ञा का पालन करना भी चारित्र मोह में आता है?

दादाश्री : नहीं। वह तो प्रज्ञाशक्ति का पुरुषार्थ है। चारित्र मोह में नहीं आता। चारित्र मोह अंदर आज्ञा पालन नहीं करने देता, ऐसा हो सकता है। यदि बहुत भारी फाइलें आ जाएँ न, तो फिर वह भटक जाता है। देर-सवेर होगा, कुछ समय तक पालन करेगा और पूरा ही चारित्र मोह बहुत सरल हो न, तो बहुत अच्छी तरह से पालन करने देगा।

आज्ञा पालन करने से चले जाते हैं घातीकर्म

प्रश्नकर्ता : अब यह जो दर्शन है, उससे सारा चारित्र मोह खत्म हो जाता है न?

दादाश्री : शुद्ध दर्शन से देखने पर चारित्र मोह खत्म होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : मुझे पूछना यही था कि चारित्र मोह खत्म करने का तरीका इस दर्शन से ही है न?

दादाश्री : दर्शन से ही है। लेकिन वह दर्शन कब रहेगा? हमारी पाँच आज्ञा पालन करने से दर्शन रहेगा और उससे चारित्र मोह बिल्कुल ही खत्म हो जाएगा। समाधि रहेगी और मोक्ष में ले जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो मोहनीय कर्म पूरा ही खत्म हो जाएगा न? फिर उसके साथ आत्मा की दर्शन क्रिया होती है न?

दादाश्री : हाँ, यह हमारी आज्ञा है, इनका पालन करने से ही दर्शन क्रिया और ज्ञान क्रिया शुरू हुई। उससे ये चारों ही घातीकर्म खत्म हो जाएँगे।

ज्ञान से दर्शन मोह और आज्ञा से चारित्र मोह जाता है

प्रश्नकर्ता : अपने महात्माओं का दर्शन मोह निकाल दिया है और अब चारित्र मोह बचा है। चारित्र मोह अर्थात् दिन भर में जो कुछ भी होता है, वह सब चारित्र मोह ही माना जाएगा। उठा, वह भी चारित्र मोह; चाय पी, वह भी चारित्र मोह, वह सब चारित्र मोह में ही आएगा। अतः निरंतर चारित्र मोह को, चारित्र मोह के रूप में ही देखे, ऐसी एक्ज़ेक्ट जागृति कौन सी होती है?

दादाश्री : कहा है न, कि व्यवस्थित है, देखते रहना। इस आज्ञा से मोक्ष है। देखते रहना है। चाहे कैसा भी कार्य कर रहा हो फिर भी उसे देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् उसे देखते रहने से चारित्र मोह खत्म हो जाएगा और इन पाँच आज्ञा में रहने से भी खत्म हो जाएगा न?

दादाश्री : उसे देखना, वही पाँच आज्ञा है न! रिलेटिव और रियल को देखना, वह आज्ञा में आ जाता है। अतः चारित्र मोह निकालने के लिए यह अलग से कहा था। आँखों पर पट्टी बाँधकर चारित्र मोह उत्पन्न किया है और खुली आँखों से देखकर चारित्र मोह को बिदाई दी।

प्रश्नकर्ता : यह पूरी असाधारण वेल्डिंग लगती है। बाकी शास्त्रों में तो उलझ जाते हैं। आपका एक वाक्य है, 'ज्ञानी पुरुष के ज्ञान से दर्शन मोह चला जाता है और आज्ञा का पालन करने से चारित्र मोह चला जाता है।'

दादाश्री : सही है, ये दोनों रहें तभी काम का है। आप यदि चारित्र मोह को पकड़ते हो तो वह आपका है और यदि नहीं पकड़ते हो तो आपका नहीं है। आप ज्ञाता-द्रष्टा रहते हो तो आपका नहीं है और यदि कहो कि 'मुझे ऐसा क्यों होता है' तो वह आपका है। जिस प्रकार से ठीक लगे उस प्रकार करना।

प्रश्नकर्ता : उस चारित्र मोहनीय को जानना ही उपयोग है न?

दादाश्री : चारित्र मोह को जानना, वही उपयोग है। जो जानता है उस पर असर नहीं होता।

लपेटा हुआ खुलता है, वही चारित्र मोह है

प्रश्नकर्ता : दादा, दर्शन मोह के खत्म होने के बाद चारित्र मोह अपने आप ही डिस्चार्ज होता रहेगा न?

दादाश्री : चारित्र मोह अर्थात् जो मोह परिणामित हो गया है। यानी कि जो अपने आप ही विलय होता जाता है, आपको कुछ करना नहीं पड़ता। आपको ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। आप अपने स्वभाव में रहो तो आपको कोई परेशानी नहीं होगी। वकील वकालत करे तो लोग कहेंगे कि 'यह वकील वकालत कर रहा है', उसे चारित्र मोह कैसे कहा जा सकता है? मैं कहूँगा कि उसी को चारित्र मोह कहते हैं। जैसा लपेटा था वैसा ही खुलेगा। टेढ़ा लपेटा होगा तो टेढ़ा निकलेगा। सीधा लपेटा होगा तो सीधा निकलेगा। जिस तरह से लपेटा था, उसी तरह से निकलेगा।

भगवान कितने समझदार! इसमें अपवाद रखा होता तो परेशानी हो जाती न? तो कहते हैं, 'जैसा लपेटा था, वैसा ही।' वकालत करके

झूठे केस को भी सही ठहरा दिया। 'अरे भाई, सही ठहरा दिया', लेकिन उसी तरह का मोह लपेटा हुआ था। वह तो उसका भी ज्ञाता-द्रष्टा है। आज वह उसका मालिक नहीं बनता, फिर कैसी ज़िम्मेदारी? अतः यदि ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो कुछ है ही नहीं। टेढ़ा-सीधा आपने जैसा भरा होगा वैसा। टेढ़ा होगा या सीधा, टेढ़ा और सीधा तो इस दुनिया में बुद्धि के हिसाब से है, समाज व्यवस्था के हिसाब से है। बाकी, भगवान के वहाँ पर तो यह टेढ़ा है और यह सीधा, ऐसा कुछ है ही नहीं। सीधा और टेढ़ा तो यदि हमें अनुकूल नहीं आए तो उसे टेढ़ा कहते हैं और यदि हमें अनुकूल आ जाए तो उसे सीधा कहा है। यदि हमें अनुकूल नहीं आए और दूसरे को अनुकूल आए तो क्या हमारा वह टेढ़ा कहा जाएगा? वह तो हर एक का हिसाब है। कल्पना ही है एक प्रकार की। आपकी दशा टेढ़े और सीधे से द्वंद्वातीत हो गई है। अतः आपको तो सिर्फ देखना है। दादा की आज्ञा का ही पालन करना है। अन्य कुछ भी नहीं देखना है। जो आए वह, कचरा हो या अच्छा हो। जैसी परीक्षा दी थी न, वैसे मार्क्स आए हैं। उन्हें देखते रहना है। परीक्षा देते समय दादा से पूछकर नहीं दी थी। आपने अपनी मर्ज़ी से दी थी!

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब परीक्षा के बाद आपकी सिफारिश चलेगी न? जो कुछ भी करें, उसमें पास होने के लिए, मार्क्स देने के लिए?

दादाश्री : नहीं! लेकिन अब आप जो कुछ भी नया कर रहे हो, वह मेरे पास है। 'पहले का किया हुआ ही तो अब आ रहा है, उसे देखते रहो', मैंने इतना ही कहा है। 'उसके बाद आपको बंधन नहीं है', मैं ऐसा कह रहा हूँ।

चारित्र मोह अर्थात् जिसे हमारे यहाँ प्रारब्ध कहते हैं न! सिर्फ प्रारब्ध ही बचा है, ऐसा कहते हैं न? वह चारित्र मोह है। प्रारब्ध को भोगना बाकी रहा। ज्ञाता-द्रष्टा रहकर उसे भोग।

प्रश्नकर्ता : यानी कि जो लपेटकर लाए हैं, वही खुल रहा है और उसी को चारित्र मोह कहना है?

दादाजी : हाँ। जो माल लपेटकर लाए हो न, अब वह वापस खुलेगा, उसे चारित्र मोह कहा है। और भगवान कहते हैं कि 'जब यह खुल रहा हो, उसमें राग-द्वेष मत करना और ज्ञाता-द्रष्टा रहना'।

खुलेगा डिज़ाइन के अनुसार...

प्रश्नकर्ता : तो क्या वर्तन मोह अहंकार का है, ऐसा कहा जाएगा? वह किसका कहा जाएगा?

दादाश्री : अहंकार का ही, और किसका? शुद्धात्मा तो अलग ही है यह। और डिस्चार्ज मोह का पुतला अलग है। डिस्चार्ज मोह का पुतला खाता-पीता है, उसमें भी जो आहारी है, वह खाता है। जो विहारी है, वह चलता है।

प्रश्नकर्ता : वह चलता है और फिर किसी खास प्रकार से चलता है ऐसा उसका मोह है, क्या ऐसा कहना है?

दादाश्री : हाँ। वह देखना है, जैसी उसकी डिज़ाइन है, वैसी ही। नई डिज़ाइन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अब इस डिज़ाइन के अनुसार पूरा व्यवहार ओपन हो रहा है।

दादाश्री : योजना की जो डिज़ाइन थी, उस अनुसार सब चलता रहता है। अब सरकार कोई योजना बनाए तो कई बार योजनापूर्वक काम होता है लेकिन कई बार डिज़ाइन बदल जाती है वहाँ पर, ऑन साइट। उस तरह से इसमें नहीं बदलती है।

प्रश्नकर्ता : अब उदाहरण के तौर पर, जैसे कि मेरी किसी कंपनी में सर्विस चल रही है, तो अब वह पूरा डिज़ाइन के अनुसार ही है न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : तो उसमें दखलंदाज़ी करें कि उसमें बोर हो रहे हैं, यह नहीं चाहिए, तो...

दादाश्री : वह डिज़ाइन ही है न! इस डिज़ाइन से यदि कभी तू खुद अलग रहकर देखे कि यह क्या कर रहा है तो तू अलग है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर वापस खुद...

दादाश्री : इसका ज्ञाता-द्रष्टा रहे। चंदूभाई को विरोध करते हुए देखे, तब भी उसका ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो बस, हो गया।

प्रश्नकर्ता : डिज़ाइन में जो दखलंदाजी करने के लिए माथापच्ची करता है न, वह भी डिज़ाइन का ही विभाग है?

दादाश्री : दखलंदाजी करता है, वह भी इस डिज़ाइन में ही है। अलग रहकर देखना है। न्याय अर्थात् न्याय। न्याय कभी अन्याय नहीं हो सकता। यह तो 'अक्रम विज्ञान' है न, यह क्या कोई ऐसी-वैसी बात है!

प्रश्नकर्ता : अक्रम विज्ञान यानी क्या कहना चाहते हैं?

दादाश्री : अक्रम विज्ञान के बिना यह सब *निकाली* नहीं हो सकता। यहाँ तो अगर कोई बीड़ी पी रहा हो तो उसे बीड़ी पीने देते हैं जबकि क्रमिक में छोड़नी पड़ती है।

दखल वाला चारित्र मोह

डिस्चार्ज मोह अपने आप ही विलय हो जाएगा, यदि उसमें दखलंदाज़ी नहीं करोगे तो। दखल मत दो। देखते रहो कि क्या हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : चारित्र मोह में दखल हो सकता है क्या?

दादाश्री : उसमें सभी जगह दखल ही रहता है न! दखल के बिना तो मोह हो ही नहीं सकता। मोह अर्थात् दखल। दखल दिए बगैर रहता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम उसे चारित्र मोह की तरह समझें, हम देखें और जानें, क्या तब भी दखल हो जाएगा?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा दखल नहीं देता। चारित्र मोह में दखल रहता है। 'मैं अभी नहीं आऊँगा' ऐसा करने से फिर दखल रह जाता है। क्योंकि माल ही ऐसा भरा हुआ है, दखल वाला। तो दखल वाला चारित्र मोह निकलता है। ज्ञाता-द्रष्टा के पास अन्य कोई विशेषण ही नहीं होता। जिससे दखल-वखल हो जाता है, वह आप नहीं हो। पर इस चारित्र मोह का दखल है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादाजी, दखल रहित वर्तन कैसा होता है?

दादाश्री : थोड़ा-बहुत दखल तो रहता ही है। क्योंकि अज्ञान से ही चारित्र मोह का बंधन हुआ है न! और सज्ञान दशा में (उसे) देखना है। यानी कि अज्ञानता में बंधन हुआ था न? इसलिए थोड़ा-बहुत दखल तो रहेगा ही। जहाँ *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) है, वहाँ पर पूरा दखल ही है। कम या ज़्यादा हद की *आड़ाई* को दखल ही कहा जाएगा। किसी में ज़्यादा दखल रहता है और प्रकृति के विरुद्ध होता हुआ देखे तो आड़ा हुए बगैर नहीं रहता। प्रकृति के विरुद्ध कुछ हुआ हो तो दखल दिए बगैर नहीं रहता। उसे सरलता से खुलने नहीं देता। खुद अंदर दखल देता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर व्यवस्थित में आता है न?

दादाश्री : वह सब भी व्यवस्थित ही है लेकिन दिखाई देता है दखल। कोई कहता है कि 'भाई, इन्होंने वापस दखल दिया।' लेकिन है व्यवस्थित। वह सब किए बगैर तो चारा ही नहीं है न। 'करता है' ऐसा कहा, वह भी औपचारिक है। वास्तव में किया नहीं है, वह हो चुका था।

चारित्र मोह अर्थात् अज्ञानता से उत्पन्न किए हुए को, सज्ञानता में जागृतिपूर्वक देखना। जब संसारी थे तब अज्ञानता में सारा उत्पन्न ही किया है और ज्ञान होने के बाद मन में ऐसा लगता है कि 'अरे, यह क्या झंझट है?' वह है चारित्र मोह। निबेड़ा लाना ही पड़ेगा। वह तो अपना हिसाब है। गुनहगारी तो अपनी ही है न? किसी और की गुनहगारी नहीं है।

बिना देखा हुआ वह बिना धोया हुआ

प्रश्नकर्ता : आप जो दखल देते हो, वह चारित्र मोह कहलाता है, तब तक चारित्र मोह नहीं कहा जाएगा। अब फिर यह क्या है?

दादाश्री : दखल तो अलग चीज़ है। दखल किसे कहते हैं? दखल देना और दखल हो जाना, ये दोनों अलग चीज़ें हैं। दखल देने वाला दखल देता है और कितनों को तो नहीं देना हो फिर भी हो जाता है, वह चारित्र मोह में आता है। और जो 'किया जाता है' वह खुद के मोह में आता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर चारित्र मोह ही कहा जाएगा न, सभी का! हम सब ने भी यह पेपर पढ़ा तो यह चारित्र मोह ही है न?

दादाश्री : चारित्र मोह ही है, नहीं तो और क्या? लेकिन उसका *निकाल* करते समय यदि चारित्र मोह को अलग नहीं रखोगे तो आपकी भूल है, *निकाल* के समय तो आपको ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। चंदूभाई पढ़ते हैं, वह आपको देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : *निकाली* भाव में हर बार यदि ज्ञाता-द्रष्टा वाली वह दशा नहीं रहे तो वह चारित्र मोह ही कहा जाएगा न?

दादाश्री : है चारित्र मोह लेकिन वह चारित्र मोह साफ नहीं हुआ। वे कपड़े बिना धुले रह गए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन हमें ज्ञाता-द्रष्टा की तरह रहना है लेकिन कुछ संयोगों में वह नहीं रह पाता तो क्या उस समय वह चारित्र मोह नहीं है?

दादाश्री : जितने कपड़े धुले बिना चले गए, उन्हें फिर से धोना पड़ेगा। जहाँ नहीं रह पाते, वह आपको अच्छा नहीं लगता। वह आपकी कमज़ोरी की वजह से नहीं रह पाता तो उन्हें फिर से देखना पड़ेगा। इसीलिए हम दो-तीन जन्म कहते हैं न!

धोना पड़ेगा भिगोया हुआ अंतिम कपड़ा

सभी कपड़े धो देता है और फिर नहाने के बाद में जो एक कपड़ा रह जाता है उसे भी धोना तो पड़ेगा ही न? लेकिन इस तरह से संभालकर धो देना है ताकि पानी के छींटे न उड़ें। बाकी के सब कपड़े तो धो दिए, साबुन डालकर, खंगाल-खंगालकर, सिर तक साबुन उड़े तो भी हर्ज नहीं है। लेकिन नहाने के बाद में इस तरह धोना कि साबुन नहीं उड़े। अतः इस अंतिम कपड़े को भी धो देना है। धोना नहीं पड़ेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : यह तो इतना अच्छा एकदम सटीक उदाहरण है!

दादाश्री : हाँ, वह तो मैंने किया हुआ है बचपन में। मुझे याद है न, हमारे वहाँ खेतों में पंप लगाते थे तो उससे गर्म पानी निकलता था, फ्री ऑफ कॉस्ट। बॉइलर का पानी ठंडा करना पड़ता था। गर्म पानी निकलता था न, तो कपड़े वहाँ ले जाकर धो देते थे। फिर जो आखिरी एक कपड़ा बचता था, उसे इस प्रकार से धीरे-धीरे ऐसे करके, एक तरफ ले जाकर धो देते थे। उसी प्रकार से यह जो एक बचेगा उसे ऐसे-ऐसे नीचे रखकर धो देना है ताकि ज़रा भी छींटे न उड़ें। इस प्रकार नहाते-धोते थे... साबुन के छींटे उड़ते हैं न फिर। वह तो सत्रह साल की उम्र में भी उतनी तो बुद्धि थी। इतनी बुद्धि भी नहीं हो तो फिर किस काम का? लेकिन उसमें जो तरीका है, वैसा ही तरीका इसमें भी है।

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान प्रकाश, सहज रूप से है?

दादाश्री : वह तो सजह रूप से रहता है। यों एकदम पौद्गलिक जो लपेटा था, वही बाहर निकलता है, सहज रूप से, बिना मेहनत के। और इस ज्ञान की प्राप्ति तो दुर्लभ कही जाती है। लेकिन अब आखिर में धो दोगे न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, रोज़ धुलता ही जा रहा है न यह? एक बार आपने कहा था कि, 'मैं कपड़े धोना सिखाऊँगा लेकिन क्या मेरे कपड़े खराब नहीं हो जाएँगे?'

दादाश्री : उसमें तो यदि अगर मेरे कपड़े खराब होने की संभावना हो तब फिर मैं क्यों सिखाऊँ?

यह चंदूभाई का चारित्र मोह निकलता है। इस स्थिति में भी उनका चारित्र मोह तो निकलेगा ही। पूरा जो चारित्र मोह भरा हुआ है, उसे देखते रहना है, वह चारित्र मोह तो निकलेगा। अत: जब वे किसी पर गुस्सा हो जाएँ तो उस समय अंदर बिल्कुल अलग रहते हैं उससे, कि ऐसा नहीं होना चाहिए। तो बाहर जितना गुस्सा रहता है उसके बजाय अंदर उस (विरोध) का ज़ोर ज़्यादा रहता है। इसलिए वे अलग रहते हैं। तो इसे कहेंगे कि चारित्र मोह शुद्ध हो गया और उसे देखकर जाने दिया है। यदि देखने के बाद जाएगा तो शुद्ध हो जाएगा। यदि अनजाने में चला जाएगा तो वह शुद्ध नहीं कहा जाएगा।

चारित्र मोह को कब देख पाएगा? जब जगत् विस्मृत रहेगा, तब। जगत् विस्मृत कब होगा? तो जब ज्ञानी पुरुष के टच में ही रहेंगे, तब। वे सारे हिसाब साफ हो जाएँगे। टच में यानी हमेशा, ज़िंदगी भर के लिए नहीं लेकिन कुछ समय तक उनके टच में रहने से सारा हिसाब साफ हो जाएगा। साफ होने के बाद में फिर से उत्पन्न नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : कुछ समय यानी कितना?

दादाश्री : जब तक पूरा साफ न हो जाए तब तक। किसी के हिसाब पक्के होते हैं न, तो उसे ज़्यादा टाइम लगता है। ज़रा हल्के हिसाब हों तो कम लगता है।

बाकी, इस चारित्र मोह को देखते रहना है, अन्य कुछ भी नहीं करना है। देखने करने में किसी भी तरह की तकलीफ नहीं होती। थोड़े ही कोई तकलीफ होती है?

भरे हुए का करो निकाल

चिढ़ वाला चारित्र मोह भी निकल जाएगा और राग वाला भी

निकल जाएगा। उसे 'देखना' है कि चारित्र मोह में क्या-क्या निकलता है। राग-द्वेष के परिणाम वाला माल निकले तो उसे हमें देखते रहना है। चंदूभाई किसी को डाँटे, तब उस पर आपको द्वेष नहीं होता। शायद कभी कहो कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए' लेकिन द्वेष नहीं होता। यदि द्वेष वाला माल निकले और वहाँ पर हम हिल उठें (डिस्टर्ब हो जाएँ) तो ऐसा नहीं चलेगा।

फिर यदि कोई कहे कि मुझे गाँव में अच्छा नहीं लगेगा तो फिर अभी आगे जाकर उसका फिर से *निकाल* करना पड़ेगा। वर्ना जो सहज रूप से आए और उसका निबेड़ा ला दो तो जड़ से चला जाएगा। मुंबई वाले को गाँव में कैसे अच्छा लगेगा? आप तो बंगले में रहे हुए हो। मैं तो कॉन्ट्रैक्ट का काम करने वाला, तो हमें तो सब चलता है। उससे फिर फर्क नहीं पड़ता। छोटे गाँव के बड़े लोग होते हैं न, उनसे कहें कि 'आपको चलकर जाना है या ट्रैक्टर में बैठकर आना है?' तो कहेंगे, 'ट्रैक्टर में बैठ जाते हैं। चलकर थकें क्यों?' जबकि आप क्या कहोगे कि, 'चलकर जाना है।' क्योंकि बैठे ही नहीं हो न, इसमें। जबकि हम तो बैलगाड़ी में भी बैठे हैं, छोटी बैलगाड़ी में भी बैठे हैं और सभी तरह के हालात में घूम आए हैं। हमारा कोई वेश (किसी भी हालात में रहना) बाकी नहीं बचा है न! और उसका भी *निकाल* तो करना चाहिए न? कुछ उल्टा आ जाए तो भी *निकाल* कर देना।

प्रश्नकर्ता : नहीं! ट्रैक्टर को तो सुविधा कहा जाएगा, असुविधा नहीं।

दादाश्री : नापसंद चीज़ आई है। नापसंद चीज़ के परिणाम और पसंदीदा चीज़ के परिणाम, दो तरह के परिणाम हैं। वह चारित्र मोहनीय है।

नहीं हैं उदयकर्म महात्माओं का

प्रश्नकर्ता : आपने एक जगह पर कहा था कि अपने महात्माओं को उदयकर्म नहीं हैं, उनका चारित्र मोह है।

दादाश्री : क्योंकि इनमें (महात्माओं का) चारित्र मोह का उदय है जबकि अन्य लोगों में मूल मोह का उदय है। अपना यह चारित्र मोह है और उनका (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया) मोह है। उनका मूल मोह है।

प्रश्नकर्ता : दादा, उदयकर्म का अर्थ क्या और चारित्र मोह का अर्थ क्या है? इन दोनों में क्या अंतर है?

दादाश्री : चारित्र मोह तो, जिसका मोह चला गया है, उसे चारित्र मोह कहा जाता है। बाकी तो यह पूरी दुनिया मोह वाली दुनिया है, वह सारा उदयकर्म है।

प्रश्नकर्ता : यह उदयकर्म यानी क्या?

दादाश्री : अपने किए हुए कर्म फल देने के लिए सम्मुख आते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो महात्माओं को जब पिछले जन्म के (कर्म) फल देने आते हैं तो उसका नाम चारित्र मोह रखा है। उदयकर्म के बजाय? महात्माओं के आएँगे तो सही न? पिछले जन्म के फल!

दादाश्री : महात्माओं के लिए वह उदयकर्म नहीं है, वह चारित्र मोह है। जिन्हें मोह है, उनके लिए वह उदयकर्म है। जिन्हें मोह नहीं है, उनके लिए उदयकर्म नहीं कहा जाएगा। उदयकर्म तो मनुष्यों के होते हैं, महात्माओं के नहीं होते। सभी मनुष्यों के (कर्म) उदयकर्म हैं। साधु-संतों के सभी के। सिर्फ अपने महात्माओं के ही उदयकर्म नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कई बार हमने महात्माओं के मुंह से उदयकर्म, कई बार सुना है।

दादाश्री : सुना हुआ नहीं चलेगा न! समझना पड़ेगा। उदयकर्म तो, यदि तू चंदूभाई बन जाए तो फिर क्या हो सकता है? उदयकर्म किसके होते हैं?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई के।

दादाश्री : हाँ और शुद्धात्मा के तो होते ही नहीं हैं न!

वह केवलदर्शन

जिस प्रकार का चारित्र मोह है उसी प्रकार का आएगा। नियम से आता है या बिना नियम के आएगा फिर भी यदि निरंतर ऐसा ध्यान में रहे कि 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ,' तो उसे केवलदर्शन कहा जाएगा! भगवान के वहाँ पर नियमपूर्वक या अनियमपूर्वक नहीं है। वह तो यहाँ पर लोगों के लिए है। गाय-भैंसों के वहाँ भी नियम-अनियम नहीं हैं। इन अक्ल वाले लोगों के वहाँ पर ही है यह सब। ऐसी व्यवस्था सेट की है कि ऐसा करेंगे तो हम सब सुखी हो जाएँगे। एक जन्म के लिए यदि 'देखता' रहे न कि यह सब नियमपूर्वक कर रहा है या नियम से बाहर हो गया तो सभी जन्मों का नुकसान खत्म हो जाएगा। फिर बाकी क्या रहा?

चारित्र मोह है, कुछ भी बाकी नहीं रहा। यदि निरंतर यह ध्यान रहे कि 'मैं कुछ भी नहीं करता' तो प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान, कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन इतना सब रहता नहीं है न। इतना सब इंसान के बस की बात नहीं है। यानी कि धीरे-धीरे होगा न ऐसा? पहले ऐसा करते-करते उस पद तक पहुँच पाएँगे।

जहाँ उपयोगपूर्वक डिस्चार्ज, वहाँ आनंद

प्रश्नकर्ता : ये डिस्चार्ज मोह और डिस्चार्ज, दोनों अलग हैं न?

दादाश्री : दोनों अलग चीज़ें हैं। डिस्चार्ज ही होता रहेगा न फिर। इसमें उपयोगपूर्वक डिस्चार्ज हुआ और जितना उपयोग के बिना डिस्चार्ज हुआ, उतना चारित्र मोह रह जाएगा। अब चारित्र मोह में जितना उपयोगपूर्वक होता है, उतना ही खुद को लाभ है, वर्ना चारित्र मोह तो अपने आप वर्तन में आता ही रहेगा। उपयोग तो जागृति सहित रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उपयोगपूर्वक जो डिस्चार्ज होता है और उपयोग के बिना जो होता है, जो अपने आप होता रहता है, उन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : यदि उपयोगपूर्वक होगा तो उसे खुद को लाभ होगा। उसे पुरुषार्थ कहेंगे न! उपयोग ही पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : यदि बिना उपयोग के होता है तो उसका क्या परिणाम आएगा?

दादाश्री : कुछ भी नहीं। और कौन सा परिणाम? उसे लाभ नहीं हुआ। पुरुषार्थ उतना मंद रहा और जागृति नहीं रही। दुकान पर बैठा लेकिन कोई काम-धंधा नहीं किया। काम-धंधा नहीं किया, बस उतना ही नुकसान हुआ। उससे कोई नए कर्म नहीं बनेंगे। कर्म चार्ज नहीं होंगे लेकिन वह चारित्र मोह आनंद को रोक देगा। यदि उपयोग है तो आनंद रहेगा। हमारा चारित्र मोह बहुत कम है, हम उपयोग में रहते हैं। हम अपनी जो विधियाँ करते हैं न, वह सारा उपयोग ही है। दो-तीन घंटे की विधि दोपहर को होती है, दो घंटे की शाम को होती है और सुबह एक घंटे होती है, दिन भर की ये सारी विधियाँ हैं।

प्रश्नकर्ता : उपयोग रहित उपशम और उपयोग सहित क्षायक ऐसा हुआ न?

दादाश्री : अपना यह उपयोग के बिना भी क्षायक ही है, क्षायक दर्शन है। क्षायक ज्ञान के लिए उपयोग रखने की ज़रूरत है। जब क्षायक ज्ञान हो जाता है तब क्षायक चारित्र आता है।

विषमभाव से अशुद्ध, समभाव से शुद्ध

चारित्र मोहनीय अर्थात् समभाव से *निकाल* करना। समभाव से *निकाल* किया तो वह शुद्ध होकर गया। शुद्धता हो जानी चाहिए। विषमभाव किया है इसलिए यह अशुद्ध हो गया है। अब समभाव से *निकाल* करोगे तो शुद्ध हो जाएगा। विषमभाव से जमा किया हुआ है।

यह जो चारित्र मोहनीय है, वह अपनी मालिकी की नहीं है। वह तो दादा को सौंप दी है। हमें देखनी है। जितनी चारित्र मोहनीय को शुद्ध दृष्टि से देखेंगे, उतनी ही चारित्र मोहनीय शुद्ध होती जाएगी

और जितनी रह जाएगी उतनी फिर वापस शुद्ध करनी होगी। आपकी तो नहीं रह जाती न?

प्रश्नकर्ता : कई बार रह जाती है, दादाजी।

दादाश्री : ऐसा? तो कब देखोगे? हो सकेगा वह?

प्रश्नकर्ता : अगली बार करना पड़ेगा, दादा। और तो क्या हो सकता है?

दादाश्री : जो रह जाता है, वह अगले जन्म के लिए बाकी रहा। उससे कोई बहुत जन्म नहीं लेने पड़ेंगे।

चारित्र मोह का नहीं करना चाहिए तिरस्कार

क्षायक समकित हो और वर्तन टेढ़ा हो या सीधा, फिर भी वह चारित्र मोह है। शास्त्रों से विरुद्ध हो, तब भी चारित्र मोह है और शास्त्र के अनुकूल हो, तब भी वह चारित्र मोह है। चारित्र मोह अर्थात् यह मोह दिखाई तो देता है मोह जैसा, लेकिन वह चारित्र मोहनीय है। चारित्र मोहनीय अर्थात् हटाना चाहो तो हटाया नहीं जा सकता और ग्रहण करना चाहो तो ग्रहण नहीं किया जा सकता। उसका तो हल लाना है और *निकाल* कर देना है। क्योंकि राज़ी खुशी से भरा हुआ माल है न! अब तिरस्कार नहीं करना चाहिए। अब कड़वा लगा लेकिन भरते समय ऐसा मानकर ही भरा था न, कि 'मीठा ही है'! इन भाई का भरा हुआ माल अलग है और फिर आपका भरा हुआ माल उससे भी अलग है। यह कुछ नई ही तरह का माल है! उनका अलग है, इनका अलग है, ऐसा सब का अलग-अलग है! मुझे भी पता चलता है कि यहाँ पर ऐसा माल है। लेकिन अब कोई भी दुकानदारी नहीं है न, वर्ना मैं भी बताऊँ कि, 'भाई, जा वहाँ पर अच्छा माल मिल रहा है', लेकिन अब वह बिकता भी नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : दादा, इसमें उपकार है। यह हमारा चारित्र मोह निकल रहा है। दादा ने मोह की जड़ को तो निकाल दिया है!

दादाश्री : बस, चारित्र मोह निकल रहा है। यह जो मोह है, वह चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : हम दादा से यही विनती करने आते हैं कि चारित्र मोह ज़रा जल्दी से निकल जाए। बस इतना ही कहते हैं। यह जल्दी नहीं हो सकता क्या दादा?

दादाश्री : हाँ, यदि फिल्म जल्दी पूरी हो जाएगी तो देखने वाले को उठकर घर जाना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : आपने यह जो बात की कि ये जो सारे प्रश्न पूछते हैं, हम इकट्ठे होते हैं, वह सब चारित्र मोह है। मैं तो ऐसा सोच रहा था कि हमें यह सब जो होता है, राग-द्वेष होते हैं और हम ये जो सारी बातें करते हैं, प्रश्न पूछते हैं लेकिन तरीका तो यही है कि हमें जिस दशा तक पहुँचना है, उसमें तो यह सब है ही नहीं न? इन सब से परे है न, वह चीज़?

दादाश्री : हाँ, परे है। फिर भी यदि यह आया है तो हटाना तो पड़ेगा न? जो आया है उसे हटाना तो पड़ेगा न? रास्ता तो पार करना पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : करना पड़ेगा।

दादाश्री : थाली देखने से कहीं भूख मिटती है? ये ज्ञान-दर्शन और चारित्र सब चाहिए। थाली को देखने से भूख नहीं मिटती। ज्ञान-दर्शन-चारित्र को देखने से, फिर श्रद्धा रखने से, फिर चारित्र अर्थात् खाने से। तब पूर्ण होगा जबकि हमें तो यह श्रद्धा हो गई है कि हम इन सब से परे हैं। लेकिन यह जो है उसे हटाना तो पड़ेगा न या नहीं? तो यही हटा रहे हैं सब महात्मा।

इस चारित्र मोह का वीतरागता से *निकाल* करो। अत: जब भी यह भाई मिलता है न, तो वह किसी न किसी उलझन में ही पड़ा होता है, विचारों में। तब मैं कहता हूँ कि यह जो कुछ भी है, वह

चारित्र मोह है। अब छोड़ो न! सिर्फ देखो कि कैसा मोह है वह! तब फिर वह उलझन खत्म हो जाती है। ऐसे करते-करते बंद हो गया।

जिसमें तन्मयाकार नहीं, वह नहीं है चारित्र मोह

अपने महात्माओं में चारित्र मोह है लेकिन चारित्र मोह को चारित्र मोह कब कहा जाएगा? जब खुद उसमें तन्मयाकार रहे तभी चारित्र मोह कहा जाएगा। तन्मयाकार नहीं रहे तो चारित्र मोह नहीं है। खुद तन्मयाकार नहीं रहता इसलिए उसे चारित्र मोह नहीं है। कोई पूछे तब कहना पड़ेगा कि चारित्र मोह है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे खुद को चारित्र मोह नहीं है।

दादाश्री : हाँ, खुद को चारित्र मोह नहीं रहता। कितने ही लोगों को रहता है। जो क्रिया होती है न, उसमें तन्मयाकार स्थिति रहती है। खाना खाता है, तब भी तन्मयाकार स्थिति रहती है।

प्रश्नकर्ता : अभी तक हम ऐसा समझते थे कि जो कुछ हो रहा है, वह सारा चारित्र मोह है। तन्मयाकार रहे या न रहे, सारा डिस्चार्ज चारित्र मोह है।

दादाश्री : हाँ, चारित्र मोह ही है। उसके लिए कौन मना कर रहा है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन तन्मयाकार रहेंगे तभी, आप ऐसा कह रहे हैं।

दादाश्री : यदि तन्मयाकार रहेंगे तो अपना चारित्र मोह है। वर्ना यदि हम तन्मयाकार न हों फिर भी कोई पूछे कि, 'यह क्या है? यह किस प्रकार का मोह है?' तो कहना होगा कि 'चारित्र मोह है'। उसे अच्छी तरह से जवाब तो देना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इन रियलिटी (वास्तव में)?

दादाश्री : यदि वह तन्मयाकार नहीं है तो चारित्र मोह नहीं है।

हम तो किसी-किसी जगह पर ही ज़रा सा तन्मयाकार हो जाते हैं। बाकी, तन्मयाकार नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : आप तो कैसे हो सकते हैं? आपका तो प्योर डिस्चार्ज है।

दादाश्री : फिर भी पूछते हैं न, 'कपड़े क्यों पहनते हैं'? तब हम ऐसा कह देते हैं कि 'चारित्र मोह' है।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

जुदापन द्वारा छूट सकते हैं चारित्र मोह से

दादाश्री : चंदूभाई दर्शन कर रहे हों, तब यदि आप उन्हें 'देखो' तो आप मुक्त हो। चंदूभाई को आप 'देखते' रहोगे तो चारित्र मोह से अलग हो जाओगे और अगर नहीं 'देखा' तो चारित्र मोह रहेगा। अगर नहीं 'देखते' हो तो अभी भी चारित्र मोह है। कभी न कभी तो 'देखकर' छोड़ना ही होगा। देखने से ही सबकुछ छूटेगा। 'देखते हैं' लेकिन इतना एक्ज़ेक्ट नहीं दिखाई देता है उस समय। लेकिन जागृति रहे तो भी बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : 'देखने में' ठीक से नहीं दिखाई देता, वह क्यों?

दादाश्री : जागृति नहीं रहे तो थोड़ा-बहुत चूक जाते हो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब एक्ज़ेक्ट देखते हैं, तब वह कैसा होता है?

दादाश्री : एक्ज़ेक्ट नहीं 'देख' पाते। एक्ज़ेक्ट 'देखना' अर्थात् यों पूरा, इतना सब दिखाई देना चाहिए, उसमें तो बहुत एक्सपीरियन्स की ज़रूरत है। बहुत समय से देखते हुए आया हो, तब जाकर शरीर सहित सबकुछ एक्ज़ेक्ट अलग दिखाई देता है। ये जो आप बातें कर रहे हो न, तो यहाँ तक का सब 'देख' सकता है। सारा, इस तरह ऐसे-ऐसे हाथ करके बात करे तो उसे भी इस तरह से अलग 'देख'

सकता है। जैसे आप किसी दूसरे व्यक्ति को 'देख' सकते हो, उस तरह से चंदूभाई को 'खुद' को अलग देख पाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है। उसे खुद का सब अलग ही दिखाई देता है!

दादाश्री : अलग ही है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह सब नहीं दिखाई देता। इसे दिखाई देता है!

दादाश्री : इतना ही नहीं कि उसे दिखाई नहीं देता, उसने ऐसा सुना भी नहीं है! कभी ऐसा कुछ सुने तो जुदा रहेगा और जुदा रहेगा तो कुछ दिखाई देना शुरू होगा। अगर सिर्फ सुने कि मेरे दादाजी का नाम नगीन भाई था तो उसे प्रेम उत्पन्न होता है। सिर्फ सुनने से ही। देखा नहीं हो फिर भी। इसी प्रकार यह सारा ज्ञान भी सिर्फ सुनने से ही प्रकट हो जाता है। पहले प्रतीति बैठती है, उसके बाद ज़रा-ज़रा सा अनुभव होता है और फिर वैसा होने लगता है। अनुभव हो जाए तो फिर वर्तन में आ ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : मन-वचन और काया में से, मन का जुदापन दिखाई देना आसान है। उसके बाद वाणी का उससे भी मुश्किल और उससे भी मुश्किल है शरीर का, ऐसा है क्या?

दादाश्री : वह तो है ही। मन का तो साधारण अज्ञानी व्यक्ति को भी अलग दिखाई देता है। 'खराब विचार आते हैं', ऐसा कहता है तो यह इटसेल्फ ही सूचित करता है कि वह इस प्रकार मन को अलग देख रहा है।

प्रश्नकर्ता : हाँ। लेकिन वाणी में इतना अलग नहीं रह सकता। उसे पता नहीं रहता उस समय। फिर हम कहते हैं कि बाद में पता चला, ऐसा।

दादाश्री : हाँ। उसका तो बाद में पता चलता है। जब शरीर

दौड़ रहा हो तो तब उसे दौड़ता हुआ देखे, तब सही है। चंदूभाई इन साहब को डाँट रहे हों तो तब फिर आप चंदूभाई को देखते हो। खुद को यह दिखाई देता है कि 'ओहोहो! ये डाँट रहे हैं। क्या देखकर डाँट रहे हैं?' इस प्रकार अलग देखने की बात सुनता है। इन बातों को सुनने से आगे जाकर जागृति आती है। यदि सुना ही नहीं होगा तो जागृति कैसे आएगी?

यदि हम कहें, 'इस खेत में तीन तरफ की ही बाड़ है', तो फिर उसे आँखों में दिखाई देगा कि तीन तरफ की बाड़ वाला खेत है। पहले वह सुनता है। चौथी बाड़ नहीं होती है। तीन ही बाड़ नहीं हो सकतीं? क्या ऐसे खेत नहीं होते?

प्रश्नकर्ता : होते हैं, ट्रायंगल वाले होते हैं!

दादाश्री : त्रिकोण खेत। ऐसा सुनने के बाद में उसे वैसा दिखाई देता है।

यह तो सूक्ष्म, गहरी वैज्ञानिक खोज है। वर्ना इसे अक्रम नहीं कह सकते। अक्रम कहना कोई आसान बात नहीं है। अक्रम अर्थात् पूरा सिद्धांत कहलाता है यह तो और यह वैज्ञानिक है। इसमें किसी एक क्षण भी एक बाल जितनी जगह भी विज्ञान रहित नहीं है। मेरे साथ सिद्धांत देखेगा, तब पता चलेगा!

[6.1]
कर्म बंधन, नया व पुराना

सिद्धांत कर्म बंधन का

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले सभी अच्छे-बुरे कर्म किए हैं तो अब उनका निवारण कैसे लाएँ?

दादाश्री : काफी सारे कर्म तो जब हम ज्ञान देते हैं न, उस समय वे पाप भस्मीभूत कर देते हैं, अंदर भगवान की कृपा से। इसीलिए तो आत्मा हाज़िर रहता है न, वर्ना आत्मा कभी भी हाज़िर ही न रहे। हज़ारों जन्मों तक भटकने पर भी किसी को आत्मा का भान ही नहीं हो सकता न! अर्थात् इसमें तो काफी कुछ पाप जल जाते हैं। अत: अब आपको पिछले कर्मों की चिंता नहीं करनी है। आपके लिए तो मेरी आज्ञा में रहना ही धर्म है।

प्रश्नकर्ता : हमें जब ज्ञान हुआ उससे पहले जो सारे कर्म थे, उनका क्या होगा? वे क्या बाद में अगले जन्म में भोगने बाकी रहेंगे?

दादाश्री : वे जो कर्म थे, वे इसी बार भोग लिए जाएँगे। अगले जन्म के लिए कोई भी कर्म बाकी नहीं बचेगा। जितने नए कर्म बाँधे होंगे, उतने ही अगले जन्म में भोगने हैं और पुराने तो भोग ही लिए जाएँगे।

ज्ञानाग्नि से कर्म भस्मीभूत

प्रश्नकर्ता : दादा ने कहा है कि अभी भी बर्फ जैसे कर्म बाकी बचे हैं।

दादाश्री : तीन प्रकार के डिस्चार्ज होते हैं। एक भाप रूपी होते हैं, दूसरे पानी रूपी होते हैं और तीसरे बर्फ रूपी होते हैं। तो भाप और पानी का हम नाश कर देते हैं। सिर्फ बर्फ का ही हम से नाश नहीं हो सकता। वे भुगतने ही होगें। देखो न, भुगत रहे हैं न? सिर्फ बर्फ ही भुगतते हैं और मस्ती में रहते हैं। विज्ञान समझ गए हो न!

प्रश्नकर्ता : यह तो ठीक है कि आपने हमें शुद्धात्मा की दृष्टि दे दी है लेकिन अब, यह दृष्टि मिलने से पहले हमने जो निकाचित कर्म बाँध लिए हैं, वे तो आएँगे ही, भुगतने ही पड़ेंगे, उनका क्या?

दादाश्री : उनमें से काफी कुछ भाग खत्म कर दिया है। जो भाप और पानी रूपी हैं, जम नहीं गए थे, वे खत्म कर दिए हैं और जितने जम चुके हैं, उतने कर्म भुगतने ही होंगे। जो बर्फ रूपी हैं, वे भुगतने पड़ेंगे। क्योंकि ज्ञानी पुरुष ज्ञानाग्नि से सभी कर्मों का नाश कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये जो निकाचित कर्म भुगतने पड़ते हैं, उनको आत्मा ही भुगतता है न? तब उसका कर्तापन तो आया ही न?

दादाश्री : आत्मा को कुछ भी नहीं भुगतना होता। आत्मा तो परमात्मा है, उसे भुगतना होता होगा? इन्हें तो व्यवहार आत्मा भुगतता है। जिसने सुख भोगा, वही दुःख भुगतता है। और जिसने दुःख भुगते हैं, वही सुख भोगता है। वह व्यवहार आत्मा है और व्यवहार आत्मा में चेतन नहीं है, ऐसा गारन्टी से बताता हूँ। पूरा जगत् चेतन के बिना चल रहा है, लेकिन चेतन की उपस्थिति से चल रहा है।

अपना यह पूरा साइन्स है न, इसलिए काम निकाल लेना। मैं तो इतना ही कहूँगा, 'मैंने काम निकाल लिया है, आप भी काम निकाल लेना।' ये जो अंदर बैठे हैं प्रत्यक्ष, जो माँगोगे, वह दे सकते हैं। इस दुनिया में अध्यात्म से संबंधित कोई भी चीज़ माँगो, वे सारी चीज़ें यहाँ पर कैश बैंक के रूप में नकद दे देंगे।

प्रश्नकर्ता : जैसा ज्ञान आपको सूरत की बैंच पर हुआ था, वैसा चाहिए।

दादाश्री : हाँ, वैसा ही दिया है लेकिन आपके पास यह जो बर्फ बचा है, उसका क्या करें फिर? मुझसे जितना हो सकता था, उतना कर चुका। फिर अब अगर आपके बर्फ के टुकड़े इतने बड़े-बड़े हों तो उसमें मैं क्या करूँ? तेरे टुकड़े छोटे हैं, यह तो संभाले रखता है बर्फ। आइस्क्रीम बनानी होगी तो काम आएगा।

प्रश्नकर्ता : बर्फ जैसे कर्म निकालने का तरीका क्या है?

दादाश्री : उन्हें निकालने की कोशिश क्यों कर रहे हो? उनका निवारण तो अपने आप हो ही रहा है, आपको ज्ञाता-द्रष्टा रहना है।

प्रश्नकर्ता : दादा मिले, उससे पहले के जो बर्फ जैसे कर्म थे, अब वे सामायिक से कम हो जाएँगे न?

दादाश्री : कम हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे बिल्कुल निर्मूल तो नहीं होंगे न?

दादाश्री : नहीं। दिखाई देंगे, घबराहट करवाएँगे और फिर चले जाएँगे और डराएँगे भी सही। बाकी, अपने आप ही पेटी खाली होती जाएगी। पेटी खाली हो जाएगी न, उसके बाद फिर अगर अंदर आप ढूँढोगे तब भी नहीं मिलेंगे। कम नहीं होने लगे हैं क्या? कम होते जाएँगे, जैसे-जैसे टंकी में से खत्म होता जाता है न, वैसे-वैसे।

प्रश्नकर्ता : हम ये जो प्रतिक्रमण करते हैं, प्रायश्चित करते हैं उससे निकाचित कर्मों का *भोगवटा* (सुख या दु:ख का असर, भुगतना) हल्का हो जाएगा क्या?

दादाश्री : हल्का हो जाएगा न! निकाचित कर्म तो, यदि आत्मा का ज्ञान हो तब भी हल्के लगते हैं। इस ज्ञान से सभी कर्म हल्के लगते हैं। एक मन वज़न का कर्म हो तो अज्ञानता से तीन मन का

लगता है और ज्ञान से दस रतल (4.5 किलो) का लगता है, इतना फर्क पड़ जाता है।

उसका टाइम आने पर वह अलग हो ही जाता है। उस कर्म की *निर्जरा* ही होती रहती है। परेशानी जैसा कुछ भी नहीं है। इसमें परभाव होगा तभी कर्म बंधन होगा, चार्ज होगा। और चार्ज होने पर चिंता शुरू हो जाती है। और जब चिंता होती है तो दुनिया में भटकना पड़ता है, संसार सर्जित होता है। इस विज्ञान में परद्रव्य और परभाव हैं ही नहीं। यदि होते तो यह समाधि नहीं दे सकता था। पूरा जगत् परभाव में है न!

प्रश्नकर्ता : मेरी जागृति कम है इसलिए मुझे ऐसा लगता है। इसलिए मैंने पूछा।

दादाश्री : नहीं। जागृति कम नहीं है। ऐसा है न, अनादि से इस मार्ग के अनभ्यासी हो। इसलिए मार्ग पर लाने के बाद भी पूछना ही पड़ता है न, कि यह मुझे क्या हुआ? वास्तव में मुझे बुखार आया है या गर्मी लग गई है? इसलिए फिर हमने कहा कि भाई, बुखार नहीं है गर्मी हो गई है। यानी कि पूछना तो पड़ेगा ही। यह अजागृति नहीं है!

कड़वे फल के समय आनंद आवृत हो जाता है

प्रश्नकर्ता : अंदर कोई प्रोग्रेस होती है तो आनंद बढ़ता है, उसके बाद वापस कम क्यों हो जाता है?

दादाश्री : कम ही हो जाएगा न, लेकिन ये पिछले कर्मों के उदय आते हैं और वे धक्का मारते हैं न! जब वे धक्के लगेंगे तब फिर आनंद नहीं आएगा। पिछले कर्म हैं न! जब फल देते हैं, तब मीठे भी लगते हैं न! अच्छा खाना आए तब मीठा भी लगता है न! उस समय अच्छा लगता है बाद में कड़वा लगता है। कड़वे और मीठे दोनों फल चखने पड़ेंगे। उसके बाद कड़वे-मीठे नहीं चखने होंगे, एक

ही तरह का आनंद। लगातार रहने वाला आनंद आ जाएगा। जब मीठा आए तब भूल जाते हो न, कुछ देर के लिए?

प्रश्नकर्ता : अब तो वही सब ज़्यादा करना पड़ता है जो अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : जो पसंद था, उसे नापसंद किया। अब अच्छा नहीं लगता है, यानी कि उल्टा लगता है। नापसंद तो है लेकिन उसे तो हमने पसंद किया था, उसके बाद फँस गए थे।

[6.2]

आचार सुधारने के लिए

अक्रम अर्थात् आचरण में नहीं

प्रश्नकर्ता : वीतराग विज्ञानी से वीतराग विज्ञान की प्राप्ति के बाद, पूरा समझ में आने के बाद, समझ के ज्ञान में परिणामित होने की कोई समय मर्यादा है क्या?

दादाश्री : समय की मर्यादा तो है न! ज्ञान तो अपने पास हमेशा रहता ही है, उसे प्रगमित होने में टाइम लगता है। जिस प्रकार यह दूध है न, उसमें ज़रा सा दही डालकर अगर तुरंत दही माँगें तो नहीं बनेगा। उसके लिए छः घंटे या आठ घंटे लगते हैं। नहीं लगते? उसी प्रकार से यह समझ ज्ञान में परिणमित होती है पर कुछ समय बाद होता है।

प्रश्नकर्ता : सभी को अलग-अलग तरह से होता है क्या?

दादाश्री : हाँ, हर एक को अलग-अलग तरीके से, जैसे (जिसके) आवरण। किसी को दो घंटे में ही हो जाता है और किसी को दो साल में भी नहीं होता। आवरण पर आधारित है। मोह पर आधारित है।

प्रश्नकर्ता : महात्माओं को यह ज्ञान दिया है तो अब उनके आचरण में इस ज्ञान का कितना प्रकटीकरण होना चाहिए?

दादाश्री : व्यवहार में प्रकट होने में देर लगेगी! क्योंकि आपका

जो आचरण है न, आपका वह आचरण नहीं बदलेगा इसलिए देर लगेगी। हमारे सभी आचरण खत्म हो चुके हैं इसलिए हमें कोई हर्ज नहीं है। आप मेरे जितने ही ज्ञानी हो लेकिन आपका आचरण ठीक नहीं होता है।

प्रश्नकर्ता : तो, आप ज्ञानी हैं, और वे भाई भी ज्ञानी हैं तो उसमें क्या कोई समानता है?

दादाश्री : ज्ञान में अंतर नहीं है, आचरण में अंतर है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या उस चीज़ को आचरण में लाना बहुत कठिन काम है?

दादाश्री : आचरण में लाना ही नहीं है। अक्रम अर्थात् आचरण नहीं। वह अनुभव तो अपने आप आता ही रहेगा। क्योंकि यह जो डिस्चार्ज है न, उसका *निकाल* ही करना है। और कुछ भी नहीं करना है!

हम क्या कहते हैं कि उनके आचरण की तरफ मत देखना। उनकी पज़ल सॉल्व हो चुकी है। मन के विचार, वाणी के उच्चार और देह के आचार वगैरह जो सब हैं, वे सब डिस्चार्ज हैं। डिस्चार्ज को कोई व्यक्ति बदल नहीं सकता और चार्ज अलग चीज़ है। चार्ज को बदला जा सकता है। आचार-विचार और उच्चार नहीं बदले जा सकते। क्योंकि वे डिस्चार्ज हैं। लोग डिस्चार्ज को ही देखते रहते हैं।

नहीं डाँटना पड़ता, विज्ञान है, इसलिए

कितने ही लोगों को यह ज्ञान दिया है। किसी को नहीं डाँटता हूँ। आपके आचार उल्टे दिखाई दें, तब भी मैं नहीं डाँटता। क्योंकि आचार तो ज्ञान होने के बाद में बदलेगा। अभी तो यह सिर्फ समझ में आया है न? समझकर समा लेना है। मेरे पास बैठ-बैठकर समझते रहना है।

दो रास्ते हैं, एक उल्टा और एक सीधा। सीधे रास्ते पर आने

के बाद फिर और क्या हो सकता है? उल्टा कैसे हो सकता है? जब वहाँ पर कोई दूसरा रास्ता है ही नहीं। आप उल्टे रास्ते के विरुद्ध चले हो। पहले जिस रास्ते पर चले थे, वह उल्टा था और आप उसके विरुद्ध चलने लगे हो। अब सीधे रास्ते पर चलने के बाद आप कैसे भटक सकते हो? और शायद अगर अंदर ज़रा खटकेगा तो उस दिन तुरंत सब पूछने आएँगे कि यहाँ पर मुझे क्या हो रहा है?

जबकि वहाँ क्रमिक मार्ग में तो सारे आचार ही देखे जाते हैं। यहाँ पर हमने आचार बंद कर दिए हैं। इसलिए किसी को डाँटते नहीं हैं न! आचार देखकर क्या हम किसी को डाँटते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कभी भी नहीं।

दादाश्री : और वहाँ पर तो आचार के झगड़ों में ही हैं। अंदर खराब विचार आ जाएँ तो उसमें हर्ज नहीं, उसका किसी को पता नहीं चलता है न! वहाँ पर आमने-सामने झगड़े किस चीज़ के हैं? आमने-सामने आचार खराब दिखाई देता है इसलिए। क्योंकि अंदर जो खराब विचार आते हैं, उन्हें तो कोई देख नहीं सकता। हमने अंदर का सुधारा है। बाहर का बंद रखा है और बाहर की वह चीज़ ही अलग है। क्योंकि वह परिणामित हो चुकी चीज़ है। अभी वह कॉज़ेज के रूप में नहीं है। आत्मा का अनुभव होने के बाद में कोई गुनाह लागू ही नहीं होता, ऐसा यह अक्रम विज्ञान है। अत: मुझे किसी को डाँटना ही नहीं पड़ा है अभी तक। नहीं तो हर तीसरे दिन मुझे डाँटना ही पड़ता। दो शिष्य और एक गुरु हों तो शिष्य को डाँटते रहना पड़ता है। आप ऐसा क्यों करते हो और आप वैसा क्यों करते हो? लेकिन यह अक्रम विज्ञान है इसलिए किसी को डाँटना ही नहीं पड़ता।

नहीं है यह आचार संहिता का मार्ग

बाकी, इस तरह आचार सुधरने से क्या भला होगा! यह आचार संहिता का मार्ग ही नहीं है। अपनी खोज बहुत गहरी है। साइन्टिफिक (वैज्ञानिक) खोज है यह। पूरी दुनिया आचार संहिता पर ही चली है।

फिर विचार चाहे कैसे भी आ रहे हों लेकिन आचार संहिता अच्छी होनी चाहिए।

पत्नी और पति दोनों साथ में घूमने निकलते हैं तब पत्नी सोचती है कि इसका कभी खून करवा देना है और वह भी सोचता है कि इसका खून करवा दूँ। उनके साथ में घूमने का आचार तो बहुत अच्छा दिखाई देता है लेकिन उसका क्या करना है? अत: हमने ये सारे आचार हटा दिए हैं। यदि आचार से मोक्षमार्ग ढूँढने निकले होते तो इनमें से एक भी व्यक्ति को मार्ग नहीं मिलता। एक भी आचार बदलेगा नहीं और उसका कुछ भला नहीं होगा। अपने यहाँ आचार को ही हटा दिया।

अक्रम क्यों कहा जाता है? क्योंकि आचार को हटा दिया। पूरी दुनिया के धर्म आचार संहिता पर आधारित हैं और हम उसके विरुद्ध हैं कि मोक्षमार्ग में आचार संहिता की ज़रूरत नहीं है। कितना अच्छा है यह मोक्षमार्ग! बिल्कुल बिना परेशानी वाला। सब तरफ से तालमेल बैठाया जा सकता है। अंधेरे में तालमेल मिलता है। उजाले में तालमेल मिलता है।

प्रश्नकर्ता : हमने इस आचार का पूरा बेस ही खत्म कर दिया है तो क्या इसमें सम्यक् आचार के लिए कोई स्थान है?

दादाश्री : नहीं। जिसमें वह आचार होगा न, तो उसे खुद को फायदा है और जिसके आचार अच्छे नहीं होंगे तो उसे यहीं पर ज़रा दु:ख होगा। प्रॉफिट एन्ड लॉस वह खुद भोग लेगा। और यहाँ पर अच्छे आचार वाले की तारीफ भी होगी कि 'चंदूभाई का स्वभाव अच्छा है' और अगर किसी का खराब हो तो ऐसा कहते हैं कि 'उसका स्वभाव खराब है'। लेकिन मोक्ष के लिए आचार बाधक भी नहीं हैं और उससे कोई फायदा भी नहीं होता।

मोक्ष के लिए आचार की नो वैल्यू, उसकी वैल्यू नहीं रखी। मोक्ष में जाना हो तो आचार की ज़रूरत नहीं है। अब यदि संसार में

सुख चाहिए तो आचार की ज़रूरत है। यदि तुझे मोक्ष में जाना हो तो तू मोक्षमार्ग को समझ ले। हमें तेरा आचार देखने की कोई ज़रूरत नहीं है। और यदि तुझे यहाँ पर भौतिक सुख चाहिए तो आचार के अलावा अन्य कुछ भी नहीं चलेगा। उस आचार से भी फिर सुख नहीं मिलेगा। सभी के आज के जो आचार हैं, ऐसे आचार का फल क्या है? उनके फलस्वरूप सुख नहीं मिलता, दुःख मिलता है। और इस सम्यक् आचार (बाहरी तौर पर जो सम्यक् दिखाई देता है, वैसे आचार) के फलस्वरूप दुःख मिलता है। उसका कारण यह है कि आचार तो है लेकिन मन-वचन-काया की एकता नहीं है। अतः काया का आचार सुंदर है पर मन कहता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए। वे आचार बेकार जाते हैं, और बल्कि नुकसान पहुँचाते हैं।

ये अच्छे आचरण वाले क्या करते हैं? रात ग्यारह बजे मेहमान आते हैं न, तो कहते हैं, 'आइए, पधारिए, पधारिए, पधारिए।' और अंदर क्या चलता है कि 'अरे, अभी कहाँ से आ गए ये?' अब भगवान ने क्या कहा है कि 'यह तेरा नुकसान हो गया। अंदर जो किया न, वह तेरा पुरुषार्थ है।' यह अच्छा आचरण तो डिस्चार्ज है। हाँ, खीर गिर गई और छाछ ली तूने! फिर, दान देकर भी कहता है कि 'मैंने नगीन भाई के दबाव की वजह से दिया है, वर्ना मैं नहीं देता।' बोलो, अब पूरा ही दान गायब हो गया न! यानी इस काल में ऐसा हो गया है।

प्रश्नकर्ता : दादा! तो अक्रम में तो ऐसा हुआ न, कि अंदर की यह सारी परिणति शुद्ध होती जाती है।

दादाश्री : अक्रम में, मूल रूप से अंदर से ही शुरुआत होती है। क्रमिक मार्ग में शुद्धता भी अंदर से नहीं हो सकती, उसका कारण यह है कि कपैसिटी नहीं है, ऐसी मशीनरी नहीं है इसलिए बाहर का तरीका अपनाया है। लेकिन बाहर का वह तरीका अंदर कब पहुँचेगा? जब मन-वचन-काया की एकता होगी, तब अंदर पहुँचेगा और उसके बाद अंदर शुरुआत हो जाएगी। मुख्य रूप से तो मन-वचन-काया की एकता नहीं रही है।

दुनिया ने स्टेप बाइ स्टेप, क्रम पूर्वक करके आगे बढ़ने का मोक्षमार्ग ढूँढ निकाला है। लेकिन वह कब तक सही है? जब तक, जैसा मन में हो, वैसा ही वाणी में बोले और वैसा ही वर्तन में रहे तब तक वह मोक्षमार्ग चलता रहता है। वर्ना वह मार्ग बंद हो जाता है। तो इस काल में मन-वचन-काया की एकता टूट गई है इसलिए क्रमिक मार्ग फ्रेक्चर हो गया है। इसलिए कहता हूँ न, कि क्रमिक मार्ग का बेसमेन्ट सड़ गया है इसलिए यह अक्रम निकला है। यहाँ सब अलाउड है, तू जैसा भी है, वैसा। यहाँ तू मुझसे मिला है न, इसलिए बैठ! अतः हम तो बाहर की दूसरी झंझट ही नहीं करते हैं।

चाहे कितना भी सम्यक् आचार हो, चाहे कैसे भी हों फिर भी अगले जन्म में वह दिवालिया है। क्योंकि मन-वचन-काया की एकता नहीं रह पाती। यदि एकता रहे तो सम्यक् आचार में से अगले जन्म के सम्यक् आचार का बीज डलता है। वहाँ तो एकता नहीं रही इसलिए बल्कि उल्टा बीज डला। अतः मन-वचन-काया की एकता नहीं है। वह तो मैंने साधु-आचार्यों से पूछा, कि 'भाई, एकता है?' तो उन्होंने कहा 'नहीं'। तब मैंने कहा, 'तो फिर छोड़ो और जंगल में जाकर विलाप करो।' और अपना यह मोक्षमार्ग कैसा है! चमक उठे वैसा है!

महात्मा अंदर से सदा संयमी

यदि कोई व्यक्ति आपकी जेब में से पर्स निकाल ले तब आप उसे क्या करोगे? संयम में रहोगे या असंयमी हो जाओगे?

प्रश्नकर्ता : अब तो संयम में ही रहेंगे।

दादाश्री : तुरंत ही संयमधारी हो जाओगे। ये सब संयम में रहते हैं। इतने सारे लोग! यह आश्चर्य कहा जाएगा न? और इस दुनिया के सारे लोग आचार में असंयमी हैं।

यह ज्ञान लेने के बाद अंदर संयम रहता है! मेरी खोज है कि यह दुनिया आचार को मान्य करती है और मैं आचार को मान्य नहीं

करता। आचार तो परिणाम है और संयम या असंयम, वे कॉज़ेज हैं, नई परीक्षा है। तो फिर परीक्षा पर ध्यान देना चाहिए या परिणाम पर ध्यान देना चाहिए? लेकिन अभी परीक्षा में उल्टा चल रहा है। पहले जो परीक्षा दी थी, यह उसका परिणाम आया है। लेकिन अभी तो परीक्षा उल्टी दे रहा है न? तो आप पहले की परीक्षा में फेल हो गए, लेकिन अब नई परीक्षा में संयम है न? अतः हम आचार नहीं देखते हैं। किसी के अच्छे हों तो उसमें हमें हर्ज भी नहीं है और अच्छे न हों तो भी हर्ज नहीं है।

यह दुनिया क्या कहती है? फेल क्यों हुआ? पास हो जा। परीक्षा दिए बगैर कैसे हो पाएगा? फिर से परीक्षा दूँगा तब पास हो सकूँगा। परीक्षा देने के कितने ही साल बीत जाने के बाद में परिणाम आता है, आचार सुधरता है। जबकि वह कहता है कि, 'मैं आचार सुधारने जाता हूँ लेकिन सुधरता नहीं है।' सुधारवाने वाले और सुधरने वाले दोनों पागल हो जाओगे। यह नासमझी की बात है, किसी जगह पर कोई सुधरा हो, ऐसा ढूँढ लाओ।

नहीं बदलेंगे आचार, बदल सकते हैं भाव

पूरी दुनिया 'द्रव्य' बदलने की कोशिश कर रही है। द्रव्य बदलना अर्थात् आचार बदलना चाहती है। देह के आचार, मन के आचार, वाणी के आचार बदलना चाहती है। द्रव्य नहीं बदल सकता इसलिए भाव बदल दो। 'दादा' से ज्ञान लेकर भाव बदल दो। तो पूरी ही दुनिया छूट जाएगी! पूरी दुनिया द्रव्य बदलने जाती है, जो सत्ता खुद के हाथ में नहीं है, उसे बदलने जाती है और जो उनकी सत्ता में है, उसे नहीं बदलते।

यह ज्ञान मिलने के बाद सारे भाव बदल जाते हैं। आचार, विचार और उच्चार, वे द्रव्य कहे जाते हैं। द्रव्य नहीं बदलेंगे। लेकिन यदि भाव बदल जाए तो फिर समय आने पर द्रव्य तो विलय हो जाएगा। यदि हम घर पर सौ मन बर्फ का ढेर लाकर रखें तब भी समय आने

पर वह खत्म हो ही जाएगा न! चाहे उस तरफ देखो या न देखो फिर भी खत्म होगा ही न! और यदि संभाल-संभाल कर रखने लगेंगे तो? तो भी संभाल नहीं पाओगे और मेहनत बेकार जाएगी। इसलिए बदल जाओ, इस तरह एबाउट टर्न, पीठ पलटकर। ज्ञान मिलने के बाद पीठ फेरी जा सकती है, वर्ना नहीं फेरी जा सकती।

इसीलिए, शास्त्र सीखने की ज़रूरत नहीं है, 'दादा' को सीखने की ज़रूरत है। दादा को ही देखते रहना है। देखने से एक ही जन्म में सारा द्रव्य परिवर्तित हो जाएगा। सिर्फ देखने से ही ऐसे भाव हो जाएँगे कि ऐसी वाणी, ऐसा वर्तन, ऐसा मन! तो अपने भाव भी वैसे ही हो जाएँगे! और यह सब तो पिघल ही जाना है। पीठ फेरकर बैठे हैं तो पिघल ही जाएगा। लेकिन अब नया बर्फ कौन सा खरीदना है? यह जो दादा की आज्ञा का पालन करते हो न, तो एक जन्म के लिए जो बर्फ की ज़रूरत पड़ेगी, वह तैयार हो जाएगा। यह पिछला एक-दो जन्मों में छूट जाएगा लेकिन नया बर्फ बिल्कुल साफ ही मिलेगा।

अक्रम में उड़ा दिया बाह्याचार

यह क्रमिक मार्ग क्या कहता है कि पहले बाह्याचार बदलेंगे उसके बाद भाव बदलेंगे तभी मुक्त हो सकेंगे, ऐसा है। आप घर पर रहकर कब सर्वांश हो सकोगे और कब आपके बाह्याचार बदलेंगे? ऐसे में बाह्याचार कैसे बदला जा सकता है? अत: यह मार्ग बिल्कुल अक्रम है और साइन्टिफिक (वैज्ञानिक) है और ऐसा है कि कम मेहनत में काम हो जाता है। बाह्याचार हमने अपने ज्ञान में देखा है कि वह तो न्यूट्रल चीज़ है। उसे हमारे ज्ञान में देखने के बाद यह मार्ग दिया है और भगवान की आज्ञा लेकर यह दिया है। अत: बाह्याचार उड़ा दिया है हमने। अंतराचार शुरू हो जाता है, जो अपने आप ही फैलते-फैलते बाहर आ जाएगा। जबकि क्रमिक मार्ग में बाहर से अंदर जाना है और इस अक्रम मार्ग में अंदर से साफ होते-होते बाहर आना है। अत: बाह्याचार को नहीं देखना है। बाह्याचार नहीं बदलेगा। क्योंकि वह प्राकृतिक गुण है न!

यह तो विज्ञान है। बाकी, क्रमिक मार्ग का ज्ञान जो है न, उसमें तो आचार देखने के सिवा आगे और कोई बात बढ़ती ही नहीं है जबकि अपने यहाँ आचार नहीं देखते हैं। क्या आपको ऐसा लगता है? अभी चाहे किसी भी व्यक्ति का कैसा भी आचार हो लेकिन मैं उसे डाँटता नहीं हूँ। जबकि वहाँ तो तेल निकाल देते हैं। क्रमिक मार्ग के गुरु तो कहेंगे, 'बीड़ियाँ क्यों पीते हो? बीड़ी छोड़ दो!'

अपने विज्ञान में यह ज्ञान देते समय अच्छी आदतों और बुरी आदतों को, दोनों को एक तरफ बैठा देते हैं। हम अच्छी आदतों के ग्राहक नहीं हैं और बुरी आदतों के त्यागी नहीं हैं। अपने यहाँ पुण्याचार और पापाचार दोनों को एक तरफ बैठा देते हैं। हम पुण्य के ग्राहक भी नहीं है और पाप के त्यागी भी नहीं है। यानी कि इस एक जन्म के उदय को कोई भी नहीं बदल सकता। जन्म से जो उदय है, तब से लेकर मृत्यु तक के उदय को कोई नहीं बदल सकता।

आचार, विचार और उच्चार, नहीं हैं आत्मा के

आचार दो प्रकार के हैं, एक दुराचार और दूसरा सदाचार। और उसमें भी आत्मा में तो आचार है ही नहीं। जो चलता-फिरता है, उसमें आचार होता है। आत्मा ऐसा नहीं है कि जो चले-फिरे। आचार, विचार और उच्चार, इन तीनों में ही आत्मा नहीं है।

उच्चार किसका है? टेपरिकॉर्डर का। और विचार किसके हैं? मन के। आचार काया के हैं, उससे आत्मा को क्या लेना-देना? आत्मा अलग है, ये सब अलग हैं। ये आचार तो काया का धर्म है। यदि कोई कहे कि 'मैं सदाचारी इंसान हूँ, कई सालों से सदाचार का पालन करता आया हूँ।' तो कहते हैं कि 'सदाचारी इंसान बन न, कौन मना करता है? यदि सदाचारी बना है तो वह *पुद्गल* ही सदाचारी बना है न?' *पुद्गल* सदाचारी है लेकिन क्या आत्मा सदाचारी हो सकता है? वह आत्मा तो परमात्मा है।

अपना विज्ञान ऐसा है न, कि इन तीनों को अलग रख दिया है

एक तरफ, डिस्चार्ज के रूप में। जैसा इन दस लाख सालों में नहीं हुआ, ऐसा यह कुछ नया हुआ है! वर्ना इस तरफ से जाएँगे तो कब अंत आएगा? 'आचार सुधारते-सुधारते, वाणी सुधारते-सुधारते, मन सुधारते-सुधारते कब अंत आएगा', ऐसा लगता था उसमें (क्रमिक मार्ग में)? इन लोगों की किसी चीज़ का अंत आ सकता है क्या? बल्कि उलझन में और अधिक गहराई में उतरते जाएँगे, कीचड़ में। अतः मुझे बचपन से ही ऐसा लगता था कि क्रमिक मार्ग से पूरा नहीं हो पाएगा।

यह पहाड़ी इधर से दिखाई देती है। जबकि यहाँ से सवा करोड़ मील चलना पड़ेगा। अरे भाई, यह तो यहीं दिखाई दे रहा है। तब कहते हैं 'बीच में ब्रिज नहीं बनाया।' यह ब्रिज बना दिया है हमने एकदम से और कहा कि 'इधर से होकर जाओ'। वे साधु उस तरफ से घूमकर ऐसे साठ लाख मील तक चले हैं न, और वह तो करोड़ों मील दूर है। अब साठ लाख मील वापस आना अच्छा नहीं लगता है उन्हें। और हम तो गए ही नहीं थे न? उसका क्या करना है? अनंत जन्मों से तपते रहे हो, कितनी तपन! ठंडक हो गई है सभी को! ये सभी आए हैं तो इन सभी को ठंडक बरतती है न?

प्रश्नकर्ता : सभी को ठंडक।

दादाश्री : हाँ! मार्ग है स्वर्णिम!

मोक्ष का मार्ग अंतर्मुखी

इन भाई ने पहले क्रिया बदलने की बहुत ही कोशिश की, प्रयत्न करके! संत कहते हैं कि 'इस तरह क्रिया बदलो, यह क्रिया बदलो।' अरे भाई, आज की क्रिया तो प्रतिक्रिया है। प्रतिक्रिया बदली जा सकती है क्या? इफेक्ट है। उसके कॉज़ बंद करवाओ न! इन सभी से पूछा कि 'भाई, विषय के बारे में आपका जो अभिप्राय था, क्या वह बदल गया?' तो कहते हैं 'हाँ, संपूर्ण, सौ प्रतिशत।' तो प्रतिक्रिया से हमारा लेना-देना नहीं है। अब, यह मार्ग अंतर्मुखी है, पूरी दुनिया बाह्यमुख में है, एक घंटे के लिए भी दोनों का मेल कैसे हो सकता है? आपकी

प्रतिक्रिया देखकर वह चिढ़ता रहता है। 'क्या देखकर दादा के पास जाता है? कुछ सुधरता तो है नहीं, वैसे का वैसा ही है' कहते हैं।

मत ढूँढो आचार अक्रम में

यह शरीर इतना अधिक स्थूल है न, कि इस स्थूल में कुछ बदल नहीं सकता। जिस तरह का अंदर तैयार लेकर आए हो उसी अनुसार सारा आचार निकलेगा और इसीलिए जब आचार ढूँढने जाते हैं कि इन अक्रम विज्ञानी के महात्माओं के आचार तो देखो, तो वहाँ पर आचार देखने में मज़ा नहीं आता। क्योंकि आचार नहीं बदल सकता। बाकी सब बदल जाएगा। आंतरिक बदलेगा, बाहर का नहीं बदलेगा। आंतरिक बदलने से मोक्ष है। बाहर का बदलने से मोक्ष हो भी सकता है और न भी हो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब आंतरिक बदलता है तो क्या उसके परिणाम स्वरूप बाहर का नहीं बदलेगा?

दादाश्री : बाहर का अगले जन्म में बदलेगा। अभी यह डिस्चार्ज है, यह सारा तो पिछले जन्म का है। यह तो न भी बदले। हमारे सामने यदि आप बच्ची को डाँट रहे हों, गुस्सा होकर तो हम आपका दोष नहीं देखेंगे कि यह आपका दोष है। हम जानते हैं कि ऐसा माल भरा है, वही निकल रहा है। ऐसा समझते हैं।

कोई तेज़ी से चले या धीरे चले, उसमें कोई बदलाव नहीं आएगा। भरा हुआ माल है! अब कमाई नहीं है, सिर्फ खर्च ही बचा है। अत: यदि किसी का वह खर्च कम हो जाए तो फिर उसका सब खत्म हो जाएगा। नई कमाई नहीं है इसलिए खत्म होकर वापस नई ही तरह का बनेगा। आपका यह खर्च कितने समय तक रहेगा? वह कुछ काल तक ही रहेगा। फिर सारा ही खत्म हो जाएगा। पहले आपकी कमाई और खर्च दोनों चल रहे थे इसलिए सब मिला-जुला बाहर निकलता था। अब यह चार्ज वाला भाग पूरा चला गया है और बचा है सिर्फ डिस्चार्ज, वह सारा डिस्चार्ज चला जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हमने आपसे ज्ञान लिया है और इस सत्संग में आते हुए एक साल हो गया, इससे बाहरी वर्तन में भी बदलाव दिखाई देता है। भाषा कठोर थी, उसके बजाय नरम होती जा रही है।

दादाश्री : अब, जैसे-जैसे भरा हुआ माल कम होता जाता है वैसे-वैसे बदलाव दिखाई देता है। लोग जैसा ढूँढते हैं, वैसा एकदम से नहीं मिलेगा। और आपको खुद को पता चलता है कि कम होता जा रहा है। लोगों को तो चंदूभाई वैसे के वैसे ही दिखाई देंगे। इन सब को कब दिखाई देगा? जब यह सारा ही खाली हो जाएगा, तब फिर उसके बाद मन में लगेगा कि ये चंदूभाई पहले जैसे थे, अब वैसे नहीं हैं।

जिस भाव से कर्म बंधन, उसी भाव से निर्जरा

ऐसा है न, कि *पुद्गल* में जो आचरण भरा हुआ है वही निकलेगा। *पुद्गल* का अर्थ क्या है? *पूरण* (चार्ज होना, भरना) किया हुआ। पूर और गल। इन दो शब्दों से *पुद्गल* बना है। तो पूर अर्थात् *पूरण* किया हुआ माल। आपने पिछले जन्म में जो *पूरण* किया है, उसका इस जन्म में *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना) हो रहा है। अब बोलो, जो *गलन* हो रहा है, उसमें यदि आप राग-द्वेष करो तो उसका क्या अर्थ है? भरते समय देखने की ज़रूरत थी। अभी निकलते समय क्या है? उसका उपाय ही नहीं है न, वह तो होता ही रहेगा। उसे देखते रहना है, ज्ञाता-द्रष्टा ही रहना है, जो हुआ सो। क्योंकि *पूरण* करते समय देखना होता है। तो उस समय तो ज्ञानी पुरुष मिले नहीं थे इसलिए जो चाहा बाज़ार में से वह खरीद लिया। जिस भाव से बंध हुआ है, उसी भाव से *निर्जरा* होगी। *निर्जरा* में कोई बदलाव नहीं होगा।

'अब कोई हर्ज नहीं है', ऐसा नहीं कह सकते

कई लोगों के आचार अच्छे होते हैं लेकिन अंदर बहुत ही खराब रहता है और अपने महात्माओं के आचार भले ही खराब हों फिर भी अंदर से कितने समझदार हैं!

प्रश्नकर्ता : यह बात सैद्धांतिक है लेकिन कितनी ही बार हम से क्या होता है कि दादा का यह वचन है न, तो एकांतिक रूप से इस वचन को पकड़ लेते हैं कि हमारे आचार-वाचार का कुछ भी नहीं, अब तो सारा अंदर का ही देखो।

दादाश्री : वे पकड़ लेते हैं, बस। ऐसा पकड़ने की ज़रूरत नहीं है। आपको समझने की ज़रूरत है कि यदि ऐसा हो जाए तो भय नहीं रखना चाहिए। लेकिन अगर ऐसा पकड़ लोगे तो आपका कच्चा रह जाएगा।

प्रश्नकर्ता : पकड़ लेते हैं और उसका बचाव करने बैठ जाते हैं।

दादाश्री : नहीं, बचाव करने नहीं बैठना चाहिए। जिस प्रकार से आपका निश्चय तो हमेशा दृढ़ ही रहता है न, कि कभी भी कुएँ में नहीं गिरना है! यहाँ पर अगर सौ-दो सौ कुएँ हों और आपको उनके बीच में से रास्ते पर से आना-जाना हो, फिर भी अँधेरे में गिर नहीं जाते क्योंकि आपका निश्चय है कि चाहे कुछ भी हो लेकिन मुझे कुएँ में नहीं गिरना है। इसलिए नहीं गिरते हो। लेकिन यदि आप कुएँ का बचाव करने लगोगे तो गिर जाओगे। निश्चय तो होना चाहिए न आपका! यह तो मैं किसलिए बता रहा हूँ? आपको पकड़े रखने के लिए नहीं, आपको भय रहित बनाने के लिए बता रहा हूँ। आपके ये बाह्याचार ऐसे हैं, टेढ़े हैं, उन्हें लेकर परेशान मत होना। आपको उसका ऐसा अर्थ समझने की ज़रूरत नहीं है। आपको तो ऐसा ही रखना है कि ऐसा होना ही नहीं चाहिए, बस। फिर जो हुआ, उसे 'लेट गो' करते हैं। हमने क्या बताया? व्यवस्थित किसे कहते हैं कि भाई, खुली आँखों से गाड़ी चलाओ और सावधानीपूर्वक चलाओ और फिर यदि टकरा जाए तो वह व्यवस्थित है। फिर अगर आपसे गुनाह हो जाए तो हर्ज नहीं है, वह व्यवस्थित है लेकिन यह सावधानीपूर्वक होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, आप हमें निर्भय बनाने के लिए ऐसा कहते हैं लेकिन साथ ही, अभी भी मेरा आचरण ऐसा है, तो उसे देखकर मुझे क्या ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि यह मैंने कैसा माल भरा है?

दादाश्री : वह तो सोचना ही चाहिए कि, 'अरे! मैंने ऐसा माल भरा है!' लेकिन ऐसा तो सब के साथ होता है। सभी थक जाते हैं, परेशान हो जाते हैं और सभी को अच्छा नहीं लगता लेकिन फिर क्या हो सकता है? अन्य कोई उपाय ही नहीं है न!

यानी आपको तो सिर्फ यह नहीं कहना चाहिए कि 'अब मुझे कोई हर्ज नहीं है'। आपको ऐसा गैरज़िम्मेदाराना नहीं बोलना चाहिए। हम इतना कहना चाहते हैं। बाकी हमने जो दिया है वह तो यही समझकर दिया है कि अब आपको कुछ भी नहीं हो सकता। अगर आप गैरज़िम्मेदाराना नहीं बोलोगे तो!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आपका यह ज्ञान मिला, सब हुआ, अब यदि मैं ऐसा कहूँ कि, 'अब मुझे वकालत करने में कोई हर्ज नहीं है', तो फिर?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहिए। आप वकालत करो, जितने समय तक करनी हो उतने समय तक, लेकिन 'इसमें हर्ज नहीं है' ऐसा बोले तो वह उस नियम को तोड़ देता है। नया जोखिम उत्पन्न मत करो। जोखिम उत्पन्न करने का मतलब है कि दो पटरियों के बीच में से फिश प्लेट निकाल देना, उससे गाड़ी डीरेल हो (पटरी से उतर) जाएगी। ऐसा नहीं कहना चाहिए। ऐसा क्यों कहें? इसीलिए हमने तो कहा है कि ''गैरज़िम्मेदाराना मत बोलना कि, 'मुझे अब कुछ भी बाधक नहीं है।'' अब ऐसा मत बोलना। क्योंकि लोग किसी को पावर दिखाने के लिए ऐसा कहते हैं कि 'अब हम पर दादा के आशीर्वाद हैं, हमें कुछ नहीं हो सकता।' तो वह पावर बाधा डालेगा, ऐसा नहीं बोलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : आपने तो इतना अधिक सरल-सुगम मार्ग बता दिया है लेकिन फिर यदि सतत जागृति नहीं रखेंगे और यदि पाँच आज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो दादा ने जो ज्ञान दिया है वह शस्त्र के रूप में परिणमित होगा।

दादाश्री : तो फिर भटक जाएगा। फिर भी बिगड़ा हुआ घी दीये में काम आए बगैर तो रहेगा नहीं, कई जन्म कम हो जाएँगे। लेकिन आप जैसा चाहते हो, उस स्थान पर जल्दी नहीं पहुँच सकोगे, अगर पाँच आज्ञाएँ बंद हो गईं, तो। यह पूरा ही काल कुसंग वाला काल है। घर में कुसंग, ऑफिस में कुसंग, व्यापार में कुसंग, जहाँ देखो वहाँ पर कुसंग, कुसंग और कुसंग! आजकल बाहर जो सत्संग चल रहे हैं, वे भी कुसंग ही हैं। यदि आप यहाँ से दूसरी जगह जाओगे न, तो वह आपके लिए कुसंग है। अब ऐसे काल में यदि ये पाँच आज्ञा नहीं होंगी तो कोई भी कुसंग उसे खा जाएगा। अत: जो पाँच आज्ञा पालन करेगा, उस पर कुसंग का असर नहीं होगा। वर्ना यहाँ पर पड़े रहो। अगर पाँच आज्ञा का पालन नहीं करना हो तो मेरे पास पड़े रहो। फिर इस कुसंग का असर नहीं होगा।

फिर भी जब से यह ज्ञान लेता है, तब से अंदर उसे पॉज़िटिव भाव तो हो ही जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : हो ही जाते हैं। ठीक है, दादा। आपने कहा है कि पॉज़िटिव हो गए तो फिर संयोग मिल जाएँगे।

दादाश्री : इंसान में जो नेगेटिव होता है, वह उसे उलझन में डाल देता है। इसलिए पॉज़िटिव ही रहो। इस जगत् में जब तक इंसान भय से काँपता है तब तक किसी भी प्रकार का धर्म प्राप्त नहीं कर सकता। हमने ऐसा कहकर कि 'आपका कोई बाप भी *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं है' चारों तरफ से आपके भय और घबराहट निकाल दिए हैं और अगर आपको अन्य कोई भय लगता हो तो वह भी निकाल देंगे। उसका यदि नेगेटिव अर्थ निकालोगे तो खराब होगा, हम ऐसी छूट नहीं देना चाहते हैं!

प्रश्नकर्ता : दादा, हमारे विकास में कौन-कौन से भयस्थान हैं, वह भी हम आपसे पूछ लेते हैं। क्योंकि फिर आपके किसी वाक्य को हम एकांतिक रूप से समझने के बजाय यहाँ पर पूछ लें तो क्या हर्ज है?

दादाश्री : किसी वाक्य को एकांतिक रूप से फॉलो करने से बहुत मुश्किल हो जाएगी। मुझसे पूछ लोगे न, तो कोई परेशानी नहीं आएगी और ऐसा कहने में बहुत बड़ा जोखिम है कि 'मुझे अब कुछ बाधक नहीं है'। हमने बताया है न, कि 'विषय विष नहीं है, विषयों में निडरता ही विष है।' इसलिए फिर कोई मुझे कहे कि 'मुझे अब कुछ नहीं हो सकता क्योंकि अब मैं दादा का हो गया हूँ', तो वह निडरता है और वही विष है। लापरवाह हुआ कि खत्म। ऐसी स्थिति होनी ही नहीं चाहिए। न तो आप आत्मा में हो, न ही फाइल में, ऐसी लापरवाही? 'मुझे कुछ भी बाधक नहीं है' ऐसा यह कहाँ से आया?

प्रश्नकर्ता : सही है। वे आत्मा में भी नहीं हैं और फाइल में भी नहीं।

दादाश्री : इनमें से दोनों ही जगह पर नहीं है और यह नया कहाँ से आया? अत: वह जोखिम भरा है इसलिए हम कहते हैं न, कि 'भाई, हम आपका भय निकालने के लिए ऐसा कहते हैं कि, 'विषय विष नहीं है लेकिन विषयों में निडरता विष है।'

क्योंकि यह सब मैं ज्ञान में देखकर बताता हूँ कि ये आचार में जोखिम नहीं हैं। वर्ना कौन इतना जोखिम उठाएगा? यह तो बहुत बड़ा जोखिम है। और तभी तो आप इतने निवृत्त हो जाते हो और तभी तो आप इस भय से छूट सकते हो। भय से छूट जाते हो और दूसरा आपकी शंका-कुशंका वगैरह जो वहम थे, वे सब खत्म हो जाते हैं। 'ऐसा हो जाएगा या वैसा हो जाएगा', वैसा कुछ भी नहीं होगा भाई। तुझे कुछ भी नहीं होगा, 'मैं हूँ और तू है', कहना!

इसमें आपका इतना ही अभिप्राय रहना चाहिए कि 'यह मुझे नहीं चाहिए या फिर यह गलत है।' 'यह भी अच्छा है और वह भी अच्छा है', यदि ये दोनों ही अभिप्राय रहेंगे तो बिगड़ जाएगा। दूध और दही दोनों साथ नहीं रह सकते। अत: क्रिया से हमें कोई आपत्ति नहीं है। हमें तो ऐसा है कि आपकी प्रतीति नहीं बदलनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यदि प्रतीति नहीं बदलेगी तो जो चीज़ रहेगी, वह डिस्चार्ज फॉर्म में रहेगी। ठीक है?

दादाश्री : प्रतीति नहीं बदले तो बस, हो गया। तब फिर आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है। फिर ज़िम्मेदारी हमारी है। यह भी अच्छा और वह भी अच्छा, दोनों को अच्छा कहेंगे तो ज़िम्मेदारी आपकी। 'ऐसा नहीं होना चाहिए', फिर भी यदि होता रहता है तो वह आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है। लेकिन जब तक फाइल है तब तक होता रहेगा। एक दिन उसका हिसाब पूरा होते ही अलग। वह भी अलग और यह भी अलग!

[6.3]

पहले श्रद्धा या पहले वर्तन?

नहीं निकालनी चाहिए भूल वर्तन की

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद अभी भी ऐसा लगता रहता है कि इतना सब हमारे वर्तन में तो नहीं आता, क्रोध हो जाता है। हमें जिस आदर्श तरीके से रहना चाहिए, उस तरह से नहीं रह पाते हैं। तो अभी भी यह चारित्र मोह क्यों नहीं जाता?

दादाश्री : वर्तन की भूल नहीं निकालेगा तो चारित्र मोह जाएगा और वर्तन की भूल निकालेगा तो चारित्र मोह नहीं जाएगा। वर्तन की भूल बिल्कुल भी नहीं निकालनी है। जो भी वर्तन हो रहा है, उसे देखते रहना है। वर्तन की भूल निकालना अर्थात् ऐसा कहा जाएगा, खुद जैसा था वैसा ही देहाध्यास उत्पन्न हो गया। खुद वापस उसी स्वरूप हो गया! अरे, अज्ञानी था तब वर्तन की भूल निकालता था। अब ज्ञान होने के बाद भी वर्तन की भूल निकाल रहा है? वर्तन जैसा भी हो, उस वर्तन में बिल्कुल भी भूल नहीं निकालनी है। अब उसे देखते ही रहना है। आप ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाव में आ गए हो। पहले कर्ता स्वभाव में थे। अभी भी वह पुरानी आदत जाती नहीं है।

श्रद्धा - अनुभव - वर्तन

एक व्यक्ति यह जानता है कि अब्रह्मचर्य करना गलत है। निरंतर

ब्रह्मचर्य पालन करने की ही श्रद्धा है। उसके बाद वैसा अनुभव भी होता है लेकिन वर्तन में शायद न भी हो।

प्रश्नकर्ता : यानी कि श्रद्धा अनुभव तक पहुँचती है?

दादाश्री : श्रद्धा में आ गया। अब उस श्रद्धा में आई हुई चीज़ का धीरे-धीरे अनुभव होता जाता है। जब अनुभव संपूर्ण हो जाता है, तब वर्तन में जाता है। वह शायद वर्तन में न भी हो। लेकिन इस वजह से हमें उसका वर्तन नहीं देखना है। श्रद्धा क्या है, यह देखना है। क्योंकि तीनों एट ए टाइम नहीं रह सकते।

प्रश्नकर्ता : एक-एक, स्टेप बाइ स्टेप है।

दादाश्री : हाँ, इसलिए हम यह जोखिमदारी उठाते हैं न! हम यह जानते हैं कि जब हम यह श्रद्धा बदल देंगे, उसके बाद कोई परेशानी नहीं होगी। बाकी, भले ही लोग शिकायत करें। यानी कि हम वह श्रद्धा बदल देते हैं। उसके चक्कर ठीक करके दूर हो जाते हैं जबकि लोग वर्तन बदलने जाते हैं। वह उसका रास्ता ही नहीं है। वर्तन कब बदलता है? बिलीफ बदलने के कितने ही जन्मों के बाद में फिर ज्ञान बदलता है, उसके बाद वर्तन बदलता है।

अब, यदि सभी के अपलक्षण दिखाई देते हैं तो क्या उसके लिए मुझे उन्हें डाँटना चाहिए? नहीं। उनके लिए विधि कर देते हैं। वर्तन नहीं देखते हैं, मैं जानता हूँ कि अंदर उसकी श्रद्धा में क्या है। बोलो, अब वर्तन को लेकर डाँटना चाहिए क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं डाँटना चाहिए।

दादाश्री : उसकी श्रद्धा बदली है या नहीं, सिर्फ इतना ही देखना है। बाहर कोई भी ऐसा विज्ञान नहीं बताएगा। बाहर तो वर्तन ढूँढेंगे, बेटे को ढूँढेंगे। अरे भाई। लेकिन माँ-बाप के बिना बेटा कैसे पैदा हो गया? तब कहते हैं 'नहीं! बेटा होगा, तभी माँ-बाप आएँगे।' क्या ऐसा हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं हो सकता, लेकिन मानते हैं न!

दादाश्री : ऐसी पागलों जैसी बात करते हैं लोग। तेरा वर्तन नहीं बदला है लेकिन अंदर श्रद्धा बदल गई है या नहीं बदली?

प्रश्नकर्ता : बदल गई है।

दादाश्री : तो क्या ज्ञान में थोड़ा-बहुत बदलाव आया है या नहीं? ऐसे तो अनुभव हुआ है कि यह गलत ही है इसके बावजूद भी वह कार्य होता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

अंत में बन जाओगे ज्ञानी!

दादाश्री : आप सिर्फ जानने वाले हो। बेकार ही हाय-हाय करनी! और अगर हाय-हाय हो रही है तब भी चंदूभाई को हो रही है, आपको क्या? अब जैसे-जैसे यह ज्ञान परिणामित होगा न, वैसे-वैसे वह सब भी खत्म हो जाएगा। चंदूभाई खुद ही ज्ञानी बन जाएँगे। परिणामित होना चाहिए। जबकि लोग कहते हैं कि अमल में नहीं आ रहा है। अरे, अमल में लाना ही नहीं है। यह ज्ञान अमल वाला नहीं है। क्योंकि आपको इसकी सिर्फ प्रतीति ही करवाने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद प्रतीति काम करेगी।

दादाश्री : यह जो टेम्परेरी है उसकी प्रतीति बैठ गई है। वह प्रतीति का फल क्या आएगा? रोज़-रोज़ अनुभव होता जाएगा कि यह टेम्परेरी है, टेम्परेरी ही है। और फिर उसके वर्तन में आ जाएगा कि यह टेम्परेरी है, फिर उसे स्पर्श नहीं करेगा।

हम आत्मपक्षीय हैं। संसारपक्ष नहीं छूटता है। श्रद्धा बैठ गई है कि यह गलत है। उसके बाद वर्तन में आते हुए, वह अपना टाइम लेगा। तब तक बुद्धि काम करती रहेगी। खुद को ऐसा पता चलता है कि यह दखल कर रही है। क्योंकि श्रद्धा हो चुकी है। अतः खुद जानता है कि यह गलत है, छूटना है। फिर भी छुटकारा नहीं हो पाता न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर वह वर्तन में कब आएगा?

दादाश्री : पहले श्रद्धा में आ जाता है, वह समझ में आ जाता है, श्रद्धा उत्पन्न हो गई। 'दादा ने जो बताया, वह समझ मुझे फिट हो गई है। आत्मा, आत्मा बन गया और बाकी का भाग, अलग रह गया। अलग हो गया।' वह समझ में आ जाए, उसके बाद धीरे-धीरे वह ज्ञान में आता है अर्थात् अनुभव में आता है और अनुभव में आने के बाद में फिर वर्तन में आता है।

प्रश्नकर्ता : वह, जो समझ में आने के बाद वर्तन में आता है तो इन दोनों के बीच में जो टाइम है, उस समय जो भी क्रिया होती है, वह चार्ज है या डिस्चार्ज?

दादाश्री : नहीं, चार्ज नहीं है। जब तक वह डिस्चार्ज नहीं हो जाता तब तक का टाइम लगेगा। क्योंकि अगर हल्का होगा तो खत्म हो जाएगा एक ही जन्म में, और बहुत गाढ़ होगा तो देर लगेगी। लेकिन अनुभव हो जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण से वह गांठ खत्म हो जाती है न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण से गांठ पतली हो जाती है। लेकिन अनुभव हो जाना चाहिए।

संसार में एक अणु जितना भी सुख नहीं लगना चाहिए, तब कहा जाएगा कि अनुभव हो गया। वर्तन में, अभी रात को सो जाए और अच्छी नींद आ जाए तो कहेगा, 'अरे वाह, अच्छी नींद आई।' फिर भी उसे सुख किसमें महसूस हुआ? कहेगा, 'नींद में से।' वह आत्मा का सुख नहीं है। तो अब प्रतीति से संसार का वह सुख तो खत्म हो गया। इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद, आत्मा मिलने के बाद, सब खत्म ही होने लगता है, वह क्या धंधा है? जाने ही लगता है। वर्ना लाख जन्मों में भी नहीं जाए। एक बार हटा देने के बाद वापस चिपक जाता है।

कम होता जाता है मोह

अत: यह समझ में आया है। समझ अर्थात् प्रतीति हुई कि, 'सोने में सुख नहीं है', लेकिन अभी भी वर्तन में तो सुख लगता है। 'सोने में सुख नहीं है', यह आपको समझ में आ गया है क्योंकि आत्मा अलग हो गया है लेकिन वह ज्ञान में नहीं आया है। ज्ञान अर्थात् अनुभव नहीं हुआ है। वह तो, जब सोना पहना हुआ हो तब अगर कोई मारकर ले जाए, तब लगता है कि इस सोने का मोह ही गलत है। उसने मार खिलाई, उसके बाद इसका ज्ञान होता है। अनुभव होने के बाद फिर वह वर्तन में आता है। फिर वह सोना नहीं पहनती। अब सोने पर से श्रद्धा उठ गई ?

प्रश्नकर्ता : हाँ, काफी कुछ खत्म हो गई।

दादाश्री : सोने पर से श्रद्धा उठ गई। अभी वर्तन में बाकी है, इसका क्या कारण है ? जितना माल भरा हुआ है, उतने समय तक वर्तन रहेगा, फिर तो इसे पहनने का भी मन नहीं होगा। इस प्रकार से सभी प्रकार की श्रद्धा खत्म होती जाएगी। सोने में जो सुख माना था, लक्ष्मी में सुख माना था, वह सब जो सुख माना था, उस सुख पर से श्रद्धा खत्म होती जाएगी और यह (आत्मा पर) श्रद्धा आती जाएगी। अब सोने के प्रति बहुत भाव नहीं होता है न ?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : और फिर शॉपिंग का ?

प्रश्नकर्ता : शॉपिंग तो बंद है। जो ज़रूरी है, वही चीज़ें लेनी पड़ती है। लेकिन जैसा पहले था कि मैं यह ले लूँ, वह ले लूँ, वह सब खत्म हो गया।

दादाश्री : धीरे-धीरे सब खत्म हो जाएगा और मन में शांति रहेगी। पहले तो शॉपिंग करते हुए भी बेहिसाब दु:ख, डॉलर खर्च करते हुए भी अंदर आकुल-व्याकुल, जबकि यहाँ खर्चा नहीं है फिर भी शांति है।

प्रश्नकर्ता : हालांकि परिवार के साथ अपना व्यवहार अच्छी तरह से होना चाहिए, इतनी भावना तो है ही।

दादाश्री : अच्छे प्रकार से होना चाहिए, वह एक हकीकत है अपनी। फिर अंत में जो होता है, वह भी सही है। हकीकत में अपना ऐसा होना चाहिए कि हमें इन्डिया जाना है। लेकिन यदि फिर प्लेन क्रैश हो जाए तो वह भी सही बात है। उसे मना नहीं कर सकते न! इसमें और कुछ नहीं है। हमें पॉज़िटिव हिसाब रखना है, यदि नेगेटिव हो तो उसे लेट गो करना है। क्योंकि यहाँ कुछ भी मरता या जीता नहीं है, आत्मा कभी भी मरता नहीं है और जीता भी नहीं है।

ज्ञान फिट हुआ है प्रतीति में

हमारे इन महात्माओं को ज्ञान है, सभी कुछ है लेकिन प्रतीति में है और प्रतीति को हम सर्वस्व कहते हैं। चाहे तेरे वर्तन में न हो, उसकी मुझे ज़रूरत नहीं है। तेरी प्रतीति में है तो पूरा सर्वस्व हो जाएगा। क्योंकि प्रतीति वाला सर्वस्व बनेगा जबकि सर्वस्व वाला सर्वस्व हो या न भी हो।

आज वर्तन बहुत सुंदर हो सकता है लेकिन अंदर प्रतीति किस पर बैठी है कि, 'अमरीका जाकर अच्छा बिज़नेस करना है।' यह देखना चाहिए कि प्रतीति कहाँ पर है। अन्य भाग नहीं देखना है।

अब अगर अपने किसी महात्मा की और उनकी पत्नी की कपड़ों की पेटी पास-पास रखी हुई हो और पत्नी ने अपने कुछ कपड़े पति के बैग में रख दिए फिर पति जब यह देखता है तो चिल्लाता है कि 'मेरी पेटी को तूने छूआ ही क्यों?' लो! उसे यह ज्ञान है, प्रतीति है फिर भी ऐसा वर्तन? तब कहेगा कि 'वर्तन तो ऐसा ही है!' अभी वर्तन नहीं बदला है। वर्तन बदलने में देर लगेगी। 'मेरी पेटी को छूआ ही क्यों?' इस तरह मेरी-तेरी कर देता है या नहीं? 'तेरी पेटी' यहाँ से ले जा, अरे आग लगे इसको।' अब, वह माल पहले की प्रतीति वाला भरा हुआ है। आज जो प्रतीति है, जब उसका माल भरा जाएगा

तब देखना यह। अतः हम उस प्रतीति और उसके ज्ञान को बदलते हैं, उसे प्रतीति हो जाएगी तो उसके लिए सत्युग आ जाएगा। प्रतीति हो जाने के बाद में बहुत परेशानी नहीं आई है।

जैसे-जैसे समझ में आएगा, वैसे-वैसे वर्तन में

यदि कोई हम से कहे कि मैं रास्ता समझ गया और फिर चला जाए उल्टे रास्ते पर तो क्या हम समझ नहीं जाएँगे कि यह समझा नहीं था! यदि समझ गया होगा तो फिर उस अनुसार रास्ते पर खो नहीं जाएगा। इस तरह से समझ लो ताकि मार्ग पर हम खो न जाएँ। और अगर खो जाते हैं तो इसका मतलब यह कि समझे नहीं थे और फिर कहते क्या हैं कि, 'मैं समझ गया था।' समझ में आए तो फिर उस अनुसार परिणाम आना ही चाहिए न! अमल में आना चाहिए न! आपको तो सब आता है, समझ में! समझ में नहीं आएगा तो वर्तन में न भी आए। सभी महात्माओं को जैसे-जैसे समझ में आता जाता है वैसे-वैसे फिर उनके वर्तन में देखता हूँ। मुझे पता भी चलता है कि इन्हें समझ में आया और वर्तन में आया।

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब यह कि कषाय खत्म हो जाएँ अर्थात् किसी भी प्रकार के कषाय उत्पन्न न हों तब उसे समझ में आना कहा जाएगा न?

दादाश्री : उसमें तो बहुत ही अच्छी तरह समझ में आ गया। वह तो बहुत ही उच्च प्रकार की समझ आ गई, उसकी तो बात ही अलग है!

सुगंध से आकर्षित होते हैं लोग

प्रश्नकर्ता : दादा के परिचय में आने वाले और दादा के सत्संग में रहने वालों का जो चारित्र है, यदि वह अंदर से खिल रहा हो तो फिर उसकी सुगंध का बाहर पता चलता है या नहीं, दादा?

दादाश्री : जितना खिलता है, बाहर उतनी ही सुगंध आती है।

अंदर खिला हो तब भी वह बाहर आता है और बाहर खिला हो तब भी बाहर आता है। खिला हुआ तो कभी गुप्त रहता ही नहीं है। अरे, अगर आपने मन में भाव तय किया हो कि मुझे इन महात्माओं को किसी भी तरह की परेशानी नहीं होने देनी है, यदि ऐसा भाव किया हो न, तो वह भी महात्माओं तक पहुँच जाता है। आपने किसी को बताया नहीं हो फिर भी वह बात पहुँच जाती है, ऐसा है यह विज्ञान! इतने सारे पाप धुल गए हैं, यह इतना क्लियर हो गया है कि अगर अंदर आप ऐसा कुछ गुप्त करोगे तब भी सभी तक पहुँच जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, मेरा क्या कहना है कि दादा के पास जो भी आते हैं, उनमें से हर एक को ऐसी भावना होती है कि, 'हमें जो मिला है वह लोगों को किस तरह मिले!' अब लोगों को देने जाएँगे तो लोग तो आचरण ही देखेंगे पहले।

दादाश्री : हाँ, वह तो वे देखेंगे ही!

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब दादा के पास आने वालों में एक प्रकार का डिसिप्लिन, एक प्रकार का...

दादाश्री : वह तो धीरे-धीरे आएगा। लेकिन अभी तो अगर आप, अपने आप करने जाओगे तो आपका यह सब देखकर आपकी गलतियाँ निकालेंगे। कहेंगे, 'आप वकालत क्यों कर रहे हो?' अत: आपको तो उसके लिए क्या करना है कि किसी तरह पटाकर दादा के पास ले आना है। मैं राह पर ले आऊँगा। कितने ही राह पर आ गए हैं न! अभी आप उसे राह पर लाने जाओगे तो नहीं हो सकेगा। क्योंकि वे आपत्ति उठाएँगे, 'आप ऐसा क्यों करते हो?' जबकि मुझे ऐसा नहीं कहेंगे न! मेरे पास ऐसा कुछ है ही नहीं न कि वे कहें!

मत देखना डिसिप्लिन लेकिन देखना वीतरागता

प्रश्नकर्ता : एक बात ज़रा, हृदय खोलने का मन हो रहा है कि अपने यहाँ सभी उत्सव मनाए जाते हैं, जन्मदिन मनाते हैं, ये सारे उत्सव मनाते हैं, उत्सव मनाने वालों के अतिशय भाव होते हैं। आने

वालों के भी अतिशय भाव होते हैं। लेकिन अंत समय पर ऐसा कुछ हो जाता है कि बिल्कुल भी व्यवस्था नहीं रह पाती। व्यवस्था ऐसी बिगड़ जाती है कि हम किसी इंसान को अगर बाहर से बुलाकर लाएँ कि 'आओ यहाँ ऐसा कार्यक्रम है' तो वे ऐसी व्यवस्था को देखकर कुछ अलग ही विचार लेकर चले जाते हैं।

दादाश्री : सही बात है।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, अब उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा हो जाता है, उसका क्या कारण है कि इसमें यश या अपयश की नहीं पड़ी है। ये तो समभाव से *निकाल* करते हैं। इसलिए बाहर यह खराब दिखाई देगा या नहीं, उसकी नहीं पड़ी है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह तो बहुत गहरी बात है!

दादाश्री : यह मैं जानता हूँ न, कि किस कारण से ऐसा नहीं हो पाता। तो अब इसे कैसे सुधारा जा सकता है! वह स्वभाव तो छूटेगा ही नहीं न, उसे छोड़कर हमें क्या करना है? जो हुआ वही करेक्ट, उसके दूसरे फायदे भी होंगे ही न! *निकाल* करके चले इसलिए फिर इस तरफ देखना ही नहीं होगा। जबकि उसमें तो अंत तक ऐसा रहता है कि 'मेरा नाम खराब होगा, मेरा ऐसा हो जाएगा, खराब दिखाई देगा।' समझ में आया न यह! मूलतः यही खराबी है।

प्रश्नकर्ता : दादा, इस बात से तो हमें बहुत-बहुत खुलासा हो गया।

दादाश्री : हाँ। यानी मैं समझ चुका हूँ कि इसमें गलत क्या है! उसे धकेलने के लिए किया था, लेकिन यह कमी क्या है वह हम समझ चुके हैं। लेकिन वह कमी ऐसी नहीं है कि खत्म हो सके।

प्रश्नकर्ता : वह कमी खत्म नहीं हो सकती। लेकिन उसके सामने लाभ तो अतिशय है। वह बात ठीक है।

दादाश्री : हाँ, हमें तो काम से काम है न! हमें क्या कोई कीर्ति या आबरू बढ़ानी है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हम अपने पिछले संस्कार लेकर आए हैं न, तो कई बार वे संस्कार आगे आ जाते हैं कि, 'बाहर के लोगों को लाए हैं तो वे भी प्रभावित होने चाहिए।'

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं है कि इस तरह प्रभावित होने से वे सुधर जाएँगे। वह तो यदि सिर्फ इन महात्माओं से संपर्क में आएँ न, तो भी बहुत हो गया। प्रभावित अर्थात् इनके कार्यों से प्रभावित होंगे तो, बाकी कोई मतलब ही नहीं है न! पास में आया है न, तो वह प्रभावित हो ही जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अब जहाँ से वे आते हैं, वहाँ पर अन्य कुछ नहीं होता लेकिन उन लोगों की व्यवस्था और डिसिप्लिन टॉप के होते हैं।

दादाश्री : बाकी सभी जगह (डिसिप्लिन) होता है। सिर्फ यहीं पर डिसिप्लिन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह तो बहुत हृदय वाली बात की है। लेकिन अन्य कहीं पर किसी कार्यक्रम में गए हों तो वहाँ जब देखते हैं तब उन लोगों का जो डिसिप्लिन होता है...

दादाश्री : वह सब बनावट है, यहाँ पर बनावट नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यहाँ ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति को कोई काम सौंपा हुआ हो तो दादा को देखते ही वे काम को एक तरफ रखकर, वहाँ पर चले जाते हैं, अब इसके लिए क्या करें? तो उनका ऐसा नहीं होना चाहिए कि "मैं यह दादा का ही काम कर रहा हूँ तो यहाँ पर भी दादा ही हैं, फिर मुझे वहाँ नहीं जाना चाहिए।"

दादाश्री : हर एक की प्रकृति ऐसी नहीं हो सकती न?

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन यह तो सर्वांश ही ऐसा हो गया है।

गोपियों जैसा हो गया है। ये तो गोपियों की तरह पति और अपना घर-बार सब छोड़कर एकदम से दौड़ते-दौड़ते सब चली जाती थी, सब की ऐसी दशा हो गई है।

दादाश्री : यह तो, ऐसा ही होगा। यह जो है न, यही न्याय है। हर किसी की प्रकृति के अनुसार है। कोई सिर्फ चावल ही खाता है और कहता है कि अब सभी को चावल ही खिलाओ, तो फिर क्या रहा? चावल हमारे पास शायद ही कभी आते हैं! वह सारा हिसाब के अनुसार है! और आप यदि किसी को लेकर आते हो न, तो उन्हें बता देना कि इन लोगों को ऐसा कुछ है ही नहीं। अतः आखिर में ऐसा मत देखना कि, 'ऐसा है, वैसा है'। देखने जैसी तो वीतरागता है उनके पास। हाँ, यहाँ पर तो ऐसा ही है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन डिसिप्लिन रखने में नुकसान क्या है? क्यों नहीं रखना चाहिए?

दादाश्री : उसके लिए आत्मा को कर्ता बनाना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : वहाँ कर्ता बनाना पड़ेगा और वह तो संभव ही नहीं है। इस ज्ञान में वह संभव ही नहीं है।

दादाश्री : जबकि इन्डिसिप्लिन तो, जो है वही निकलता है।

प्रश्नकर्ता : इस शंका का समाधान हो गया, दादा। लेकिन ये जो पुराने संस्कार हैं, वे परेशान करते रहते हैं।

दादाश्री : यह जो है वह सही है। हमने भी हिसाब लगा लिया था, पहले हमें मन में ऐसा लगा था कि ऐसा उल्टा क्यों हो रहा है? उसके बाद निकाल दिया वह। इसका तो निबेड़ा लाना है। यहाँ पर तो वीतरागता देखनी है, प्रेम देखना है। आने वालों को पहले से ही बता देना कि इन लोगों की प्रकृति कैसी है। 'अगर वीतरागता देखनी हो तो आओ', ऐसा कहना।

प्रश्नकर्ता : दादा, इसका अर्थ क्या यह है, अपने यहाँ कोई

कार्यक्रम हो तो उससे पहले कोई प्लानिंग या सिस्टमेटिक प्रबंध नहीं करने चाहिए?

दादाश्री : प्लानिंग करने में भी कोई हर्ज नहीं। लेकिन जितना माल होगा उतना ही निकलेगा न, उसके अलावा कुछ नहीं निकल सकता! प्लानिंग करोगे, फिर भी उसके पास जितना माल है उतना ही निकलेगा। नया अहंकार उत्पन्न नहीं हो सकता न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ऐसा होता है कि मुझे इस व्यवस्था का काम सौंपा है कि आपको वहाँ पर खड़े रहना है और जो कोई भी महात्मा या बाहर से जो लोग आते हैं, उन्हें आपको यहाँ इस प्रकार से गाइड करना है। लेकिन मैं जैसे ही दादा को देखता हूँ तब व्यवस्था, व्यवस्थित के हाथों में सौंपकर, मैं उस समूह में चला जाता हूँ, दादा के साथ।

दादाश्री : वह तो ऐसा है कि अगर बाजे वाले को ज्ञान दे दिया जाए तो बाजे वाले भी आ जाएँगे। मेरा कहना यह है कि अपने ये यात्री अलग ही तरह के हैं और उनके अलग तरह के हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी यह बात तो हृदय में फिट हो गई है।

दादाश्री : इसलिए जब लोग मुझसे कहते हैं कि आपके भक्त एडवान्स नहीं हुए हैं। तब मैं कहता हूँ कि अभी तो एडवान्स होने बाकी हैं। हमें तो मोक्ष से काम है न, हमें और कोई काम ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : हम जब लोक कल्याण करने के लिए निकलते हैं न, तो अपनी जो भावना है तो बाद में इसमें उस अनुसार जो सारे हिसाब आते हैं, वे यदि व्यवस्था का ऐसा भाग देख जाएँगे तो फिर लोक कल्याण की प्रवृत्ति को वेग मिलेगा या फिर वहाँ पर हमें कुछ और सोचना होगा?

दादाश्री : अपनी भावना होनी चाहिए, लोक कल्याण की क्रिया

नहीं। ये अन्य क्रियाएँ तो अंदर जो माल भरा हुआ है न, वही निकलेगा। जो माल भरा हुआ है, वह निकलेगा या कुछ और?

प्रश्नकर्ता : वही निकलेगा न, दादा। लेकिन एक प्रश्न ऐसा होता है कि जब ऐसा कोई सम्मेलन होता है, जब हम सभी प्रकृतियों को इकट्ठा करते हैं, यह सब होता है तब क्या व्यवस्था जैसी चीज़ के बारे में हमें सोचना ही नहीं चाहिए या फिर उसे व्यवस्थित ही मान लेना चाहिए?

दादाश्री : है ही व्यवस्थित। जितनी लाइनें बनाओगे, उन सब को मिटाना पड़ेगा। आप बनाओगे और आपको ही मिटाना होगा। लेकिन एक बार मिटाना ठीक है। ताकि फिर से ऐसी भूल न हो।

प्रश्नकर्ता : बाकी, एक चीज़ निर्विवाद है कि अपने कार्यक्रमों में जो सब लोग आकर बैठते हैं और फिर वे जब आपको सुनते हैं और उस समय सब में जो उल्लास होता है और 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो' बोलते हैं, उसे देखकर अच्छे-अच्छे लोग यहाँ आकर चकित हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, यही सब तो देखना है।

प्रश्नकर्ता : कि ऐसा समूह इस प्रकार का तो...

दादाश्री : उसे ऐसा देखने ही नहीं मिला होगा न!

प्रश्नकर्ता : इस बारे में कोई कुछ भी कह सके, ऐसा नहीं है।

दादाश्री : ऐसी दुनिया ही नहीं देखी होगी न।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जब तक हम उन सब को लाते हैं कि 'अब यह सब देखिए' तो पहले का जो पढ़ा हुआ है न, उस वजह से मुश्किल हो जाती है।

दादाश्री : उसके लिए तो उन्हें बता देना चाहिए कि, 'यह माल ऐसा है। यहाँ पर वीतरागता देखने योग्य है।' अगर खास परेशानी आए

तो मुझे बताना, बस। वर्ना परेशानियों का संग्रहस्थान है यह। यह टोली अलग ही तरह की है। और यह टोली अच्छी तरह से काम कर रही है न! देखो न, जब खाना खाते हैं तब कभी भी किसी तरह की कलह-वलह होती है क्या? कलह-वलह नहीं होती!

प्रश्नकर्ता : तो हमें इस संस्कार की वजह से ऐसे जो उत्साह आ जाता है, तो उसका क्या करना चाहिए?

दादाश्री : यह सब भरा हुआ माल है। औरों में भरा हुआ नहीं होता। कुछ करने को नहीं रहा, अंदर जो है, वैसा ही होगा। नया नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा वह ठीक है लेकिन यह सब तो पी.एच.डी. की बातें हुई। लेकिन हम सब तो पाठशाला वालों को इकट्ठा करते हैं न, ऐसे अवसर पर। सब दादा का विज्ञान समझते हैं, सभी साहित्यकार दादा का विज्ञान समझाते हैं, अब उनसे पी.एच.डी. का वर्तन कैसे एक्सपेक्ट कर सकते हैं?

दादाश्री : उनसे कह देना कि, 'भाई, यहाँ वीतरागता देखने जैसी है। जो बाहर की दुनिया में देखोगे, उसके बजाय यहाँ कुछ अलग ही देखने को मिलेगा। यहाँ पर प्रेम देखने की ज़रूरत है। आप जो ढूँढोगे उसका कोई हल नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन ये बाहर के जो लोग हैं, वे अब ऐसा पूछते हैं तब कुछ मन में ऐसा हो जाता है कि ये लोग यहाँ पर ऐसा देखकर गए। उन्हें और कुछ देखने को नहीं मिला?

दादाश्री : लेकिन वह तो, जब तक उनकी दृष्टि ऐसी है, तब तक क्या हो सकता है? उसमें उन बेचारों का क्या दोष है? दृष्टि ही टेढ़ी है तो टेढ़ा ही देखेंगे न! हमें तो आनंद होता है कि उनके पास जो द्रष्टि है, वे वैसा ही देखते हैं।

इसीलिए नो लॉ-लॉ कहा गया है न! किसी भी तरह के लॉ बगैर का लॉ है यह। आपको खुद को ज्ञान ठीक लगता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दादा, उस बारे में तो और कोई विकल्प ही नहीं आता।

दादाश्री : हाँ, तो फिर हमें इतना ही देख लेना है। औरों के पास देखने की दृष्टि ही कहाँ है? उनकी दृष्टि टेढ़ी हो तो मेरे साथ भी ठीक नहीं लगेगा न! आप उन्हें यहाँ लेकर आओगे न, और यदि उनकी दृष्टि टेढ़ी होगी तो मेरे साथ भी ठीक नहीं लगेगा। वह तो आप जानते ही हो न, कि जिसे मेरे साथ ठीक लगे, तो सही!

अपना व्यवहार शुद्ध व्यवहार होता है। अब बाहर वाले अन्य लोग वैसा व्यवहार ढूँढने आते हैं। बाहर के लोग तो शुभ व्यवहार ढूँढने आते हैं। अपने यहाँ पर शुद्ध व्यवहार है। अपने यहाँ पर तो आत्मा का आनुषंगिक (आत्मा प्राप्त करवाए, वैसा) होता है।

प्रश्नकर्ता : समझ में आता है कि व्यवस्था सेट किए बिना भी बढ़ता ही जा रहा है।

दादाश्री : सेट की हुई व्यवस्था से क्या होता है? अहंकार अव्यवस्थित कर देता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं। लेकिन दादा, व्यवहार में भी लोगों की क्या अपेक्षा रहती है कि, 'इनमें कोई कचरा कम हुआ है, कुछ सुधरे हैं', ऐसा दिखाई तो देना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ। लेकिन देखने के लिए अगर वे जांच करेंगे, गहराई से जांच करेंगे तो पता चलेगा। ऐसे ही कैसे जांच कर सकते हैं? कैसे पता चलेगा? सभी को यदि सोने की पहचान करना आ जाए तो सुनारों की क्या ज़रूरत थी? और सुनार को भी इतने बड़े काले पत्थर की ज़रूरत पड़ती है। 'महाराज, आप सुनार हैं। बूढ़े होने तक आपको इस पत्थर की ज़रूरत पड़ेगी?' तो कहते हैं 'इस पत्थर की ज़रूरत पड़ेगी। पत्थर के बिना तो हम टेस्ट नहीं कर सकते!' हम कहते हैं 'पत्थर पर यदि मैं सोना घिसूँ तो वह चलेगा?' तो कहेंगे, 'नहीं चलेगा।' उसके लिए फिर अनुभव वाली समझ की ज़रूरत है

न! ये तो कहते हैं कि समझ भी मेरी ही है, अनुभव वाली!' अतः इसमें कैसे जांच कर सकता है, इंसान? लोग ऐसा कहते हैं कि 'हम इन दादा को स्वीकार करते हैं। दादा पक्के हैं लेकिन आप सब में तो इसे लेकर कोई बरकत नहीं है। बातें करते हो, बस इतना ही है।' और फिर लोगों से कहते भी हैं कि, 'हम दादा को स्वीकार करते हैं।' उन्हें यह क्या पता चलेगा कि ये सब कौन से रास्ते पर हैं?

अंदर देखते रहने से ही शुद्धिकरण

अपने महात्माओं में, पहले मन शुद्ध होता है, उसके बाद वाणी शुद्ध होती है। जब वाणी शुद्ध हो जाती है तब वर्तन शुद्ध होता है। लेकिन पहले मन शुद्ध हो जाना चाहिए। जितने अंशों तक मन शुद्ध होगा उतने ही अंशों तक वाणी शुद्ध होगी। जितने अंशों तक वाणी शुद्ध होगी उतने ही अंशों तक वर्तन शुद्ध होगा। वर्तन सब से अंत में होता है। वर्तन की बहुत कीमत नहीं है। भगवान ने वर्तन की बहुत कीमत नहीं मानी है। दुनिया ने वर्तन की कीमत मानी है। वर्तन तो, (जैसे कि) घी बनाने के बाद, गरम करने के बाद आता है! यदि जमा हुआ घी होगा तो वह बहेगा नहीं, तब ऐसा नहीं कह सकते कि वर्तन में नहीं आया है। उसे गरम करेंगे तो वापस वैसा हो जाएगा। अक्रम विज्ञानी का कहना यही है कि, 'पूरी दुनिया जो मानती है, उससे ये कुछ अलग करते हैं'। पूरी ही दुनिया इसे मानती है, वर्तन को। तेरे मन में चाहे कुछ भी है लेकिन वर्तन में तो बहुत अच्छा है और अक्रम ज्ञानी उसके लिए मना करते हैं कि, 'भाई जोखिम तो इसमें है। तेरा वर्तन चाहे कितना भी अच्छा हो लेकिन अगर तेरा मन बिगड़ा हुआ है तो वह अगले जन्म का हिसाब है और इस वर्तन का फल तो आपको इस जन्म में यश (कीर्ति) मिल जाएगा लेकिन अगला जन्म तो बिगड़ गया न?' जबकि इस दुनिया को अगले जन्म की नहीं पड़ी है। अभी अच्छा-अच्छा दिखाई देना चाहिए। क्योंकि दृष्टि नहीं है उनके पास, सम्यक् दृष्टि नहीं है उन्हें, उन्हें मिथ्या दृष्टि है।

महात्माओं में वर्तन ढूँढने जाएँगे तो कुछ नहीं हो पाएगा। वर्तन

तो ऐसा है कि कितने ही समय बाद हाथ में आता है। और यह काल ऐसा नहीं है। यह स्लिपिंग काल है, यह फिसलन वाला काल है। इसमें अपना अब कुछ नहीं हो सकता। इसके बजाय तो छोड़ दे न! वर्तन को एक तरफ रखकर, मनोशुद्धि होने दो। आत्मा शुद्ध हो गया है। मन की शुद्धि ही होती रहती है, निरंतर। आत्मा शुद्ध हो गया इसलिए मन में जितना डिस्चार्ज होता है उसे देखते रहेंगे। मन उतना ही शुद्ध होता जाएगा। जगत् का मन अशुद्ध होता रहता है। जितना भी डिस्चार्ज होता है न, उसमें खुद तन्मयाकार हो जाता है। कहता है, 'मुझे विचार आया, मुझे विचार आया!' अरे! खराब विचार आया था, वह भी ?' तो कहता है 'हाँ, मुझे ही खराब विचार आते हैं।' अरे! तुझे खराब विचार कैसे आ सकते हैं ? तेरी इच्छा नहीं है तो तुझे विचार कैसे आ सकते हैं ? क्या वह तेरा मालिक है ? लेकिन यह तो उसे भ्रांति है कि, 'विचार मुझे आ रहे हैं। और किसे आ रहे हैं विचार ? अंदर दूसरा कौन है ?' अरे, अंदर तो बहुत हैं। सभी हैं, कौरव-पांडव हैं, कृष्ण भगवान हैं, पूरा महाभारत पड़ा हुआ है।

[7]

रियल पुरुषार्थ

'आज्ञापालन' से वास्तविक पुरुषार्थ शुरू

प्रश्नकर्ता : रियल पुरुषार्थ और रिलेटिव पुरुषार्थ, इन दोनों में फर्क बताइए न।

दादाश्री : रियल पुरुषार्थ में करने की चीज़ नहीं होती। दोनों में फर्क यह है कि रियल पुरुषार्थ अर्थात् 'देखना' और 'जानना'। और रिलेटिव पुरुषार्थ का मतलब क्या है? भाव करवाना, 'हम ऐसा करेंगे!'

दो तरह के पुरुषार्थ है। एक प्रारब्ध में से उत्पन्न होता हुआ पुरुषार्थ। प्रारब्ध में से बीज डलता है, उसमें से उत्पन्न होता हुआ पुरुषार्थ और दूसरा जो है, वह है पुरुष होने के बाद का पुरुषार्थ। तो मैंने जब आपको ज्ञान दिया तब आप प्रकृति से अलग हो गए। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह पुरुष है और उसके बाद में असल पुरुषार्थ है। रियल पुरुषार्थ यह है। और वह भी पुरुषार्थ तो है ही लेकिन भ्रांत पुरुषार्थ है। गलत नहीं कहा जाएगा, लेकिन वह, ये लोग जो मानते हैं, वह पुरुषार्थ नहीं है। ये लोग जो मानते हैं उसमें कोई भी व्यक्ति सही नहीं है, पुरुषार्थ की बात को लेकर।

प्रश्नकर्ता : फिर वह जो रियल पुरुषार्थ है, असल पुरुषार्थ है, जो दादा कर देते हैं, वह समझाइए न!

दादाश्री : असल पुरुषार्थ तो, आप जब चंदूभाई थे और तब

जो पुरुषार्थ कर रहे थे न, वह भ्रांति का पुरुषार्थ था। लेकिन जब मैं शुद्धात्मा हूँ और जो पुरुषार्थ करते हो, दादा की पाँच आज्ञा में रहते हो, वह रियल पुरुषार्थ है। पुरुष बनकर पुरुषार्थ किया, ऐसा कहा जाएगा। पुरुष बनकर पुरुषार्थ करे, वह वास्तविक पुरुषार्थ है। यानी कि आप जो पाँच आज्ञा में रहते हो, वह।

प्रश्नकर्ता : तो फिर इसमें अन्य किसी पुरुषार्थ के लिए क्या जगह है?

दादाश्री : पुरुषार्थ तो, यह जो मेरी आज्ञा का पालन करते हो, वही है। अन्य कोई पुरुषार्थ करना ही नहीं है न! बाकी सब व्यवस्थित है। वे सारी आज्ञाएँ पुरुष के लिए ही हैं, प्रकृति के लिए नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : जो ज्ञान बीज बोया गया, क्या वही प्रकाश है? वही ज्योति है?

दादाश्री : वही! लेकिन दूज के रूप में है। अब वह धीरे-धीरे पूनम होगी। *पुद्गल* और पुरुष, जब से ये दोनों अलग हुए, वास्तव में तभी से पुरुषार्थ की शुरुआत होती है। जहाँ पर पुरुषार्थ की शुरुआत हुई, वह दूज में से पूनम लाएगा। हाँ, इन आज्ञाओं का पालन करने से होगा। अन्य कुछ भी नहीं करना है। करना कुछ भी नहीं है, सिर्फ आज्ञा पालन करना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, पुरुष होने के बाद के पुरुषार्थ का वर्णन तो कीजिए ज़रा। व्यवहार में वह किस प्रकार से करता है?

दादाश्री : व्यवहार में ही है न, यह सब! अपने ये सब महात्मा रहते ही हैं न! पाँच आज्ञा में रहते हैं न! पाँच आज्ञा ही दादा हैं, वही रियल पुरुषार्थ है।

पुरुषार्थ : आज्ञारूपी, स्वाभाविक

पाँच आज्ञा पालन करने को ही पुरुषार्थ कहते हैं और पाँच आज्ञा

के परिणाम स्वरूप क्या होता है? ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहा जा सकता है और यदि हम से कोई पूछे कि वास्तविक पुरुषार्थ किसे कहते हैं? तब हम कहेंगे, 'ज्ञाता-द्रष्टा रहना!' तो ये पाँच आज्ञा ज्ञाता-द्रष्टा रहना ही सिखलाती हैं न? रिलेटिव और रियल, वे देखते हुए आगे-पीछे का जो विचार आ रहा हो तो व्यवस्थित कह कर बंद कर दो। देखते समय भविष्य के विचार उसे परेशान करते हैं। तब यदि हम 'व्यवस्थित' कहेंगे तो वे बंद हो जाएँगे। तब वापस फिर अपना देखना जारी रहेगा। उस समय यदि कोई फाइल परेशान कर रही हो तो समभाव से *निकाल* करके भी अपना वह जारी रहेगा। इस प्रकार से आज्ञा ज्ञाता-द्रष्टा पद में रखती हैं।

हमारी आज्ञा में रहना ही पुरुषार्थ है। पुरुष बनने के बाद में अन्य और क्या पुरुषार्थ है? और आज्ञा से जो फल मिलता है उससे खुद आज्ञा के बिना भी सहज स्वभाव से रह सकेगा। वह भी पुरुषार्थ कहलाता है। बहुत बड़ा पुरुषार्थ कहलाता है। यह आज्ञा से पुरुषार्थ और वह स्वाभाविक पुरुषार्थ!

प्रश्नकर्ता : स्वाभाविक पुरुषार्थ में आने के बाद में आज्ञा वाला पुरुषार्थ करने की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : उसके बाद ज़रूरत नहीं है न! वह तो अपने आप ही छूट जाएगा!

प्रश्नकर्ता : जब ज्ञानी मिलते हैं तब स्वाभाविक रूप से पुरुषार्थ उत्पन्न हो जाता है न?

दादाश्री : हाँ, स्वाभाविक (पुरुषार्थ) उत्पन्न हो जाता है! प्रथम आज्ञारूपी पुरुषार्थ और उसमें से फिर स्वाभाविक पुरुषार्थ उत्पन्न होता है।

ज्ञाता-द्रष्टा ही है असल पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : जितने समय तक ज्ञाता-द्रष्टा रहते हैं, वह पुरुषार्थ है?

दादाश्री : हाँ। या फिर जब औरों में शुद्धात्मा देखते हो, वर्ना

यदि मेरी आज्ञा का पालन करते हो, तब भी पुरुषार्थ है। हमारी पाँच आज्ञा जो हैं न, जब उनका पालन करते हो, उस समय पुरुषार्थ रहता ही है। यदि पाँच आज्ञा में रहते हो न, तो वह शुद्ध उपयोग ही है। वर्ना प्रकृति को देखना। अभी अगर ये चंदूभाई, वाइफ के साथ किच-किच कर रहे हों तो 'खुद' उस चंदूभाई को देखे और कहे कि 'कहना पड़ेगा चंदूभाई, जैसे थे वैसे के वैसे ही हो आप!' इस तरह से सब देखना, वह पुरुषार्थ कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर किसी को उस बारे में जागृति के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए या सिर्फ ज्ञाता ही रहना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहना ही असल पुरुषार्थ है। खुद का जो ज्ञायक स्वभाव है उस स्वभाव में रहना ही पुरुषार्थ है और ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो वह चारित्र कहा जाएगा, सम्यक् चारित्र कहा जाएगा।

जो ज्ञान-अज्ञान में भेद करे, वह रियल पुरुषार्थ

ज्ञान-अज्ञान को भिन्न भेद करते समय पुरुषार्थ रहता है और चारित्र में आने के बाद में पुरुषार्थ नहीं रहता। चारित्र तो स्वभाव कहलाता है। स्वभाव में क्या मेहनत? चारित्र में, स्वभाव में लाने के लिए पुरुषार्थ करना है, ज्ञान और अज्ञान दोनों को अलग करके। वह सिर्फ भेद विज्ञानी ही कर सकते हैं। अन्य कोई वह कर ही नहीं सकता न! और आप भेद विज्ञान के रास्ते पर चले हो तो आप दूसरे को भेद विज्ञान नहीं करवा सकोगे, लेकिन आप अपना खुद का भेद विज्ञान रख सकोगे। यह भाग आत्मा का है और यह भाग दूसरा, ऐसा समझ सकते हो। और वास्तव में जो भेद विज्ञानी होते हैं वे औरों को भी करवा देते हैं।

अत: इसमें व्यवहार चारित्र, वह पुरुषार्थ नहीं है। लेकिन भेद विज्ञान से ज्ञान-अज्ञान को भिन्न रखें, ऐसा करें तो वह सारा पुरुषार्थ है। जहाँ पर ज्ञान क्रिया या दर्शन क्रिया है, वहाँ पर पुरुषार्थ है। इसमें आत्मा में अन्य कोई क्रिया नहीं होती। दर्शन क्रिया नाम क्यों दिया है,

इन लोगों को समझने के लिए 'क्रिया' शब्द रखा है। उसकी कोई क्रिया ही नहीं होती न! जहाँ पर क्रिया है, वहाँ मिकेनिकल और जहाँ मिकेनिकल है, वहाँ मोक्ष नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : जो ज्ञान और अज्ञान में भेद डाले, वह पुरुषार्थ है?

दादाश्री : वही पुरुषार्थ है। आप शुद्धात्मा में रहते हो, शुक्लध्यान में, वही पुरुषार्थ है। आप शुद्धात्मा में हो और यदि कोई आपका अपमान करे, तब तो आपको ऐसा लगता है कि यह ऐसा कर रहा है। 'वह कर रहा है', ऐसा मानते हो, वह आपके समझने में भूल है। वह भी शुद्धात्मा है और यह जो कर रहा है, वह सारा तो वह उदयकर्म के अधीन कर रहा है, वह खुद नहीं कर रहा। वह बेचारा उदयकर्म के अधीन है। लट्टू घूमते हैं और हर कोई अपने-अपने उदयकर्मों से आमने-सामने व्यवहार का हिसाब चुका देता है। हमें देखते रहना है कि ये दोनों *पुद्‌गल* क्या लट्‌ठबाज़ी कर रहे हैं। और उसे जो देखता है वह पुरुषार्थ है। तब यदि आप ज्ञाता-द्रष्टा रहते हो, अर्थात् अंत में जो ज्ञान-अज्ञान को भिन्न रखने के बाद में अलग रहता है, वह खुद का स्वभाव है। उसके बाद स्वभाव में आ गया। स्वभाव का मतलब यही है कि सिद्धक्षेत्र में जो स्वभाव है, उसका वैसा ही स्वभाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसा करते-करते निबेड़ा आएगा। निबेड़ा इसी तरह आता है न!

पुरुषार्थ कौन करवाता है?

हम सब के पुरुषार्थ और पराक्रम शुरू हो गए हैं। अब, पुरुषार्थ का यह गुण आत्मा में नहीं है लेकिन जो प्रज्ञा नामक शक्ति है न, यह उसी का धर्म है। अतः आप तय करो कि मुझे इस पुरुषार्थ में रहना है, तो अवश्य वैसा रह पाएगा। उसके बावजूद भी यहाँ पर यदि पुरुषार्थ में कुछ आड़े आए न, तब 'व्यवस्थित' कहना।

निश्चय रूपी पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या ऐसे-ऐसे अंतराय कर्म होते हैं, जो हमें ज्ञान में या जागृति में पीछे धकेल देते हैं?

दादाश्री : जो मानो वह। अंतराय कर्म या अपने पुरुषार्थ की कमी। यह पुरुषार्थ तो मैंने आपके लिए खोल दिया है। जब से शुद्धात्मा बनाया है तभी से पुरुषार्थ खुल गया। अतः आपके पुरुषार्थ की ही कमी है।

पुरुषार्थ आपको तय करना चाहिए। निश्चय करोगे तो वह अपने आप ही हो जाएगा। निश्चय करना चाहिए। आपने निश्चय नहीं किया है कि अभेदभाव से रहना है। अभी भी निश्चय कच्चा है इसलिए ज़रा कच्चा ही होता रहता है। यदि निश्चय पक्का कर लोगे तो अच्छी तरह से होता रहेगा।

वह तो फिर निश्चय करेगा तो चलने लगेगा। यदि ऐसा निश्चय नहीं हो कि यहाँ से एयरपोर्ट जाना है, तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं जा पाएँगे।

दादाश्री : कोई कहेगा 'आप उल्टे रास्ते पर चले गए'। उल्टा तो उल्टा, लेकिन निश्चय तो होना चाहिए न? यह तो, न तो उल्टा पकड़ में आता है और न ही सीधा। उल्टे चले जाओगे तो कोई सीधा रास्ता दिखा देगा। यदि उल्टे रास्ते भी नहीं जाओगे तो सीधा कौन दिखाएगा?

प्रश्नकर्ता : मैं ऐसा कह रहा था कि पहले निश्चय हो जाना चाहिए कि मुझे आज्ञा पालन करना है।

दादाश्री : तो फिर पूरा पालन किया जा सकेगा। निश्चय सारा ही काम कर देता है। चाहे कैसी भी खराब चीज़ हो, उसमें भी निश्चय काम करता है। निश्चय अर्थात् मुझे रेलवे लाइन बिछानी है तो वह बिछाने ही लगता है, अन्य किसी झंझट में नहीं पड़ता। जब तक निश्चय नहीं हुआ है तब तक वह उलझता रहता है। प्लानिंग करता है और प्लानिंग बदलता है, उसमें कुछ सही नहीं होगा।

वास्तव में तो आप पुरुषार्थ में ही रहते हो। क्योंकि आत्मा प्राप्त

होने के बाद में पुरुषार्थ और पराक्रम उत्पन्न होते हैं। यदि पराक्रम नहीं हो पाता है तो पुरुषार्थ करता है। पराक्रम अर्थात् जैसे कि यह कुत्ता है न, वह पूरे दिन की जो धूल उड़ी होती है न, तो वह एक ही बार ऐसे-ऐसे करके झाड़ देता है, तो सारी धूल उड़ जाती है, साफ हो जाता है। उसे पराक्रम कहा जाता है। क्या तूने ऐसा नहीं देखा है? कुत्ता क्या करता है?

प्रश्नकर्ता : इस तरह वह अपना पूरा शरीर साफ कर देता है।

दादाश्री : ऐसा कौन से प्रोफेसर ने सिखाया होगा? क्या प्रोफेसर के सिखाए बिना आ जाता है? लेकिन देखो न, कैसे साफ हो जाते हैं? ज़रा सा भी दाग़ नहीं रहता है उन पर! आप पुरुष बने यानी पुरुष की शक्ति पुरुषार्थ सहित होनी चाहिए, स्व-पराक्रम सहित होनी चाहिए। अहोहो! हम स्व-पराक्रम से पूरी दुनिया में घूमते हैं, एक ही घंटे में! मैंने आपको पुरुष बनाया उसके बाद से, आपके शुद्धात्मा होने के बाद से, आपकी शक्तियाँ बहुत ही बढ़ने लगती हैं। लेकिन यदि इसका *लक्ष* रखोगे न, और हमारे टच में रहोगे तो बहुत हेल्प होगी।

स्व-पुरुषार्थ सदा ही सक्रिय

प्रश्नकर्ता : आपका अंत:करण तो ऑटोमैटिक इसी तरह से गढ़ा हुआ है?

दादाश्री : नहीं, गढ़ा हुआ नहीं है, पूरा खत्म ही हो चुका है, एक्ज़ोस्ट हो चुका है मन। उसमें नहीं रहता और आत्मा में रहता है तो तेज़ी से बिखर जाता है।

प्रश्नकर्ता : फिर कुछ भी पुरुषार्थ नहीं रहा?

दादाश्री : खुद का पुरुषार्थ तो निरंतर है ही न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह सारा अंत:करण पूरा ही मंद हो गया है, इसलिए वहाँ पर अब कुछ भी पुरुषार्थ नहीं रहा न?

दादाश्री : खुद का ही पुरुषार्थ चलता रहता है। जब तक सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम भूले हैं तब तक चलता रहेगा। वर्ना फिर भी केवलज्ञान होने तक पुरुषार्थ चलता रहता है। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थी ही रहता है!

मोक्षमार्ग अर्थात् सौ प्रतिशत शुद्ध सोना

पुरुषार्थ तो, पुरुष हुए बगैर पुरुषार्थ हो ही नहीं सकता। जैसे ही जागृत हुआ तो खुद की भूलें दिखाई देने लगीं, निष्पक्षपाती रूप से दिखाई देने लगीं। चंदूभाई का एक-एक दोष समझने लगते हैं, तब से निष्पक्षपातीपन होता है। तब जजमेन्ट पावर आता है और उसके बाद असल पुरुषार्थ होने लगता है।

आपके वाणी, वर्तन और विनय में कोई अंतर आता है या नहीं, वह भी आपको स्टडी करते रहना चाहिए। वाणी कुछ-कुछ बदलती जा रही है या नहीं? दादा जैसा बनना ही पड़ेगा न? तभी मोक्ष में जा पाएँगे। मोक्ष में तो एक ही तरह की क्वॉलिटी है न? पूरे सौ प्रतिशत न? उसमें कहीं दस प्रतिशत चल सकता है क्या? अतः यह पूरा ही शुद्धिकरण का मार्ग है।

यदि मोक्ष में जाने की कोई भावना होगी, यदि कुछ प्राप्त करने की भावना होगी न, तब वृत्ति उसमें तन्मयाकार रहेगी। यानी कि उस तरफ की तीव्रता होनी चाहिए। तीव्रता अर्थात् खुद का ज़बरदस्त पुरुषार्थ होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा के पास आने के बाद यह पक्का हो गया है कि अब, ये देहधारी परमात्मा हैं इसलिए फिर यदि उसका तीव्र पुरुषार्थ होगा तो...

दादाश्री : बस! तो बहुत हो गया। वह छूट जाएगा, अन्य कोई तकलीफ नहीं है। नुकसानदायक नहीं है और संसार चल सके, उसके लिए *ओलंबो* (साहुल, भूलंब) दिया है। वर्ना तब तक संसार चलाने

की चिंता रहती थी। लेकिन यह *ओलंबो* दे दिया है कि वह भी व्यवस्थित चला लेगा। सारा कुछ *ओलंबो* सहित दिया है। तो किसी भी तरह की वरीज़ (चिंता) रखे बिना सबकुछ दे दिया है जबकि क्रमिक मार्ग में तो फिर घर चलाने की परेशानी, बिज़नेस चलाने की परेशानी और फिर भविष्य की चिंता। इसमें तो भविष्य की चिंता-विंता कुछ भी नहीं है। भूतकाल गॉन, भविष्यकाल व्यवस्थित के ताबे में है इसलिए आप निरंतर वर्तमान में रह पाते हो। ऐसा ताल नहीं मिलेगा। मुफ्त में, बिना मेहनत के मोक्ष!

काम निकाल लो, दादा की उपस्थिति में...

प्रश्नकर्ता : पहले मुझे खुद की भूलों जैसा कुछ दिखाई नहीं देता था। अब तो ढेरों दिखाई देती हैं। गोडाउन के गोडाउन भरे हुए हों, ऐसा लगता है।

दादाश्री : ऐसा! माल से गोडाउन भरे हुए हैं न! उसमें हर्ज नहीं है। दादा के पास आते हो और जब तक दादा का आशीर्वाद है, तब तक किसी तरह की परेशानी नहीं होगी। सिर्फ अपने मन में ऐसी भावना करो कि यह छूटे तो अच्छा, छूटे तो अच्छा, सारा माल खाली हो जाए तो अच्छा।

जब तक दादा हैं तब तक सबकुछ हो सकता है, उसके बाद बहुत पुरुषार्थ करना पड़ेगा। उनकी अनुपस्थिति में बहुत पुरुषार्थ करना पड़ेगा। जब तक वे हैं, तब तक यदि आप इनके पास विधियाँ करोगे, सत्संग करोगे तो वह इस सारे माल को नष्ट कर देगा। दादा को देखने मात्र से ही कितने दोष खत्म हो जाते हैं! सिर्फ दर्शन करने से ही कितने ही दोष खत्म हो जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, आपको सभी महात्माओं का हर तरह से ठीक करके जाना है। यों ही अगर हमें रास्ते पर भटकता हुआ छोड़कर चले जाएँगे तो नहीं चलेगा न!

दादाश्री : आप सब को तय करना है कि जब सभी एक स्टेशन पर आकर बैठ जाएँ तब ऐसा कहना, 'जाइए दादा'। जब तक सब इस तरह यों भटक रहे हों तब तक सब को आवाज़ देकर बुला लेना 'आ जाओ, यहाँ पर! सब इकट्ठे हो जाओ।' ऐसा कहना।

हम देखते हैं कि जहाँ-जहाँ जिसने सच्चे दिल से पुरुषार्थ शुरू किया है, उस पर हमारी कृपा अवश्य बरसती ही है। आपने यदि आगे कदम बढ़ाया है और सच्चे दिल से पुरुषार्थ करना शुरू कर दिया है तो हमारी कृपा बरसेगी ही। कोई ज़रा कमज़ोर पड़ जाए तो फिर हम वहाँ से उठकर दूसरी जगह पर चले जाते हैं। हम कहाँ बैठे रहें? वह कमज़ोर पड़ जाए तो हम कहाँ बैठे रहें?

प्रश्नकर्ता : कमज़ोर पड़ जाए तो उसे आपको आगे लाना चाहिए न?

दादाश्री : वह करके देखते हैं लेकिन यदि फिर से कमज़ोर पड़ जाए तो हम हट जाते हैं। बाकी के जो लोग चल रहे हैं, उनका देखना होगा न! कमज़ोर पड़े ही क्यों? खुद की स्थिति कमज़ोर नहीं पड़नी चाहिए। सामने अगर कोई अड़चन आ जाए तो वह अलग बात है, लेकिन खुद को तो स्ट्रोंग ही रहना चाहिए।

ज्ञानी के पीछे घूमते रहते हैं तो कुछ निबेड़ा तो आएगा न?

दादा का अंतिम संदेश, महात्माओं के लिए...

प्रश्नकर्ता : आपने वह उदाहरण बहुत अच्छा दिया था कि यह जो बिल्ली होती है न, वह बच्चों को ऐसे मुंह में लेकर जाती है जबकि बंदरिया के बच्चे तो उससे चिपक जाते हैं।

दादाश्री : चिपक जाते हैं, छोड़ते नहीं है। यदि बंदरिया पंद्रह फुट ऊँचा कूदे तब भी बच्चा तुरंत ही आँख मींचकर चिपका रहता है। वह बच्चा समझता है कि 'आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है, मेरी ही ज़िम्मेदारी है,' इस तरह चिपक जाता है। इस तरह से चिपक जाता है कि अगर

बंदरिया गिर जाए तब भी उसे कुछ नहीं होता। ऐसा सीख लेना है। पकड़ पाओगे न?

प्रश्नकर्ता : उसी तरह पकड़ना है दादा को।

दादाश्री : अभी तो जब पकड़ोगे, तब न?

प्रश्नकर्ता : पकड़ा हुआ ही है दादा को।

दादाश्री : पकड़ा है? आपने भी पकड़ा है न, दादा को? आपको मुझसे लिपट जाना है, मुझे आपसे नहीं लिपटना है। बिल्ली को अपने बच्चों को मुंह में पकड़कर ले जाना पड़ता है। और बंदरिया को? फिर बच्चे 'माँ' को छोड़ते ही नहीं हैं। वह ऐसे कूदती है तो बच्चा उस तरफ नहीं कूदता, सिर्फ पकड़े रहता है! आप सब बंदरिया के बच्चे की तरह हम से लिपटे रहना।

[8]

शुक्लध्यान

अक्रम मार्ग में शुक्लध्यान

यदि आपसे ऐसा पूछा जाए कि वास्तव में आप चंदूभाई हो या शुद्धात्मा हो? तो आप क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : यों तो शुद्धात्मा हैं लेकिन व्यवहार से चंदूभाई।

दादाश्री : हाँ, रियली आप शुद्धात्मा हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, अवश्य।

दादाश्री : यदि आप वास्तव में शुद्धात्मा हो तो आपके *लक्ष* में क्या रहता है? आपके ध्यान में क्या रहता है? 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा ध्यान में रहता है या नहीं रहता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वही ध्यान रहता है, ठीक है।

दादाश्री : आपको उसका जो ध्यान रहता है, वह शुक्लध्यान है। अब आपको शुक्लध्यान उत्पन्न हुआ है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', जिसे ऐसा ध्यान रहता है, भगवान ने उसे शुक्लध्यान कहा है। क्योंकि 'शुद्धात्मा हूँ', वह ध्यान चूकना नहीं चाहिए, भूलना नहीं चाहिए, वह *लक्ष* में ही रहना चाहिए कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'।

प्रश्नकर्ता : उसे भुलाना चाहें तब भी नहीं भूल पाते।

दादाश्री : नहीं भूल सकते। वे तो यों संसार व्यवहार में भी 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा समझते हैं न! कई लोग खुद का वह भूलना चाहते हैं, लेकिन क्या उसे भूल पाते हैं? उसके लिए तो ज्ञानी के माध्यम से विधिवत उनके तार कट जाने चाहिए। सूक्ष्म तार, श्रद्धा के तार बंधे हुए हैं न। वे तार टूट जाने चाहिए। उल्टी श्रद्धा, रोंग बिलीफें टूट जाएँ और राइट बिलीफ बैठ जाए तो काम आएगा।

राइट बिलीफ को सम्यक् दर्शन कहा गया है और उल्टी बिलीफ को मिथ्यात्व कहा गया है। अत: देहाध्यास किसे कहते हैं? 'मैं चंदूलाल हूँ, यह मैंने किया, यह मेरा है', यह सब देहाध्यास है। 'मैं धर्म के बारे में बहुत जानता हूँ, तमाम शास्त्रों का पूरा जानकार हूँ, शास्त्रों का ज्ञान मुझे मौखिक है, श्रुतज्ञान मौखिक है', वह सब देहाध्यास है। सभी शास्त्र मौखिक हों फिर भी उसे भगवान ने देहाध्यास कहा है। क्योंकि उसका यह अध्यास नहीं टूटा है कि 'मैं चंदूलाल हूँ'। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' हो जाए तो हो चुका। तब उसका हल आ जाएगा।

शुद्धात्मा का ध्यान करने का तरीका क्या है?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा का ध्यान किस तरह से करना है?

दादाश्री : अब आपके पास ध्यान करने को कुछ रहा ही नहीं। ध्यान कब करना होता है कि जब ध्येय की प्राप्ति करनी हो। ध्येय तय करने के बाद, खुद ध्याता बनता है और फिर ध्यान करने से ध्येय और ध्याता का कनेक्शन होता है।

हर एक व्यक्ति अपना ध्येय तय कर ले न, कि, 'मुझे स्वरूप प्राप्त करना है', तो आपका स्वरूप शुद्धात्मा है और आप चंदूभाई हो इसलिए आप ध्याता हुए और शुद्धात्मा ध्येय है, और जब इन दोनों का कनेक्शन होता है तब वह ध्यान कहलाता है। वे दोनों जब एक हो जाएँगे तो उस एकता को ध्यान कहते हैं। अब उस ध्यान से खुद

शुद्धात्मा बन जाता है। अब, वह क्रमिक मार्ग का रास्ता है। ध्याता, ध्येय और ध्यान का! जबकि इस अक्रम मार्ग में तो आप खुद ही ध्येय स्वरूप बन गए हो न! खुद को शुद्धात्मा का *लक्ष* प्राप्त हो गया है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' इसलिए फिर उसे कोई ध्यान करना बाकी नहीं रहा अब।

इस काल में ऐसा है कि क्रमिक मार्ग से शुक्लध्यान उत्पन्न नहीं हो सकता। यहाँ तो ऐसा है कि जब यह ज्ञान देते हैं न, उससे (शुक्लध्यान) उत्पन्न हो जाता है। शुक्लध्यान और आत्मध्यान को एक ही माना जाता है। अब यह तो कम्प्लीट आत्मा का ध्यान हो गया, उसी को कहते हैं शुक्लध्यान।

आत्मा के स्वरूप का ध्यान रखा कैसे जाए?

प्रश्नकर्ता : दादा, आत्मा का स्वरूप कैसा है? उसका ध्यान करना हो, हमें उसका ध्यान रखना हो, तो वह किस तरह से रखना चाहिए?

दादाश्री : चंदूभाई को पहचानते हो 'आप'?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : क्या चंदूभाई आपको दिखाई देते हैं? आँखें मींचने पर?

प्रश्नकर्ता : हाँ। तब भी पता चलता है।

दादाश्री : वह जैसे-जैसे चंदूभाई को देखता है वैसे-वैसे आत्मा के नज़दीक आता है। उसके बाद जब 'चंदूभाई' के मन को देखता है, 'चंदूभाई' की वाणी को देखता है तो आत्मा के और भी नज़दीक आता है। यह सब देखना है। मन में जो विचार आएँ, उन सब का खुद को पता चलना चाहिए कि ऐसा आ रहा है, ऐसा आ रहा है। मन में जो विचार आते हैं उन्हें देखता है, वाणी के सभी शब्दों को अलग देखता है और चंदूभाई जो कुछ भी कर रहे हैं, यदि वह सब

देखता है तो वह आत्मा है। और आत्मा का ध्यान तो अपने आप ही रहा करेगा, करना नहीं पड़ेगा। किस तरह रहा करेगा, वह जानते हो? 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा ध्यान में रहे तो उसे शुद्धात्मा का ध्यान कहते हैं। आपने यहाँ से मुंबई जाना तय किया हो और फिर चाहे घूमते-फिरते बाज़ार में सब्ज़ी लेने गए हुए हों, तब भी मुंबई आपके ध्यान में रहता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : रहता है।

दादाश्री : उसे ध्यान कहते हैं। आँखें मींचकर बैठने को ध्यान नहीं कहते। वह तो एकाग्रता है। आपको कुछ समय तक क्या ऐसा ध्यान रहता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'?

प्रश्नकर्ता : हाँ, निरंतर रहता है!

दादाश्री : वह जो दिन भर निरंतर रहता है, वह शुद्धात्मा का ध्यान है और पहले ऐसा ध्यान था कि 'मैं चंदूभाई हूँ'।

निश्चय से शुक्लध्यान और व्यवहार से धर्मध्यान

प्रश्नकर्ता : हम निरंतर पाँच आज्ञा में रहते हैं अर्थात् शुक्लध्यान में रहते हैं, क्या यह बात सही है?

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' जिसे वह ध्यान रहा ही करता है, वह शुक्लध्यान ही है।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लिए हुए महात्माओं को, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी अवस्था बार-बार आती है न?

दादाश्री : वह बार-बार आती है, ऐसा नहीं। वह ध्यान रहता ही है। यानी कि आपको निश्चय से शुक्लध्यान हो गया है। व्यवहार में आप सब को धर्मध्यान है। वह शुक्लध्यान तो है लेकिन वह शुक्लध्यान अच्छी तरह से रहे, उसके लिए आज्ञा का प्रोटेक्शन है। ऐसा प्रोटेक्शन दोगे तो निरंतर रहेगा। बीच में शुक्लध्यान तो है फिर भी अगर आज्ञा में नहीं रहोगे तो वह ग़फलत में चला जाएगा!

प्रश्नकर्ता : मलेरिया के बुखार से शरीर तड़प रहा हो, ऐसी स्थिति में भी यदि अंदर किसी का प्रतिक्रमण करते रहें, तो वह कौन सा ध्यान कहा जाएगा?

दादाश्री : वह धर्मध्यान कहा जाएगा। लेकिन जब प्रतिक्रमण करते हैं तब सिर्फ धर्मध्यान ही नहीं रहता, साथ में शुक्लध्यान भी रहता है। निश्चय से शुक्लध्यान और व्यवहार से धर्मध्यान, ऐसी जोड़ी है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* रहा करे, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा ध्यान में रहा करे तो वही शुक्लध्यान कहलाता है और वह जो प्रतिक्रमण करते हो, वह धर्मध्यान कहलाता है।

शुक्लध्यान अर्थात् जब से ऐसा कुछ भान बरतता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तभी से वह शुक्लध्यान कहलाता है। वह धर्मध्यान में नहीं आता या आर्तध्यान में भी नहीं आता, रौद्रध्यान में भी नहीं आता। अब धर्मध्यान में कितना आता है कि अगर आपसे कहा हो कि, 'यह प्रतिक्रमण करना' तो वह धर्मध्यान में आएगा। अब आप आत्मा तो हो गए। अंदर का काम तो पूरा हो गया। अब बाहर का काम, यह अक्रम विज्ञान है न, इसलिए बाहर का काम बाकी बचा है।

ज्ञान के बाद नहीं है आर्त या रौद्रध्यान रे!

प्रश्नकर्ता : अत: कई बार आर्तध्यान हो जाता है और जो आर्तध्यान है उसमें खुद, खुद को माफ नहीं करता और अंदर जलता रहता है, वह आर्तध्यान हुआ न?

दादाश्री : आर्तध्यान तो नहीं होता। अपने इस ज्ञान के बाद में आर्तध्यान होता ही नहीं है और उसे खुद को जो लगता है कि यह आर्तध्यान है, वह आर्तध्यान नहीं है परंतु वह सफोकेशन है। आर्तध्यान में, 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा डिसिज़न होना चाहिए। अब आपका ऐसा डिसिज़न आ गया है कि 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ'। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा डिसिज़न आने के बाद में आत्मध्यान ही रहता है। आर्तध्यान या रौद्रध्यान हो ही नहीं सकता। क्योंकि खुद आत्मा बन गया है इसलिए

खुद आत्मध्यान में रहता है। आर्तध्यान कब होता है? तब, जब खुद चंदूलाल बन जाए!

अब उसे सफोकेशन होता है, घुटन होती है यानी कि ऐसा लगता है कि कुछ हो रहा है तो वह पहले की तरह ऐसा समझता है कि आर्तध्यान है। खुद अपने ही दु:ख में उलझे रहने को आर्तध्यान कहते हैं व औरों के लिए दु:ख उत्पन्न करना, दूसरों के दोष देखना, उसे रौद्रध्यान कहते हैं। जब ये दोनों ही बंद हो जाएँगे, तभी मोक्ष होगा। वह तो यदि अभी आप आचार्यों से पूछो कि 'साहब, रौद्रध्यान और आर्तध्यान नहीं होता है, तो?' कहेंगे, 'तब तो मोक्ष ही हो जाएगा।' वे लोग भी अच्छी तरह समझते हैं। तो अगर कोई पूछे कि 'धर्मध्यान बाधक नहीं है?' तो कहेंगे 'नहीं धर्मध्यान और शुक्लध्यान बाधक नहीं हैं!'

जब अहंकार खत्म हो जाता है, तभी शुक्लध्यान कहा जाता है! आपका अहंकार खत्म ही हो गया है और इसलिए शुक्लध्यान कहा जाता है न!

तब वह है अंतिम अवतार

प्रश्नकर्ता : धर्मध्यान से क्या होता है? पुण्य बंधन होता है?

दादाश्री : धर्मध्यान दो प्रकार के हैं। अहंकार से किया हुआ धर्मध्यान, उससे भौतिक सुख मिलते हैं। और मोक्ष के मार्ग में जाते हुए अन्य संयोग भी मिल जाएँ, सत्संग मिल जाए तो वह धर्मध्यान का फल है लेकिन अहंकार से। और हम जिस धर्मध्यान की बात करते हैं, वह तो निर्अहंकारी ध्यान है। निर्अहंकारी धर्मध्यान, एक अवतारी बनाता है। एक ही अवतार बाकी रहता है, उसके बाद मोक्ष हो जाता है। यहाँ से सीधे मोक्ष में नहीं जा सकते। क्योंकि जब तक धर्मध्यान है तब तक मोक्ष नहीं हो सकता। जब सिर्फ शुक्लध्यान रहे, तभी मोक्ष होता है। इसमें तो शुक्लध्यान और धर्मध्यान दोनों हैं। क्योंकि हमने जो पाँच आज्ञा दी हैं, वे आज्ञाएँ, वही धर्मध्यान है और जब

तक वह धर्मध्यान है तब तक मोक्ष में नहीं जा सकते। लेकिन एक जन्म के बाद में मोक्ष में जा पाओगे।

ज्ञानी ही मेरा आत्मा!

प्रश्नकर्ता : दादा के बारे में सोचते रहे 'दादा, दादा' करते रहें तो वह कौन सा ध्यान कहा जाएगा?

दादाश्री : 'दादा, दादा' करोगे तो वह तो खुद का आत्मध्यान कहा जाएगा। खुद, अपने आपका ध्यान कहा जाएगा। ज्ञानी पुरुष ही खुद का आत्मा है, ऐसा कृपालुदेव ने कहा है न! अतः जब ज्ञानी पुरुष का ध्यान करते हैं तो वह खुद के आत्मा का ध्यान करने के बराबर है।

अध्यात्म में चार : गतियाँ, ध्यान, उपयोग

भगवान ने कहा है कि चार गति, चार ध्यान, चार उपयोग। अब तीन मुख्य चीज़ें हैं। चार ध्यान - रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। चार गतियाँ - नर्कगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। अब, चार उपयोग हैं - अशुद्ध उपयोग, अशुभ उपयोग, शुभ उपयोग और शुद्ध उपयोग। ये तीनों एक ही चीज़ हैं। मात्र, वह जो शुक्लध्यान है, सिर्फ वही अलग है। शुद्ध उपयोग और शुक्लध्यान, मोक्ष का कारण हैं। जहाँ धर्मध्यान है, वह मनुष्यगति और देवगति का कारण है। रौद्रध्यान हो तो वह नर्कगति का कारण है और आर्तध्यान तिर्यंचगति का कारण है।

अब यह जो ध्यान है, वह कौन से ध्यान का उपादेय है। तो कहेंगे शुक्लध्यान का उपादेय है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* बैठा तो वह उपादेय है, उसे शुक्लध्यान कहा जाता है। *लक्ष* बैठा, वह। 'मैं चंदूभाई हूँ' वह *लक्ष* हट गया। शुद्धात्मा का *लक्ष* बैठा। व्यवहार चलाने लायक, अपने व्यवहार से 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा कहना पड़ेगा। दुकान में से भागीदारी निकाल दी हो लेकिन यदि वह कहे कि आपका नाम

रहने दो। तब क्या हम नहीं समझ जाएँगे कि इन भाई ने भागीदारी निकाल दी है लेकिन सिर्फ व्यवहार के लिए नाम रखा हुआ है! जब इन्कम टैक्स वाला आए तब वापस स्वीकार कर लेते हो न, कि 'हाँ, हमारा है।' कहना नहीं पड़ेगा? क्या उसे ऐसा कह सकते हैं कि हमने नाम निकाल दिया है? उसी तरह व्यवहार में तो ऐसा कहना पड़ेगा कि 'मैं चंदूभाई हूँ'। लेकिन जिसके आर्तध्यान और रौद्रध्यान चले गए हैं और जिसे शुक्लध्यान है, उसका एक-दो जन्म में मोक्ष हो जाएगा।

कहीं किसी अध्यवसन में घुस जाए लेकिन यदि ऐसा पता चल जाए कि यह *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए) है तो वह धर्मध्यान कहा जाएगा। यदि ऐसा पता चल जाए कि यह *अटकण* है तो वह धर्मध्यान है। और शुक्लध्यान तो है ही साथ में। आर्तध्यान अर्थात् अंदर वरीज़ हो जाती है, चिंता हो जाती है। रौद्रध्यान तो अंदर बेहिसाब दु:ख ही देता है। जिसमें ये दोनों नहीं हैं, उनका मोक्ष कभी न कभी, एक-दो जन्मों में हो ही जाना है। यही देखना है कि आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं हैं न! इसके अलावा और क्या?

अक्रम से सरल प्राप्य मोक्ष

इस अक्रम ज्ञान की प्राप्ति के बाद, एक-दो जन्मों में हल आ सके ऐसा है। अब जन्म बाकी रहना या नहीं रहना, वह ध्यान पर आधारित है। यदि सिर्फ निरंतर शुक्लध्यान ही रहे तो अगला जन्म मिलेगा ही नहीं लेकिन अक्रम मार्ग में शुक्लध्यान और धर्मध्यान दोनों ही हैं। अंदर शुक्लध्यान रहता है और बाहर धर्मध्यान रहता है। धर्मध्यान क्यों रहता है? दादा के कहे अनुसार आज्ञा पालन करते हैं, इसलिए। आज्ञा पालन करना शुक्लध्यान का काम नहीं। वह धर्मध्यान का काम है। अत: धर्मध्यान की वजह से एक-दो जन्म जितना चार्ज होता है। और आज सभी शास्त्र एक साथ कहते हैं कि 'इस काल में किसी भी व्यक्ति को शुक्लध्यान हो ही नहीं सकता', और बात भी सही है, गलत नहीं है। यह तो अक्रम विज्ञान है। बाकी, क्रमिक मार्ग से ऐसा नहीं हो सकता। यदि शुक्लध्यान हो जाए तो वह शुक्लध्यान मोक्ष का

कारण है। एकावतारी बन जाता है। यहाँ से सीधा मोक्ष नहीं हो सकता। कोई भी व्यक्ति एक अवतारी, फिर यदि ज़रा कमी रह जाए और हम से मिल नहीं पाए तो दो जन्म होंगे, तीन होंगे, पाँच होंगे लेकिन पंद्रह जन्म से ज़्यादा नहीं होंगे। जो हम से यों ही मिलकर जाए तब भी वह एक हद में आ जाता है। बाकी सब लोगों की तो हद ही नहीं है लेकिन जो हद में आ गया है और जो ज्ञान ले गया है, पाँच आज्ञा पालन करता है, उसकी तो बात ही अलग है, वह पंद्रह में आ गया!

उसे कहते हैं शुक्लध्यान

शुक्लध्यान का अर्थ क्या है, कि खुद के निज स्वरूप का ही भान रहना और जानना। सामने वाले में शुद्धात्मा देखना। वह चोरी कर रहा हो तब भी हम उसके आत्मा को शुद्ध ही देखें। चाहे कुछ भी करे, वह सब व्यवस्थित के ताबे में है लेकिन यह आत्मा का कार्य नहीं है। अतः हम शुद्ध ही देखते हैं। शुद्ध देखना और शुद्ध का कुछ अनुभव होना, वही शुक्लध्यान है।

शुक्लध्यान अर्थात् जगत् को जैसा है वैसा देखना और जिसे समभाव से *निकाल* करना है उसे शुक्लध्यान बहुत अच्छे प्रकार से रहता है। शुक्लध्यान अर्थात् खुद के स्वरूप की रमणता के अलावा अन्य कोई भी ध्यान नहीं, खुद अपने ध्यान में रहे, वह शुक्लध्यान है। खुद का स्वरूप खुद के ध्यान में रहे, वह शुक्लध्यान है और शुक्लध्यान प्रत्यक्ष मोक्ष का कारण है।

आत्मा का स्पष्ट व अस्पष्ट वेदन

शुक्लध्यान के चार स्तंभ हैं। उनमें से यह पहला स्तंभ है। अर्थात् अस्पष्ट वेदन हो जाता है। 'वस्तु है', ऐसा तय हो गया। 'वस्तु है', ऐसा भान हो गया हमें लेकिन उसका स्पष्ट वेदन नहीं होता। 'शुद्धात्मा हूँ' का *लक्ष* मिला लेकिन अस्पष्ट वेदन उसका प्रथम स्तंभ है, दूसरा स्तंभ स्पष्ट वेदन है।

प्रश्नकर्ता : क्या निरंतर उसी में *लक्ष* रह सकता है?

दादाश्री : नहीं, *लक्ष* नहीं रखना है। स्पष्ट वेदन कब होता है? बाहर दर्शन में आपको सबकुछ आ गया है लेकिन रूपक में नहीं आया है और जब रूपक में आ जाता है तब स्पष्ट वेदन होता है। कुछ भाग रूपक में आ गया है लेकिन व्यापार और रोज़गार... बाकी सब में से 'समझ' (दर्शन व प्रतीति) से छूट गए हो लेकिन 'ज्ञान' (अनुभव) से नहीं छूटे हो। जब 'ज्ञान' से छूट जाओगे तब स्पष्ट वेदन होगा। स्पष्ट वेदन होना, वह दूसरा स्तंभ है। उसके बाद तीसरा स्तंभ है, केवलज्ञान। वह सभी कुछ दिखाता है।

प्रश्नकर्ता : लोक-अलोक।

दादाश्री : लोक-अलोक। अभी लोक-अलोक हमें समझ में तो आता है लेकिन रूपक में नहीं आता। यानी कि केवलदर्शन में तो है।

अभी यह पहला स्तंभ आ गया, बहुत हो गया। फिर हमें और काम ही क्या है? जैन तो क्या कहते हैं कि, 'पहला स्तंभ? ओहोहो! यह तो भगवान बन गया!' बारहवें गुणस्थानक के बिना पहला स्तंभ नहीं आ सकता। दसवें गुणस्थानक तक तो कभी भी पहले स्तंभ को छू भी नहीं सकते। वह पहला स्तंभ आपको प्राप्त हो गया! ग्यारहवाँ गुणस्थानक है, वह गिरने का स्थान है।

दसवें गुणस्थानक तक लोभ रहता है, सूक्ष्म लोभ रहता है। जब तक वह लोभ नहीं टूटता, तब तक बारहवाँ गुणस्थानक नहीं आता। फिर चाहे वह लोभ किसी भी प्रकार से टूटे, क्रमिक से या अक्रम से। लेकिन जब लोभ टूटता है तब बारहवें गुणस्थानक तक पहुँचता है। जब तक लोभ है, तब तक अहंकार नहीं जा सकता।

प्रश्नकर्ता : लोभ तो अनेक प्रकार का होता है। लोभ तो ज्ञान प्राप्ति का भी हो सकता है।

दादाश्री : लोभ तो सभी तरह के हैं, अनेक प्रकार के हैं। अब, जब तक लोभ है तब तक दसवाँ गुणस्थानक पार नहीं कर सकते, तब तक अहंकार नहीं टूटता। अहंकार बारहवें गुणस्थानक में टूट जाता है।

अहंकार टूट जाए तो बारहवें में ही आ गया है, ऐसा कहा जाएगा। फिर चाहे वह किसी भी मार्ग से टूटे, अक्रम मार्ग से या किसी भी मार्ग से, लेकिन यदि वह बारहवें गुणस्थानक में आ जाए तो वह शुक्लध्यान का पहला स्तंभ कहा जाएगा।

केवलज्ञान हो जाए, तब उसे तेरहवाँ गुणस्थानक कहा जाता है। केवलज्ञान, शुक्लध्यान का तीसरा स्तंभ है और तेरहवाँ गुणस्थानक, ये तीनों साथ में ही होता है और अपना यह बारहवाँ गुणस्थानक ही है। अत: आप उसका स्वाद चखते रहो। धीरे-धीरे आपकी सभी शक्तियाँ खिलेंगी। अब सारे आवरण टूटकर खत्म होने लगेंगे, सारे ही। मूल आवरण टूट चुका है। अब शक्तियाँ खिलेंगी।

प्रश्नकर्ता : अंतर में शुभ भाव के अलावा और कुछ भी नहीं रहता।

दादाश्री : व्यवहार से धर्मध्यान योग है और निश्चय से शुक्लध्यान, अभी आपकी ऐसी दशा है। और व्यवहार गुणस्थानक की अब प्रगति होती जाएगी। पाँचवें से छठे में जाओगे, सातवें में जाओगे, आठवें में जाओगे। व्यवहार में जब स्त्री से परिचय छूट जाता है, तब नौवाँ पार कर लेता है। जब व्यवहार, लक्ष्मी का कोई व्यवहार नहीं रहता, तब व्यवहार से दसवाँ गुणस्थानक पार कर लेता है। अब धीरे-धीरे व्यवहार उच्च प्रकार का होता जाएगा। हमें निश्चय के गुणस्थानक की ज़रूरत थी, तो वह मिल गया। बस, बहुत हो गया। अब व्यवहार में प्रगति हो या न हो, व्यवहार का इनाम नहीं चाहिए हमें। हमें तो एकावतारी बनकर मोक्ष में जाना है। हमारे अंदर परमानंद रहना चाहिए। वह निरंतर रहता है न!

यह बारहवाँ गुणस्थानक है। आप बारहवें गुणस्थानक में हो, मैं भी बारहवें में हूँ। भगवान महावीर तेरहवें में थे, जब केवलज्ञान हुआ तब और चौदहवाँ गुणस्थानक मोक्ष का है। आपके और मेरे बीच में निश्चय से बारहवाँ गुणस्थानक एक ही प्रकार का है लेकिन डिफरन्स क्या है? आपका शुक्लध्यान पहले स्तंभ वाला है और मेरा दूसरे स्तंभ वाला है।

पहले स्तंभ वाला अर्थात् अस्पष्ट वेदन। आपको जो आत्मा का वेदन रहा करता है। अंदर से *लक्ष* रहा करता है, जागृति रहा करती है, उसे स्वसंवेदन कहते हैं। उसका लाभ भी मिलता रहता है। निराकुलता का लाभ भी मिलता रहता है। व्याकुलता वाली जगह पर भी निराकुलता में रह पाते हो और हम तो भयंकर व्याकुलता वाली जगह पर भी निराकुलता में रहे हैं, इसे तो टेस्टेड कहेंगे। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान रहा करता है। वह शुक्लध्यान का पहला स्तंभ है, वह अस्पष्ट वेदन है और हमारा, शुक्लध्यान का दूसरा स्तंभ, स्पष्ट वेदन है। शुक्लध्यान के तीसरे स्तंभ में केवलज्ञान हो जाता है और चौथे स्तंभ में मोक्ष में पहुँच जाते हैं!

[9]
एकावतारी मोक्ष, 'इस' ज्ञान से

महात्माओं का व्यक्तित्व सौरभ

प्रश्नकर्ता : महात्मा किसे कहा जाता है?

दादाश्री : जिन्हें आंतरिक संयम रहे, उन्हें महात्मा कहा जाता है। बाह्य संयम तो हो या न भी हो! जब तक कषाय करता है, तब तक महात्मा नहीं कहा जा सकता। 'चंदूभाई' क्रोध करे लेकिन 'खुद' अंदर से मना करता रहे। 'अरेरे, यह क्यों रहा है, यह नहीं होना चाहिए', उसे ऐसा रहे तो वह आंतरिक संयम कहलाता है। उसे महात्मा कहा जाता है!

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा और महात्मा में क्या फर्क है?

दादाश्री : शुद्धात्मा तो भगवान हैं। महात्मा तो, औरों से ज़रा टॉप पर हो तो उसे महात्मा कहा जाता है। यह तो हम व्यवहार से महात्मा कहते हैं लेकिन हैं तो शुद्धात्मा। शुद्धात्मा तो भगवान हैं लेकिन वे भगवान अभी आप में प्रतीति के रूप में ही प्रकट हुए हैं। वह प्रतीति जब पूर्ण हो जाएगी, तब संपूर्ण अनुभव दशा आएगी। अभी प्रतीति, *लक्ष* और अनुभव कम-ज़्यादा होते रहते हैं लेकिन जब संपूर्ण अनुभव बरतेगा, जब सभी के साथ अभेदता महसूस होगी, तब वह शुद्धात्मा बन सकेगा। शुद्धात्मा ही परमात्मा है।

वह जो जाना हुआ सही ज्ञान है, वह जाएगा नहीं। वह परमानेन्ट है और वह खुद भी सनातन स्वभाव वाला है, उसका ज्ञान भी सनातन है, सुख भी सनातन है, उसकी बात भी सनातन है और उसकी प्राप्ति के बाद में इंसान को क्या प्राप्त हुआ है? एन.ओ.सी. मिल गया। उस व्यक्ति के लिए किसी भी जगह पर ऑब्जेक्शन नहीं रहेगा। भगवान भी उसके लिए ऑब्जेक्शन नहीं करेंगे।

प्रश्नकर्ता : महात्मा की कार्यवाही क्या है?

दादाश्री : यह जो पिछले जन्म का सारा भरा हुआ माल है, उसे समतापूर्वक जाने देना।

प्रश्नकर्ता : महात्मा की उपमा मिलने के बाद में फिर उसका फर्ज़ क्या है?

दादाश्री : वीतरागता रखनी और राग-द्वेष नहीं करने।

प्रश्नकर्ता : अक्रम मार्ग के महात्माओं की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए?

दादाश्री : जैसा माल भरा हुआ है, वह निकलता रहेगा लेकिन राग-द्वेष न हों, वही दिनचर्या है। कोई थप्पड़ लगा जाए, कोई नुकसान कर जाए तो राग-द्वेष न हों, ऐसा होना चाहिए। राग-द्वेष तो दखल है। दखल वाला माल आपको खपाते रहना है, दखल नहीं रहे तब समझो हो चुका। दूसरा, जो है वही माल निकलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : महात्माओं का आदर्श जीवन कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : आसपास वाले, घर वाले, बाहर वाले, सभी कहें कि 'कहना पड़ेगा'! एक आवाज़, सभी हरी झंडी दिखाएँ। मैं बड़ौदा से निकलता हूँ तो सभी महात्माओं को बताता हूँ! एक महात्मा ने लाल झंडी दिखाई तब मैंने कहा, 'रुको भाई। अरे! गाड़ी रोको।' दो सौ महात्माओं में से एकाध महात्मा लाल झंडी दिखाए तो गाड़ी रुकवा देते हैं। 'क्या बात है, बताओ', उसका समाधान करवाकर फिर जाते

हैं क्योंकि मैं उन महात्माओं के ताबे में हूँ, वे मेरे ताबे में नहीं हैं। अत: अपने महात्माओं को तो सभी के ताबे में रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : रोज़ सुबह उठने से लेकर रात तक उनका नित्य कार्यक्रम क्या होना चाहिए?

दादाश्री : यहाँ पर ऐसा कोई नियम नहीं है। जहाँ नियम होता है, वहाँ हिसाब रखना होता है। यहाँ पर तो नो लॉ, लॉ है। अपना यह निश्चय है कि 'ऐसा होना चाहिए, यह नहीं होना चाहिए'। लेकिन फिर भी जो निकले, वही सही। कोई सिगरेट पीता हो और वह बाहर जाकर पी भी आता हो लेकिन मन में ऐसा रहना चाहिए कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ है क्या कि सुबह जल्दी उठना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, भाई। कोई जल्दी उठता है, तीन बजे से उठकर गरम पानी के लिए आग जलाने वाले भी हैं और कोई देर से उठता हो और साढ़े नौ बज जाएँ, तब मैं कहता हूँ कि 'भाई, सूर्यनारायण कब से उठकर यहाँ आ गए हैं। तू ज़रा सोच तो सही! ये इतने बड़े, उठकर आ गए हैं। तू उनसे भी कितना बड़ा है?' तब वह जल्दी-जल्दी उठ जाता है। क्योंकि तीन बजे से उठकर यहाँ पर आने वाले भी हैं और साढ़े नौ वाले भी हैं। हर तरह के लोग हैं!

प्रश्नकर्ता : जिन लोगों ने यह 'ज्ञान' लिया है, उन्हें रात को किस तरह से सो जाना है? वह समझाइए।

दादाश्री : खुद शुद्धात्मा बनकर बाकी सभी चीज़ों से कहकर कि 'हम अब ऑफिस बंद कर देते हैं। आप सुबह आना, साढ़े छ: बजे। अब अभी ऑफिस बंद है।' जो भी विचार आ रहे हों उन सब से कह देना। 'आज पहला दिन है इसलिए रिक्वेस्ट करते हैं कि अब आप यहाँ पर मत आना। वर्ना आपका अपमान हो जाएगा इसलिए फिर से मत आना।' तब फिर वे बंद हो जाएँगे। और 'मैं शुद्धात्मा हूँ, शुद्धात्मा हूँ' इस तरह धीरे से अपने ही कान को सुनाई दे, उस तरह बोलते हुए दादा के चित्रपट का निदिध्यासन करते-करते सो जाना है।

प्रश्नकर्ता : महात्माओं का मोक्ष कब होगा?

दादाश्री : एक-दो जन्म या तीन जन्मों के बाद। यह क्षायक समकित है। ऐसा साठ हज़ार लोगों को दिया है, यह कोई एक-दो की बात नहीं है।

पूरी दुनिया रोंग बिलीफ में है, फिर भी खुद का मानते हैं न? बिल्कुल सचमुच में खुद का मानते हैं न? और हम सब को तो राइट बिलीफ बैठ गई है और वह तो सही ही है। वे लोग गलत को सही मानते हैं फिर भी सही तरीके से वर्तन करते हैं। तो हमें सही को सही तरीके से मानना चाहिए। उसके बाद में सही प्रकार से वर्तन करना चाहिए न! अपना तो एक्ज़ेक्ट सही ही है। अत: आपको सामने वाले व्यक्ति से ऐसा कहना चाहिए कि, 'मैंने शुद्धात्मा पद प्राप्त किया है। मुझसे अन्य कोई प्रश्न मत पूछना। कुछ पूछना हो तो ज्ञानी पुरुष के पास आओ।'

लेकिन अपने सभी लोग अस्पष्ट बोलते हैं न, इसलिए बाहर बात समझ में नहीं आती न लोगों को! आपको बताने में क्या हर्ज है? अपनी जो मान्यता है, वह।

प्रश्नकर्ता : आप कई बार ऐसा पूछते हैं कि प्रगति हो रही है या नहीं? तो प्रगति किस जगह पर दिखाई देती है? यानी कि प्रगति में क्या दिखाई देता है? किस तरह से पता चलता है?

दादाश्री : दखल न हो वह। किसी के साथ दखलंदाज़ी न हो। या फिर खुद अपने आप के साथ दखल न हो। इतना देख लोगे तो इसका मतलब कि प्रगति हुई है। किसी के साथ गड़बड़ हो जाए तो इसका मतलब बिगड़ गया।

कोई हिमालय में घूमे, चाहे कहीं भी घूमे लेकिन यह वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। यह तो, जब क्रमिक मार्ग के ज्ञानी होते हैं न, तब वहाँ पर तो तीन या चार ही लोगों को प्राप्ति होती है, ज़्यादा लोगों को प्राप्ति नहीं होती। यह तो अक्रम विज्ञान है। दस लाख सालों में

कभी ही प्रकट होता है। तब लाखों लोग ले जाते हैं! उसमें आपको टिकिट मिल गई। एक्सेप्श्नल केस, टिकिट मिली है यह!

यानी कि करोड़ों जन्मों में भी जो चीज़ प्राप्त नहीं हो सकती, वह आपको आसानी से प्राप्त हो गई है। इसलिए अब इसका रक्षण करना। अन्य किसी चीज़ पर ध्यान मत देना। संसार तो पूरा चलता ही रहेगा। यह कहीं रुकेगा नहीं कभी भी। जैसे कि दाढ़ी बढ़ाने की इच्छा न हो फिर भी बढ़ती रहती है न? उसी प्रकार संसार चलता रहेगा। ऐसी इच्छा हो या न भी हो। और जो स्वभाव है, उस स्वभाव से ही होता रहेगा। उस संसार में फिर, 'हमें यह ऐसा चाहिए या वैसा चाहिए', वहाँ पर ऐसा नहीं चलेगा। अत: इतना संभाल लेना अंत तक!

प्रश्नकर्ता : जब मैं निजभाव में रह रहा होऊँ, तब फिर अंत में मेरी जो कमी खत्म होनी होगी तब क्या मुझे ऐसा भास होगा कि अब कुछ पूर्ण हुआ है मेरा?

दादाश्री : उसमें तो आपको सांसारिक दु:ख या बोझ कम होता जाएगा और अधिक ऐसा भान होता जाएगा कि आप मुक्त हो। आप मुक्त सुख भोग रहे हो, वह भान और भी अधिक प्रकट होगा। मैं कहता हूँ न, कि सत्ताइस साल से तो मैं मुक्त ही हूँ और विदाउट टेन्शन। यानी कि टेन्शन होता था 'ए.एम.पटेल' को, कहीं मुझे नहीं होता था। लेकिन जब तक 'ए.एम.पटेल' को भी टेन्शन होता है, तब तक हम पर बोझ तो है ही न! वह भी जब खत्म हो जाएगा तब आपको समझना है कि आप छूट गए और फिर भी जब तक शरीर है तब तक बंधन है और उसमें तो अब हमें कोई हर्ज नहीं है। दो जन्म हो जाएँ, तब भी हर्ज नहीं है। हमारा हेतु तो क्या है कि 'यह जो सुख मैंने पाया है, पूरा जगत् वह सुख प्राप्त करे' और आपको जल्दी किस चीज़ की है, वह बताओ। क्या आपको वहाँ पहुँचने की जल्दी है?

जीते जी मोक्ष हो गया, उसका थर्मामीटर

हमारा मोक्ष हो चुका है, हमें मोक्ष पाकर क्या करना है? जो तैयार हो चुका हो, उसके लिए क्या करना है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कैसे पता चलेगा कि मोक्ष हो गया?

दादाश्री : ऐसा कब पता चलेगा कि मोक्ष हो गया है, कि जब इस दुनिया की किसी भी चीज़ की इच्छा न रहे। ऐसी कोई चीज़ नहीं रहे जिसकी कि इच्छा हो या फिर उसका संकल्प हो या उसका विकल्प हो। अत: उसे खुद को पता चलेगा कि वह निर्विकल्पी, निरिच्छक हो गया है तब वह मुक्त ही कहा जाएगा। जब तक कोई भी इच्छा है तब तक भिखारी है, इच्छावान को भिखारी कहा जाएगा।

किसी व्यक्ति को रस्सी द्वारा एक खंभे से बाँध दिया गया हो, पैर से सिर तक और आँखों पर पट्टी बाँध दी गई हो। अब फिर यदि कोई भी व्यक्ति अगर पीछे से धीरे-धीरे उसकी रस्सी को चाकू से काट दे और उसकी एक लपेट छूट जाए तब क्या उसे खुद को पता चलेगा? एक लपेट अंदर ढीली हो जाए तो क्या बंधे हुए व्यक्ति को पता चलेगा?

प्रश्नकर्ता : ढीला होने पर पता चलेगा।

दादाश्री : उसे ऐसा लगेगा कि इस जगह से ढीला हो गया। यह लपेट खुल गई है। आपको जब अनुभव हो कि लपेट खुल गई है तब समझना कि लपेट खुलने लगी है। हम आपको अनुभव करवा देते हैं। मोक्ष का अनुभव, मोक्ष में बैठे हुए हों, ऐसा अनुभव होता है और *उपाधि* में भी अंदर अनुभव होता है। समाधि में तो, समाधि तो कुत्ता भी रख सकता है! अरे, दो पूड़ियाँ दे दी जाएँ न तो वह पूरी रात समाधि रखता है। लेकिन *उपाधि* (बाहर से आने वाला दुःख) में समाधि रखी जा सके तो उसे विज्ञान कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर दादा का ज्ञान लेने के बाद से जो मुक्तता बरतती है, जैसे कि अंदर से मुक्त हो रहे हों, ऐसा अनुभव होता रहता है, तो वह क्या है?

दादाश्री : मुक्त ही हो। वह तो, आपकी जो बिलीफ थी कि 'मैं बंधा हुआ हूँ' वह टूट गई है और, 'मैं मुक्त हूँ' आपको ऐसी बिलीफ बैठती गई।

मोक्ष की गाड़ी में बैठने के बाद जल्दबाज़ी?

प्रश्नकर्ता : कभी मोक्ष में जाने की बहुत ही जल्दबाज़ी रहती है!

दादाश्री : यदि जल्दबाज़ी करोगे तो ठोकर खाओगे। मोक्ष मिलने के बाद में मोक्ष की क्या जल्दी? जल्दी किसलिए? कोई आपका रिज़र्वेशन ले लेगा क्या? रिज़र्वेशन को कोई भी नहीं छू सकता! जिस जगह जाना हो उसका निश्चय, उसकी टिकिट, सबकुछ हो चुका है! किसी से पूछ लेना कि गाड़ी कैसी है। तब कहेंगे, 'स्पीडी'। फिर बैठकर सो जाना है।

कोई व्यक्ति बड़ौदा से मुंबई जाने के लिए गाड़ी में बैठे और खिड़की से बाहर देखता रहे, कि मुंबई दिखाई दिया... तो कब अंत आएगा? ये लोग क्या कहते हैं? भाई क्या देख रहे हो? तो कहते हैं, 'दिखाई दे रहा है क्या मुंबई? ज़रा पता लगाओ न?' 'अरे, भाई सो जा न! पागल है क्या?' पत्नी भी ऐसा कहती है कि 'यह मूर्ख है। आपसे कहाँ शादी कर ली मैंने?' कोई ऐसा करता है? अरे, कई लोग गाड़ी में भागदौड़ करते हैं। क्यों? 'जल्दी पहुँचना है। हमारे रिश्तेदार बहुत बीमार है। सुबह वहाँ से निकलकर अस्पताल जाना है।' अरे भाई, यहाँ पर क्यों भागदौड़ कर रहा है, इस तरह भागदौड़-भागदौड़? बिना बात के, खुद नहीं सोता और लोगों को भी नहीं सोने देता। अरे भाई, उतरकर जाना। सब से पहले तू जाना, लेकिन आराम से सो जा न, अभी।

इस ज्ञान से तो आपकी दूज हो गई है। अब जैसे-जैसे आज्ञा में रहोगे, वैसे-वैसे फिर पूनम होगी।

प्रश्नकर्ता : पूनम करने की उत्कंठा तो होनी चाहिए न, कि जल्दी से हो!

दादाश्री : जल्दी की बात नहीं है। आपको आज्ञा पालन करते रहना है, बस। आप अधिक आज्ञा पालन करो, उसी के परिणाम स्वरूप पूनम आएगी। इससे तो फिर पूनम भी रूठ जाएगी कि, 'ओहोहो!

देखो, मेरे बिना इन्हें अच्छा नहीं लगता!' तेरे बिना सब अच्छा लगता है, तू अपने आप आ बहन (पूनम)! हम तो ये चले! वह सामने से आएगी। जो पद सामने से आए, उसकी उत्कंठा कैसी? मोक्ष भी सामने आ रहा है और सबकुछ सामने आ रहा है। हमें तो अपने आप, दादा जो कहते हैं उस अनुसार कार्य करते जाना है, बस। अन्य किसी झंझट में नहीं पड़ना है। आगे जाने लगेंगे तो फिर बोझ बढ़ जाएगा। भला फिर उसका बोझ कौन लेगा, बिना बात के?

प्रश्नकर्ता : क्यों दादा, उसके लिए तीव्रता नहीं होनी चाहिए?

दादाश्री : नहीं, तीव्रता तो इन पाँच आज्ञा में रहने के लिए ही रखनी है। वह जो कार्य है, उसके लिए नहीं रखनी है। कारण के लिए तीव्रता रखनी है, कार्य तो फल है। फल के लिए तीव्रता रखकर, लोग कारण में कमज़ोर रह जाते हैं। कार्य बड़ा है या कारण?

प्रश्नकर्ता : कारण बड़ा है, दादा। लेकिन *लक्ष* के लिए तीव्रता के बारे में बताइए।

दादाश्री : वह तो रहेगी ही। वह तो कम होगी ही नहीं। हम जब यहाँ घर से रास्ते पर जाते हैं न, तो सीढ़ियाँ उतरकर नीचे जाना है, उस बात को याद रखने की ज़रूरत नहीं है। हमें सिर्फ अगली सीढ़ी देख-देखकर चलना है ताकि गिर न जाएँ, बाकी पहुँचेंगे तो नीचे ही।

मोक्ष में अब बाकी कितना?

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में तो मोक्ष मिलेगा नहीं तो मोक्ष के लिए कितने जन्म लेने पड़ेंगे?

दादाश्री : वह तो, जितना आज्ञा का पालन करेगा, यदि सत्तर प्रतिशत पालन करेगा तो वह एक ही जन्म में मोक्ष में चला जाएगा। ज़्यादा से ज़्यादा चार और कम से कम एक। लेकिन फिर यदि कोई ज़रा सी भी आज्ञा का पालन नहीं करे तो डेढ़ सौ भी हो सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न, कि ज्ञान लेने के बाद में किसी

को कर्म चार्ज ही नहीं होते हैं, सब डिस्चार्ज ही होता रहता है। तो सब एक ही जन्म में मोक्ष में जाने चाहिए न?

दादाश्री : जितना हमारी इन आज्ञाओं का पालन करता है न, उतना कर्ताभाव रहता है। अतः उसे लेकर एक या दो जन्म होंगे। जिस प्रकार से आज्ञा का पालन करेगा, उस आधार पर एकाध जन्म कम या ज़्यादा हो सकता है। ज़्यादा से ज़्यादा तीन-चार लगेंगे लेकिन फिर भी जो व्यक्ति बहुत ध्यान न रखे, मेरे बहुत परिचय में न आए तो बहुत हुआ तो उसके पंद्रह जन्म होंगे। किसी के सौ-दो सौ भी हो सकते हैं लेकिन कुछ तो लाभ होगा, उसे। जो मुझसे मिला है न, जो यहाँ चरण स्पर्श कर गया है उसे लाभ हुए बगैर रहेगा नहीं। जन्म बहुत कम हो जाएँगे। लेकिन मुझसे जितना अधिक मिले और सब खुलासे कर ले... मैं ऐसा नहीं कहता कि पूरे दिन पड़ा रहे, पाँच मिनट आकर खुलासा कर जा तू। तुझे क्या तकलीफ रहती है? भूलचूक हो जाती है तो हम तुझे दूसरी चाबियाँ दे देंगे और भूलचूक सुधार लेंगे। क्योंकि एक घंटे की ज्ञानविधि से फंडामेन्टल प्राप्त होता है। उसके बाद विस्तारपूर्वक जान लेना चाहिए! यदि डॉक्टर बनना हो, तो उसमें भी टाइम तो लगाते हो न? कॉलेज में पढ़ते हुए पच्चीस-पच्चीस साल का टाइम बिता देते हैं। तो इसके लिए कुछ तो क्वॉलिफिकेशन चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : तो दादा, क्या ऐसा होता है कि मोक्ष मिलने में विलंब होगा? दो जन्म के बदले चार जन्म हो जाएँगे? क्या ऐसा हो सकता है?

दादाश्री : ऐसा होता है, तब भी हर्ज क्या है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन जल्दी जाना है। बीच में कहीं फँस जाएँ तो?

दादाश्री : एक संतपुरुष से नारद ने कहा था... उसने पूछा 'नारद जी, पूछ आए भगवान से कि मेरा मोक्ष होगा?' तब नारद जी ने बताया, 'हाँ, भगवान ने कहा है कि मोक्ष होगा। यह जो इस इमली के पेड़ के नीचे बैठे हो, उसके जितने पत्ते हैं उतने जन्म लगेंगे और

उसके बाद आपका मोक्ष हो जाएगा'! 'होगा ज़रूर, कहा है न, इतना बहुत हो गया।' तो फिर मोक्ष हो जाएगा, उस आनंद में बहुत नाचे, खूब नाचे। तो महत्व इस बात का है कि मोक्ष होगा ही। कब होगा, वह बाद में देख लेंगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि सीढ़ियाँ उतर जाएँगे तो और अधिक जन्म लग जाएँगे न?

दादाश्री : 'दादा, दादा' करते हुए आगे चलते जाना। किसी बात का भय नहीं रखना है कि ऐसा हो जाएगा तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : हर एक जन्म में मोक्ष का *लक्ष* तो रहेगा ही न?

दादाश्री : अब बहुत कहाँ होने हैं? *लक्ष* तो साथ में रहेगा ही न! मोक्ष स्वरूप ही रहना है।

लोभी कैसा, मोक्ष के लिए?

बाकी, यहीं पर मोक्ष हो जाना चाहिए। यह तो अक्रम विज्ञान है, एकावतारी विज्ञान है। इसके बाद एक ही जन्म बाकी रहता है। किसी के दो जन्म भी हो सकते हैं, किसी के तीन जन्म भी हो सकते हैं। जितना लोभ होगा उतने अधिक जन्म लिए बिना चारा ही नहीं है। लेकिन अधिक लोभ होगा तो दस-पंद्रह जन्म होंगे। वह तो हर किसी के लोभ पर आधारित है। कोई बहुत लोभी हो न, तो वह जाते-जाते कहेगा, 'अब यहाँ वापस नहीं आना है तो ये पूरे कर लो। कुछ दिन बिताकर फिर जाएँगे। जल्दी क्या है'? ऐसा करके। लेकिन उसे मोक्ष में जाना ही होगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, क्या संसार के लोभ की बात कर रहे हैं?

दादाश्री : नहीं तो और कौन सा लोभ है? लोभ तो संसार में ही होता है न! मोक्ष में तो लोभ है ही नहीं न! लोभ तो रोग है, वह रोग कब तक रहता है? जब तक अंदर पड़ा हुआ हो, तब तक।

प्रश्नकर्ता : एक जन्म बाकी हो तो कितने साल का माना जाएगा?

दादाश्री : वह तो यदि मनुष्य जन्म हो तो सौ साल का हो सकता है, बयासी साल का भी हो सकता है। जो मिले वह ठीक है। ये देवी-देवताओं का जो अवतार होता है न, वह लाख-दो लाख साल का होता है।

भटक कौन जाता है?

प्रश्नकर्ता : सभी महात्मा कहते हैं कि हम महाविदेह क्षेत्र में जाएँगे न?

दादाश्री : कईं लोगों को यहाँ आकर फिर एकाध जन्म बाद जाना होता है। अंदर कुछ हिसाब बाँधा हो तो वह चुका देना पड़ता है न! लेकिन जाएँगे वहीं। हिसाब तो चुकाना ही पड़ेगा। यह ज्ञान लेने से पहले बीच में एकाध कोई ऐसा खराब कर्म बाँध दिया हो, तो उसका दंड तय हो चुका होता है, उस दंड को तो भुगतना ही पड़ेगा न! भुगत लेने के बाद छूट जाएगा। जन्म अर्थात् दंड।

प्रश्नकर्ता : यानी कि ज्ञान लेने के बाद कोई भटक भी सकता है? क्या कोई हमेशा के लिए भटक सकता है? ज्ञान लेने के बाद?

दादाश्री : भटक सकता है न! ज्ञान परिणामित नहीं हो तो उसका अर्थ ही नहीं रहा न! उल्टा चलता है, उल्टा ही। सभी का उल्टा ही बोलता रहे तो?

प्रश्नकर्ता : उल्टा का मतलब क्या है?

दादाश्री : कईं उल्टा बोले यानी कि अगर आपकी बात निकले तो इतना-इतना उल्टा बोल देते हैं। क्या ऐसे लोग नहीं होते?

प्रश्नकर्ता : तो क्या ज्ञान की विराधना करते हैं वे?

दादाश्री : ज्ञान की और ज्ञानी की और ज्ञानी के फॉलोअर्स की और सभी की विराधना करते हैं। पुस्तकों की और सभी की। 'ये पुस्तकें मेरे हाथ आएँ तो फेंक दूँ', ऐसा कहते हैं। फिर तो उनकी पुस्तकों की विराधना करता है। यों पुस्तकें फेंक देता है, 'चल हट!

अगर ये किताबें लाया तो समुद्र में फेंक दूँगा, नहीं तो जला दूँगा।' फोटो की विराधना कर देता है, जला देता है फोटो।

प्रश्नकर्ता : जिसने ज्ञान लिया है, उसकी बात है?

दादाश्री : हाँ, वह सब तो बदल सकता है न!

प्रश्नकर्ता : क्या ज्ञानी के महात्माओं की भी विराधना नहीं करनी चाहिए?

दादाश्री : ज्ञानी के महात्मा भी ज्ञानी ही कहे जाएँगे न! ये महात्मा, इनकी क्या बात करते हो? जिन्होंने खुद के हथियार नीचे रख दिए हैं। किसी को मारने का भाव नहीं है, किसी को लूट लेने की इच्छा नहीं है। किसी से कुछ छीन लेने की इच्छा नहीं है। ऐसे, जिन्होंने हथियार नीचे रख दिए हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ के!

अनंत जन्मों के नुकसान हैं न, तो यदि एक ही जन्म में वह नुकसान खत्म करना हो तो क्या करना होगा? दादा के पीछे पड़ जाना चाहिए। दादा नहीं हों, तो दादा के कहे हुए शब्दों के पीछे पड़ जाना चाहिए। उनके पीछे पड़कर, अनंत जन्मों के घाटे को एक जन्म में खत्म कर देना चाहिए। कितने जन्मों का घाटा है? हम सब ने अभी तक अनंत जन्म लिए हैं, वह सारा घाटा तो है ही न? वह घाटा खत्म करना होगा या नहीं?

अब तो बीड़ा उठाना है कि, 'सिर्फ यही, और कुछ भी नहीं।' न हो तो मोक्ष का *नियाणां* (अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक चीज़ की कामना) कर लेना, तो ज़्यादा जन्म नहीं होंगे। दो-तीन जन्म होने वाले होंगे तो वे भी नहीं होंगे।

जिस तारीख को मुंबई जाना हो तो वह अपने *लक्ष* में रहता है, उसी तरह यह *लक्ष* में रहना चाहिए कि हमें मोक्ष में जाना है। कहाँ जाना है, यदि वही *लक्ष* में नहीं रहे तो किस काम का? मुंबई जाना है, वह *लक्ष* में रहता है न? या भूल जाते हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं भूल सकते।

दादाश्री : उसी प्रकार से यह भी *लक्ष* में रहना चाहिए। हम तो अब उस तरफ जाने को निकले हैं। जल्दी आए या देर से आए लेकिन उस तरफ जाने को निकले हैं। जितना ज़ोर लगाएँगे उतना अपना। ये (दादा) प्रत्यक्ष मिल जाएँगे तो प्लेन की तरह चलेगा, वर्ना यदि सूक्ष्म दादा होंगे तब भी ट्रेन की तरह चलेगा। जितना प्लेन से जा पाओ, उतना ठीक है। फिर भी काफी हल आ जाएगा। सिर्फ एक जन्म ही बाकी रहना चाहिए, वह भी पुण्य भोगने के लिए। हमारी आज्ञाओं का पालन किया है न, उससे ज़बरदस्त पुण्य इकट्ठा होगा।

मृत्यु के समय जागृति

अब निःशंक हुए हो, अब आज्ञा में रहो। बुढ़ापा निकाल दो। यह शरीर चला जाए तो भले जाए, कान काट ले तो काट ले, *पुद्गल* को फेंक ही देना है न। *पुद्गल* पराया है। पराई चीज़ है, अपने पास नहीं रहेगी। यह तो जब उसका टाइम आएगा, व्यवस्थित का टाइम आएगा, उस दिन जब भी होगा तब ले जाएगा। भय नहीं रखना है। आपको कहना है, 'ले जाओ'। इसका मतलब यह नहीं कि कोई फालतू बैठा है ले जाने के लिए। लेकिन उससे आप में निर्भयता रहेगी। 'जो होना हो वह हो', कहना।

ऐसा है, यह चंदूभाई नामक शरीर, हमारे लिए महामित्र समान हो गया है क्योंकि इस शरीर में रहते आपने अक्रम ज्ञानी को पहचाना है और आपको अक्रम ज्ञान प्राप्त हुआ है और वह अनुभव में सिद्ध हुआ है। इसलिए अब इस शरीर से कहना कि 'हे मित्र, तेरा जो इलाज करना होगा, वह मैं करूँगा। अगर हिंसक इलाज होगा तो वह भी करूँगा लेकिन तू रहना।' आपकी ऐसी भावना होनी चाहिए। यह शरीर नहीं, ऐसे बहुत सारे शरीर चले गए, सभी शरीर व्यर्थ ही गए हैं न! अनंत जन्मों से शरीर व्यर्थ ही गए हैं। लेकिन इस शरीर ने तो आपको यथार्थ फल दिखाया है न! और चंदूभाई के नाम पर दिखाया है न! अतः इस शरीर का ध्यान रखना, और अब काम निकाल लो।

प्रश्नकर्ता : हमने ज्ञान लिया है तो हमें मृत्यु के समय क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहना है। आपके अंदर जो कुछ भी चल रहा हो, उसे देखते ही रहना। और वैसा नहीं रह पाए तो दादा की पाँच आज्ञा में रहना। रिलेटिव-रियल को देखते रहना।

अंत समय में संभाल लेंगे दादा

प्रश्नकर्ता : क्या महात्माओं को पता चल सकता है कि मृत्यु कब होनी है? यदि वह आपकी सभी आज्ञा का पालन करता है और ज्ञाता-द्रष्टा रहता है तो क्या उसे ऐसा पता चल सकता है कि उसका अंत समय आ गया है?

दादाश्री : पता चलता है। यदि नहीं चले तो भी हर्ज नहीं है लेकिन ऐसे में अंत तक दादा संभाल लेंगे। इसलिए चिंता मत करना। इतना करने वाले को दादा हर प्रकार से संभाल लेंगे।

प्रश्नकर्ता : उस समय कोई अनुभव होता है?

दादाश्री : अनुभव हो ही जाएगा न! आत्मा में ही रहेगा, उस क्षण। अंतिम एक घंटे आत्मा में ही रहेगा, बाहर निकलेगा ही नहीं क्योंकि बाहर का वातावरण भयानक लगेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा की भक्ति करने में जिस शरीर ने साथ दिया है और दे रहा है तो अंतिम समय में, देह छोड़ते समय अंतिम घड़ी में दादा हाज़िर रहें, ऐसा भाव करता हूँ, प्रभु मुझे ऐसा देना।

दादाश्री : जब कोई स्टीमर डूब रहा हो, तब उस स्टीमर की ममता छोड़ देते हैं या नहीं छोड़ देते? स्टीमर डूब रहा हो तो एक तरफ कहते हैं कि 'चलो, सभी पैसन्जर्स इन नावों में उतर जाओ। कुछ भी साथ में मत लेना। हाथ में वज़न मत लेना।' तब ममता छोड़ देते हैं न! नहीं छोड़ते? या फिर वह उस स्टीमर में ही बैठे रहते हैं? अरे फिर यदि ऐसा कहें कि 'हर एक परिवार में से सिर्फ दो ही लोग

लेने हैं!' तो क्या अपने बच्चों को जाने देता है? नहीं जाने देता? बूढ़ा खुद जाता है। यों क्या कोई किसी और को जाने देता है? वह तो सभी को हटाकर, उसे न जाने दे रहे हों, फिर भी चला जाता है न? अरे, सभी को धक्के मारकर चला जाता है। सारी ममता छोड़ देने की शर्त पर मुझे जीवित रखो। तो मरते समय ऐसे खेल होते हैं! अपने ज्ञान वाले तो अंदर आत्मा में घुस जाते हैं न, फिर अगर कोई कहे कि 'बाहर निकलो न!' तब कहते हैं 'नहीं भई, मुझे अब कुछ नहीं चाहिए।' इसे समाधि मरण कहा जाता है। बाहर शरीर में उं..उं... हो रहा होता है और अंदर खुद समाधि में रहता है। अंतिम घड़ी में इतना अधिक आज्ञा में रहता है। इसलिए कुछ चिंता नहीं करनी है।

प्रश्नकर्ता : मरते समय दादा हाज़िर रहेंगे?

दादाश्री : हाँ, हाज़िर तो, वास्तव में हाज़िर रहेंगे। यों भी हमेशा हाज़िर रहते हैं तो क्या मरते समय नहीं रहेंगे? अन्य दिनों में भी हाज़िर रहते हैं न? पूरे दिन रहते हैं! तो फिर हो चुका, 'पूरे दिन हाज़िर रहते हैं', ऐसा कहते हैं न!

होगा समाधि मरण

मृत्यु के समय पूरी तरह से आत्मा की गुफा में ही घुस जाता है, बाहर रहता ही नहीं है, खड़ा ही नहीं रहता न! वह उसका मुख्य गुण है। चारों तरफ से जब बहुत परेशानी हो, तब गुफा में घुस जाता है। यह सब से बड़ा गुण है। जबकि बाकी सभी को, जिन्हें ज्ञान न हो उनके पास गुफा तो होती ही नहीं, तो फिर उसमें जाएँगे कैसे?

चंदूभाई से अलग रहना चाहिए आपको। चंदूभाई अलग और आप अलग। अपना विज्ञान तो ऐसा है जो कि स्थिर रखता है। बहुत परेशानी आए, तब वह गुफा में घुस जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हर एक की अपनी-अपनी भय की लिमिट होती है! कोई ज़रा से भय से (आत्मा में) घुस जाता है और कोई ज़्यादा भय में घुसता है।

दादाश्री : हाँ, वह तो हर एक की अपनी लिमिट है लेकिन कुल मिलाकर स्वभाव तो अंत में खुद की गुफा में घुस जाने का ही है। मुझसे पूछते हैं कि 'दादा, मरते समय समाधि मरण होगा?' तो मैंने बताया, 'अभी समाधि रहती है और उस समय तो और भी अधिक भय होता है। अतः सब अंदर अपने घर में ही घुस जाएँगे बाहर निकलेंगे ही नहीं न!' अतः समाधि मरण ही होगा।

और जिसे ज्ञान नहीं है, वह कहाँ जाएगा? छोटी बेटी की शादी करना रह गया, तो वह उसमें घुस जाएगा, नहीं तो बाज़ार में घुस जाएगा। यानी कि वहाँ इन्टरेस्ट होता है बेटी में, तो बैठे-बैठे जैसे कि अभी जाते-जाते शादी करके जाना हो, ऐसी बात करता है। क्योंकि उसके पास ऐसा अन्य कोई साधन नहीं है न कि जब भय लगे तब कहाँ जाए! और आपके पास तो अपने आत्मा में जाने का साधन है जबकि उसके पास साधन नहीं है, वह कहाँ जाए? अतः ऐसी कोई संज्ञा ढूँढ निकालता है, ऐसी विषय से संबंधित।

प्रश्नकर्ता : दादा, यानी कि वैसा ही कारण शरीर बन चुका होता है?

दादाश्री : वह तो बन ही चुका है लेकिन इस तरह से अतिरिक्त चित्रण करता है। जबकि हम तो अंदर आत्मा में हैं इसलिए आत्मा में चले जाते हैं। वहाँ पर परमानंद है ही। वहाँ जाएँगे तो फिर कोई दुःख रहेगा ही नहीं न!

मृत्यु की वेदना के समय...

प्रश्नकर्ता : जिस समय इंसान मृत्यु शैया पर होता है उस समय उसे एक हज़ार बिच्छुओं की वेदना होती है तो उस समय यह ज्ञान रहता है या नहीं रहता?

दादाश्री : यह ज्ञान हाज़िर रहता ही है। मरते समय निरंतर समाधि देगा। जो अभी भी समाधि देता है, वह ज्ञान मरते समय तो हाज़िर रहेगा ही। मृत्यु के समय पूरी ज़िंदगी का सार हाज़िर हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : नसें खिंच रही होती हैं, नाड़ियाँ टूट रही होती हैं...

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। नसें चेतना रहित हो जाएँ न, फिर भी उसे अंदर ध्यान रहता है, शुक्लध्यान छोड़ता नहीं है न! एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद फिर छोड़ता नहीं है। अभी भी चिंता नहीं होने देता न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो जो ध्यान चिंता नहीं होने देता, ऐसा वर्ल्ड में कभी भी हुआ नहीं है, वैसी चीज़ आज हुई है, तो क्या वह आपको मरते समय छोड़ देगा? 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा भान रहे तो उसे समाधि मरण कहा जाता है। फिर चाहे शरीर को कितनी भी पीड़ा हो रही हो, वह नहीं देखना है। अर्थात् जागृत रहता है, उस समय। मोह कम हो जाता है तो ममता कम हो ही जाती है। उसके बाद ममता का पता चलता है कि 'जो मेरा नहीं है उसके प्रति ममता कर रहा हूँ।' इसलिए ममता छूट ही जाती है। इसलिए फिर समाधि मरण हो ही जाएगा।

अलग ही रहेगा अगले जन्म में

प्रश्नकर्ता : जब हमारी मृत्यु होती है तब हमारे साथ एक्ज़ेक्टली क्या-क्या आता है? जितना चित्रण किया होता है, वह?

दादाश्री : शुद्धात्मा हो गए, उसके बाद आपके साथ में अन्य कुछ भी नहीं आएगा। इस जन्म के माल-सामान में से सिर्फ एक-दो थैले साथ में आएँगे। जैसे कि ये साधु लोग एक-दो थैले नहीं रखते? घर-बार कुछ भी नहीं। यानी कि अंत में दो थैले रहेंगे, एक जन्म के लिए।

प्रश्नकर्ता : अभी तो ढेर सारे गोडाउन हैं।

दादाश्री : भले ही ढेर लगे लेकिन वह ढेर 'फॉरेन' का है न, आप अपना क्यों मानते हो? आपके 'होम' का है ही नहीं। उस भार को ही छोड़ दो। भार छोड़कर सो जाओ, आराम से! आपको देख लेना है कि ये सब सो गए हैं तो आप भी सो जाओ!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने हम में जो अलग कर दिया है आत्मा और शरीर, वह एक नहीं हो जाएँगे न?

दादाश्री : अलग ही रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : अगले जन्म में भी?

दादाश्री : हाँ, यहाँ से यदि बंधन सहित गया है तो वहाँ बंधन सहित ही रहेगा और अगर यहाँ से मुक्त होकर गया है तो वहाँ पर भी मुक्त ही रहेगा।

अगले जन्म में यह 'ज्ञान' रहेगा?

प्रश्नकर्ता : यह जो ज्ञान लिया है वह फिर से अगले जन्म में भी रहेगा?

दादाश्री : रहेगा। कोई ज्ञान चला नहीं जाता। यह ज्ञान भी नहीं चला जाएगा और अन्य कोई ज्ञान ले आओगे तो वह भी नहीं जाएगा। ज्ञान सब जगह रहेगा ही, जहाँ जाओ वहाँ।

प्रश्नकर्ता : अभी एक या दो जन्म बाकी बचे हैं, उसमें यह आत्मा का ज्ञान रहेगा?

दादाश्री : बाकी सारा ज्ञान तो अभी भूल गए हो न, वह साथ में नहीं आएगा। जिस ज्ञान में हो वही ज्ञान साथ में आएगा। जिस स्टैन्डर्ड में हो, उसी स्टैन्डर्ड से आपका वहाँ शुरू हो जाएगा। अतः यही सब रहेगा। आज यहाँ हैं और कल जो होंगे, उसमें फर्क नहीं है ज़रा भी। इतना ही है कि सिर्फ यह शरीर बदलेगा। अन्य स्थिति वैसी की वैसी ही। और अगर अभी चोर, बदमाश होगा तो उसे भी वहाँ पर जैसा है, वैसे का वैसा ही रहेगा! अतः वहाँ पर कोई कुछ ले नहीं लेगा। यह ज्ञान हाज़िर रहेगा। तभी तो मोक्ष में जा पाओगे न! वर्ना मोक्ष में कैसे जा पाओगे? और भूतकाल आपको याद नहीं रहता है, वह तो बहुत ही बड़ी चीज़ है! और भविष्य काल जो है, वह व्यवस्थित के ताबे में है। अतः आपको वर्तमान काल में रहना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी आप जो समकित देते हैं, ज्ञान देते हैं, तो यह ठेठ मोक्ष जाने तक कायम रहेगा न?

दादाश्री : यह, मोक्ष हो ही गया है, अब अन्य कोई (मोक्ष) लेने को रहा ही कहाँ? पहले अज्ञान से मुक्ति होती है। उसके बाद जब कर्म खत्म हो जाते हैं, तब दूसरी मुक्ति।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगले जन्म में ज्ञान लेना पड़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, यह ज्ञान तो साथ में ही रहेगा। यह ज्ञान जो प्राप्त हुआ है न, वही ज्ञान साथ में आएगा।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान जो बंद हुआ है वही परिणाम आपको तीर्थंकर के पास बैठा देगा। स्वभाव बदलने के बाद में यहाँ किसके साथ में रहने देंगे? माँ-बाप कहाँ से लाओगे? जब तीर्थंकरों का जन्म होता है तब वे राजा के घर में जन्म लेते हैं, अच्छे घर में। लेकिन दोस्त वगैरह तो आसपास के पटेल-बनिया वगैरह होते हैं, वही दोस्त होंगे न? नहीं। पहले ही वे देवता आ चुके होते हैं। देवता मनुष्य रूप में आकर उनके साथ खेलते हैं। वर्ना गलत संस्कार पड़ जाएँगे। यानी कि सब संयोगों के अनुसार मिल जाता है। आपकी तैयारी होगी तो सब संयोग तैयार ही हैं। आप टेढ़े तो सभी टेढ़े। आप सीधे हो जाओगे तो दूषमकाल बाधक नहीं रहेगा। आपको ज्ञानी पुरुष मिले हैं, ऐसा ज्ञान मिला है। फिर चाहे ऐसे सात दूषमकाल हों, तब भी आपको क्या हर्ज है? आप अपने ज्ञान में हो। आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होता। किसी का खराब हो, ऐसा भाव उत्पन्न नहीं होता कभी भी।

अत: धर्मध्यान के फलस्वरूप एक जन्म और होगा वापस। किसी के दो होंगे, किसी का एक होगा और किसी का यह ज्ञान मिलने से कुछ लंबा भी हो जाए लेकिन मुक्ति है, ऐसा तय है। क्योंकि कर्म बंधन रुक गया है।

प्रश्नकर्ता : बीच में, कुछ जन्मों के बाद यदि छुटकारा होना ही है तो फिर बाद के जन्मों में भी यह स्थिति चलती रहेगी न?

दादाश्री : स्थिति तो, यहाँ पर निन्यानवे तक पहुँचे होंगे तो निन्यानवे से फिर से आपका शुरू हो जाएगा। इन भाई का इक्यासी तक होगा तो इक्यासी से शुरू होगा।

प्रश्नकर्ता : यानी कि अगले जन्म में भी कर्म बंधन न हो, वैसी स्थिति जारी ही रहेगी।

दादाश्री : वही स्थिति जारी रहेगी। जो ज्ञान आप लेकर आए हो न, वह तो यहाँ पर अंतिम स्थिति के समय, मृत्यु के समय भी हाज़िर रहेगा और फिर अगले जन्म में वहाँ पर भी हाज़िर रहेगा।

प्रश्नकर्ता : अब अगला जन्म होगा, उस समय क्या हमें यह ज्ञान याद आ जाएगा?

दादाश्री : उसके लिए तो सारे निमित्त मिल जाएँगे। निमित्त के बिना तो नहीं हो सकता। निमित्त मिल जाएँगे, लेकिन वह सिर्फ ज्ञान का निमित्त नहीं, वह तो कोई उल्टा निमित्त भी मिल सकता है। उल्टा निमित्त मिलेगा तो ज्ञान हाज़िर हो जाएगा। कोई उल्टा करने वाला, परेशान करने वाला मिल जाएगा, तो आप सोचने लगोगे, सोचते हुए ज्ञान की लाइट हो जाएगी। या फिर कोई साधु-महाराज के पास बातें सुनने गए तो वहाँ पर जब महाराज बात कर रहे होंगे तब मन में ऐसा विचार आएगा कि ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा है। तब वह ज्ञान हाज़िर हो जाएगा और लाइट हो जाएगी। अर्थात् निमित्त के मिलने से वापस हाज़िर हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ये जो बाकी एक-दो जन्म बचे हैं, उनमें यह जागृति और यह मार्गदर्शन...

दादाश्री : वह सब तो साथ में रहेगा। यह जागृति, यह ज्ञान सबकुछ यहाँ से जैसा छूटा है, वैसा ही वहाँ पर हाज़िर हो जाएगा। बचपन से ही ऐसा कुछ होगा कि लोगों को आश्चर्य होगा। इसीलिए कृपालुदेव इतनी कम उम्र में भी लिख पाए थे न, सब। यदि ज्ञान हाज़िर नहीं होता हो तो इतनी उम्र में नहीं कर पाते।

प्रश्नकर्ता : अभी इस जन्म में अक्रम मिला है और बाद के जन्मों में भी क्रमिक में जाना पड़ेगा या अक्रम ही रहेगा?

दादाश्री : फिर रहा ही नहीं न! आत्मा प्राप्त हो गया तो हो गया, खत्म! फिर चाहे कुछ भी हो, सब *निकाली* है। अक्रम मिले या क्रमिक मिले, उससे हमें लेना-देना नहीं है। अपना यह ज्ञान हाज़िर ही रहेगा, अंतिम एक-दो जन्मों तक।

प्रश्नकर्ता : दादा, इस जन्म में तो आपका ज्ञान मिला है और आज्ञाएँ भी मिली हैं तो अब अगले जन्म में कोई ये आज्ञाएँ देगा या हम यहाँ से लेकर ही जाएँगे या फिर क्या होगा?

दादाश्री : ये आज्ञाएँ इस जन्म के लिए ही हैं। फिर इससे आगे तो आज्ञा आपके जीवन में उतर चुकी होंगी, आपको पालन नहीं करना पड़ेगा। इस जन्म तक ही आपको पालन करना होगा। अच्छी तरह पालन करोगे तो अगले जन्म में आपके अदंर ही उतर चुकी होंगी। आपका वह जीवन आज्ञापूर्वक ही होगा!

प्रश्नकर्ता : तो अगले जन्म में भी अभी की फाइलें वापस साथ में आएँगी?

दादाश्री : यदि फाइलों से कलह की होगी तो साथ में आएँगी और अगर नहीं की होंगी तो नहीं आएँगी।

जा पाएँगे महाविदेह क्षेत्र में

जिसे यहाँ पर शुद्धात्मा का *लक्ष* बैठ गया है, वह यहाँ पर इस भरत क्षेत्र में रह ही नहीं सकेगा। वह सहज रूप से महाविदेह क्षेत्र में खिंच ही जाएगा, ऐसा नियम है। यहाँ पर इस दूषमकाल में रह ही नहीं पाएगा। जिसे शुद्धात्मा का *लक्ष* नहीं है, वे सब तो यहाँ पर हैं ही। लेकिन जिसे *लक्ष* बैठ गया है, वह महाविदेह में एक जन्म या दो जन्म लेकर तीर्थंकर के दर्शन करके मोक्ष में चला जाएगा, ऐसा आसान और सरल मार्ग है यह!

प्रश्नकर्ता : हमें यदि महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेना है तो वह मिल सकेगा क्या?

दादाश्री : हाँ, क्यों नहीं मिलेगा? सब फोर्थ वालों को ही फिफ्थ में बैठाते हैं न? लेकिन जो पास हो जाएँगे, उन्हें। इस तरह एक जन्म के लिए, इंसान को यहाँ से क्षेत्र स्वभाव लेकर जाता है। यानी कि चौथे *आरे* के लायक स्वभाव हो जाएगा तो फिर जहाँ पर चौथा *आरा* है वह वहाँ पर चला जाएगा, वह क्षेत्र उसे वहाँ पर खींच लेगा। और यदि चौथे *आरे* में पाँचवें *आरे* के लायक जीव होंगे तो उन्हें यह पाँचवाँ *आरा* (काल चक्र का बारहवाँ हिस्सा) वहाँ से खींच लेगा। अत: आपको सीमंधर स्वामी के पास बैठने को मिलेगा और वहाँ पर आपको यह प्राप्ति हो जाएगी। वहाँ अंतिम दर्शन हो जाएँगे। हमारे दर्शन से भी उच्च प्रकार के दर्शन हैं वे। हम तीन सौ छप्पन डिग्री पर हैं, उनकी तीन सौ साठ डिग्री है। अत: वहाँ पर वे दर्शन होंगे। उस दर्शन की ही ज़रूरत है अब, यानी कि उसमें सब आ जाएगा। वे दर्शन हो जाएँगे तो मोक्ष हो जाएगा।

ऐश्वर्य पाँच आज्ञा द्वारा

और पुण्य बंधन ऐसा होगा कि वहाँ पर मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। वहाँ पर तो अरे... जहाँ पर तैयार बंगले व गाड़ियाँ होंगी, वहीं पर जन्म होगा और वहाँ पर फिर वे भगवान के पास छोड़ आएँगे गाड़ियों में। इससे ऐसा पुण्य बंधन होगा। हमारी आज्ञा पालन करने से पुण्यानुबंधी पुण्य का बंधन होगा। ज़रा भी मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। यहाँ तो धक्का-मुक्की, इसे भी कहीं जीवन कहते हैं? इसे क्या पुण्य कहते हैं? वहाँ पर तो जैसे ही सोचा कि, 'प्रभु के पास जाने का टाइम हो गया', तो वह घड़ी में देखे, उससे पहले तो गाड़ी आकर खड़ी हो जाएगी! यानी इस तरह से सारी तैयारियाँ रहेंगी आगे से आगे। अत: अब आप हमारी आज्ञा का पालन करना तो निरंतर समाधि रहेगी, उसकी गारन्टी देता हूँ। महाविदेह क्षेत्र में से वापस आ नहीं सकते न! वापस आने का रास्ता ही नहीं है न! राग-द्वेष करेंगे तभी वापस आने की शुरुआत होगी।

कर्मों के धक्के से जन्म होंगे, एक-दो जन्म हो सकते हैं शायद, लेकिन अंत में फिर सीमंधर स्वामी के पास ही जाना पड़ेगा। यहाँ पर हिसाब बाँधा हुआ होगा न, पहले के कुछ गाढ़ हिसाब बंध गए होंगे तो वे खत्म हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : यहाँ पर?

दादाश्री : कोई चारा ही नहीं है न! यह तो रघा सुनार का तराजू है, ज़बरदस्त न्याय है! शुद्ध-प्योर न्याय! यहाँ पर चलेगी ही नहीं न गड़बड़।

कब जाएँगे, मोक्ष में?

प्रश्नकर्ता : हम मोक्ष में जाने वाले हैं, ऐसा कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : नहीं, पर उसकी जल्दी भी क्या है आपको?

प्रश्नकर्ता : नहीं, जल्दी तो नहीं है लेकिन पता तो चलना चाहिए न, कि कब जाएँगे, दस जन्म बाद, बीस जन्म बाद, सौ जन्म बाद...

दादाश्री : सब पता चलेगा। अपना आत्मा है न, वह थर्मामीटर जैसा है। भूख लगने पर पता नहीं चलता? जब संडास आने वाली हो तब आपको पता चल जाता है या नहीं? सब पता चलता है। कहाँ जाना है, वह सब भी पता चलता है। कौन से योनियों में जाना है, वह भी पता चलता है। निष्पक्षपाती रूप से देखता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उस स्टेज पर आना पड़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, लेकिन वह आत्मा स्टेज वाला ही है। निष्पक्षपाती रूप से देखना है। साथ-साथ हमें पक्षपात में नहीं पड़ना चाहिए। संडास जाने का हमें अंदर पता तो तुरंत चल जाता है न, लेकिन साथ-साथ पक्षपात का मतलब क्या है? अपने यहाँ कोई सोने का व्यापारी आए, उसके साथ बातें करने में लगे रहें तो फिर क्या होगा? तो सोने के प्रति पक्षपात होने पर, थर्मामीटर जो कि संडास जाने का दिखा रहा

होता है, वह फिर बंद हो जाता है। वर्ना यदि पक्षपात नहीं हो न, तो आत्मा थर्मामीटर ही है, सबकुछ दिखाए ऐसा है।

मोक्ष में सब समान

प्रश्नकर्ता : आप तो हमें मोक्ष की गारन्टी देते हैं, लेकिन जब मोक्ष में जाएँगे तब वहाँ पर आप भी मोक्ष में होंगे न, तब दादा को कैसे पहचानेंगे?

दादाश्री : उसके बाद पहचानने की क्या ज़रूरत है? यहाँ पर तो जान-पहचान वाले का उपकार मानना पड़ता है। वहाँ मोक्ष में तो परिचय ही नहीं रहता। यानी वही ठीक है। क्योंकि मोक्ष में समानता है। मोक्ष किसे कहा जाता है? मोक्ष अर्थात् कोई *ऊपरी* नहीं और कोई अन्डरहैन्ड नहीं।

यहाँ पर मोक्ष क्यों नहीं होता? वह इसलिए कि यदि मेरे *ऊपरी,* ऐसे तीर्थंकर अगर यहाँ पर होते तो सिर्फ दर्शन करते ही मोक्ष हो जाता। इस हद तक की तैयारी है अपने यहाँ। सिर्फ दर्शन ही! मिल जाते और दर्शन हो जाते तो अंदर पूर्णाहुति हो जाती। लेकिन हैं नहीं, अब किसके दर्शन करवाएँ? मूर्ति तो चलेगी नहीं। अत: वहाँ जाने के बाद तो सिर्फ दर्शन करने से ही मोक्ष है।

हम सब से बाद में जाएँगे

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि 'मुझे मोक्ष की जल्दी नहीं है', तो ऐसा क्यों?

दादाश्री : मुझे क्या जल्दी है? मुझे लगता है कि मेरा मोक्ष हो ही चुका है फिर, मोक्ष की जल्दी किसे होती है कि जिसे इन दु:खों से जल्दी छूटना हो न, वह जल्दबाज़ी करता है। मेरा तो मोक्ष हो ही चुका है। अब मेरी इच्छा है कि लोगों का कल्याण हो। उसके बाद आराम से जाऊँगा।

प्रश्नकर्ता : हमें भेजने के बाद!

दादाश्री : हाँ, सब चले जाएँ तो अच्छा है, ऐसी मेरी इच्छा है!

प्रश्नकर्ता : महाविदेह क्षेत्र और मोक्ष। अब आपने ऐसा कहा था कि 'पहले आपको मोक्ष में भेजेंगे। हम बाद में जाएँगे'।

दादाश्री : हाँ, बाद में आएँगे।

प्रश्नकर्ता : वह क्या लघुत्तम भाव है आपका?

दादाश्री : नहीं, लघुत्तम भाव नहीं है। हमारा बहुत काम बाकी है।

प्रश्नकर्ता : कितने समय तक करेंगे वह काम?

दादाश्री : नहीं, उसमें हर्ज नहीं है। ऐसा है कि मुझे जिस तरह से जाना है न, उस स्टेशन को आने में देर लगेगी।

प्रश्नकर्ता : तो हमें जल्दी भेज देंगे?

दादाश्री : इनमें से कितने ही लोग हैं जो रहेंगे, मेरे साथ में आएँगे। ऐसा कुछ पता लगाने जैसा नहीं है। अपने आप क्या होता है, वह देखते रहो!

क्या वापस आ सकते हैं महाविदेह से?

प्रश्नकर्ता : दादा, एक बार हमारे परमाणु हल्के हो जाएँ और हम वहाँ महाविदेह क्षेत्र में चले जाएँ तो फिर उसके बाद वहाँ से वापस गिर तो नहीं जाएँगे न?

दादाश्री : अगर उसे गिरना हो तो कहीं से भी गिर सकता है। अगर खुद की इच्छा नहीं हो तो कोई भी नहीं गिरा सकता। दूसरे जो लोग गिरा रहे होंगे, वे भी नहीं गिरा पाएँगे आपको। खुद की इच्छा होगी तभी सब गिराएँगे। आपकी खुद की इच्छा होगी तो कभी भी, रात को कुएँ में जाकर भी गिर सकता है। उसे क्या कह सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसी शंका करने की ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : शंका करने की ज़रूरत नहीं है। यह तो कहना पड़ता

है ताकि वह बिल्कुल निरंकुश न हो जाए कि, 'अब हमें कोई चीज़ बाधक नहीं है।' सावधान तो रहना पड़ेगा न! शायद अगर पिछला कर्म वैसा हो तो गिरा भी सकता है। फिर भी यह ज्ञान ही उसे आगे ले आएगा। यह ज्ञान तो डूबे हुए को भी तार दे, ऐसा ज्ञान है। डूबती चीज़ को तार दे। अनुभव होने के बाद में वह बात तो समझ में आती है न!

वीज़ा मिल गया है, टिकिट बाकी

प्रश्नकर्ता : दादा, जब महाविदेह क्षेत्र में जाएँगे तब तीर्थंकर को तो प्रत्यक्ष देख पाएँगे न?

दादाश्री : हाँ, देख पाओगे। उनके सामने ही बैठोगे। प्रत्यक्ष देखकर उनके सामने ही बैठना है। उनके दर्शन करने के लिए ही, उसी उद्देश्य से वहाँ जाना है। मेरे पास वे दर्शन नहीं हैं। अभी कमी है, इस दर्शन में। उतना संपूर्ण फल नहीं मिलेगा, उनके तो पूर्ण दर्शन कहलाते हैं।

टिकिट करवाई? वीज़ा करवाया महाविदेह का? अपने ज्ञान के प्रति सिन्सियर रहने को ही वीज़ा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : और 'टिकिट मिलना' अर्थात्?

दादाश्री : टिकिट मिल जाए तो, उसकी बात ही अलग है। आपकी दशा बिल्कुल मेरे जैसी ही होकर रहेगी। क्योंकि फिर दखल करने वाला कोई रहेगा ही नहीं। अभी कुछ समय के लिए जो चेहरा बिगड़ जाता है न, चेहरे पर से आनंद चला जाता है कभी भी, तो वह इसलिए कि वह आपकी पतंग को काटता है। फिर भी पतंग की डोरी आपके हाथ में है। मेरी पतंग को काटने वाला तो कोई है ही नहीं! जब आपका भी ऐसा हो जाएगा तो हो चुका! टिकिट आ गई! यह वीज़ा तो आ गया, वीज़ा मिल गया!

[10]

अक्रम विज्ञान की बलिहारी

विज्ञान अर्थात् कैश बैंक

और यह तो फिर विज्ञान है। विज्ञान किसे कहते हैं? जो सिद्धांत रूपी हो। सिद्धांत अर्थात् जो विरोधाभासी न हो। और, नकद फल मिलना चाहिए, उधार नहीं चलेगा। इतना किया तो फिर अगले दिन उसका फल मिलना ही चाहिए। अभी आप मेरे साथ यहाँ पर बैठे हो, उसका भी नकद फल मिलेगा। यहाँ पर जो भी करते हो, उन सब का नकद फल मिलेगा, उधार नाम मात्र को भी नहीं, उसे कहते हैं विज्ञान। अब यहाँ पर आप एक चक्कर लगाते हो तो आपको नकद फल मिले बगैर रहेगा नहीं। यह तो विज्ञान है, आप जहाँ से पकड़ोगे वहाँ से मेल बैठेगा।

अनंत अंधकार को प्रकाशित किया, अक्रम विज्ञान ने

प्रश्नकर्ता : ज्ञान प्राप्ति के बाद पुण्यशाली ही रहेगा न?

दादाश्री : आत्मज्ञान प्राप्त करना तो कभी होता ही नहीं है। पहली बार ऐसा ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं। अक्रम विज्ञान है ही ऐसा। यह तो विज्ञान है इसलिए ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। क्रमिक मार्ग में तो रिलेटिव ज्ञान है और यह अक्रम विज्ञान तो क्रियाकारी ज्ञान है। आप बैठे हुए हों, तब भी वह अंदर क्रिया करता ही रहता है। नहीं करता?

प्रश्नकर्ता : करता है।

दादाश्री : सावधान करता है या नहीं करता?

प्रश्नकर्ता : करता है।

दादाश्री : यह तो क्रियाकारी ज्ञान है। यह तो अक्रम विज्ञान है और यह निमित्त ही अलग प्रकार का है। बहुत बदलाव आ गया है, वह सब देखो न! ये सारे बदलाव आए हैं न?

प्रश्नकर्ता : दादा की दुआ से अंतिम घड़ी वालों में भी बल आ जाता है। यानी कि अच्छा परिवर्तन हो जाता है। ऐसा किस कारण से?

दादाश्री : हाँ। सब बदल जाता है। यह विज्ञान ही ऐसा है। विज्ञान का बल ऐसा है। सभी अंधकार में ठोकरें खाते-खाते चल रहे थे और किसी ने टॉर्च लाइट की तो सभी को ठोकर लगनी बंद हो गई। ऐसा है यह विज्ञान। और लालटेन दिखाने से तो किन्हीं दो-तीन लोगों को ही ठोकर नहीं लगती, पर बाकी सब को लगती है।

पटंतर प्राप्त करवाने वाले को सर्वस्व समर्पण

प्रश्नकर्ता : आपने ये जो आज्ञाएँ दी हैं, यह जो जागृति करवाई है, उसमें ब्रह्मांड के भाव समाए हुए हैं। अब उससे आगे कुछ भी कहने को नहीं रहता।

दादाश्री : तमाम शास्त्र, सभी आगम, इसमें आ गए। चौबीस तीर्थंकरों का पूरा विज्ञान है यह!

प्रश्नकर्ता : हमें दिल में जो महसूस हुआ, वह आपको बता दिया साहब!

दादाश्री : जिनके माध्यम से आपने *पटंतर* (जब अज्ञान से मुक्ति पाकर जीव आत्मज्ञान प्राप्त करता है, वह स्थिति) पाया है, उन्हें सर्वस्व समर्पण करने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाना चाहिए। सर्वस्व अर्पण कर देना, कहते हैं। जिनके द्वारा आपने *पटंतर* प्राप्त किया है। क्या थे और क्या हो गए! *पटंतर* को जात्यांतर कहा जाता है।

हम जो पाँच आज्ञा देते हैं न, आप जितना उन पाँच आज्ञाओं का पालन करोगे, उतना लाभ होगा। कम पालोगे तो ज़रा कम लाभ रहेगा। लेकिन क्रोध-मान-माया-लोभ तो चले ही जाते हैं। कमज़ोरियाँ चली जाती हैं। यह तो ऐसा है न, कि यह जो ज्ञान प्राप्त हुआ है न, तो पाँच अरब रुपये देने पर भी ऐसा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। पाँच लाख जन्मों में भी नहीं हो सकता, ऐसा एक घंटे में हो जाता है। इस पर टाइम बिगाड़ने जैसा नहीं है। यह विवरण करने जैसी चीज़ नहीं है। दिस इज़ द कैश बैंक ऑफ डिवाइन सॉल्यूशन। कैश बैंक में ऐसा नहीं कह सकते कि आपका चेक कितने बजे आएगा और कितने बजे मुझे पेमेन्ट मिलेगा, ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं कह सकते। यह समझ में आ रहा है न? और कैश बैंक कहने पर आप समझ जाओगे या नहीं समझोगे? क्या लगता है आपको?

दूज के बाद पूनम की राह पर

यहाँ ज्ञान लेने से पहले भी कोई ज्ञान निरंतर काम कर रहा था लेकिन वह ज्ञान अधोगति में ले जाने वाला ज्ञान था और यह ज्ञान भी निरंतर काम ही करता रहता है और यह मोक्ष में ले जाएगा। इसे भगवान ने समकित कहा है।

यहाँ पर ज्ञान लेने के बाद में वह उग निकलता है। अगले दिन ही दूज के चंद्रमा जैसा प्रकाश दिखाई देता है लेकिन फिर उस पर पानी छिड़कना पड़ता है। अगर सत्संग में नहीं आओगे तो यों ही कुछ नहीं हो पाएगा। किसी दूसरे शहर में रहते हों फिर भी ठीक से पानी छिड़कवा लोगे तो पेड़ बड़ा होगा। उसके बाद हमेशा के लिए शांति हो जाएगी!

अनादि की अमावस्या थी न, उसके बजाय दूज तो हुई। दूज का चंद्रमा दिखाई दिया। अब धीरे-धीरे तीज होगी, चौथ होगी। हमारे कहे अनुसार अगर हमारी आज्ञा में रहोगे तो यह सब बढ़ता जाएगा और पूनम होने पर सब संपूर्ण हो जाता है। 'यह' मूल वस्तु प्राप्त हो गई और अंदर आनंद उत्पन्न हुआ है। अब धीरे-धीरे जिस प्रकार दूज

का चंद्रमा उगता है और उसमें से पूनम होती है, पूनम और दूज में फर्क तो है न? ये सारे फेज़ेज़ बदलते रहते हैं। फेज़ेज़ ऑफ द मून। उसी प्रकार इस ज्ञान के फेज़ेज़ हैं। पूनम हो गई तो सबकुछ जानना पूरा हो गया।

अक्रम में साधना कौन सी?

प्रश्नकर्ता : स्थूल में से सूक्ष्म और सूक्ष्मतर तक पहुँचने के लिए इस प्रयोग की किस प्रकार से साधना करनी चाहिए?

दादाश्री : कोई साधना ही नहीं करनी है। मूल स्वरूप से आप खुद ही सूक्ष्मतम हो, फिर अब साधना किसकी करनी है? और अब स्थूल में जाएँगे ही नहीं। स्थूल और सूक्ष्म, वह सब *पुद्गल* में रह गया। यानी कि वह फाइल हो गई। आप सूक्ष्मतम बन गए। अब कोई साधना नहीं करनी है। साधना तो क्रमिक में होती है। आप खुद ही शुद्धात्मा बन गए। अब बाकी क्या बचा? अब आज्ञा में रहना है।

यह विज्ञान है। इसे पूरी तरह से समझ लेना। क्योंकि यदि इस बटन के बजाय कोई और बटन दबा दोगे तो ठंड के दिनों में पंखा चलने लगेगा। ज़रा सी भूल हुई कि फिर चिल्लाओगे, 'अरे, ठंड से मर गया!' 'अरे, लेकिन बटन दबाने में यह भूल हो गई है।' इसलिए ज़रा समझ लेना। पूरी तरह सूक्ष्मता से समझ लेने जैसा विज्ञान है यह और तुरंत ही मुक्ति फल देता है। आज से ही मुक्ति हो गई।

परिग्रह का परिबल अक्रम में

प्रश्नकर्ता : तो जितनी जागृति बढ़ती है उतनी ही प्रगति होती है?

दादाश्री : जागृति से ही प्रगति होती है। जितनी निद्रा उतनी परेशानी। जागृति कब बढ़ती है? परिग्रह कम हो जाए, तब। जैसे-जैसे ज़रूरतें कम होती जाएँगी वैसे-वैसे जागृति बढ़ेगी।

प्रश्नकर्ता : परिग्रह की बात आई है न, तो फिर क्रमिक में और अक्रम में फर्क क्या है? क्या अक्रम में भी परिग्रह कम होना

चाहिए? 'परिग्रह जितना कम, उतनी ही जागृति अधिक', यह क्रमिक में लागू होता है, और अक्रम में भी लागू होता है क्या?

दादाश्री : अक्रम में तो कुछ भी लागू नहीं होता, लेकिन अक्रम में भी उसे अक्रम का पूरा-पूरा लाभ नहीं मिला होता और फिर अगर परिग्रह बहुत हो तो फिर उसी में उलझा रहता है न! परिग्रह कम हो तो छूट जाता है। अक्रम का पूरा लाभ कब मिला कहा जाएगा कि चाहे परिग्रहों का कितना भी राज हो, उसके बावजूद यह भी चलता रहे और वह भी चलता रहे। उसकी तो बात ही अलग है। लेकिन अंदर तो फिर वे तरह-तरह के उल्टे स्वभाव भरे होते हैं न, लोभ के और कपट के वगैरह। वे सब गड़बड़ कर देते हैं। जिसका हार्ट प्योर हो, उसकी बात अलग है! प्योरिटी की वजह से फायदा होता है न!

तू ही वैसा बन जा न, प्योर, इस जन्म में। आपको अपने दोष दिखाई दें, किसी को कहना ही न पड़े, वहाँ तक पहुँच जाओ तो बहुत है। अब अगर दोष देर से दिखाई दें तब भी हर्ज नहीं है, लेकिन वे तो खुद को दिखाई देने चाहिए। किसी और को निकालने पड़ें, उसके बजाय खुद को ही दिखाई दें तो उसके जैसा तो कुछ भी नहीं है न! स्वतंत्र!

प्रश्नकर्ता : स्वतंत्र अर्थात् उसमें भी जागृति की ही बात आती है न, दादाजी?

दादाश्री : यह सब जागृति ही है। जागृति नहीं थी, इसी वजह से तो लोग ऐसे थे। जागृति एकदम से बढ़ गई। ज्ञान लेने के बाद में एक दिन में ही बदलाव हो गया।

प्रश्नकर्ता : यह जो चरणविधि करते हैं, क्या वह जागृति के लिए है?

दादाश्री : जागृति बढ़ती है उससे। दिनोंदिन जागृति बढ़ती जाती है। आवरण टूटते जाते हैं और जागृति बढ़ती जाती है। भूलें तो बताने पर ही पता चलती हैं न?

प्रश्नकर्ता : कितनी ही गलतियाँ खुद को पता चल जाती हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन जब तुझे पता नहीं चलता तभी हमें दिखानी पड़ती हैं न? वे दिखानी न पड़ें और कभी न कभी खुद को दिखाई देने लगें, उतनी प्रगति करनी है।

ज्ञान का अपच कब?

प्रश्नकर्ता : तो फिर आत्मा की अनुभूति के आंतरिक अनुभव कैसे होने चाहिए?

दादाश्री : इसमें तो, आंतरिक अनुभव नहीं, इसमें तो आत्मरूप ही हो जाते हैं। निरंतर आत्मा बन जाता है। एक क्षण के लिए भी बाकी नहीं रहे, उस तरह का यह सभी को निरंतर रहता है। आपको तो आत्मा का अनुभव होने के बाद कुछ देर के बाद वापस चला जाता है। उसे अनुभूति कहते हैं। जिस तरह शक्कर खाने के बाद में मुंह मीठा नहीं रहता, खाते हैं, उतने समय तक ही मीठा लगता है। लेकिन उसका अनुभव हो गया कि भाई, शक्कर ऐसी मीठी होती है। जबकि इसमें तो निरंतर अनुभूति रहा ही करती है। इन सभी को निरंतर रहती ही है। अतः अनुभूति के स्टेशनों के बारे में पूछने की ज़रूरत नहीं है यहाँ पर। निरंतर रहता है फिर स्टेशन क्यों पूछना? ऐसा कर लो कि आपको भी वैसा हो जाए। आप कच्चे रह जाओगे, तो वह तो नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : मुझे यह पूछना था कि ज्ञान का अपच हो सकता है या नहीं?

दादाश्री : वह तो एक खास उम्र तक के लोगों को होता है। क्योंकि ज्ञान को पूरी तरह से नहीं समझा है इसलिए फिर वह पचता नहीं है। अतः यह पूरा ज्ञान पूरी तरह से समझ लेना चाहिए न! जो यहाँ पर रोज़ सत्संग में आते हैं न, उन्हें कोई परेशानी नहीं होगी। लेकिन जो लोग सत्संग में नहीं आते, उन्हें अजीर्ण हो जाता है और फिर उल्टे रास्ते पर चले जाते हैं।

अक्रम में गिरने का भय

प्रश्नकर्ता : दादा! अब क्रमिक में ऊपर चढ़ते-चढ़ते ग्यारहवें गुणस्थानक से नीचे गिर सकता है, तो क्या अक्रम में ऊपर चढ़ने के बाद में गिरने का भय है?

दादाश्री : नहीं। इसमें गिरने का भय ही नहीं है न! इसमें तो यदि आज्ञा में रहे तो फिर कौन गिरा सकता है? आज्ञा चूक गया तो गिरा। वर्ना यहाँ गिरने जैसा कुछ नहीं है। यहाँ पर तो इतना ही है कि बस आगे नहीं बढ़ेगा। यहाँ गिरने का स्थान ही नहीं है।

क्रमिक मार्ग में वह मोह को उपशम करते-करते आगे बढ़ता है, क्षय किए बिना। वहाँ पर जब सारे परिणाम उपशांत हो जाते हैं तब वह भगवान बन जाता है। लोग उसे भगवान जैसा मानते हैं। फिर उसे मन में ऐसा लगता है कि 'अब मैं कुछ हूँ।' वही वापस गिरने की निशानी है। जो मोह क्षय नहीं हुआ है, वह फिर से फटता है। मोह क्षय हो जाना चाहिए। चारित्र मोहनीय को क्षय करना पड़ेगा। आप फाइल का *निकाल* करते हो न, तब आपने आज्ञा का उपयोग किया और वहीं से शुद्ध उपयोग। जितने समय तक आज्ञा में रहते हो, उतना शुद्ध उपयोग ही रहता है। फिर भी यदि आज्ञा में रहे और सामने वाले को दोषित माने कि, 'इसने मेरा बिगाड़ दिया', तो वह शुद्ध उपयोग नहीं कहा जाएगा। कोई गुनहगार है ही नहीं न! शुद्ध उपयोग की दृष्टि से कोई गुनहगार है ही नहीं जगत् में! शुभाशुभ दृष्टि से गुनहगार है।

अहंकार सजीवन कब?

प्रश्नकर्ता : कोई मुझसे कहे कि, 'आप ऐसे हो, वैसे हो, पागल हो', यदि ऐसा कहे तो उसका *उपराणां* (रक्षण करना, तरफदारी करना) नहीं लेना चाहिए, रक्षण नहीं करना चाहिए। कहना चाहिए कि, 'हम तो शुरू से ही ऐसे हैं'। क्या यह बात सही है कि *उपराणां* लेने से और रक्षण करने से निर्जीव अहंकार, सजीव हो जाता है?

दादाश्री : वह सजीव नहीं हो जाता, लेकिन *उपराणां* से आपको और भी ज़्यादा दखल करना पड़ता है। कुछ देर भी अगर *उपराणां* लिया तो पूरी रात परेशानी में बीतती है। यदि वह कहे कि 'जैसा आप कहो, वैसा।' तो हल आ जाएगा। आपको उससे क्या कहना है कि 'आप जैसा कह रहे हैं, हम वैसे ही हैं।' आप अगर उनके साथ प्लस-माइनस करने जाओगे तो पूरी रात परेशानी का हल नहीं आएगा। अत: आपको कहना है कि, 'जैसा आप कह रहे हैं, हम वैसे ही हैं।' ऐसी बात करेंगे तो फाइल का कुछ *निकाल* हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : *निकाल* हो जाएगा, उसके बाद?

दादाश्री : उसके बाद हमें क्या?

प्रश्नकर्ता : उसके सामने हमने हार कबूल कर ली, तो उसका क्या? आप कह रहे हैं, वैसे ही हैं।

दादाश्री : जो हार कबूल कर लेता है, उसे फिर और कुछ करने को रहा ही क्या? यह तो हमने अपना तरीका बता दिया। हम जिस तरह से चले हैं, वह तरीका।

और यदि पाँच आज्ञा चूका कि अहंकार सजीव होने लगेगा। यह अहंकार सजीव हुआ तो जैसा पहले था, वहीं पर आकर खड़ा रहा। यदि आप आज्ञा चूकते हो तो वह सजीव भी हो सकता है, देर ही नहीं लगेगी न! कई लोगों में वापस सजीव हो गया है न! आज्ञा चूके, पाँच आज्ञा छोड़ दो, तब तो पूरा सजीव हो जाएगा। जितने लोगों ने छोड़ दिया है, उनमें सजीव हो भी गया है। पाँच आज्ञा नहीं होंगी तो कुसंग आपका यह सब खा जाएगा। चारों तरफ कुसंग है तो वह आपके अहंकार की निर्जीवता को पूरी तरह से खा जाएगा।

अक्रम में फिसलने के तीन स्थान

प्रश्नकर्ता : ज्ञान मिलने के बाद संसार में फिसलने के कौन से स्थानक हैं?

दादाश्री : ज्ञान मिलने के बाद संसार में फिसलने की तीन ही चीज़ें हैं। बाकी सब खाना-पीना, कपड़े पहनना, चश्मा लगाना, सिनेमा देखने जाना, चाहे कुछ भी खाना, लेकिन सिर्फ मांसाहार नहीं कर सकते। दूसरा, ब्रान्डी की बूँद भी नहीं छू सकते और तीसरा, पराई स्त्री नहीं। पराई स्त्री का विचार आए तो प्रतिक्रमण करना। ये तीन ही चीज़ें गिरने के स्थानक हैं। अन्य कोई चीज़ नहीं गिराएगी। गिरना अर्थात् फिर सही नहीं होगा। इसलिए हम कहते हैं कि हमारे पास मत आना और अगर आओगे तो गिरने के बाद में हड्डी भी नहीं मिलेगी। इसमें तो बहुत उच्च-हाई लेवल पर पहुँच जाते हैं। इसके बजाय यदि ज़रा सा ऊँचे जाकर गिर जाओ तो हड्डियाँ कम टूटेंगी। अन्य कोई भी गिरने के भयस्थानक नहीं हैं। बाकी तो, काम-धंधा करना, सब करना, चाय पीना, उसमें हर्ज नहीं है। चाय तो इन्टोक्सिकेशन है, लेकिन फिर भी यदि पीओगे तो हर्ज नहीं है। उससे नशा नहीं होता न! शराब पीने से तो आत्मा का होश नहीं रहता। फिर पूरा ज्ञान खत्म हो जाता है। उसके बाद नर्कगति मिलती है उसे और पर-स्त्री में भी ऐसा ही है। पर-स्त्री संबंध में निबेड़ा ही नहीं आएगा। ये शराब के संबंध में निबेड़ा नहीं आ सकता है। मांसाहार के बारे में निबेड़ा ही नहीं आएगा। यह नोट करके रखना। गिरने के स्थानक पसंद नहीं हैं न, या पसंद हैं?

प्रत्यक्ष ज्ञानी से पूछ-पूछकर ही प्रगति

यह जो रास्ता बताया है, वही रास्ता है। जिस रास्ते से मैं आया हूँ, वह रास्ता मैंने आपको दे दिया है। मेरे अनुभव वाला ही रास्ता दिया है। शास्त्रों में कहीं भी नहीं है यह अनुभव वाला रास्ता। शास्त्रों में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो कि अनुभव वाला रास्ता हो और इस काल के लोगों के काम आ सके।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए आप कई बार कहते हैं कि 'हमारी उपस्थिति में प्रत्यक्ष कर लो।'

दादाश्री : वही हम कहते हैं न, कि हमारी उपस्थिति में प्रत्यक्ष अर्थात् आपका जो भी अनुभव हुआ हो और वह अनुभव अगर आपको

उलझा रहा है तो हमारे अनुभव से पूछ लो तो आपके अनुभव की उलझनें निकल जाएँगी। वह अनुभव आपको फिट हो जाए, बस उतना ही कर लेना है। हमारे पास अनुभव का स्टॉक है। आपको अब अनुभव होने लगे हैं। 'यह सही या वह सही', ऐसा पूछ लोगे तो निबेड़ा आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : बस, इसीलिए जब भी कोई उलझन होती हो या जो कुछ भी होता हो तो आपसे पूछकर और उसका *निकाल* ला देना है फिर!

दादाश्री : हाँ, रात को पूछो, दिन में पूछो, एट एनी टाइम पूछो। ऐसा कुछ नहीं है कि भाई, तीन बजे ही पूछना है। यह मुहूर्त वाली चीज़ नहीं है। मुहूर्त वाली चीज़ें बाहर हैं। यहाँ पर तो रात ग्यारह बजे भी आकर अपने उलझनों को सुलझाने के लिए सब पूछा जा सकता है।

ज्ञान से पहले वाली दादा की अनुभूतियाँ...

आज्ञा पालन करने से निरंतर समाधि रहती है, मोक्ष ही बरतता है! यह तो हमारी चखी हुई चीज़ आपको दी है न! अनुभव की हुई चीज़ दी है न!

प्रश्नकर्ता : आपने पाँच आज्ञा का कैसा अनुभव किया है?

दादाश्री : इन सब ने जिस प्रकार से अनुभव किया है, उसी प्रकार से। उन्हें पूछकर देख लेना तो पता चल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था कि आप अक्रम में से नहीं आए हैं।

दादाश्री : नहीं, मैं क्रमिक में से आया हूँ।

प्रश्नकर्ता : तो आपको अक्रम का अनुभव नहीं है, लेकिन आपने ऐसा बताया कि आपने अक्रम ज्ञान द्वारा देखा है।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। लेकिन यह सारी कमाई क्रमिक में से ही की है और उदय में आ गया अक्रम। लेकिन मेहनत बहुत की है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आपके अनुभव अलग तरह के होंगे न, दादा?

दादाश्री : लेकिन वे तो बहुत लंबे हैं। बहुत बड़ा इतिहास बन जाएगा पूरा। वह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो दो शब्दों में कही जा सके।

प्रश्नकर्ता : दादा, पाँच आज्ञा में से कौन सी आज्ञा का आपको सब से ज़्यादा अनुभव हुआ है?

दादाश्री : व्यवस्थित का ज़्यादा अनुभव हुआ है। शुरू से ही व्यवस्थित लेकर आया था। इसीलिए इन पाँच आज्ञाओं में व्यवस्थित की खोज है। मुख्य खोज हमारी व्यवस्थित की है। वर्ना यह दुनिया भविष्य की चिंता से रहित है ही नहीं। उसे अग्रशोच कहा जाता है। अग्रशोच यानी 'क्या होगा?' पूरी दुनिया ही, ये साधु-सन्यासी भी उसी में हैं। उसी की चिंता रहती है। इस व्यवस्थित ने उस चिंता और अग्रशोच को उड़ा दिया।

प्रश्नकर्ता : उसे उड़ा देने से सारी प्रॉब्लम चली गईं न?

दादाश्री : सभी प्रॉब्लम छूट गईं और फिर अनुभव हुआ कि 'नहीं, वास्तव में व्यवस्थित ही है'। फिर ऐसा अनुभव हुआ। सिर्फ सेट किया हुआ होता तो टिक नहीं पाता।

प्रश्नकर्ता : ये पहली दो आज्ञाएँ तो आपको 1958 में ज्ञान होने के बाद में अनुभव में आई होंगी न?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान होते समय अनुभव में आया। यह क्या है और यह क्या, ऐसा अनुभव हुआ!

प्रश्नकर्ता : उससे पहले इन दो आज्ञाओं का पता था क्या?

दादाश्री : यह व्यवहार है और यह निश्चय, इतना समझ में आता था।

प्रश्नकर्ता : एक्ज़ेक्टनेस तो बाद में, ज्ञान हुआ उस समय दिखाई दिया?

दादाश्री : वही, ज्ञान के समय ही अनुभव में आ गया।

प्रश्नकर्ता : उसके बाद फाइलों का समभाव से *निकाल*...?

दादाश्री : वह तो पहले से ही करते आए थे न, ज्ञान नहीं था फिर भी! कृपालुदेव का पढ़ते थे तब हल ही करते थे न! बिल्कुल समभाव से *निकाल* नहीं, लेकिन साधारण तौर पर उसका जोड़-तोड़ करते थे, मन में चिढ़कर। मन में चिढ़कर शांत कर देते थे। लेकिन अपना तो यह 'समभाव से *निकाल*' तो मन में चिढ़ना भी नहीं और कुछ भी नहीं। आशीर्वाद देकर साफ करना है।

प्रश्नकर्ता : आशीर्वाद देकर 'समभाव से *निकाल*' करने की तो यह एक अतिरिक्त बात है लेकिन आपका शुद्धात्मा का खाता कब से खुला?

दादाश्री : ज्ञान हुआ, उसी दिन से।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमने तो आपके दर्शन कर-करके शुद्धात्मा के खाते में रकम जमा की, आपने किस तरह से की?

दादाश्री : कैसा जमा करना? जब एक ही दिन में प्रकट हो गया, फिर! कल तक 'ए.एम.पटेल' थे और आज शुद्धात्मा बन गए, दृष्टि मात्र से। दृष्टि बदल गई न वहाँ!

प्रश्नकर्ता : आपको एक ही घंटे में किस तरह से दृष्टि पक्की हो गई?

दादाश्री : कृपा से क्या नहीं हो सकता? भगवान की कृपा हो जाए तो क्या नहीं हो सकता?

प्रश्नकर्ता : हम पर तो, आपके अंदर जो प्रकट हुए हैं, उन दादा भगवान की कृपा होती है। आप पर किसकी (कृपा) हुई?

दादाश्री : मुझ पर कैसी हुई, उसका क्या पता चले? मुझे किसी ने बदला! इसीलिए मैं 'बट नैचुरल' कहता हूँ न!

दादा की उपस्थिति की अनुभूति

प्रश्नकर्ता : आपकी उपस्थिति में विशेष शांति का अनुभव होता है।

दादाश्री : इस उपस्थिति की तो बात ही अलग है न! यह मेरी उपस्थिति तो आपको दिखाई देती है, लेकिन मुझे जिसकी उपस्थिति दिखाई देती है, वह उपस्थिति आपको भी बरतती है। चौदह लोकों के नाथ, जहाँ पूरे ब्रह्मांड का नाथ अंदर प्रकट हो गया है, उसका लाभ मुझे भी मिलता है और आपको भी मिलता है। इतनी निकटता होनी चाहिए, बस! जितना नज़दीक उतना ही लाभ और आसपास का वातावरण तो अच्छा रहता ही है। उसमें भी फिर वातावरण में बदलाव! लेकिन निकटता का लाभ मिलना और वह भी फिर उसे समझकर। समझे बिना लाभ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : जब तीर्थंकर विचरण करते थे, वैसा वातावरण लगा...

दादाश्री : उपस्थिति से पूरा वातावरण ही चेन्ज हो जाता है। लेकिन तीर्थंकरों का वातावरण तो अन्कम्पेरेबल है। कम्पेयर ही नहीं कर सकते। तीर्थंकरों का शरीर भी भगवान है!

बुद्धि बंद तो भगवान पूर्ण रूप से प्रकट हो जाते हैं

ये दादा भगवान नहीं हैं, अंदर जो प्रकट हुए हैं, वे पूरे ब्रह्मांड के नाथ हैं, वे दादा भगवान हैं! वे दादा भगवान आप में भी हैं, लेकिन प्रकट नहीं हुए हैं। वे पूर्ण प्रकाश में आ जाने चाहिए। अब पूर्ण प्रकाश में आने लगेंगे।

अब अगर इसमें बुद्धि घुसी तो बिगाड़ देगी। अत: बुद्धि से कहना कि, 'तू संसार का जो काम करती है, वह करती रह अपने आप, बहन। इसमें हाथ मत डालना', कहना। 'सारा रिलेटिव तुझे सौंप दिया। जो रियल है, वह ज्ञान को सौंप दिया है।' इसे ज्ञान कहते हैं। आपको ज्ञान दिया है, फिर यह जब विज्ञान स्वरूप हो जाएगा तब

फुल प्रकट होगा, परफेक्ट। अभी आप में भगवान ज्ञान स्वरूप से हैं ही, वे विज्ञान स्वरूप हो जाएँगे! हमारे अंदर विज्ञान स्वरूप हो चुके हैं इसीलिए भगवान पद कहा जाता है।

हमारा दिया हुआ ज्ञान, वह तो एक्ज़ेक्ट अपनी जगह पर है। जितना आपको दृष्टिगम्य हुआ, उतना आपका। बाकी का दृष्टिगम्य नहीं हुआ है। मूल स्वरूप में जो ज्ञान दिया है, उस मूल स्वरूप की अभी तक आपको एक्ज़ेक्टनेस नहीं आई है, पूरी तरह से। तब तक ऐसा लगेगा कि बढ़ रहा है। वर्ना यह ज्ञान तो वही का वही है, मूल स्वरूप में ही है। लेकिन मूल स्वरूप में जब एक्ज़ेक्टनेस आएगी, तब फिर बढ़ना या कम होना नहीं रहेगा। यह बढ़ना और कम होना क्या है? आपको जो दृष्टि मिलती है वह बढ़ती जा रही है दिनोंदिन। वह मूल स्वरूप में आना चाहती है। जिस प्रकार का आपको दिया था, उसी स्वरूप होना चाहती है।

महात्मा एक दिन भगवान बनकर रहेंगे

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा कि हम सभी को आप भगवान बनाना चाहते हैं, तो वह तो जब बनेंगे तब ठीक है। अभी तो नहीं बने हैं न?

दादाश्री : लेकिन ऐसा होगा न, क्योंकि यह अक्रम विज्ञान है! जो बनाने वाला है, वह निमित्त है, और बनने की जिसे इच्छा है, जब ये दोनों इकट्ठे होंगे तो वैसा होगा ही! बनाने वाला क्लियर है और अपना क्लियर है, अपनी और कुछ नीयत नहीं है। अत: एक दिन सारे अंतराय टूट जाएँगे और भगवान बनकर रहेगा, जो कि अपना ही मूल स्वरूप है!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

ऊपरी – बॉस, वरिष्ठ मालिक

भोगवटा – सुख या दुःख का असर, भुगतना

पूरण – चार्ज होना, भरना

गलन – डिस्चार्ज होना, खाली होना

ठपका – फटकारना, उलाहना, झिड़कना

अणहक्क – बिना हक़ का, अवैध

निकाल – निपटारा

चीकणा – गाढ़

पुद्गल – अहंकार, जो पूरण और गलन होता है

उपाधि – बाहर से आने वाला दुःख, परेशानी

लक्ष – जागृति

अटकण – जो बंधन रूप हो जाए, जो आगे नहीं बढ़ने दे

खेंच – अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना, आग्रह

संवर – कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना

निर्जरा – आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना

आड़ाई – अहंकार का टेढ़ापन

अजंपा – बेचैनी, अशांति, घबराहट

कढ़ापा – कुढ़न, क्लेश

अशाता – दुःख–परिणाम

शाता – सुख–परिणाम

चोविहार – सूर्यास्त से पहले भोजन करना

तरछोड़ – तिरस्कार सहित दुत्कारना

आरा – कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा

उपराणां – रक्षण करना, तरफदारी करना

चीकणी फाइल – गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग

पोतापणुं – मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन, खुदपना

ढोरलांघण – मालिक की गफलत की वजह से मवेशी का भूखा रहना

टेकाज्ञान – आत्म जागृति में सहायता करे ऐसा ज्ञान, सपोर्टिंग ज्ञान

पटंतर – जब अज्ञान से मुक्ति पाकर जीव आत्मज्ञान प्राप्त करता है वह स्थिति

नोंध – अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना, नोट करना, दर्ज करना

त्रागा – अपनी मनमानी, बात मनवाने के लिए किया जाने वाला नाटक

नियाणां – अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक चीज़ की कामना करना

संवरपूर्वक निर्जरा – नए कर्म बीज डले बिना कर्मफल की निर्जरा हो जाना

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार (सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
54. आप्तवाणी - 14 (भाग-1, भाग-2)
56. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)
57. आप्तवाणी - 12 (पू)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट **www.dadabhagwan.org** पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : 9328661166, 9328661177
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	: 9810098564	**बेंगलूर**	: 9590979099
कोलकता	: 9830080820	**हैदराबाद**	: 9885058771
चेन्नई	: 7200740000	**पूणे**	: 7218473468
जयपुर	: 8890357990	**जलंधर**	: 9814063043
भोपाल	: 6354602399	**चंडीगढ़**	: 9780732237
इन्दौर	: 6354602400	**कानपुर**	: 9452525981
रायपुर	: 9329644433	**सांगली**	: 9423870798
पटना	: 7352723132	**भुवनेश्वर**	: 8763073111
अमरावती	: 9422915064	**वाराणसी**	: 9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 722 722 063

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 421127947

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 81129229

www.dadabhagwan.org

आत्म अनुभव की श्रेणियाँ प्रकाशित करें आप्तवाणियाँ...

ये आप्तवाणी की पुस्तकें तो और ही तरह की है। अनुभव वाली वाणी कभी होती ही नहीं है न! अध्यात्म के अनुभव वाली पुस्तक हो ही नहीं सकती। तो इन आप्तवाणियों में वे अनुभव ही हैं। दृष्टांत अनुभव के ही हैं। हमने पहाड़ की चोटी पर रहकर पहाड़ का पूरा वर्णन किया है। कहीं भी पूरा-पूरा अनुभव अनावृत हुआ ही नहीं है। क्योंकि इन लोगों ने अनुभव के स्टेशन पर आने के बाद, 'अनुभव क्या है', इतना थोड़ा सा भाग अनावृत किया है और बाकी का आगे का सारा अनुभव कहना बंद हो गया है। जबकि अपनी ये आप्तवाणियाँ तो पूर्ण अनुभव वाली वाणी ही है और यह अनुभव वाली वाणी तो अंत तक चलेगी।

- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए.एम.पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवान के असीम जय जयकार हो

dadabhagwan.org